संत ज्ञानेश्वरकृत

ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका

प्रथम संपादन

स संत एकनाथ

टंकन व मुद्रितशोधन : स्वामी निश्चलानंद सरस्वती

अनुक्रमणिका

.. ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका

अध्याय १ ..

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय पहिला। अर्जुनविषादयोगः।

ॐ नमो जी आद्या। वेद प्रतिपाद्या। जय जय स्वसंवेद्या। आत्मरूपा ॥१॥
देवा तूंचि गणेशु। सकलार्थमतिप्रकाशु। म्हणे निवृत्तिदासु। अवधारिजो जी ॥२॥
हें शब्दब्रह्म अशेष। तेचि मूर्ति सुवेष। जेथ वर्णवपु निर्दोष। मिरवत असे ॥३॥
स्मृति तेचि अवयव। देखा आंगीक भाव। तेथ लावण्याची ठेव। अर्थशोभा ॥४॥
अष्टादश पुराणें। तींचि मणिभूषणें। पदपद्धति खेवणें। प्रमेयरत्नांचीं ॥५॥
पदबंध नागर। तेंचि रंगाथिले अंबर। जेथ साहित्य वाणें सपूर। उजाळाचें ॥६॥
देखा काव्य नाटका। जे निर्धारितां सकौतुका। त्याचि रुणझुणती क्षुद्रघंटिका। अर्थध्वनि ॥७॥
नाना प्रमेयांची परी। निपुणपणें पाहतां कुसरी। दिसती उचित पदें माझारीं। रत्नें भलीं ॥८॥
तेथ व्यासादिकांच्या मतीं। तेचि मेखळा मिरवती। चोखाळपणें झळकती। पल्लवसडका ॥९॥
देखा षड्दर्शनें म्हणिपती। तेची भुजांची आकृति। म्हणौनि विसंवादे धरिती। आयुधें हातीं ॥१०॥
तरी तर्कु तोचि फरशु। नीतिभेदु अंकुशु। वेदांतु तो महारसु। मोदकु मिरवे ॥११॥
एके हातीं दंतु। जो स्वभावता खंडितु। तो बौद्धमतसंकेतु। वार्तिकांचा ॥१२॥
मग सहजें सत्कारवादु। तो पद्मकरु वरदु। धर्मप्रतिष्ठा तो सिद्धु। अभयहस्तु ॥१३॥
देखा विवेकवंतु सुविमळु। तोचि शुंडादंडु सरळु। जेथ परमानंदु केवळु। महासुखाचा ॥१४॥
तरी संवादु तोचि दशनु। जो समता शुभ्रवर्णु। देवो उन्मेषसूक्ष्मेक्षणु। विघ्नराजु ॥१५॥
मज अवगमलिया दोनी। मिमांसा श्रवणस्थानीं। बोधमदामृत मुनी। अली सेविती ॥१६॥
प्रमेयप्रवाल सुप्रभ। द्वैताद्वैत तेचि निकुंभ। सरिसेपणें एकवटत इभ- । मस्तकावरी ॥१७॥
उपरि दशोपनिषदें। जियें उदारें ज्ञानमकरंदे। तियें कुसुमें मुगुटीं सुगंधें। शोभती भलीं ॥१८॥
अकार चरण युगल। उकार उदर विशाल। मकार महामंडल। मस्तकाकारें ॥१९॥
हे तीन्ही एकवटले। तेथ शब्दब्रह्म कवळलें। तें मियां श्रीगुरुकृपा नमिलें। आदिबीज ॥२०॥
आतां अभिनव वाग्विलासिनी। ते चातुर्यार्थकलाकामिनी। ते शारदा विश्वमोहिनी। नमिली मियां ॥२१॥
मज हृदयीं सद्गुरु। जेणें तारिलों हा संसारपूरु। म्हणौनि विशेषें अत्यादरु। विवेकावरी ॥२२॥
जैसें डोळयां अंजन भेटे। ते वेळीं दृष्टीसी फांटा फुटे। मग वास पाहिजे तेथ। प्रगटे महानिधी ॥२३॥
कां चिंतामणी जालियां हातीं। सदा विजयवृत्ति मनोरथीं। तैसा मी पूर्णकाम श्रीनिवृत्ति। ज्ञानदेवो म्हणे ॥२४॥
म्हणोनि जाणतेनें गुरु भजिजे। तेणें कृतकार्य होईजे। जैसें मुळसिंचनें सहजें। शाखापल्लव संतोषती ॥२५॥
कां तीर्थें जियें त्रिभुवनीं। तियें घडती समुद्रावगाहनीं। ना तरी अमृतरसास्वादनीं। रस सकळ ॥२६॥
तैसा पुढतपुढती तोचि। मियां अभिवंदिला श्रीगुरुचि। जो अभिलषित मनोरुचि। पुरविता तो ॥२७॥
आतां अवधारा कथा गहन। जे सकळां कौतुकां जन्मस्थान। कीं अभिनव उद्यान। विवेकतरूचें ॥२८॥
ना तरी सर्व सुखाचि आदि। जे प्रमेयमहानिधि। नाना नवरससुधाब्धि। परिपुर्ण हे ॥२९॥
कीं परमधाम प्रकट। सर्व विद्यांचे मूळपीठ। शास्त्रजाता वसौट। अशेषांचें ॥३०॥
ना तरी सकळ धर्मांचें माहेर। सज्जनांचे जिव्हार। लावण्यरत्नभांडार। शारदेचें ॥३१॥

नाना कथारूपें भारती। प्रकटली असे त्रिजगतीं। आविष्करोनि महामतीं। व्यासाचिये ॥३२॥
म्हणौनि हा काव्यांरावो। ग्रंथ गुरुवतीचा ठावो। एथूनि रसां झाला आवो। रसाळपणाचा ॥३३॥
तेवींचि आइका आणिक एक। एथूनि शब्दश्री सच्छास्त्रिक। आणि महाबोधीं कोंवळीक। दुणावली ॥३४॥
एथ चातुर्य शहाणें झालें। प्रमेय रुचीस आलें। आणि सौभाग्य पोखलें। सुखाचें एथ ॥३५॥
माधुर्यीं मधुरता। श्रृंगारीं सुरेखता। रूढपण उचितां। दिसे भलें ॥३६॥
एथ कळाविदपण कळा। पुण्यासि प्रतापु आगळा। म्हणौनि जनमेजयाचे अवलीळा। दोष हरले ॥३७॥
आणि पाहतां नावेक। रंगीं सुरंगतेची आगळीक। गुणां सगुणपणाचें बिक। बहुवस एथ ॥३८॥
भानुचेनि तेजें धवळलें। जैसे त्रैलोक्य दिसे उजळिलें। तैसें व्यासमति कवळिलें। मिरवे विश्व ॥३९॥
कां सुक्षेत्रीं बीज घातलें। तें आपुलियापरी विस्तारलें। तैसें भारतीं सुरवाडलें। अर्थजात ॥४०॥
ना तरी नगरांतरीं वसिजे। तरी नागराचि होईजे। तैसें व्यासोक्तितेजें। धवळत सकळ ॥४१॥
कीं प्रथमवयसाकाळीं। लावण्याची नव्हाळी। प्रगटे जैसी आगळी। अंगनाअंगीं ॥४२॥
ना तरी उद्यानीं माधवी घडे। तेथ वनशोभेची खाणी उघडे। आदिलापासौनि अपाडें। जियापरी ॥४३॥
नानाघनीभूत सुवर्ण। जैसें न्याहाळितां साधारण। मग अलंकारीं बरवेपण। निवाडु दावी ॥४४॥
तैसें व्यासोक्ति अळंकारिलें। आवडे तें बरवेपण पातलें। तें जाणोनि काय आश्रयिलें। इतिहासीं ॥४५॥
नाना पुरतिये प्रतिष्ठेलागीं। सानीव धरूनि आंगीं। पुराणें आख्यानरूपें जगीं। भारता आलीं ॥४६॥
म्हणौनि महाभारतीं नाहीं। तें नोहेचि लोकीं तिहीं। येणें कारणें म्हणिपे पाहीं। व्यासोच्छिष्ट जगत्रय ॥४७॥
ऐसी जगीं सुरस कथा। जें जन्मभूमि परमार्था। मुनि सांगे नृपनाथा। जनमेजया ॥४८॥
जें अद्वितीय उत्तम। पवित्रैक निरुपम। परम मंगलधाम। अवधारिजो ॥४९॥
आतां भारतकमळपरागु। गीताख्यु प्रसंगु। जो संवादला श्रीरंगु। अर्जुनेंसीं ॥५०॥
ना तरी शदब्रह्माब्धि। मथियला व्यासबुद्धि। निवडिलें निरवधि। नवनीत हें ॥५१॥
मग ज्ञानाग्निसंपर्कें। कडसिलेंनि विवेकें। पद आलें परिपाकें। आमोदासी ॥५२॥
जें अपेक्षिजे विरक्तीं। सदा अनुभविजे संतीं। सोहंभावें पारंगतीं। रमिजे जेथ ॥५३॥
जें आकर्णिजें भक्तीं। जें आदिवंद्य त्रिजगतीं। तें भीष्मपर्वीं संगती। म्हणितली कथा ॥५४॥
जें भगवद्गीता म्हणिजे। जें ब्रह्मेशांनीं प्रशंसिजे। जें सनकादिकीं सेविजे। आदरेंसीं ॥५५॥
जैसें शारदीचिये चंद्रकळे। माजि अमृतकण कोंवळे। ते वेंचिती मनें मवाळें। चकोरतलगें ॥५६॥
तियापरी श्रोतां। अनुभवावी हे कथा। अतिहळुवारपण चित्ता। आणूनियां ॥५७॥
हें शब्देंवीण संवादिजे। इंद्रियां नेणतां भोगिजे। बोलाआधि झोंबिजे। प्रमेयासी ॥५८॥
जैसे भ्रमर परागु नेती। परी कमळदळें नेणती। तैसी परी आहे सेविती। ग्रंथीं इये ॥५९॥
कां आपुला ठावो न सांडितां। आलिंगिजे चंद्रु प्रकटतां। हा अनुरागु भोगितां। कुमुदिनी जाणे ॥६०॥
ऐसेनि गंभीरपणें। स्थिरावलोनि अंतःकरणें। आथिला तोचि जाणें। मानूं इये ॥६१॥
अहो अर्जुनाचिये पांती। जे परिसणया योग्य होती। तिहीं कृपा करूनि संतीं। अवधान द्यावें ॥६२॥
हें सलगी म्यां म्हणितलें। चरणां लागोनि विनविलें। प्रभू सखोल हृदय आपुलें। म्हणौनियां ॥६३॥
जैसा स्वभावो मायबापांचा। अपत्य बोले जरी बोबडी वाचा। तरी अधिकचि तयाचा। संतोष आथी ॥६४॥
तैसा तुम्हीं मी अंगिकारिला। सज्जनीं आपुला म्हणितला। तरी उणें सहजें उपसाहला। प्रार्थूं कायी ॥६५॥
परी अपराधु तो आणिक आहे। जे मी गीतार्थु कवळुं पाहें। तें अवधारा विनवूं लाहें। म्हणौनियां ॥६६॥
हें अनावर न विचारितां। वायांचि धिंवसा उपनला चित्ता। येऱ्हवीं भानुतेजीं काय खद्योता। शोभा आथी ॥६७॥
कीं टिटिभू चांचुवरी। माप सूये सागरीं। मी नेणतु त्यापरी। प्रवर्तें येथ ॥६८॥

आइका आकाश गिंवसावें। तरी आणीक त्याहूनि थोर होआवें। म्हणौनि अपाडू हें आघवें। निर्धारितां ॥६९॥
या गीतार्थाची थोरी। स्वयें शंभू विवरी। जेथ भवानी प्रश्नु करी। चमत्कारौनि ॥७०॥
तेथ हरु म्हणे नेणिजे। देवी जैसें कां स्वरूप तुझें। तैसें हें नित्य नूतन देखिजे। गीतातत्व ॥७१॥
हा वेदार्थ सागरु। जया निद्रिताचा घोरु। तो स्वयें सर्वेश्वरु। प्रत्यक्ष अनुवादला ॥७२ ॥
ऐसे जें अगाध। जेथ वेडावती वेद। तेथ अल्प मी मतिमंद। काई होये ॥७३॥
हें अपार कैसेनि कवळावें। महातेज कवणें धवळावें। गगन मुठीं सुवावें। मशकें केवीं ? ॥७४॥
परी एथ असे एकु आधारु। तेणेंचि बोले मी सधरु। जे सानुकूळ श्रीगुरु। ज्ञानदेवो म्हणे ॥७५॥
येऱ्हवीं तरी मी मुर्खु। जरी जाहला अविवेकु। तऱ्ही संतकृपादीपकु। सोज्वळु असे ॥७६॥
लोहाचें कनक होये। हें सामर्थ्य परिसींच आहे। कीं मृतही जीवित लाहे। अमृतसिद्धि ॥७७॥
जरी प्रकटे सिद्धसरस्वती। तरी मुकयाहि आथी भारती। एथ वस्तुसामर्थ्यशक्ति। नवल कयी ॥७८॥
जयातें कामधेनु माये। तयासी अप्राप्य कांहीं आहे। म्हणौनि मी प्रवर्तों लाहें। ग्रंथीं इये ॥७९॥
तरी न्यून ते पुरतें। अधिक तें सरतें। करूनि घेयावें हें तुमतें। विनवितु असे ॥८०॥
आतां देईजो अवधान। तुम्हीं बोलविल्या मी बोलेन। जैसे चेष्टे सूत्राधीन। दारुयंत्र ॥८१॥
तैसा मी अनुग्रहीतु। साधूंचा निरूपितु। ते आपुलियापरी अलंकारितु। भलतयापरी ॥८२॥
तंव श्रीगुरु म्हणती राहीं। हे तुज बोलावें नलगे कांहीं। आतां ग्रंथा चित्त देईं। झडकरी वेगां ॥८३॥
या बोला निवृत्तिदासु। पावूनि परम उल्हासु। म्हणे परियसा मना अवकाशु। देऊनियां ॥८४॥

धृतराष्ट्र उवाच ।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥१॥

तरी पुत्रस्नेहें मोहितु। धृतराष्ट्र असे पुसतु। म्हणे संजया सांगे मातु। कुरुक्षेत्रींची ॥८५॥
जें धर्मालय म्हणिजे। तेथ पांडव आणि माझे। गेले असती व्याजें। जुंझाचेनि ॥८६॥
तरी तेचि येतुला अवसरीं। काय किजत असे येरयेरीं। ते झडकरी कथन करी। मजप्रती ॥८७॥

संजय उवाच ।

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

तिये वेळीं तो संजय बोले। म्हणे पांडव सैन्य उचललें। जैसें महाप्रळयीं पसरलें। कृतांतमुख ॥८८॥
तैसें तें घनदाट। उठावलें एकवाट। जैसें उसळलें काळकूट। धरी कवण ॥८९॥
नातरी वडवानळु सादुकला। प्रळयवातें पोखला। सागरु शोषूनि उधवला। अंबरासी ॥९०॥
तैसें दळ दुर्धर। नानाव्यूहीं परीकर। अवगमलें भयासुर। तिये काळीं ॥९१॥
तें देखोनियां दुर्योधनें। अव्हेरिलें कवणें मानें। जैसे न गणिजे पंचाननें। गजघटांतें ॥९२॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥

मग द्रोणापासीं आला। तयांतें म्हणे हा देखिला। कैसा दळभारू उचलला। पांडवांचा ॥९३॥
गिरिदुर्ग जैसे चालते। तैसे विविध व्यूह सभंवते। रचिले आथी बुद्धिमंतें। द्रुपदकुमरें ॥९४॥
जो हा तुम्हीं शिक्षापिला। विद्या देऊनि कुरुठा केला। तेणें हा सैन्यसिंहु पाखरिला। देख देख ॥९५॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४॥

आणिकही असाधारण। जे शस्त्रास्त्रीं प्रवीण। क्षात्रधर्मीं निपुण। वीर आहाती ॥९६॥
जे बळें प्रौढी पौरुषें। भीमार्जुनांसारिखे। ते सांगेन कौतुकें। प्रसंगेची ॥९७॥
एथ युयुधानु सुभटु। आला असे विराटु। महारथी श्रेष्ठु। द्रुपद वीरु ॥९८॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥५॥
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥६॥

चेकितान धृष्टकेतु। काशिराज वीर विक्रांतु। उत्तमौजा नृपनाथु। शैब्य देख ॥९९॥
हा कुंतिभोज पाहें। एथ युधामन्यु आला आहे। आणि पुरुजितादि राय हे। सकळ देख ॥१००॥
हा सुभद्राहृदयनंदनु। जो अपरु नवार्जुनु। तो अभिमन्यु म्हणे दुर्योधनु। देखें द्रोणा ॥१०१॥
आणीकही द्रौपदीकुमर। हे सकळही महारथी वीर। मिती नेणिजे परी अपार। मीनले असती ॥१०२॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥७॥
भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥८॥

आतां आमुच्या दळीं नायक। जे रूढवीर सैनिक। ते प्रसंगें आइक। सांगिजती ॥१०३॥
उद्देशें एक दोनी। जायिजती बोलोनी। तुम्ही आदिकरूनी। मुख्य जे जें ॥१०४॥
हा भीष्म गंगानंदनु। जो प्रतापतेजस्वी भानु। रिपुगजपंचाननु। कर्णवीरु ॥१०५॥
या एकेकाचेनी मनोव्यापारें। हें विश्व होय संहरे। हा कृपाचार्यु न पुरे। एकलाचि ॥१०६॥
एथ विकर्ण वीरु आहे। हा अश्वत्थामा पैल पाहें। याचा आडदरु सदां वाहे। कृतांतु मनीं ॥१०७॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥९॥

समितिंजयो सौमदत्ती। ऐसे आणीकही बहुत आहाती। जयांचिया बळा मिती। धाताही नेणें ॥१०८॥
जे शास्त्रविद्यापारंगत। मंत्रावतार मूर्त। हो कां जें अस्त्रजात। एथूनि रूढ ॥१०९॥
हे अप्रतिमल्ल जगीं। पुरता प्रतापु अंगीं। परी सर्व प्राणें मजलागीं। आरायिले असती ॥११०॥
पतिव्रतेचें हृदय जैसें। पतिवांचूनि न स्पर्शे। मी सर्वस्व या तैसें। सुभटांसी ॥१११॥
आमुचिया काजाचेनि पाडें। देखती आपुलें जीवित थोकडें। ऐसे निरवधि चोखडें। स्वामिभक्त ॥११२॥
झुंजती कुळकणी जाणती। कळे किर्तीसी जिती। हे बहु असो क्षात्रनीति। एथोनियां ॥११३॥
ऐसे सर्वांपरि पुरते। वीर दळीं आमुते। आतं काय गणूं यांतें। अपार हे ॥११४॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

वरी क्षत्रियांमाजी श्रेष्ठु। जो जगजेठी जगीं सुभटु। तया दळवैपणाचा पाटु। भीष्मासि पैं ॥११५॥
आतां याचेनि बळें गवसलें। हे दुग जैसे पन्नासिलें। येणें पाडें थेकुलें। लोकत्रय ॥११६॥
आधींच समुद्र पाहीं। तेथ दुवाडपण कवणा नाहीं। मग वडवानळु तैसे याही। विरजा जैसा ॥११७॥
ना तरीं प्रळयवन्ही महावातु। या दोघां जैसा सांधातु। तैसा हा गंगासुतु। सेनापति ॥११८॥
आतां येणेंसि कवण भिडे। हें पांडवसैन्य कीर थोकडें। परि वरचिलेनि पाडें। दिसत असे ॥११९॥
वरी भीमसेनु बेथु। तो जाहला असे सेनानाथु। ऐसें बोलोनियां मातु। सांडिली तेणें ॥१२०॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥११॥

मग पुनरपि काय बोले। सकळ सैनिकांतें म्हणितलें। आतां दळभार आपुलाले। सरसे करा ॥१२१॥
जया जिया अक्षौहिणी। तेणें तिया आरणी। वरगण कवणकवणी। महारथीया ॥१२२॥
तेणें तिया आवरिजे। भीष्मातळीं राहिजे। द्रोणातें म्हणे पाहिजे। तुम्ही सकळ ॥१२३॥
हाचि एकु रक्षावा। मी तैसा हा देखावा। येणें दळभारु आघवा। साचु आमुचा ॥१२४॥

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान ॥१२॥

या राजयाचिया बोला। सेनापति संतोषला। मग तेणें केला। सिंहनादु ॥१२५॥
तो गाजत असे अद्‌भुतु। दोन्ही सैन्याआंतु। प्रतिध्वनि न समातु। उपजत असे ॥१२६॥
तयाचि तुलगासवें। वीरवृत्तीचेनि थावें। दिव्य शंख भीष्मदेवें। आस्फुरिला ॥१२७॥
ते दोन्ही नाद मीनले। तेथ त्रैलोक्य बधिरीभूत जाहलें। जैसें आकाश कां पडिलें। तुटोनिया ॥१२८॥
घडघडीत अंबर। उचंबळत सागर। क्षोभलें चराचर। कांपत असे ॥१२९॥
तेणें महाघोषगजरें। दुमदुमिताती गिरिकंदरें। तव दळामाजीं रणतुरें। आस्फुरिलीं ॥१३०॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥

उदंड सैंघ वाजतें। भयानखें खाखातें। महाप्रळयो जेथें। धाकडांसी ॥१३१॥
भेरी निशाण मांदळ। शंख काहळ भोंगळ। आणि भयासुर रणकोल्हाळ। सुभटांचे ॥१३२॥
आवेशें भुजा त्राहाटिती। विसणेले हांका देती। जेथ महामद भद्रजाती। आवरती ना ॥१३३॥
तेथ भेडांची कवण मातु। कांचया केर फिटतु। जेणें दचकला कृतांतु। आंग नेघे ॥१३४॥
एकां उभयाचि प्राण गेले। चांगांचे दांत बैसले। बिरुदाचे दादुले। हिंवताती ॥१३५॥
ऐसा अद्‌भुत तूरबंबाळु। ऐकोनि ब्रह्मा व्याकुळु। देव म्हणती प्रळयकाळु। वोढवला आजी ॥१३६॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥१४॥
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥१५॥
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥

ऐसी स्वर्गीं मातु। देखोनि तो आकांतु। तव पांडवदळाआंतु। वर्तलें कायी ॥१३७॥
हो कां निजसार विजयाचें। कीं तें भांडार महातेजाचें। जेथ गरुडाचिये जावळियेचे। कांतले चाऱ्ही ॥१३८॥
कीं पाखांचा मेरु जैसा। रहंवरु मिरवतसे तैसा। तेजें कोंदाटलिया दिशा। जयाचेनि ॥१३९॥
जेथ अश्ववाहकु आपण। वैकुंठींचा राणा जाण। तया रथाचे गुण। काय वर्णूं ॥१४०॥
ध्वजस्तंभावरी वानरु। तो मुर्तिमंत शंकरु। सारथी शारङ्गधरु। अर्जुनेसीं ॥१४१॥
देखा नवल तया प्रभूचें। अद्‌भुत प्रेम भक्ताचें। जें सारथ्यपण पार्थाचें। करितु असे ॥१४२॥
पाइकु पाठींसी घातला। आपण पुढां राहिला। तेणें पाञ्चजन्यु आस्फुरिला। अवलीळाचि ॥१४३॥
परि तो महाघोषु थोरु। गर्जतु असे गंहिरु। जैसा उदेला लोपी दिनकरु। नक्षत्रांतें ॥१४४॥
तैसें तुरबंबाळु भंवते। कौरवदळीं गाजत होते। ते हारपोनि नेणों केउते। गेले तेथ ॥१४५॥

तैसाचि देखे येरे। निनादें अति गहिरे। देवदत्त धनुर्धरें। आस्फुरिला ॥१४६॥
ते दोन्ही शब्द अचाट। मिनले एकवट। तेथ ब्रह्मकटाह शतकूट। हों पाहत असे ॥१४७॥
तंव भीमसेनु विसणैला। जैसा महाकाळु खवळला। तेणें पौण्ड्र आस्फुरिला। महाशंखु ॥१४८॥
तो महाप्रलयजलधरु। जैसा घडघडिला गहिंरु। तंव अनंतविजयो युधिष्ठिरु। आस्फुरित असे ॥१४९॥
नकुळें सुघोषु। सहदेवें मणिपुष्पकु। जेणें नादें अंतकु। गजबजला ठाके ॥१५०॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः॥१७॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक् पृथक् ॥१८॥
स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन ॥१९॥

तेथ भूपति होते अनेक। द्रुपद द्रौपदेयादिक। हा काशीपति देख। महाबाहु ॥१५१॥
तेथ अर्जुनाचा सुतु। सात्यकि अपराजितु। धृष्टद्युम्नु नृपनाथु। शिखंडी हन ॥१५२॥
विराटादि नृपवर। जे सैनिक मुख्य वीर। तिहीं नानाशंख निरंतर। आस्फुरिले ॥१५३॥
तेणें महाघोषनिर्घातें। शेष कूर्म अवचितें। गजबजोनि भूभारातें। सांडूं पाहती ॥१५४॥
तेथ तीन्ही लोक डळमळित। मेरु मांदार आंदोळित। समुद्रजळ उसळत। कैलासवेरी ॥१५५॥
पृथ्वीतळ उलथों पहात। आकाश असे आसुडत। तेथ सडा होत। नक्षत्रांचा ॥१५६॥
सृष्टी गेली रे गेली। देवां मोकळवादी जाहली। ऐशी एक टाळी पिटली। सत्यलोकीं ॥१५७॥
दिहाचि दिन थोकला। जैसा प्रलयकाळ मांडला। तैसा हाहाकारु जाहला। तिन्हीं लोकीं ॥१५८॥
तें देखोनि आदिपुरुषु विस्मितु। म्हणे झणें होय पां अंतु। मग लोपिला अद्‌भुतु। संभ्रमु तो ॥१५९॥
म्हणौनि विश्व सांवरलें। एऱ्हवीं युगांत होतें वोडवलें। जैं महाशंख आस्फुरिले। कृष्णादिकीं ॥१६०॥
तो घोष तरी उपसंहरला। परि पडिसाद होता राहिला। तेणें दळभार विध्वंसिला। कौरवांचा ॥१६१॥
जैसा गजघटाआंतु। सिंह लीला विदारितु। तैसा हृदयातें भेदितु। कौरवांचिया ॥१६२॥
तो गाजत जंव आइकती। तंव उभेचि हिये घालिती। एकमेकांतें म्हणती। सावध रे सावध ॥१६३॥

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥२०॥

तेथ बळें प्रौढीपुरतें। महारथी वीर होते। तिहीं पुनरपि दळातें। आवरिलें ॥१६४॥
मग सरिसेपणें उठावले। दुणवटोनि उचलले। तया दंडीं क्षोभलें। लोकत्रय ॥१६५॥
तेथ बाणवरी धर्नुधर। वर्षताती निरंतर। जैसे प्रळयांत जलधर। अनिवार कां ॥१६६॥
ते देखलिया अर्जुनें। संतोष घेऊनि मनें। मग संभ्रमें दिठी सेने। घालीतसे ॥१६७॥
तंव संग्रामीं सज्ज जाहले। सकळ कौरव देखिले। तंव लीलाधनुष्य उचललें। पंडुकुमरें ॥१६८॥

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।
अर्जुन उवाच।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥२१॥
यावदेतान्निरिक्षेऽहं योद्‌धुकामानवस्थितान।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन रणसमुद्यमे ॥२२॥
योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।

धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥२३॥

ते वेळीं अर्जुन म्हणतसे देवा। आतां झडकरी रथु पेलावा। नेऊनि मध्यें घालावा। दोहीं दळां ॥१६९॥

जंव मी नावेक। हे सकळ वीर सैनिक। न्याहाळीन अशेख। झुंजते ते ॥१७०॥

येथ आले असती आघवें। परी कवणेंसीं म्यां झुंजावें। हे रणीं लागे पहावें। म्हणौनियां ॥१७१॥

बहुतकरूनि कौरव। हे आतुर दुःस्वभाव। वांटिवेवीण हांव। बांधिती झुंजीं ॥१७२॥

झुंजाची आवडी धरिती। परी संग्रामीं धीर नव्हती। हें सांगोनि रायाप्रती। काय संजयो म्हणे ॥१७३॥

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।

सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥२४॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।

उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥२५॥

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितृनथ पितामहान ।

आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा॥२६॥

श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान ॥२७॥

कृपया परयाऽऽविष्टो विषीदमब्रवीत् ।

आइका अर्जुन इतुकें बोलिला। तंव श्रीकृष्णें रथु पेलिला। दोही सैन्यांमाजीं केला। उभा तेणें ॥७४॥

जेथ भीष्मद्रोणादिक। जवळिकेचि सन्मुख। पृथिवीपति आणिक। बहुत आहाती ॥७५॥

तेथ स्थिर करूनियां रथु। अर्जुन असे पाहातु। तो दळभार समस्तु। संभ्रमेंसीं ॥७६॥

मग देवा म्हणे देख देख। हे गुरुगोत्र अशेख। तंव कृष्णमनीं नावेक। विस्मो जाहला ॥७७॥

तो आपणयां आपण म्हणे। एथ कायी कवण जाणे। हें मनीं धरलें येणें। परि कांहीं आश्चर्य असे ॥७८॥

ऐसी पुढील से घेतु। तो सहजें जाणें हृदयस्थु। परि उगा असे निवांतु। तिये वेळीं ॥१७९॥

तंव तेथ पार्थु सकळ। पितृ पितामह केवळ। गुरु बंधु मातुळ। देखता जाहला ॥१८०॥

इष्ट मित्र आपुले। कुमरजन देखिले। हे सकळ असती आले। तयांमाजी ॥१८१॥

सुहृज्जन सासरे। आणीकही सखे सोइरे। कुमर पौत्र धर्नुर्धरें। देखिले तेथ ॥१८२॥

जयां उपकार होते केले। कीं आपदीं जे रक्षिले। हे असो वडील धाकुले। आदिकरूनि ॥१८३॥

ऐसें गोत्रचि दोहीं दळीं। उदित जालें असे कळीं। हे अर्जुनें तिये वेळीं। अवलोकिलें ॥१८४॥

तेथ मनीं गजबज जाहली। आणि आपैसी कृपा आली। तेणें अपमानें निघाली। वीरवृत्ति ॥१८५॥

जिया उत्तम कुळींचिया होती। आणि गुणलावण्य आथी। तिया आणिकीतें न साहती। सुतेजपणें ॥१८६॥

नविये आवडीचेनि भरें। कामुक निजवनिता विसरे। मग पाडेंवीण अनुसरे। भ्रमला जैसा ॥१८७॥

कीं तपोबळें ऋद्धी। पातलिया भ्रंशे बुद्धी। मग तया विरक्तता सिद्धी। आठवेना ॥१८८॥

तैसें अर्जुना तेथ जाहलें। असतें पुरुषत्व गेलें। जे अंतःकरण दिधलें। कारुण्यासी ॥१८९॥

देखा मंत्रज्ञु बरळु जाय। मग तेथ कां जैसा संचारु होय। तैसा तो धनुर्धर महामोहें। आकळिला ॥१९०॥

म्हणौनि असतां धीरु गेला। हृदया द्रावो आला। जैसा चंद्रकळीं शिवतला। सोमकांतु ॥१९१॥

तयापरी पार्थु। अतिस्नेहें मोहितु। मग सखेद असे बोलतु। श्रीअच्युतेसीं ॥१९२॥

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेमम् स्वजनं कृष्ण युयुत्सुम् समुपस्थितम् ॥२८॥

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥२९॥

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् त्वक्चैव परिदह्यते ।

न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥३०॥

तो म्हणे अवधारी देवा। म्यां पाहिला हा मेळावा। तंव गोत्र वर्गु आघवा। देखिला एथ ॥१९३॥

हें संग्रामीं उदित। जहाले असती कीर समस्त। पण आपणपेयां उचित। केवीं होय ॥१९४॥

येणें नांवेचि नेणों कायी। मज आपणपें सर्वथा नाहीं। मन बुद्धि ठायीं। स्थिर नोहे ॥१९५॥

देखे देह कांपत। तोंड असे कोरडें होत। विकळता उपजत। गात्रांसीही ॥१९६॥

सर्वांगा कांटाळा आला। अति संतापु उपनला। तेथ बेंबळ हातु गेला। गांडिवाचा ॥१९७॥

तें न धरतचि निष्टलें। परि नेणेंचि हातोनि पडिलें। ऐसें हृदय असे व्यापिलें। मोहें येणें ॥१९८॥

जें वज्रापासोनि कठिण। दुर्धर अतिदारुण। तयाहून असाधारण। हें स्नेह नवल ॥१९९॥

जेणें संग्रामीं हरु जिंतिला। निवातकवचांचा ठावो फेडिला। तो अर्जुन मोहें कवळिला। क्षणामाजीं ॥२००॥

जैसा भ्रमर भेदी कोडें। भलतैसें काष्ठ कोरडें। परि कळिकेमाजी सांपडे। कोंवळिये ॥२०१॥

तेथ उत्तीर्ण होईल प्राणें। परि तें कमळदळ चिरूं नेणें। तैसें कठिण कोवळेपणें। स्नेह देखा ॥२०२॥

हे आदिपुरुषाची माया। ब्रह्मेयाही नयेचि आया। म्हणौनि भुलविला ऐकें राया। संजयो म्हणे ॥२०३॥

अवधारी मग तो अर्जुनु। देखोनि सकळ स्वजनु। विसरला अभिमानु। संग्रामींचा ॥२०४॥

कैसी नेणों सदयता। उपनली तेथें चित्ता। मग म्हणे कृष्णा आतां। नसिजे एथ ॥२०५॥

माझें अतिशय मन व्याकुळ। होतसे वाचा बरळ। जे वधावे हे सकळ। येणें नांवें ॥२०६॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।

न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥३१॥

या कौरवां जरी वधावें। तरी युधिष्ठीरादिकां कां न वधावें। हे येरयेर आघवे। गोत्रज आमुचे ॥२०७॥

म्हणोनि जळो हें झुंज। प्रत्यया न ये मज। एणें काय काज। महापापें ॥२०८॥

देवा बहुतापरी पाहतां। एथ वोखटे होईल झुंजतां। वर कांहीं चुकवितां। लाभु आथी ॥२०९॥

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।

किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥३२॥

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।

त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥३३॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।

मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥३४॥

तया विजयवृत्ती कांहीं। मज सर्वथा काज नाहीं। एथ राज्य तरी कायी। हे पाहुनियां ॥२१०॥

या सकळांतें वधावें। मग हे भोग भोगावे। ते जळोत आघवे। पार्थु म्हणे ॥२११॥

तेणें सुखेंविण होईल। तें भलतैसें साहिजेल। वरी जीवितही वेंचिजेल। याचिलागीं ॥२१२॥

परी यांसी घातु कीजे। मग आपण राज्यसुख भोगिजे। हें स्वप्नींही मन माझें। करूं न शके ॥२१३॥

तरी आम्हीं कां जन्मावें। कवणलागीं जियावें। जरी वडिलां यां चिंतावें। विरुद्ध मनें ॥२१४॥

पुत्रातें इच्छी कुळ। तयाचें कायि हेंचि फळ। जे निर्दळिजे केवळ। गोत्र आपुलें ॥२१५॥

हें मनींचि केविं धरिजे। आपण वज्राचेया होईजे। वरी घडे तरी कीजे। भलें इयां ॥२१६॥

आम्हीं जें जें जोडावें। तें समस्तीं इहीं भोगावें। हें जीवितही उपकारावें। काजीं यांच्या ॥२१७॥
आम्ही दिगंतीचे भूपाळ। विभांडूनि सकळ। मग संतोषविजे कुळ। आपुलें जें ॥२१८॥
तेचि हे समस्त। परी कैसें कर्म विपरीत। जे जाहले असती उद्यत। झुंजावया ॥२१९॥
अंतौरिया कुमरें। सांडोनियां भांडारें। शस्त्राग्रीं जिव्हारें। आरोपुनी ॥२२०॥
ऐसियांतें कैसेनि मारूं ?। कवणावरी शस्त्र धरूं ?। निजहृदया करूं। घातु केवीं ? ॥२२१॥
हें नेणसी तूं कवण। परी पैल भीष्म द्रोण। जयांचे उपकार असाधारण। आम्हां बहुत ॥२२२॥
एथ शालक सासरे मातुळ। आणि बंधु कीं हे सकळ। पुत्र नातू केवळ। इष्टही असती ॥२२३॥
अवधारी अति जवळिकेचे। हे सकळही सोयरे आमुचे। म्हणौनि दोष आथी वाचे। बोलितांचि ॥२२४॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥३५॥

हे वरी भलतें करितु। आतांचि येथें मारितु। परि आपण मनें घातु। न चिंतावा ॥२२५॥
त्रैलोक्यींचें अनकळित। जरी राज्य होईल प्राप्त। तरी हें अनुचित। नाचरें मी ॥२२६॥
जरी आजि एथ ऐसें कीजे। तरी कवणाच्या मनीं उरिजे ?। सांगे मुख केवीं पाहिजे। तुझें कृष्णा ? ॥२२७॥

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।
पापमेवाऽऽश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः॥३६॥

जरी वधु करोनि गोत्रजांचा। तरी वसौटा होऊनि दोषांचा। मज जोडिलासि तुं हातींचा। दूरी होसी ॥२२८॥
कुळहरणीं पातकें। तिये आंगीं जडती अशेखें। तये वेळीं तुं कवणें कें। देखावासी ? ॥२२९॥
जैसा उद्यानामाजीं अनळु। संचारला देखोनि प्रबळु। मग क्षणभरी कोकिळु। स्थिरु नोहे ॥२३०॥
का सकर्दम सरोवरु। अवलोकूनि चकोरु। न सेवितु अव्हेरु। करूनि निघे ॥२३१॥
तयापरी तुं देवा। मज झकवूं न येसीं मावा। जरी पुण्याचा वोलावा। नाशिजैल ॥२३२॥

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥३७॥

म्हणोनि मी हें न करीं। इये संग्रामीं शस्त्र न धरीं। हें किडाळ बहुतीं परी। दिसतसे ॥२३३॥
तुजसीं अंतराय होईल। मग सांगे आमुचें काय उरेल ?। तेणें दुःखें हियें फुटेल। तुजवीण कृष्णा ॥२३४॥
म्हणौनि कौरव हे वधिजती। मग आम्ही भोग भोगिजती। हे असो मात अघडती। अर्जुन म्हणे ॥२३५॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥३८॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥३९॥

हे अभिमानमदें भुललें। जरी पां संग्रामा आले। तऱ्ही आम्हीं हित आपुलें। जाणावें लागे ॥२३६॥
हें ऐसें कैसें करावें ?। जे आपुले आपण मारावे ?। जाणत जाणतांचि सेवावें। काळकूट ? ॥२३७॥
हां जी मार्गीं चालतां। पुढां सिंहु जाहला आवचिता। तो तंव चुकवितां। लाभु आथी ॥२३८॥
असता प्रकाशु सांडावा। मग अंधकूप आश्रावा। तरी तेथ कवणु देवा। लाभु सांगे ? ॥२३९॥
कां समोर अग्नि देखोनी। जरी न वचिजे वोसंडोनी। तरी क्षणा एका कवळूनी। जाळूं सके ॥२४०॥
तैसे दोष हे मूर्त। अंगी वाजों असती पहात। हें जाणतांही केवीं एथ। प्रवर्तावें ? ॥२४१॥
ऐसें पार्थु तिये अवसरीं। म्हणे देवा अवधारीं। या कल्मषाची थोरी। सांगेन तुज ॥२४२॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।

धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥४०॥

जैसें कष्टें काष्ठ मथिजे। तेथ वन्हि एक उपजे। तेणें काष्ठजात जाळिजे। प्रज्वळलेनि ॥२४३॥

तैसा गोत्रींचीं परस्परें। जरी वधु घडे मत्सरें। तरी तेणें महादोषें घोरें। कुळचि नाशे ॥२४४॥

म्हणौनि येणें पापें। वंशजधर्मु लोपे। मग अधर्मुचि आरोपे। कुळामाजीं ॥२४५॥

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।

स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ॥४१॥

एथ सारासार विचारावें। कवणें काय आचारावें। आणि विधिनिषेध आघवे। पारुषती ॥२४६॥

असता दीपु दवडिजे। मग अंधकारीं राहाटिजे। तरी उजूचि कां अडळिजे। जयापरी ॥२४७॥

तैसा कुळीं कुळक्षयो होय। तये वेळीं तो आद्यधर्मु जाय। मग आन कांहीं आहे। पापावांचुनी ? ॥२४८॥

जैं यमनियम ठाकती। तेथ इंद्रिये सैरा राहाटती। म्हणौनि व्यभिचार घडती। कुळस्त्रियांसी ॥२४९॥

उत्तम अधमीं संचरती। ऐसे वर्णावर्ण मिसळती। तेथ समूळ उपडती। जातिधर्म ॥२५०॥

जैसी चोहटाचिये बळी। पाविजे सैरा काउळीं। तैसीं महापापें कुळीं। संचरती ॥२५१॥

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।

पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥४२॥

मग कुळा तया अशेखा। आणि कुळघातकां। येरयेरां नरका। जाणें आथी ॥२५२॥

देखें वंशवृद्धि समस्त। यापरी होय पतित। मग वोवांडिती स्वर्गस्थ। पूर्वपुरुष ॥२५३॥

जेथ नित्यादि क्रिया ठाके। आणि नैमित्तिक क्रिया पारुखे। तेथ कवणा तिळोदकें। कवण अर्पी ? ॥२५४॥

तरी पितर काय करिती ?। कैसेनि स्वर्गीं वसती ?। म्हणौनि तेही येती। कुळापासीं ॥२५५॥

जैसा नखाग्रीं व्याळु लागे। तो शिखांत व्यापी वेगें। तेवीं आब्रह्म कुळ अवघें। आप्लविजे ॥२५६॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः।

उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥४३॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।

नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥४४॥

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।

यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥४५॥

देवा अवधारी आणीक एक। एथ घडे महापातक। जे संगदोषें हा लौकिक। भ्रंशु पावे ॥२५७॥

जैसा घरीं आपुला। वानिवसें अग्नि लागला। तो आणिकांहीं प्रज्वळिला। जाळूनि घाली ॥२५८॥

तैसिया तया कुळसंगती। जे जे लोक वर्तती। तेही बाधा पावती। निमित्तें येणें ॥२५९॥

तैसें नाना दोषें सकळ। अर्जुन म्हणे तें कुळ। मग महाघोर केवळ। निरय भोगी ॥२६०॥

पडिलिया तिये ठायीं। मग कल्पांतींही उकलु नाहीं। येसणें पतन कुळक्षयीं। अर्जुन म्हणे ॥२६१॥

देवा हें विविध कानीं ऐकिजे। परी अझुनिवरी त्रासु नुपजे। हृदय वज्राचें हें काय कीजे। अवधारीं पां ॥२६२॥

अपेक्षिजे राज्यसुख। जयालागीं तें तंव क्षणिक। ऐसे जाणतांही दोख। अव्हेरू ना ? ॥२६३॥

जे हे वडिल सकळ आपुले। वधावया दिठी सूदले। सांग पां काय थेंकुलें। घडलें आम्हां ? ॥२६४॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।

धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥४६॥

आतां यावरी जें जियावें। तयापासूनि हें बरवें। जे शस्त्र सांडुनि साहावे। बाण यांचे ॥२६५॥

तयावरी होय जितुकें। तें मरणही वरी निकें। परी येणें कल्मषें। चाड नाहीं ॥२६६॥

ऐसें देखून सकळ। अर्जुनें आपुलें कुळ। मग म्हणे राज्य तें केवळ। निरयभोगु ॥२६७॥

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।

विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥४७॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादयोगोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥१अ ॥

ऐसे तिये अवसरी। अर्जुन बोलिला समरीं। संजयो म्हणे अवधारीं। धृतराष्ट्रातें ॥२६८॥

मग अत्यंत उद्वेगला। न धरत गहींवरु आला। तेथ उडी घातली खालां। रथौनियां ॥२६९॥

जैसा राजकुमरु पदच्युतु। सर्वथा होय उपहतु। कां रवि राहुग्रस्तु। प्रभाहीनु ॥२७०॥

नातरी महासिद्धिसंभ्रमें। जिंतिला तापसु भ्रमें। मग आकळूनि कामें। दीनु कीजे ॥२७१॥

तैसा तो धर्नुधरु। अत्यंत दुःखें जर्जरु। दिसे जेथ रहंवरु। त्यजिला तेणें ॥२७२॥

मग धनुष्य बाण सांडिले। न धरत अश्रुपात आले। ऐसें ऐक राया वर्तलें। संजयो म्हणे ॥२७३॥

आतां यापरी तो वैकुंठनाथु। देखोनि सखेद पार्थु। कवणेपरी परमार्थु। निरूपील ॥२७४॥

ते सविस्तर पुढारी कथा। अति सकौतुक ऐकतां। ज्ञानदेव म्हणे आतां। निवृत्तिदासु ॥२७५॥

इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय दुसरा ।

साङ्ख्ययोगः ।

संजय उवाच ।

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥१॥

मग संजयो म्हणे रायातें। आईके तो पार्थु तेथें। शोकाकुल रुदनातें। करितु असे ॥१॥
तें कुळ देखोनि समस्त। स्नेह उपनलें अद्भुत। तेणें द्रवलें असे चित्त। कवणेपरी ॥२॥
जैसें लवण जळें झळंबलें। ना तरी अभ्र वातें हाले। तैसें सधीर परी विरमलें। हृदय तयाचें ॥३॥
म्हणौनि कृपा आकळिला। दिसतसे अति कोमाइला। जैसा कर्दमीं रुपला। राजहंस ॥४॥
तयापरी तो पांडुकुमरु। महामोहें अति जर्जरु। देखोनि श्रीशारङ्गधरु। काय बोले ॥५॥

श्रीभगवानुवाच ।

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२॥

म्हणे अर्जुना आदि पाहीं। हें उचित काय इये ठायीं। तूं कवण हें कायी। करीत आहासी ॥६॥
तुज सांगे काय जाहलें। कवण उणें आलें। करितां काय ठेलें। खेदु कायिसा ॥७॥
तूं अनुचिता चित्त नेदिसी। धीरु कहीं न संडिसी। तुझेनि नामें अपयशी। दिशा लंघिजे ॥८॥
तूं शूरवृत्तीचा ठावो। क्षत्रियांमाजीं रावो। तुझिया लाठेपणाचा आवो। तिहीं लोकीं ॥९॥
तुवां संग्रामीं हरु जिंकिला। निवातकवचांचा ठावो फेडिला। पवाडा तुवां केला। गंधर्वांसीं ॥१०॥
पाहतां तुझेनि पाडें। दिसे त्रैलोक्यही थोकडें। ऐसें पुरुषत्व चोखडें। पार्था तुझें ॥११॥
तो तूं कीं आजि एथें। सांडूनियां वीरवृत्तीतें। अधोमुख रुदनातें। करितु आहासी ॥१२॥
विचारी तूं अर्जुनु। कीं कारुण्यें किजसी दीनु। सांग पां अंधकारें भानु। ग्रासिला आथी ? ॥१३॥
ना तरी पवनु मेघासी बिहे ? । कीं अमृतासी मरण आहे ? । पाहें पां इंधनचि गिळोनि जाये। पावकातें ? ॥१४॥
कीं लवणेंचि जळ विरे ? । संसर्गें काळकूट मरे ? । सांग पां महाफणी दर्दुरें। गिळिजे कायी ? ॥१५॥
सिंहासी झोंबे कोल्हा। ऐसा अपाडु आथि कें जाहला ? । परी तो त्वां साच केला। आजि एथ ॥१६॥
म्हणौनि अझुनी अर्जुना। झणें चित्त देसी या हीना। वेगीं धीर करूनियां मना। सावधु होई ॥१७॥
सांडीं हें मूर्खपण। उठीं घे धनुष्यबाण। संग्रामीं हें कवण। कारुण्य तुझें ? ॥१८॥
हां गा तूं जाणता। तरी न विचारिसी कां आतां। सांगें झुंजावेळे सदयता। उचित कायी ? ॥१९॥
हे असतीये कीर्तीसी नाशु। आणि पारत्रिकासी अपभ्रंशु। म्हणे जगन्निवासु। अर्जुनातें ॥२०॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥३॥

म्हणौनि शोकु न करी। तूं पुरता धीरु धरीं। हें शोच्यता अव्हेरीं। पंडुकुमरा ॥२१॥
तुज नव्हे हें उचित। येणें नासेल जोडलें बहुत। तूं अझुनी वरी हित। विचारीं पां ॥२२॥
येणें संग्रामाचेनि अवसरें। एथ कृपाळूपण नुपकरे। हे आतांचि काय सोयरे। जाहले तुज ? ॥२३॥

तूं आधींचि काय नेणसी ? । कीं हे गोत्रज नोळखसी ? । वायांचि काय करिसी। अतिशो आतां ? ॥२४॥
आजिचें हें झुंज। काय जन्मा नवल तुज ? । हें परस्परें तुम्हां व्याज। सदांचि आथी ॥२५॥
तरी आतां काय जाहलें। कायि स्नेह उपनलें। हें नेणिजे परी कुडें केलें। अर्जुना तुवां ॥२६॥
मोहो धरिलीया ऐसें होईल। जे असती प्रतिष्ठा जाईल। आणि परलोकही अंतरेल। ऐहिकेंसी ॥२७॥
हृदयाचें ढिलेपण। एथ निकयासी नव्हे कारण। हें संग्रामीं पतन जाण। क्षत्रियांसीं ॥२८॥
ऐसेनि तो कृपावंतु। नानापरी असे शिकवितु। हें ऐकोनि पंडुसुतु। काय बोले ॥२९॥

अर्जुन उवाच ।

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥४॥

देवा हें येतुलेवरी। बोलावें नलगे अवधारीं। आधीं तूंचि विचारीं। संग्रामु हा ॥३०॥
हें झुंज नव्हे प्रमादु। एथ प्रवर्तलिया दिसतसे बाधु। हा उघड लिंगभेदु। वोढवला आम्हां ॥३१॥
देखें मातापितरें अर्चिजती। सर्वस्वें तोषु पावविजती। तिये पाठीं केवीं वधिजती। आपुलिया हातीं ॥३२॥
देवा संतवृंद नमस्कारिजे। कां घडे तरी पूजिजे। हें वांचूनि केवीं निंदिजे। स्वयें वाचा ? ॥३३॥
तैसे गोत्रगुरु आमुचे। हे पूजनीय आम्हां नियमाचे। मज बहुत भीष्मद्रोणांचें। वर्ततसे ॥३४॥
जयांलागीं मनें विरूं। आम्ही स्वप्नींही न शकों धरूं। तयां प्रत्यक्ष केवीं करूं। घातु देवा ? ॥३५॥
वरी जळो हें जियालें। एथ आघवेयांसि हेंचि काय जाहले। जे यांच्या वधीं अभ्यासिले। मिरविजे आम्हीं ॥३६॥
मी पार्थु द्रोणाचा केला। येणें धनुर्वेदु मज दिधला। तेणें उपकारें काय आभारैला। वधी तयातें ? ॥३७॥
जेथींचिया कृपा लाहिजे वरु। तेथेंचि मनें व्यभिचारु। तरी काय मी भस्मासुरु। अर्जुन म्हणे ॥३८॥

गुरुनहत्वा हि महानुभावान श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान ॥५॥

देवा समुद्र गंभीर आइकिजे। वरि तोहि आहाच देखिजे। परी क्षोभु मनीं नेणिजे। द्रोणाचिये ॥३९॥
हें अपार जें गगन। वरी तयाही होईल मान। परि अगाध भलें गहन। हृदय याचें ॥४०॥
वरी अमृतही विटे। कीं काळवशें वज्रही फुटे। परी मनोधर्मु न लोटे। विकरविलाही ॥४१॥
स्नेहालागीं माये। म्हणिपे तें कीरु होये। परी कृपा ते मूर्त आहे। द्रोणीं इये ॥४२॥
हा कारुण्याची आदि। सकल गुणांचा निधि। विद्यासिंधु निरवधि। अर्जुन म्हणे ॥४३॥
हा येणें मानें महंतु। वरी आम्हांलागीं कृपावंतु। आतां सांग पां येथ घातु। चिंतूं येईल ॥४४॥
ऐसे हे रणीं वधावे। मग आपण राज्यसुख भोगावें। तें मना न ये आघवें। जीवितेसीं ॥४५॥
हें येणें मानें दुर्धर। जे याहीहुनी भोग सधर। ते असतु येथवर। भिक्षा मागतां भली ॥४६॥
ना तरी देशत्यागें जाइजे। कां गिरिकंदर सेविजे। परी शस्त्र आतां न धरिजे। इयांवरी ॥४७॥
देवा नवनिशतीं शरीं। वावरोनी यांच्या जिव्हारीं। भोग गिंवसावे रुधिरीं। बुडाले जे ॥४८॥
ते काढूनि काय किजती ? । लिप्त केवी सेविजती ? । मज नये हे उपपत्ती। याचिलागीं ॥४९॥
ऐसें अर्जुन तिये अवसरी। म्हणे श्रीकृष्णा अवधारीं। परी तें मना नयेचि मुरारी। आइकोनियां ॥५०॥
हें जाणोनि पार्थु बिहाला। मग पुनरपि बोलों लागला। म्हणे देवो कां चित्त या बोला। देतीचिना ॥५१॥

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥६॥

येऱ्हवीं माझ्या चित्तीं जें होतें। तें मी विचारूनि बोलिलों एथें। परी निकें काय यापरौतें। तें तुम्हीं जाणा ॥५२॥
पैं वीरु जयांसी ऐकिजे। आणि या बोलींचि प्राणु सांडिजे। ते एथ संग्रामव्याजें। उभे आहाती ॥५३॥

आतां ऐसियांतें वधावें। कीं अव्हेरूनियां निघावें। या दोहींमाजीं बरवें। तें नेणों आम्ही ॥५४॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७॥

आम्हां काय उचित। तें पाहतां न स्फुरे एथ। जें मोहें येणें चित्त। व्याकुळ माझें ॥५५॥

तिमिरावरुद्ध जैसें। दृष्टीचें तेज भ्रंशे। मग पासींच असतां न दिसे। वस्तुजात ॥५६॥

देवा तैसें मज जाहलें। जें मन हें भ्रांती ग्रासिलें। आतां काय हित आपुलें। तेंही नेणें ॥५७॥

तरी श्रीकृष्णा तुवां जाणावें। निकें तें आम्हां सांगावें। जे सखा सर्वस्व आघवें। आम्हांसि तूं ॥५८॥

तूं गुरु बंधु पिता। तूं आमुची इष्ट देवता। तूंचि सदा रक्षिता। आपदीं आमुतें ॥५९॥

जैसा शिष्यांतें गुरु। सर्वथा नेणें अव्हेरु। कीं सरितांतें सागरु। त्यजीं केवी ॥६०॥

नातरी अपत्यांतें माये। सांडूनि जरी जाये। तरी तें कैसेंनि जिये। ऐकें कृष्णा ॥६१॥

तैसा सर्वांपरी आम्हांसी। देवा तूंचि एक आहासी। आणि बोलिलें जरी न मानिसी। मागील माझें ॥६२॥

तरी उचित काय आम्हां। जें व्यभिचरेना धर्मा। तें झडकरी पुरुषोत्तमा। सांगें आतां ॥६३॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।

अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥८॥

हें सकळ कुळ देखोनि। जो शोकु उपनलासे मनीं। तो तुझिया वाक्यावांचुनी। न जाय आणिकें ॥६४॥

एथ पृथ्वीतळ आपु होईल। हें महेंद्रपदही पाविजेल। परी मोह हा न फिटेल। मानसींचा ॥६५॥

जैसीं बीजें सर्वथा आहाळलीं। तीं सुक्षेत्रीं जऱ्ही पेरिलीं। तरी न विरूढती सिंचिलीं। आवडे तैसीं ॥६६॥

ना तरी आयुष्य पुरलें आहे। तरी औषधें कांहीं नोहे। एथ एकचि उपेगा जाये। परमामृत ॥६७॥

तैसे राज्यभोगसमृद्धि। उज्जीवन नोहे जीव बुद्धि। एथ जिव्हाळा कृपानिधि। कारुण्य तुझें ॥६८॥

ऐसें अर्जुन तेथ बोलिला। जंव क्षण एक भ्रांति सांडिला। मग पुनरपि व्यापिला। उर्मी तेणें ॥६९॥

कीं मज पाहतां उर्मी नोहे। हें अनारिसें गमत आहे। तो ग्रासिला महामोहें। काळसर्पें ॥७०॥

सवर्म हृदयकल्हारीं। तेथ कारुण्यवेळेच्या भरीं। लागला म्हणोनि लहरी। भांजेचिना ? ॥७१॥

हें जाणोनि ऐसी प्रौढी। जो दृष्टीसवेंचि विष फेडी। तो धांवया श्रीहरी गारुडी। पातला कीं ॥७२॥

तैसिया पंडुकुमरा व्याकुळा। मिरवतसे श्रीकृष्ण जवळा। तो कृपावशें अवलीळा। रक्षील आतां ॥७३॥

म्हणोनि तो पार्थु। मोहफणिग्रस्तु। म्यां म्हणितला हा हेतु। जाणोनियां ॥७४॥

मग देखा तेथ फाल्गुनु। घेतला असे भ्रांती कवळूनु। जैसा घनपटळीं भानु। आच्छादिजे ॥७५॥

तयापरी तो धनुर्धरु। जाहलासे दुःखें जर्जरु। जैसा ग्रीष्मकाळीं गिरिवरु। वणवला कां ॥७६॥

म्हणोनि सहजें सुनीळु। कृपामृतें सजळु। तो वोळलासे श्रीगोपाळु। महामेघु ॥७७॥

तेथ सुदशनांची द्युति। तेचि विद्युल्लता झळकती। गंभीर वाचा ते आयती। गर्जनेची ॥७८॥

आतां तो उदार कैसा वर्षेल। तेणें अर्जुनाचळु निवेल। मग नवी विरूढी फुटेल। उन्मेषाची ॥७९॥

ते कथा आइका। मनाचिया आराणुका। ज्ञानदेवो म्हणे देखा। निवृत्तिदासु ॥८०॥

संजय उवाच।

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप।

न योत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥९॥

ऐसें संजयो असे सांगतु। म्हणे राया तो पार्थु। पुनरपि शोकाकुळितु। काय बोले ॥८१॥

आइके सखेदु बोले श्रीकृष्णातें। आतां नाळवावें तुम्हीं मातें। मी सर्वथा न झुंजें एथें। भरंवसेनी ॥८२॥

ऐसें येकि हेळां बोलिला। मग मौन धरूनि ठेला। तेथ श्रीकृष्णा विस्मो पातला। देखोनि तयातें ॥८३॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।

सेनयोरूभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥१०॥

मग आपुलां चित्तीं म्हणे। एथ हें कायी आदरिलें येणें। अर्जुन सर्वथा कांहीं नेणें। काय कीजे ॥८४॥

हा उमजे आतां कवणेपरी। कैसेनि धीरू स्वीकारी। जैसा ग्रहातें पंचाक्षरी। अनुमानी कां ॥८५॥

ना तरी असाध्य देखोनि व्याधि। अमृतासम दिव्य औषधि। वैद्य सूचि निरवधि। निदानीची ॥८६॥

तैसे विवरीतु असे श्रीअनंतु। तया दोन्ही सैन्याआंतु। जयापरी पार्थु। भ्रांती सांडी ॥८७॥

तें कारण मनीं धरिलें। मग सरोष बोलों आदरिलें। जैसे मातेच्या कोपीं थोकुलें। स्नेह आथी ॥८८॥

कीं औषधाचिया कडुवटपणीं। जैसी अमृताची पुरवणीं। ते आहाच न दिसे परी गुणीं। प्रकट होय ॥८९॥

तैसीं वरिवरी पाहतां उदासें। आंत तरी अतिसुरसें। तियें वाक्यें हृषीकेशें। बोलों आदरिलीं ॥९०॥

श्रीभगवानुवाच ।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥११॥

मग अर्जुनातें म्हणितलें। आम्हीं आजि हें नवल देखिलें। जें तुवां एथ आदरिलें। माझारींचि ॥९१॥

तूं जाणता तरी म्हणविसी। परी नेणिवेतें न संडिसी। आणि शिकवूं म्हणों तरी बोलसी। बहुसाल नीति ॥९२॥

जात्यंधा लागे पिसें। मग तें सैरा धांवे जैसें। तुझे शहाणपण तैसें। दिसतसे ॥९३॥

तूं आपणपें तरी नेणसी। परी या कौरवांतें शोचूं पहासी। हा बहु विस्मय आम्हांसी। पुढतपुढती ॥९४॥

तरी सांग पां अर्जुना। तुजपासूनि स्थिति या त्रिभुवना ? । हे अनादि विश्वरचना। तें लटके कायी ? ॥९५॥

एथ समर्थु एक आथी। तयापासूनि भूतें होती। तरी हें वायांचि काय बोलती। जगामाजीं ? ॥९६॥

हो कां सांप्रत ऐसें जाहलें। जे हे जन्ममृत्यु तुवां सृजिलें। आणि नाशु पावे नाशिलें। तुझेनि कायी ॥९७॥

तूं भ्रमलेपणें अहंकृती। यांसि घातु न धरिसी चित्तीं। तरी सांगें कायि हे होती। चिरंतन ॥९८॥

कीं तूं एक वधिता। आणि सकळ लोकु हा मरता। ऐसी भ्रांति झणें चित्ता। येवों देसी ॥९९॥

अनादिसिद्ध हें आघवें। होत जात स्वभावें। तरी तुवां कां शोचावें। सांगें मज ॥१००॥

परी मूर्खपणें नेणसी। न चिंतावें तें चिंतीसी। आणि तूंचि नीति सांगसी। आम्हांप्रति ॥१०१॥

देखैं विवेकी जे होती। ते दोहीतेंहीं न शोचिती। जे होय जाय हे भ्रांती। म्हणौनियां ॥१०२॥

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।

न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥१२॥

अर्जुना सांगेन आइक। एथ आम्ही तुम्ही देख। आणि हे भूपति अशेख। आदिकरुनी ॥१०३॥

नित्यता ऐसेचि असोनी। ना तरी निश्चित क्षया जाउनी। हे भ्रांति वेगळी करुनी। दोन्ही नाहीं ॥१०४॥

हे उपजे आणि नाशे। तें मायावशें दिसे। एऱ्हवीं तत्त्वता वस्तु जें असे। तें अविनाशचि ॥१०५॥

जैसें पवनें तोय हालविलें। आणि तरंगाकार जाहलें। तरी कवण कें जन्मलें। म्हणों ये तेथ ? ॥१०६॥

तेंचि वायूचें स्फुरण ठेलें। आणि उदक सहज सपाट जाहलें। तरी आतां काय निमालें। विचारीं पां ॥१०७॥

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

आइकें शरीर तरी एक। परी वयसा भेद अनेक। हें प्रत्यक्षचि देख। प्रमाण तूं ॥१०८॥

एथ कौमारत्व दिसे। मग तारुण्यीं तें भ्रंशे। परी देहचि हा न नाशे। एकेकासवें ॥१०९॥

तैसीं चैतन्याच्या ठायीं। इयें शरीरांतरें होती जाती पाहीं। ऐसें जाणे तया नाहीं। व्यामोहदुःख ॥११०॥

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदा ।

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥१४॥

एथ कौमारत्व दिसे। मग तारुण्यीं तें भ्रंशे। परी देहचि हा न नाशे। एकेकासवें ॥१०९॥

तैसीं चैतन्याच्या ठायीं। इयें शरीरांतरें होती जाती पाहीं। ऐसें जाणे तया नाहीं। व्यामोहदुःख ॥११०॥

एथ नेणावया हेंचि कारण। जें इंद्रियां आधीनपण। तिहीं आकळिजे अंतःकरण। म्हणऊनि भ्रमे ॥१११॥

इंद्रियें विषय सेविती। तेथ हर्ष शोक उपजती। ते अंतर आप्लविती। संगें येणें ॥११२॥

जयां विषयांच्या ठायीं। एकनिष्ठता कहीं नाहीं। तेथ दुःख आणि कांहीं। सुखही दिसे ॥११३॥

देखें शब्दाचि व्याप्ति। निंदा आणि स्तुति। तेथ द्वेषाद्वेष उपजती। श्रवणद्वारें ॥११४॥

मृदु आणि कठीण। हे स्पर्शाचे दोन्ही गुण। जे वपूचेनि संगें कारण। संतोषखेदां ॥११५॥

भ्यासुर आणि सुरेख। हें रूपाचें स्वरूप देख। जें उपजवी सुखदुःख। नेत्रद्वारें ॥११६॥

सुगंधु आणि दुर्गंधु। हा परिमळाचा भेदु। जो घ्राणसंगें विषादु। तोषु देता ॥११७॥

तैसाचि द्विविध रसु। उपजवी प्रीति त्रासु। म्हणौनि हा अपभ्रंशु। विषयसंगु ॥११८॥

देखें इंद्रियां आधीन होईजे। तैं शीतोष्णांतें पाविजे। आणि सुखदुःखीं आकळिजे। आपणपें ॥११९॥

या विषयांवांचूनि कांहीं। आणीक सर्वथा रम्य नाहीं। ऐसा स्वभावोचि पाहीं। इंद्रियांचा ॥१२०॥

हे विषय तरी कैसे। रोहिणीचें जळ जैसें। कां स्वप्नींचा आभासे। भद्रजाति ॥१२१॥

देखैं अनित्य तियापरी। म्हणौनि तूं अव्हेरीं। हा सर्वथा संगु न धरीं। धनुर्धरा ॥१२२॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।

समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१५॥

हे विषय जयातें नाकळिती। तया सुखदुःखें दोनी न पवती। आणि गर्भवासुसंगती। नाहीं तया ॥१२३॥

तो नित्यरूप पार्था। वोळखावा सर्वथा। जो या इंद्रियार्थां। नागवेचि ॥१२४॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

आतां अर्जुना कांहीं एक। सांगेन मी आईक। जे विचारपर लोक। वोळखिती ॥१२५॥

या उपाधिमाजीं गुप्त। चैतन्य असे सर्वगत। तें तत्त्वज्ञ संत। स्वीकारिती ॥१२६॥

सलिलीं पय जैसें। एक होऊनि मीनलें असे। परी निवडूनि राजहंसें। वेगळें कीजे ॥१२७॥

कीं अग्निमुखें किडाळ। तोडोनियां चोखाळ। निवडिती केवळ। बुद्धिमंत ॥१२८॥

ना तरी जाणिवेच्या आयणी। करितां दधिकडसणी। मग नवनीत निर्वाणीं। दिसे जैसें ॥१२९॥

कीं भूस बीज एकवट। उपणितां राहे घनवट। तेथ उडे तें फलकट। जाणों आलें ॥१३०॥

तैसें विचारितां निरसलें। तें प्रपंचु सहजें सांडवलें। मग तत्त्वता तत्त्व उरलें। ज्ञानियांसि ॥१३१॥

म्हणौनि अनित्याच्या ठायीं। तयां आस्तिक्यबुद्धि नाहीं। निष्कर्षु दोहींही। देखिला असे ॥१३२॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।

विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥१७॥

देखें सारासार विचारितां। भ्रांति ते पाहीं असारता। तरी सार तें स्वभावता। नित्य जाणें ॥१३३॥

हा लोकत्रयाकारु। तो जयाचा विस्तारु। तेथ नाम वर्ण आकारु। चिन्ह नाहीं ॥१३४॥

जो सर्वदा सर्वगतु। जन्मक्षयातीतु। तया केलियाहि घातु। कदा नोहे ॥१३५॥

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।

अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥१८॥

आणि शरीरजात आघवें। हें नाशिवंत स्वभावें। म्हणौनि तुवां झुंजावें। पंडुकुमरा ॥१३६॥

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।

उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥१९॥

तूं धरूनि देहाभिमानातें। दिठी सूनि शरीरातें। मी मारिता हे मरते। म्हणतु आहासी ॥१३७॥

तरी अर्जुना तूं हें नेणसी। जरी तत्त्वता विचारिसी। तरी वधिता तूं नव्हेसी। हे वध्य नव्हती ॥१३८॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।

कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥२१॥

जैसें स्वप्नामाजीं देखिजे। तें स्वप्नींचि साच आपजे। मग चेऊनियां पाहिजे। तंव कांहीं नाहीं ॥१३९॥

तैसी हे जाण माया। तूं भ्रमतु आहासी वायां। शस्त्रें हाणितलिया छाया। जैसी आंगीं न रुपे ॥१४०॥

कां पूर्ण कुंभ उलंडला। तेथ बिंबाकारु दिसे भ्रंशला। परी भानु नाहीं नासला। तयासवें ॥१४१॥

ना तरी मठीं आकाश जैसें। मठाकृती अवतरलें असे। तो भंगलिया आपैसें। स्वरूपचि ॥१४२॥

तैसें शरीराच्या लोपीं। सर्वथा नाशु नाहीं स्वरूपीं। म्हणौनि तू हें नारोपी। भ्रांति बापा ॥१४३॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥२२॥

जैसें जीर्ण वस्त्र सांडिजे। मग नूतन वेढिजे। तैसें देहांतरातें स्वीकारिजे। चैतन्यनाथें ॥१४४॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥२३॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥२४॥

हा अनादि नित्यसिद्ध्‌धु। निरुपाधि विशुद्ध्‌धु। म्हणौनि शस्त्रादिकीं छेदु। न घडे यया ॥१४५॥

हा प्रळयोदकें नाप्लवे। अग्निदाहो न संभवे। एथ महाशोषु न प्रभवे। मारुताचा ॥१४६॥

अर्जुना हा नित्यु। अचळु हा शाश्वतु। सर्वत्र सदोदितु। परिपूर्णु हा ॥१४७॥

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।

तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥२५॥

हा तर्काचिये दिठी। गोचर नोहे किरीटी। ध्यान याचिये भेटी। उत्कंठा वाहे ॥१४८॥

हा सदा दुर्लभु मना। आपु नोहे साधना। निःसीमु हा अर्जुना। पुरुषोत्तमु ॥१४९॥

हा गुणत्रयरहितु। अनादि अविकृतु। व्यक्तीसी अतीतु। सर्वरूप ॥१५०॥

अर्जुना ऐसा हा जाणावा। सकळात्मकु देखावा। मग सहजें शोकु आघवा। हरेल तुझा ॥१५१॥

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।

तथापि त्वं महाबाहो नैवं शौचितुमर्हसि ॥२६॥

अथवा ऐसा नेणसी। तूं अंतवंतचि मानिसी। तऱ्ही शोचूं न पवसी। पंडुकुमरा ॥१५२॥

जो आदि स्थिति अंतु। हा निरंतर असे नित्यु। जैसा प्रवाहो अनुस्यूतु। गंगाजळाचा ॥१५३॥

तें आदि नाहीं खंडलें। समुद्रीं तरी असे मीनलें। आणि जातचि मध्यें उरलें। दिसे जैसें ॥१५४॥

इयें तिन्ही तयापरी। सरसींच सदा अवधारीं। भूतांसी कवणीं अवसरीं। ठाकती ना ॥१५५॥

म्हणौनि हें आघवें। एथ तुज नलगे शोचावें। जे स्थितीचि हे स्वभावें। अनादि ऐसी ॥१५६॥

ना तरी हें अर्जुना। नयेचि तुझिया मना। जे देखोनि लोकु अधीना। जन्मक्षया ॥१५७॥

तरी एथ कांहीं। तुज शोकासि कारण नाहीं। हे जन्ममृत्यु पाहीं। अपरिहर ॥१५८॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।

तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥२७॥

उपजे तें नाशे। नाशलें पुनरपि दिसे। हें घटिकायंत्र जैसें। परिभ्रमे गा ॥१५९॥

ना तरी उदो अस्तु आपैसें। अखंडित होत जात जैसें। हें जन्ममरण तैसें। अनिवार जगीं ॥१६०॥

महाप्रळयावसरें। हें त्रैलोक्यहि संहरे। म्हणौनि हा न परिहरे। आदि अंतु ॥१६१॥

तूं जरी हें ऐसें मानिसी। तरी खेदु कां करिसी ? । काय जाणतुचि नेणसी। धनुर्धरा ॥१६२॥

एथ आणीकही एक पार्था। तुज बहुतीं परी पहातां। दुःख करावया सर्वथा। विषो नाहीं ॥१६३॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।

अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥२८॥

जियें समस्तें इयें भूतें। जन्माआदि अमूर्तें। मग पातली व्यक्तीतें। जन्मलेया ॥१६४॥

तियें क्षयासि जेथ जाती। तेथ निभ्रांत आनें नव्हती। देखें पूर्वस्थितीच येती। आपुलिये ॥१६५॥

येर मध्यें जें प्रतिभासे। तें निद्रिता स्वप्न जैसें। तैसा आकारु हा मायवशें। तत्स्वरूपीं ॥१६६॥

ना तरी पवनें स्पर्शिलें नीर। पढियासे तरंगाकार। कां परापेक्षां अळंकार। व्यक्ती कनकीं ॥१६७॥

तैसे सकळ हें मूर्त। जाण पां मायाकारित। जैसें आकाशीं बिंबत। अभ्रपटल ॥१६८॥

तैसें आदीचि जें नाहीं। तयालागीं तूं रुदसी कायी। तूं अवीट तें पाहीं। चैतन्य एक ॥१६९॥

जयाचि आर्तीचि भोगित। विषयीं त्यजिले संत। जयालागीं विरक्त। वनवासिये ॥१७०॥

दिठी सूनि जयातें। ब्रह्मचर्यादि व्रतें। मुनीश्वर तपातें। आचरताती ॥१७१॥

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।

आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रुणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥२९॥

एक अंतरीं निश्चळ। जें निहाळितां केवळ। विसरले सकळ। संसारजात ॥१७२॥

एकां गुणानुवादु करितां। उपरति होऊन चित्ता। निरवधि तल्लीनता। निरंतर ॥१७३॥

एक ऐकतांचि निवाले। ते देहभावी सांडिले। एक अनुभवें पातले। तद्रूपता ॥१७४॥

जैसे सरिता ओघ समस्त। समुद्रामाजीं मिळत। परी माघौते न समात। परतले नाहीं ॥१७५॥

तैसिया योगीश्वरांचिया मती। मिळवणीसवें एकवटती। परी जे विचारूनि पुनरावृत्ति। भजतीचिना ॥१७६॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।

तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥३०॥

जें सर्वत्र सर्वही देहीं। जया करितांही घातु नाहीं। तें विश्वात्मक तूं पाहीं। चैतन्य एक ॥१७७॥

जयाचेनि स्वभावें। हें होत जात आघवें। तरी सांग काय शोचावें। एथ तुवां ॥१७८॥

एऱ्हवीं तरी पार्था। तुज कां नेणों न मनें चित्ता। परी किडाळ हें शोचितां। बहुतीं परीं ॥१७९॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।

धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१॥

तूं अझुनी कां न विचारिसी। काय हें चिंतितु आहासी। स्वधर्मु तो विसरलासी। तरावें जेणें ॥१८०॥

या कौरवां भलतें जाहलें। अथवा तुजचि कांहीं पातलें। कीं युगचि हें बुडालें। जऱ्ही एथ ॥१८१॥

तरी स्वधर्मु एकु आहे। तो सर्वथा त्याज्य नोहे। मग तरिजेल काय पाहें। कृपाळूपणें ॥१८२॥

अर्जुना तुझें चित्त। जऱ्ही जाहलें द्रवीभूत। तऱ्ही हें अनुचित। संग्रामसमयीं ॥१८३॥

अगा गोक्षीर जरी जाहलें। तरी पथ्यासि नाहीं म्हणितलें। ऐसेनिहि विष होय सुदलें। नवज्वरीं देतां ॥१८४॥

तैसें आनी आन करितां। नाशु होईल हिता। म्हणौनि तूं आतां। सावध होई ॥१८५॥
वायांचि व्याकुळ कायी। आपुला निजधर्मु पाहीं। जो आचरितां बाधु नाहीं। कवणें काळीं ॥१८६॥
जैसें मार्गेंचि चालतां। अपावो न पवे सर्वथा। कां दीपाधारें वर्ततां। नाडळिजे ॥१८७॥
तयापरी पार्था। स्वधर्में राहाटतां। सकळ कामपूर्णता। सहजें होय ॥१८८॥
म्हणौनि यालागीं पाहीं। तुम्हां क्षत्रियां आणीक कांहीं। संग्रामावांचूनि नाहीं। उचित जाणें ॥१८९॥
निष्कपटा होआवें। उसिणा घाई झुंजावें। हें असो काय सांगावें। प्रत्यक्षावरी ॥१९०॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥३२॥

अर्जुना झुंज देखें आतांचें। हें हो कां जें दैव तुमचें। कीं निधान सकळ धर्माचें। प्रगटलें असे ॥१९१॥
हा संग्रामु काय म्हणिपे। कीं स्वर्गुचि येणें रूपें। मूर्त कां प्रतापें। उदो केला ॥१९२॥
ना तरी गुणाचेनि पतिकरें। आर्तीचेनि पडिभरें। हें कीर्तीचि स्वयंवरें। आली तुज ॥१९३॥
क्षत्रियें बहुत पुण्य कीजे। तैं झुंज ऐसें लाहिजे। जैसें मार्गें जातां आडळिजे। चिंतामणि ॥१९४॥
ना तरी जांभया पसरे मुख। तेथ अवचटें पडे पीयूख। तैसा संग्रामु हा देख। पातला असे ॥१९५॥

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।

ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥३३॥

आतां हा ऐसा अव्हेरिजे। मग नाथिलें शोचूं बैसिजे। तरी आपण आहाणा होईजे। आपणपेयां ॥१९६॥
पूर्वजांचें जोडलें। आपणचि होय धाडिलें। जरी आजि शस्त्र सांडिलें। रणीं इये ॥१९७॥
असती कीर्ति जाईल। जगचि अभिशापु देईल। आणि गिंवसित पावतील। महादोष ॥१९८॥
जैसीं भातारेंहीन वनिता। उपहती पावे सर्वथा। तैशी दशा जीविता। स्वधर्मेंवीण ॥१९९॥
ना तरी रणीं शव सांडिजे। तें चौमेरी गिधीं विदारिजे। तैसें स्वधर्महीना अभिभविजे। महादोषीं ॥२००॥

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।

संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥३४॥

म्हणौनि स्वधर्मु हा सांडसील। पापा वरपडा होसील। आणि अपेश तें न वचेल। कल्पांतवरी ॥२०१॥
जाणतेनि तंवचि जियावें। जंव अपकीर्ति आंगा न पवे। आणि सांग पां केवीं निगावें। एथोनियां ? ॥२०२॥
तू निर्मत्सर सदयता। येथूनि निघसील कीर माघौता। परी ते गती समस्तां। न मनेल ययां ॥२०३॥
हे चहूंकडूनि वेढितील। बाणवरी घेतील। तेथ पार्था न सुटिजेल। कृपाळुपणें ॥२०४॥
ऐसेनिहि प्राणसंकटें। जरी विपायें पां निघणें घटे। तरी तें जियालेंही वोखटें। मरणाहुनी ॥२०५॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।

येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥३५॥

तूं आणिकही एक न विचारिसी। एथ संभ्रमें झुंजों आलासी। आणि सकणवपणें निघालासी। मागुता जरी ॥२०६॥
तरी तुझें तें अर्जुना। या वैरियां दुर्जनां। कां प्रत्यया येईल मना। सांगैं मज ॥२०७॥

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।

निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥३६॥

हे म्हणती गेला रे गेला। अर्जुन आम्हां बिहाला। हा सांगैं बोलु उरला। निका कायी ? ॥२०८॥
लोक सायासें करूनि बहुतें। कां वेंचिती आपुलीं जीवितें। परी वाढविती कीर्तीतें। धनुर्धरा ॥२०९॥
ते तुज अनायासें। अनकळित जोडिली असे। हें अद्वितीय जैसें। गगन आहे ॥२१०॥
तैसी कीर्ती निःसीम। तुझ्या ठायीं निरुपम। तुझे गुण उत्तम। तिहीं लोकीं ॥२११॥

दिगंतीचे भूपति। भाट होऊनि वाखाणिती। जे ऐकिलिया दचकती। कृतांतादिक ॥२१२॥
ऐसी महिमा घनवट। गंगा जैसी चोखट। जया देखीं जगीं सुभट। वाट जाहली ॥२१३॥
तें पौरुष तुझें अद्भुत। आइकोनियां हे समस्त। जाहले आथि विरक्त। जीवितेंसी ॥२१४॥
जैसा सिंहाचिया हाकां। युगांतु होय मदमुखा। तैसा कौरवां अशेखां। धाकु तुझा ॥२१५॥
जैसे पर्वत वज्रातें। ना तरी सर्प गरुडातें। तैसे अर्जुना हे तूतें। मानिती सदा ॥२१६॥
तें अगाधपण जाईल। मग हीणावो अंगा येईल। जरी मागुता निघसील। न झुंजतुचि ॥२१७॥
आणि हे पळतां पळों नेदिती। धरूनिं अवकळा करिती। न गणित कुटी बोलती। आइकतां तुज ॥२१८॥
मग ते वेळीं हियें फुटावें। आतां लाठेपणें कां न झुजावें ? । हे जिंतलें तरी भोगावें। महीतळ ॥२१९॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥

ना तरी रणीं एथ। झुंजतां वेंचलें जीवित। तरी स्वर्गसुख अनकळित। पावसील ॥२२०॥
म्हणौनि ये गोठी। विचारु न करी किरीटी। आतां धनुष्य घेऊनि उठीं। झुंजैं वेगीं ॥२१॥
ना तरी रणीं एथ। झुंजतां वेंचलें जीवित। तरी स्वर्गसुख अनकळित। पावसील ॥२२०॥
म्हणौनि ये गोठी। विचारु न करी किरीटी। आतां धनुष्य घेऊनि उठीं। झुंजैं वेगीं ॥२२१॥
देखैं स्वधर्मु हा आचरतां। दोषु नाशे असता। तुज भ्रांति हे कवण चित्ता। पातकाची ॥२२२॥
सांगैं प्लवेंचि काय बुडिजे। कां मार्गीं जातां आडळिजे। परी विपायें चालों नेणिजे। तरी तेंही घडे ॥२२३॥
अमृतें तरीच मरिजे। जरी विखेंसि सेविजे। तैसा स्वधर्मीं दोषु पाविजे। हेतुकपणें ॥२२४॥
म्हणौनियां पार्था। हेतू सांडोनि सर्वथा। तुज क्षात्रवृत्ति झुंजतां। पाप नाहीं ॥२२५॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥३८॥

सुखीं संतोषां न यावें। दुःखीं विषादा न भजावें। आणि लाभालाभ न धरावे। मनामाजीं ॥२२६॥
एथ विजयपण होईल। कीं सर्वथा देह जाईल। हें आधींचि कांही पुढील। चिंतावेना ॥२२७॥
आपणयां उचिता। स्वधर्में राहाटतां। जें पावे तें निवांता। साहोनि जावें ॥२२८॥
ऐसियां मनें होआवें। तरी दोषु न घडे स्वभावें। म्हणौनि आतां झुंजावें। निभ्रांत तुवां ॥२२९॥

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां श्रृणु ।

बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥३९॥

हे सांख्यस्थिति मुकुळित। सांगितली तुज येथ। आतां बुद्धियोगु निश्चित। अवधारीं पां ॥२३०॥
जया बुद्धियुक्ता। जाहलिया पार्था। कर्मबंधु सर्वथा। बाधूं न पवे ॥२३१॥
जैसें वज्रकवच लेइजे। मग शस्त्रांचा वर्षावो साहिजे। परी जैतेसीं उरिजे। अचुंबित ॥२३२॥

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥४०॥

तैसें ऐहिक तरी न नशे। आणि मोक्षु तो उरला असे। जेथ पूर्वानुक्रमु दिसे। चोखाळत ॥२३३॥
कर्माधारें राहाटिजे। परी कर्मफळ न निरीक्षिजे। जैसा मंत्रज्ञु न बंधिजे। भूतबाधा ॥२३४॥
तियापरी जे सुबुद्धि। आपुलालिया निरवधि। हा असतांचि उपाधि। आकळूं न सके ॥२३५॥
जेथ न संचरे पुण्यपाप। जें सूक्ष्म अति निष्कंप। गुणत्रयादि लेप। न लगती जेथ ॥२३६॥
अर्जुना तें पुण्यवशें। जरी अल्पचि हृदयीं बुद्धि प्रकाशे। तरी अशेषही नाशे। संसारभय ॥२३७॥

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।

बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥४१॥

जैसी दीपकळिका धाकुटी। परी बहु तेजातें प्रकटी। तैसी सद्‌बुद्धी हे थेकुटी। म्हणों नये ॥२३८॥

पार्था बहुतीं परी। हे अपेक्षिजे विचारशूरीं। जे दुर्लभ चराचरीं। सद्वासना ॥२३९॥

आणिकासारिखा बहुवसु। जैसा न जोडे परिसु। कां अमृताचा लेशु। दैवगुणें ॥२४०॥

तैसी दुर्लभ जे सद्‌बुद्धि। जिये परमात्माचि अवधि। जैसा गंगेसी उदधि। निरंतर ॥२४१॥

तैसें ईश्वरावाचुंनी कांहीं। जिये आणीक लाणी नाहीं। ते एकचि बुद्धि पाहीं। अर्जुना जगीं ॥२४२॥

येर ते दुर्मति। जे बहुधा असे विकरति। तेथ निरंतर रमती। अविवेकिये ॥२४३॥

म्हणौनि तयां पार्था। स्वर्ग संसार नरकावस्था। आत्मसुख सर्वथा। दृष्ट नाहीं ॥२४४॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।

वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥४२॥

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।

क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥४३॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥४४॥

वेदाधारें बोलती। केवळ कर्म प्रतिष्ठिती। परी कर्मफळीं आसक्ती। धरूनियां ॥२४५॥

म्हणती संसारीं जन्मिजे। यज्ञादिक कर्म कीजे। मग स्वर्गसुख भोगिजे। मनोहर ॥२४६॥

येथ हें वांचूनि कांहीं। आणिक सर्वथा सुखचि नाहीं। ऐसें अर्जुना बोलती पाहीं। दुर्बुद्धि ते ॥२४७॥

देखैं कामना अभिभूत। होऊनि कर्मे आचरत। ते केवळ भोगीं चित्त। देऊनियां ॥२४८॥

क्रियाविशेषें बहुतें। न लोपिती विधीतें। निपुण होऊन धर्मातें। अनुष्ठिती ॥२४९॥

परी एकचि कुडें करितीं। जे स्वर्गकामु मनीं धरिती। यज्ञपुरुषा चुकती। भोक्ता जो ॥२५०॥

जैसा कर्पूराचा राशी कीजे। मग अग्नि लाऊन दीजे। कां मिष्टान्नीं संचरविजे। काळकूट ॥२५१॥

दैवें अमृतकुंभ जोडला। तो पायें हाणोनि उलंडिला। तैसा नासिती धर्मु निपजला। हेतुकपणें ॥२५२॥

सायासें पुण्य अर्जिजे। मग संसारु कां अपेक्षिजे ? । परी नेणती ते काय कीजे। अप्राप्य देखें ॥२५३॥

जैसी रांधवणी रससोय निकी। करूनियां मोलें विकी। तैसा भोगासाठीं अविवेकी। धाडिती धर्मु ॥२५४॥

म्हणोनि हे पार्था। दुर्बुद्धि देख सर्वथा। तया वेदवादरतां। मनीं वसे ॥२५५॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

निर्द्वंद्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान ॥४५॥

तिन्हीं गुणीं आवृत। हे वेद जाणैं निभ्रांत। म्हणौनि उपनिषदादि समस्त। सात्विक तें ॥२५६॥

येर रजतमात्मक। जेथ निरूपिजे कर्मादिक। जे केवळ स्वर्गसूचक। धनुर्धरा ॥२५७॥

म्हणौनि तूं जाण। हे सुखदुःखांसीच कारण। एथ झणें अंतःकरण। रिगों देसी ॥२५८॥

तूं गुणत्रयातें अव्हेरीं। मी माझें हें न करीं। एक आत्मसुख अंतरीं। विसंब झणीं ॥२५९॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥४६॥

जरी वेदें बहुत बोलिलें। विविध भेद सूचिले। तऱ्ही आपण हित आपुलें। तेंचि घेपें ॥२६०॥

जैसा प्रगटलिया गभस्ती। अशेषही मार्ग दिसती। तरी तेतुलेहि काय चालिजती। सांगैं मज ॥२६१॥

कां उदकमय सकळ। जऱ्ही जाहले असें महीतळ। तरी आपण घेपें केवळ। आर्तीचिजोगें ॥२६२॥

तैसें ज्ञानीये जे होती। ते वेदार्थातें विवरिती। मग अपेक्षित तें स्वीकारिती। शाश्वत जें ॥२६३॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥

म्हणोनि आइकें पार्था। याचिपरी पाहतां। तुज उचित होय आतां। स्वकर्म हें ॥२६४॥

आम्हीं समस्तही विचारिलें। तंव ऐसेचि हें मना आलें। जें न सांडिजे तुवां आपुलें। विहित कर्म ॥२६५॥

परी कर्मफळीं आस न करावी। आणि कुकर्मीं संगति न व्हावी। हे सत्क्रियाचि आचरावी। हेतूविण ॥२६६॥

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गंत्यक्त्वा धनंजय ।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥४८॥

तूं योगयुक्त होऊनी। फळाचा संगु टाकुनी। मग अर्जुना चित्त देउनी। करीं कर्मे ॥२६७॥

परी आदरिलें कर्म दैवें। जरी समाप्तीतें पावे। तरी विशेषें तेथ तोषावें। हेंही नको ॥२६८॥

कीं निमित्तें कोणें एकें। तें सिद्धी न वचतां ठाके। तरी तेथिंचेनि अपरितोखें। क्षोभावें ना ॥२६९॥

आचरतां सिद्धी गेलें। तरी काजाची कीर आलें। परी ठेलियाही सगुण जहालें। ऐसेंचि मानीं ॥२७०॥

देखैं जेतुलालें कर्म निपजे। तेतुलें आदिपुरुषीं अर्पिजे। तरी परिपूर्ण सहजें। जहालें जाणैं ॥२७१॥

देखैं संतासंतकर्मीं। हें जें सरिसेंपण मनोधर्मीं। तेचि योगस्थिति उत्तमीं। प्रशंसिजे ॥२७२॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।

बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥४९॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥५०॥

अर्जुना समत्व चित्ताचें। तेंचि सार जाणैं योगाचें। जेथ मन आणि बुद्धीचें। ऐक्य आथी ॥२७३॥

तो बुद्धियोग विवरितां। बहुतें पाडें पार्था। दिसे हा अरुता। कर्मभागु ॥२७४॥

परी तेंचि कर्म आचरिजे। तरीच हा योगु पाविजे। जें कर्मशेष सहजें। योगस्थिति ॥२७५॥

म्हणौनि बुद्धियोगु सधरु। तेथ अर्जुना होई स्थिरु। मनें करीं अव्हेरु। फलहेतूचा ॥२७६॥

जे बुद्धियोगा योजिले। तेचि पारंगत जाहले। इहीं उभयबंधीं सांडिले। पापपुण्यीं ॥२७७॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।

जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥५१॥

ते कर्मीं तरी वर्तती। परी कर्मफळा नातळती। आणि यातायाति न लोपती। अर्जुना तयां ॥२७८॥

मग निरामयभरित। पावती पद अच्युत। ते बुद्धियोगयुक्त। धनुर्धरा ॥२७९॥

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।

तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥५२॥

तूं ऐसा तैं होसी। जैं मोहातें यया सांडिसी। आणि वैराग्य मानसीं। संचरैल ॥२८०॥

मग निष्कळंक गहन। उपजेल आत्मज्ञान। तेणें निचाडें होईल मन। अपैसें तुझें ॥२८१॥

तेथ आणिक कांहीं जाणावें। कां मागिलातें स्मरावें। हें अर्जुना आघवें। पारुषेल ॥२८२॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।

समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥५३॥

इंद्रियांचिया संगति। जिये पसरु होतसे मति। ते स्थिर होईल मागुती। आत्मस्वरूपीं ॥२८३॥

समाधिसुखीं केवळ। जैं बुद्धि होईल निश्चळ। तैं पावसी तूं सकळ। योगस्थिति ॥२८४॥

अर्जुन उवाच ।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।

स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥५४॥

तेथ अर्जुन म्हणे देवा। हाचि अभिप्रावो आघवा। मी पुसेन आतां सांगावा। कृपानिधी ॥२८५॥

मग अच्युत म्हणे सुखें। जें किरीटी तुज निकें। तें पूस पां उन्मेखें। मनाचेनि ॥२८६॥

या बोला पार्थें। म्हणितलें सांग पां श्रीकृष्णातें। काय म्हणिपें स्थितप्रज्ञातें। वोळखों केवीं ॥२८७॥

आणि स्थिरबुद्धि जो म्हणिजे। तो कैसिया चिन्हीं जाणिजे। जो समाधिसुख भुंजे। अखंडित ॥२८८॥

तो कवणें स्थिती असे। कैसेनि रूपीं विलसे। देवा सांगावें हें ऐसें। लक्ष्मीपती ॥२८९॥

तंव परब्रह्म अवतरणु। जो षडगुणाधिकरणु। तो काय तेथ नारायणु। बोलतु असे ॥२९०॥

श्रीभगवानुवाच ।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान ।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥

म्हणे अर्जुना परियेसीं। जो हा अभिलाषु प्रौढ मानसीं। तो अंतराय स्वसुखेंसीं। करीतु असे ॥२९१॥

जो सर्वदा नित्यतृप्तु। अंतःकरण भरितु। परी विषयामाजीं पतितु। जेणें संगें कीजे ॥२९२॥

तो कामु सर्वथा जाये। जयाचें आत्मतोषीं मन राहे। तोचि स्थितप्रज्ञ होये। पुरुष जाणें ॥२९३॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

नाना दुःखीं प्राप्तीं। जयासी उद्वेगु नाहीं चित्तीं। आणि सुखाचिया आर्तीं। अडपैजेना ॥२९४॥

अर्जुना तयाच्या ठायीं। कामक्रोधु सहजें नाहीं। आणि भयातें नेणें कहीं। परिपूर्णु तो ॥२९५॥

ऐसा जो निरवधि। तो जाण पां स्थिरबुद्धि। जो निरसूनि उपाधि। भेदरहितु ॥२९६॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।

नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥

जो सर्वत्र सदा सरिसा। परिपूर्णु चंद्रु कां जैसा। अधमोत्तम प्रकाशा- । माजीं न म्हणे ॥२९७॥

ऐसी अनवच्छिन्न समता। भूतमात्रीं सदयता। आणि पालटु नाहीं चित्ता। कवणें वेळे ॥२९८॥

गोमटें कांहीं पावे। तरी संतोषें तेणें नाभिभवे। जो वोखटेनि नागवे। विषादासी ॥२९९॥

ऐसा हरिखशोकरहितु। जो आत्मबोधभरितु। तो जाण पां प्रज्ञायुक्तु। धनुर्धरा ॥३००॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।

इंद्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

कां कूर्म जियापरी। उवाइला अवेव पसरी। ना तरी इच्छावशें आवरी। आपुले आपण ॥३०१॥

तैसीं इंद्रियें आपैतीं होती। जयाचें म्हणितलें करिती। तयाची प्रज्ञा जाण स्थिति। पातली असे ॥३०२॥

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥५९॥

अर्जुना आणिकही एक। सांगेन ऐकें कवतिक। या विषयांतें साधक। त्यजिती नियमें ॥३०३॥

श्रोत्रादि इंद्रियें आवरिती। परि रसने नियमु न करिती। ते सहस्त्रधा कवळिजती। विषयीं इहीं ॥३०४॥

जैसी वरिवरि पालवी खुडिजे। आणि मुळीं उदक घालिजे। तरी कैसेनि नाशु निपजे। तया वृक्षा ॥३०५॥

तो उदकाचेनि बळें अधिकें। जैसा आडवेनि आंगें फांके। तैसा मानसीं विषो पोखे। रसनाद्वारें ॥३०६॥

येरां इंद्रियां विषय तुटे। तैसा नियमूं न ये रस हटें। जे जीवन हें न घटे। येणेंविण ॥३०७॥

मग अर्जुना स्वभावें। ऐसियाही नियमातें पावे। जैं परब्रह्म अनुभवें। होऊनि जाइजे ॥३०८॥

तैं शरीरभाव नासती। इंद्रियें विषय विसरती। जैं सोहंभाव प्रतीति। प्रगट होय ॥३०९॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥६०॥

येऱ्हवीं तरी अर्जुना। हें आया नये साधना। जे राहटताती जतना। निरंतर ॥३१०॥

जयातें अभ्यासाची घरटी। यमनियमांची ताटी। जे मनातें सदा मुठी। धरूनि आहाती ॥३११॥

तेही किजती कासाविसी। या इंद्रियांची प्रौढी ऐसी। जैसी मंत्रज्ञातें विवसी। भुलवी कां ॥३१२॥

देखैं विषय हे तैसे। पावती ऋद्धिसिद्धिचेनि मिषें। मग आकळिती स्पर्शें। इंद्रियांचेनि ॥३१३॥

तिये संधीं मन जाये। मग अभ्यासीं ठोठावलें ठाये। ऐसें बळकटपण आहे। इंद्रियांचें ॥३१४॥

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

म्हणौनि आइकें पार्था। यांतें निर्दळी जो सर्वथा। सर्व विषयीं आस्था। सांडूनियां ॥३१५॥

तोचि तूं जाण। योगनिष्ठेसी कारण। जयाचे विषयसुखें अंतःकरण। झकवेना ॥३१६॥

जो आत्मबोधयुक्तु। होऊनि असे सततु। जो मातें हृदयाआंतु। विसंबेना ॥३१७॥

येऱ्हवीं बाह्य विषय तरी नाहीं। परी मानसीं होईल जरी कांहीं। तरी साद्यंतुचि पाहीं। संसारु असे ॥३१८॥

जैसा कां विषाचा लेशु। घेतलियां होय बहुवसु। मग निभ्रांत करी नाशु। जीवितासी ॥३१९॥

तैसी विषयाची शंका। मनीं वसती देखा। घातु करी अशेखा। विवेकजाता ॥३२०॥

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।

सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥६२॥

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।

स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

जरी हृदयीं विषय स्मरती। तरी निसंगाही आपजे संगती। संगें प्रगटे मूर्ति। अभिलाषाची ॥३२१॥

जेथ कामु उपजला। तेथ क्रोधु आधींचि आला। क्रोधीं असे ठेविला। संमोह जाणें ॥३२२॥

संमोहा जालिया व्यक्ति। तरी नाशु पावे स्मृति। चडवातें ज्योति। आहत जैसी ॥३२३॥

कां अस्तमानीं निशी। जैसी सूर्य तेजातें ग्रासी। तैसी दशा स्मृतिभ्रंशीं। प्राणियांसी ॥३२४॥

मग अज्ञानांध केवळ। तेणें आप्लविजे सकळ। तेथ बुद्धि होय व्याकुळ। हृदयामाजीं ॥३२५॥

जैसें जात्यंधा पळणीं पावे। मग ते काकुळती सैरा धांवे। तैसें बुद्धीसि होती भंवे। धनुर्धरा ॥३२६॥

ऐसा स्मृतिभ्रंशु घडे। मग सर्वथा बुद्धि अवघडे। तेथ समूळ हें उपडे। ज्ञानजात ॥३२७॥

चैतन्याच्या भ्रंशीं। शरीरा दशा जैशी। तैसें पुरुषा बुद्धिनाशीं। होय देखैं ॥३२८॥

म्हणौनि आइकें अर्जुना। जैसा विस्फुलिंग लागे इंधना। मग तो प्रौढ जालिया त्रिभुवना। पुरों शके ॥३२९॥

तैसें विषयांचें ध्यान। जरी विपायें वाहे मन। तरी येसणें हें पतन। गिंवसित पावे ॥३३०॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन ।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥६४॥

म्हणौनि विषय हे आघवे। सर्वथा मनौनि सांडावे। मग रागद्वेष स्वभावें। नाशतील ॥३३१॥

पार्था आणिकही एक। जरी नाशले रागद्वेष। तरी इंद्रियां विषयीं बाधक। रमतां नाहीं ॥३३२॥

जैसा सूर्य आकाशगतु। रश्मिकरें जगातें स्पर्शतु। तरी संगदोषें काय लिंपतु। तेथिचेनि ॥३३३॥

तैसा इंद्रियार्थीं उदासीन। आत्मरसेंचि निर्भिन्न। जो कामक्रोधविहीन। होऊनि असे ॥३३४॥

तरी विषयां तयां कांहीं। आपणपेंवांचूनि नाहीं। मग विषय कवण कायी। बाधितील कवणा ॥३३५॥

जरी उदकीं उदक बुडिजे। कां अग्नि आगी पोळिजे। तरी विषयसंगे आप्लविजे। परिपूर्णु तो ॥३३६॥

ऐसा आपणचि केवळु। होऊनि असे निखळु। तयाचि प्रज्ञा अचळु। निभ्रांत मानीं ॥३३७॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

देखैं अखंडित प्रसन्नता। आथी जेथ चित्ता। तेथ रिगणें नाहीं समस्तां। संसारदुःखां ॥३३८॥

जैसा अमृताचा निर्झरु। प्रसवे जयाचा जठरु। तया क्षुधेतृषेचा अडदरु। कहींचि नाहीं ॥३३९॥

तैसें हृदय प्रसन्न होये। तरी दुःख कैचें कें आहे ? । तेथ आपैसी बुद्धि राहे। परमात्मरूपीं ॥३४०॥

जैसा निर्वातीचा दीपु। सर्वथा नेणें कंपु। तैसा स्थिरबुद्धि स्वस्वरूपु। योगयुक्तु ॥३४१॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।

न चाभावयतः शांतिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥६६॥

ये युक्तीची कडसणी। नाहीं जयाच्या अंतःकरणीं। तो आकळिला जाण गुणीं। विषयादिकीं ॥३४२॥

तया स्थिरबुद्धि पार्था। कहीं नाहीं सर्वथा। आणि स्थैर्याची आस्था। तेही नुपजे ॥३४३॥

निश्चळत्वाची भावना। जरी नव्हेचि देखैं मना। तरी शांति केवीं अर्जुना। आपु होय ॥३४४॥

जेथ शांतीचा जिव्हाळा नाहीं। तेथ सुख विसरोनि न रिगे कहीं। जैसा पापियाच्या ठायीं। मोक्षु न वसे ॥३४५॥

देखैं अग्निमाजीं घापती। तियें बीजें जरी विरूढती। तरी अशांता सुखप्राप्ती। घडों शके ॥३४६॥

म्हणौनि अयुक्तपण मनाचें। तेंचि सर्वस्व दुःखाचें। या कारणें इंद्रियांचें। दमन निकें ॥३४७॥

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते।

तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥६७॥

इंद्रियें जें जें म्हणती। तें तेंचि जे पुरुष करिती। ते तरलेचि न तरती। विषयसिंधु ॥३४८॥

जैसी नाव थडिये ठाकितां। जरी वरपडी होय दुर्वाता। तरी चुकलाही मागौता। अपावो पावे ॥३४९॥

तैसीं प्राप्तेंही पुरुषें। इंद्रियें लाळिलीं जरी कौतुकें। तरी आक्रमिला जाण दुःखें। संसारिकें ॥३५०॥

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।

इंद्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८॥

म्हणौनि आपुलीं आपणपेया। जरी इंद्रियें येती आया। तरी अधिक कांहीं धनंजया। सार्थक असे ? ॥३५१॥

देखैं कूर्म जियापरी। उवाइला अवेव पसरी। ना तरी इच्छावशें आवरी। आपणपेंचि ॥३५२॥

तैसीं इंद्रियें आपैतीं होती। जयाचें म्हणितलें करिती। तयाची प्रज्ञा जाण स्थिती। पातली असे ॥३५३॥

आतां आणिक एक गहन। पूर्णाचें चिन्ह। अर्जुना तुज सांगैन। परिस पां ॥३५४॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९॥

देखैं भूतजात निदेलें। तेथेंचि जया पाहलें। आणि जीव जेथ चेइलें। तेथ निद्रितु जो ॥३५५॥

तोचि तो निरुपाधि। अर्जुना तो स्थिरबुद्धि। तोचि जाणें निरवधि। मुनीश्वर ॥३५६॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शांतिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

पार्था आणीकही परी। तो जाणों येईल अवधारीं। जैसी अक्षोभता सागरीं। अखंडित ॥३५७॥

जऱ्ही सरितावोघ समस्त। परिपूर्ण होऊनि मिळत। तऱ्ही अधिक नोहे ईषत। मर्यादा न संडी ॥३५८॥

ना तरी ग्रीष्मकाळीं सरिता। शोषूनि जाती समस्ता। परी न्यून नव्हे पार्था। समुद्रु जैसा ॥३५९॥

तैसा प्राप्तीं ऋद्धिसिद्धीं। तयासि क्षोभु नाहीं बुद्धीं। आणि न पवतां न बाधी। अधृति तयातें ॥३६०॥

सांगैं सूर्याच्या घरीं। प्रकाशु काय वातीवेरी। कां न लविजे तरी अंधारीं। कोंडेल तो ॥३६१॥

देखैं ऋद्धिसिद्धि तयापरी। आली गेली से न करी। तो विगुंतला असे अंतरीं। महासुखीं ॥३६२॥
जो आपुलेनि नागरपणें। इंद्रभुवनातें पाबळें म्हणे। तो केवीं रंजे पालिवणें। भिल्लांचेनि ? ॥३६३॥
जो अमृतासी ठी ठेवी। तो जैसा कांजी न सेवी। तैसा स्वसुखानुभवी। न भोगी ऋद्धि ॥३६४॥
पार्था नवल हें पाहीं। जेथ स्वर्गसुख लेखनीय नाहीं। तेथ ऋद्धिसिद्धी कायी। प्राकृता होती ॥३६५॥

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥७१॥

ऐसा आत्मबोधें तोषला। जो परमानंदें पोखला। तोचि स्थिरप्रज्ञु भला। वोळख तूं ॥३६६॥
तो अहंकारातें दंडुनी। सकळ कामु सांडोनी। विचरे विश्व होऊनी। विश्वामाजीं ॥३६७॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥
ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगोनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२अ ॥

हे ब्रह्मस्थिति निःसीम। जे अनुभवितां निष्काम। ते पावले परब्रह्म। अनायासें ॥३६८॥
जे चिद्रूपीं मिळतां। देहांतीचि व्याकुळता। आड ठाकों न सके चित्ता। प्राज्ञा जया ॥३६९॥
तेचि हे स्थिति। स्वमुखें श्रीपति। सांगत अर्जुनाप्रति। संजयो म्हणे ॥३७०॥
ऐसें कृष्णवाक्य ऐकिलें। तेथ अर्जुनें मनीं म्हणितलें। आतां आमुचियाचि काजा कीर आलें। उपपत्ति इया ॥३७१॥
जें कर्मजात आघवें। एथ निराकारिलें देवें। तरी पारुषलें म्यां झुंजावें। म्हणौनियां ॥३७२॥
ऐसा श्रीअच्युताचिया बोला। चित्तीं धनुर्धरु उवाइला। आतां प्रश्नु करील भला। आशंकोनी ॥३७३॥
तो प्रसंगु असे नागरु। जो सकळ धर्मासी आगरु। कीं विवेकामृतसागरु। प्रांतहीनु ॥३७४॥
जो आपण सर्वज्ञनाथु। निरूपिता होईल श्रीअनंतु। ज्ञानदेवो सांगेल मातु। निवृत्तिदासु ॥३७५॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां द्वितीयोऽध्यायः ..

.. ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय ३ ..

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय तिसरा ।

कर्मयोगः ।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत् किं कर्मणि घोरे माम् नियोजयसि केशव ॥१॥

मग आइका अर्जुनें म्हणितलें। देवा तुम्ही जें वाक्य बोलिलें। तें निकें म्यां परिसिलें। कमळापती ॥१॥
तेथ कर्म आणि कर्ता। उरेचिना पाहतां। ऐसें मत तुझें श्रीअनंता। निश्चित जरी ॥२॥
तरी मातें केवीं श्रीहरी। म्हणसी पार्था संग्रामु करीं। इये लाजसी ना महाघोरीं। कर्मीं सुतां ॥३॥
हां गा कर्म तूंचि अशेष। निराकरिसी निःशेष। तरी मजकरवीं हें हिंसक। कां करविसी ॥४॥
तरी हेंचि विचारीं ऋषीकेशा। तूं मानु देसी कर्मलेशां। आणि येसणी हे हिंसा। करवीतु आहासी ॥५॥

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥२॥

देवा तुवांचि ऐसें बोलावें। तरी आम्हीं नेणती काय करावें। आतां संपले म्हण पां आघवें। विवेकाचें ॥६॥
हां गा उपदेश जरी ऐसा। तरी अपभ्रंशु तो कैसा। आतां पुरला आम्हां धिंवसा। आत्मबोधाचा ॥७॥
वैद्यु पथ्य वारूनि जाये। मग जरी आपणचि विष सुये। तरी रोगिया कैसनि जिये। सांगैं मज ॥८॥
जैसें आंधळें सुईजे आव्हांटा। कां माजवण दीजे मर्कटा। तैसा उपदेशु हा गोमटा। वोढवला आम्हां ॥९॥
मी आधींचि कांहीं नेणें। वरी कवळिलों मोहें येणें। श्रीकृष्णा विवेकु या कारणें। पुसिला तुज ॥१०॥
तंव तुझी एकेक नवाई। एथ उपदेशामाजीं गोवाई। तरी अनुसरलिया काई। ऐसें कीजे ? ॥११॥
आम्हीं तनुमनुजीवें। तुझिया बोला वोटंगावें। आणि तुवांचि ऐसें करावें। तरी सरलें म्हण ॥१२॥
आतां ऐसियापरी बोधिसी। तरी निकें आम्हां करिसी। एथ ज्ञानाची आस कायसी। अर्जुन म्हणे ॥१३॥
तरी ये जाणिवेचें तरी सरलें। परी आणिक एक असे जाहलें। जें थितें हें डहुळलें। मानस माझें ॥१४॥
तेवींचि श्रीकृष्णा हें तुझें। चरित्र कांहीं नेणिजे। जरी चित्त पाहसी माझें। येणे मिषें ॥१५॥
ना तरी झकवीतु आहासी मातें। कीं तत्त्वचि कथिले ध्वनितें। हें अवगमितां निरुतें। जाणवेना ॥१६॥
म्हणौनि आइकें देवा। हा भावार्थु आतां न बोलावा। मज विवेकु सांगावा। मऱ्हाटा जी ॥१७॥
मी अत्यंत जड असें। परी ऐसाही निकें परियेसें। श्रीकृष्णा बोलावें तुवां तैसें। एकनिष्ठ ॥१८॥
देखैं रोगातें जिणावें। औषध तरी देयावें। परी तें अति रुच्य व्हावें। मधुर जैसें ॥१९॥
तैसें सकळार्थभरित। तत्त्व सांगावें उचित। परी बोधें माझें चित्त। जयापरी ॥२०॥
देवा तुज ऐसा निजगुरु। आजि आर्तीधणी कां न करूं। एथ भीड कवणाची धरूं। तूं माय आमुची ॥२१॥
हां गां कामधेनूचें दुभतें। दैवें जाहलें जरी आपैतें। तरीं कामनेची कां तेथें। वानी कीजे ? ॥२२॥
जरी चिंतामणी हाता चढे। तरी वांछेचें कवण सांकडें। कां आपुलेनि सुरवाडें। इच्छावें ना ? ॥२३॥
देखा अमृतसिंधूतें ठाकावें। मग ताहाना जरी फुटावें। तरी सायासु कां करावे। मागील ते ? ॥२४॥
तैसा जन्मांतरीं बहुतीं। उपासितां श्रीलक्ष्मीपती। तूं दैवें आजि हातीं। जाहलासी जरी ॥२५॥
तरी आपुलिया सवेशा। कां न मागावासि परेशा ? । देवा सुकाळु हा मानसा। पाहला असे ॥२६॥
देखैं सकळार्तींचें जियाले। आजि पुण्य यशासि आलें। हें मनोरथ जहाले। विजयी माझे ॥२७॥

जी जी परममंगळधामा। सकळ देवदेवोत्तमा। तूं स्वाधीन आजि आम्हां। म्हणौनियां ॥२८॥
जैसें मातेच्या ठायीं। अपत्या अनवसरू नाहीं। स्तन्यालागूनि पाहीं। जियापरी ॥२९॥
तैसें देवा तूतें। पुसिजतसे आवडे तें। आपुलेनि आर्तें। कृपानिधीं ॥३०॥
तरीं पारत्रिकीं हित। आणि आचरितां तरी उचित। तें सांगैं एक निश्चित। पार्थु म्हणे ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच ।

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानाम् कर्मयोगेन योगिनाम् ॥३॥

या बोला श्रीअच्युतु। म्हणतसे विस्मितु। अर्जुना हा ध्वनितु। अभिप्रावो ॥३२॥
जे बुद्धियोगु सांगतां। सांख्यमतसंस्था। प्रकटिली स्वभावता। प्रसंगें आम्हीं ॥३३॥
तो उद्देशु तूं नेणसीचि। म्हणौनि क्षोभलासि वायांचि। तरी आतां जाणें म्यांचि। उक्त दोन्ही ॥३४॥
अवधारीं वीरश्रेष्ठा। ये लोकीं या दोन्ही निष्ठा। मजचिपासूनि प्रगटा। अनादिसिद्धा ॥३५॥
एकु ज्ञानयोगु म्हणिजे। जो सांख्यीं अनुष्ठिजे। जेथ ओळखीसवें पाविजें। तद्रूपता ॥३६॥
एक कर्मयोगु जाण। जेथ साधकजन निपुण। होऊनियां निर्वाण। पावती वेळे ॥३७॥
हे मार्गु तरी दोनी। परी एकवटतीं निदानीं। जैसी सिद्धसाध्य भोजनीं। तृप्ती एक ॥३८॥
कां पूर्वापर सरितां। भिन्न दिसती पाहतां। मग सिंधुमिळणीं ऐक्यता। पावती शेखीं ॥३९॥
तैसीं दोनीही मतें। सूचितीं एका कारणातें। परी उपास्ति ते योग्यते- । आधीन असे ॥४०॥
देखैं उत्प्लवनासरिसां। पक्षी फळासि झोंबें जैसा। सांगैं नरु केवीं तैसा। पावे वेगा ? ॥४१॥
तो हळूहळू ढाळेंढाळें। केउतेनि एके वेळे। तया मार्गाचेनि बळें। निश्चित ठाकी ॥४२॥
तैसे देख पां विहंगममतें। अधिष्ठूनि ज्ञानातें। सांख्य सद्य मोक्षातें। आकळिती ॥४३॥
येर योगिये कर्माधारें। विहितेंचि निजाचारें। पूर्णता अवसरें। पावते होती ॥४४॥

न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥४॥

वांचोनि कर्मारंभ उचित। न करितां सिद्धवत। कर्महीना निश्चित। होईजेना ॥४५॥
कीं प्राप्तकर्म सांडिजे। येतुलेनि नैष्कर्म्य होईजे। हें अर्जुना वायां बोलिजे। मूर्खपणें ॥४६॥
सांगैं पैलतीरा जावें। ऐसें व्यसन कां जेथ पावे। तेथ नावेतें त्यजावें। घडे केवीं ? ॥४७॥
ना तरी तृप्ति इच्छिजे। तरी कैसेनि पाकु न कीजे। कीं सिद्‌धुही न सेविजे। केवीं सांगैं ? ॥४८॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥५॥

जंव निरार्तता नाहीं। तंव व्यापारु असे पाहीं। मग संतुष्टीच्या ठायीं। कुंठें सहजें ॥४९॥
म्हणौनि आईकें पार्था। जयां नैष्कर्म्यपदीं आस्था। तया उचित कर्म सर्वथा। त्याज्य नोहे ॥५०॥
आणि आपुलिये चाडे। आपादिलें हें मांडे। कीं त्यजिलें कर्म सांडे। ऐसें आहे ? ॥५१॥
हें वायांचि सैरा बोलिजे। उकलु तरी देखोनि पाहिजे। परी त्यजिता कर्म न त्यजे। निभ्रांत मानीं ॥५२॥
जंव प्रकृतीचें अधिष्ठान। तंव सांडी मांडी हें अज्ञान। जे चेष्टा ते गुणाधीन। आपैसी असे ॥५३॥
देखैं विहित कर्म जेतुलें। तें सळें जरी वोसंडिलें। तरी स्वभाव काय निमाले। इंद्रियांचे ॥५४॥
सांगै श्रवणीं ऐकावें ठेलें ? । कीं नेत्रींचें तेज गेलें ? । हें नासारंध्र बुझालें। परिमळु नेघे ? ॥५५॥
ना तरी प्राणापानगति। कीं निर्विकल्प जाहली मती। कीं क्षुधातृषादि आर्ति। खुंटलिया ॥५६॥
हे स्वप्नावबोधु ठेले। कीं चरण चालों विसरले। हें असो काय निमाले। जन्ममृत्यु ? ॥५७॥

हें न ठकेचि जरी कांहीं। तरी सांडिलें तें कायी। म्हणौनि कर्मत्यागु नाहीं। प्रकृतिमंता ॥५८॥
कर्म पराधीनपणें। निपजतसे प्रकृतिगुणें। येरी धरीं मोकलीं अंतःकरणें। वाहिजे वायां ॥५९॥
देखैं रथीं आरूढिजे। मग जरी निश्चळा बैसिजे। तरी चळु होऊनि हिंडिजे। परतंत्रा ॥६०॥
कां उचलिलें वायुवशें। चळे शुष्क पत्र जैसें। निचेष्ट आकाशें। परिभ्रमें ॥६१॥
तैसें प्रकृतिआधारें। कर्मेंद्रियविकारें। नैष्कर्म्यही व्यापारे। निरंतर ॥६२॥
म्हणौनि संगू जंव प्रकृतीचा। तंव त्यागु न घडे कर्माचा। ऐसियाहि करूं म्हणती तयांचा। आग्रहोचि उरे ॥६३॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन ।

इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥६॥

जे उचित कर्म सांडिती। मग नैष्कर्म्य होऊं पाहती। परी कर्मेंद्रियप्रवृत्ती। निरोधुनी ॥६४॥
तयां कर्मत्यागु न घडे। जें कर्तव्य मनीं सांपडे। वरी नटती तें फुडें। दरिद्र जाण ॥६५॥
ऐसे ते पार्था। विषयासक्त सर्वथा। ओळखावे तत्त्वता। भ्रांति नाहीं ॥६६॥
आतां देईं अवधान। प्रसंगें तुज सांगेन। या नैराश्याचें चिन्ह। धनुर्धरा ॥६७॥

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्याऽऽरभतेऽर्जुन ।

कर्मैन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥७॥

जो अंतरीं दृढ। परमात्मरूपीं गूढ। बाह्य भागु तरी रूढ। लौकिकु जैसा ॥६८॥
तो इंद्रियां आज्ञा न करी। विषयांचें भय न धरी। प्राप्त कर्म नाव्हेरी। उचित जें जें ॥६९॥
तो कर्मेंद्रियें कर्मीं। राहटतां तरी न नियमी। परी तेथिचेनि उर्मीं। झांकोळेना ॥७०॥
तो कामनामात्रें न घेपे। मोहमळें न लिंपे। जैसें जळीं जळें न शिंपे। पद्मपत्र ॥७१॥
तैसा संसर्गामाजीं असे। सकळांसारिखा दिसे। जैसें तोयसंगें आभासे। भानुबिंब ॥७२॥
तैसा सामान्यत्वें पाहिजे। तरी साधारणुचि देखिजे। येरवीं निर्धारितां नेणिजे। सोय जयाची ॥७३॥
ऐशा चिन्हीं चिन्हितु। देखसी तोचि मुक्तु। आशापाशरहितु। वोळख पां ॥७४॥
अर्जुना तोचि योगी। विशेषिजे जो जगीं। म्हणौनि ऐसा होय यालागीं। म्हणिपे तूतें ॥७५॥
तूं मानसा नियमु करीं। निश्चळु होय अंतरीं। मग कर्मेंद्रियें व्यापारीं। वर्ततु सुखें ॥७६॥

नियतं कुरु कर्म त्वं ज्यायो ह्यकर्मणः ।

शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥८॥

म्हणौनी नैष्कर्म्य होआवें। तरी एथ तें न संभवे। आणि निषिद्ध केवीं राहाटावें। विचारीं पां ॥७७॥
म्हणौनि जें जें उचित। आणि अवसरेंकरूनि प्राप्त। तें कर्म हेतुरहित। आचरें तूं ॥७८॥
पार्था आणीकही एक। नेणसी तूं हें कवतिक। जें ऐसें कर्ममोचक। आपैसें असे ॥७९॥
देखैं अनुक्रमाधारें। स्वधर्मु जो आचरे। तो मोक्षु तेणें व्यापारें। निश्चित पावे ॥८०॥

यज्ञाथात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचार ॥९॥

स्वर्धमु जो बापा। तोचि नित्ययज्ञु जाण पां। म्हणौनि वर्ततां तेथ पापा। संचारु नाहीं ॥८१॥
हा निजधर्मु जैं सांडे। आणि कुकर्मीं रति घडे। तैंचि बंधु पडे। संसारिक ॥८२॥
म्हणौनि स्वधर्मानुष्ठान। तें अखंड यज्ञ याजन। जो करी तया बंधन। कहींच न घडे ॥८३॥
हा लोकु कर्मे बांधिला। जो परतंत्रा भूत झाला। तो नित्य यज्ञातें चुकला। म्हणौनियां ॥८४॥
आतां येचिविशीं पार्था। तुज सांगेन एक मी कथा। जैं सृष्ट्यादि संस्था। ब्रह्मेनें केली ॥८५॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।

अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥१०॥
तैं नित्ययागसहितें। सृजिलीं भूतें समस्तें। परी नेणतीचि तियें यज्ञातें। सूक्ष्म म्हणौनि ॥८६॥
ते वेळीं प्रजीं विनविला ब्रह्मा। देवा काय आश्रयो एथ आम्हां। तंव म्हणे तो कमळजन्मा। भूतांप्रति ॥८७॥
तुम्हां वर्णविशेषवशें। आम्हीं हा स्वधर्मुचि विहिला असे। यातें उपासा मग आपैसे। पुरती काम ॥८८॥
तुम्हीं व्रतें नियमु न करावे। शरीरातें न पीडावें। दुरी केंही न वचावें। तीर्थासी गा ॥८९॥
योगादिकें साधनें। साकांक्ष आराधनें। मंत्रयंत्रविधानें। झणीं करा ॥९०॥
देवतांतरा न भजावें। हें सर्वथा कांहीं न करावें। तुम्हीं स्वधर्मयज्ञीं यजावें। अनायासें ॥९१॥
अहेतुकें चित्तें। अनुष्ठा पां ययातें। पतिव्रता पतीतें। जियापरी ॥९२॥
तैसा स्वधर्मरूपमखु। हाचि सेव्यु तुम्हां एकु। ऐसें सत्यलोकनायकु। बोलता जाहला ॥९३॥
देखा स्वधर्मातें भजाल। तरी कामधेनु हा होईल। मग प्रजाहो न संडील। तुमतें कदा ॥९४॥

देवान्भावयताऽनेन ते देवाभावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

जैं येणेंकरूनि समस्तां। परितोषु होईल देवतां। मग ते तुम्हां ईप्सिता। अर्थातें देती ॥९५॥
या स्वधर्मपूजा पूजितां। देवतागणां समस्तां। योगक्षेमु निश्चिता। करिती तुमचा ॥९६॥
तुम्हीं देवांतें भजाल। देव तुम्हां तुष्टतील। ऐसी परस्परें घडेल। प्रीति जेथ ॥९७॥
तेथ तुम्हीं जें करूं म्हणाल। तें आपैसें सिद्धि जाईल। वांछितही पुरेल। मानसींचें ॥९८॥
वाचासिद्धि पावाल। आज्ञापक होआल। म्हणियें तुमतें मागतील। महाऋद्धि ॥९९॥
जैसें ऋतुपतीचें द्वार। वनश्री निरंतर। वोळगे फळभार। लावण्येसी ॥१००॥

इष्टांभोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥१२॥

तैसें सर्व सुखेंसहित। दैवचि मूर्तिमंत। येईल देखा काढत। तुम्हांपाठीं ॥१०१॥
ऐसें समस्त भोगभरित। होआल तुम्ही अनार्त। जरी स्वधर्मेंनिरत। वर्ताल बापा ॥१०२॥
कां जालिया सकळ संपदा। जो अनुसरेल इंद्रियमदा। लुब्ध होऊनियां स्वादा। विषयांचिया ॥१०३॥
तिहीं यज्ञभाविकीं सुरीं। जे हे संपत्ति दिधली पुरी। तयां स्वधर्मी सर्वेश्वरीं। न भजेल जो ॥१०४॥
अग्निमुखीं हवन। न करील देवता पूजन। प्राप्तवेळे भोजन। ब्राह्मणाचें ॥१०५॥
विमुख होईल गुरुभक्ती। आदर न करील अतिथी। संतोष नेदील ज्ञाती। आपुलिये ॥१०६॥
ऐसा स्वधर्मक्रियारहितु। आथिलेपणें प्रमत्तु। केवळ भोगासक्तु। होईल जो ॥१०७॥
तया मग अपावो थोर आहे। जेणें तें हातींचें सकळ जाये। देखा प्राप्तही न लाहे। भोग भोगूं ॥१०८॥
जैसें गतायुषी शरीरीं। चैतन्य वासु न करी। कां निदैवाच्या घरीं। न राहे लक्ष्मी ॥१०९॥
तैसा स्वधर्मु जरी लोपला। तरी सर्व सुखांचा थारा मोडला। जैसा दीपासवें हरपला। प्रकाशु जाय ॥११०॥
तैसी निजवृत्ति जेथ सांडे। तेथ स्वतंत्रते वस्ती न घडे। आइका प्रजाहो हे फुडें। विरंचि म्हणे ॥१११॥
म्हणौनि स्वधर्मु जो सांडील। तयातें काळु दंडील। चोरु म्हणौनि हरील। सर्वस्व तयाचें ॥११२॥
मग सकळ दोषु भंवते। गिंवसोनि घेति तयातें। रात्रिसमयीं स्मशानातें। भूतें जैसीं ॥११३॥
तैसीं त्रिभुवनींचीं दुःखें। आणि नानाविधें पातकें। दैन्यजात तितुकें। तेथेंचि वसे ॥११४॥
ऐसें होय तया उन्मत्ता। मग न सुटे बापा रुदतां। कल्पांतींही सर्वथा। प्राणिगणहो ॥११५॥
म्हणौनि निजवृत्ती हे न संडावी। इंद्रियें बरळों नेदावीं। ऐसें प्रजांतें शिकवी। चतुराननु ॥११६॥
जैसे जळचरा जळ सांडे। आणि तत्क्षणीं मरण मांडे। हा स्वधर्मु तेणें पाडें। विसंबों नये ॥११७॥

म्हणौनि तुम्हीं समस्तीं। आपुलालिया कर्मीं उचितीं। निरत व्हावें पुढत पुढती। म्हणिपत असे ॥११८॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३॥

देखा विहित क्रियाविधि। निर्हेतुका बुद्धि। जो असतिये समृद्धि। विनियोगु करी ॥११९॥

गुरु गोत्र अग्नि पूजी। अवसरीं भजे द्विजीं। निमित्तादिकीं यजी। पितरोद्देशें ॥१२०॥

या यज्ञक्रिया उचिता। यज्ञेशीं हवन करितां। हुतशेष स्वभावतः। उरे जें जें ॥१२१॥

तें सुखें आपुले घरीं। कुटुंबेंसी भोजन करी। कीं भोग्यचि तें निवारी। कल्मषातें ॥१२२॥

तें यज्ञावशिष्ट भोगी। म्हणौनि सांडिजे तो अघीं। जयापरीं महारोगी। अमृतसिद्धि ॥१२३॥

कीं तत्त्वनिष्ठु जैसा। नागवे भ्रांतिलेशा। तो शेषभोगी तैसा। नाकळे दोषा ॥१२४॥

म्हणौनि स्वधर्मे जें अर्जे। तें स्वधर्मेंचि विनियोगिजे। मग उरे तें भोगिजे। संतोषेंसीं ॥१२५॥

हें वांचूनि पार्था। राहाटों नये अन्यथा। ऐसी आद्य हे कथा। श्रीमुरारी सांगे ॥१२६॥

जे देहचि आपणपें मानिती। आणि विषयांतें भोग्य म्हणती। यापरतें न स्मरती। आणिक कांहीं ॥१२७॥

हें यज्ञोपकरण सकळ। नेणतसां ते बरळ। अहंबुद्धि केवळ। भोगूं पाहती ॥१२८॥

इंद्रियरुचीसारिखें। करविती पाक निके। ते पापिये पातकें। सेविती जाण ॥१२९॥

संपत्तिजात आघवें। हें हवनद्रव्य मानावें। मग स्वधर्मयज्ञें अर्पावें। आदिपुरुषीं ॥१३०॥

हें सांडोनियां मूर्ख। आपणपेंयालागीं देख। निपजविती पाक। नानाविध ॥१३१॥

जिहीं यज्ञु सिद्धी जाये। परेशा तोषु होये। तें हें सामान्य अन्न न होये। म्हणौनियां ॥१३२॥

हें न म्हणावें साधारण। अन्न ब्रह्मरूप जाण। जें जीवनहेतु कारण। विश्वा यया ॥१३३॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१४॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवं।

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

अन्नास्तव भूतें। प्ररोहो पावती समस्तें। मग पर्जन्यु या अन्नातें। सर्वत्र प्रसवे ॥१३४॥

तया पर्जन्या यज्ञीं जन्म। यज्ञातें प्रगटी कर्म। कर्मासि आदि ब्रह्म। वेदरूप ॥१३५॥

मग वेदांतें परात्पर। प्रसवतसे अक्षर। म्हणौनि हे चराचर। ब्रह्मबद्ध ॥१३६॥

परी कर्माचिये मूर्ति। यज्ञीं अधिवासु श्रुति। ऐकें सुभद्रापति। अखंड गा ॥१३७॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।

अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥१६॥

ऐशी हे आदि परंपरा। संक्षेपें तुज धनुर्धरा। सांगितली या अध्वरा। लागूनियां ॥१३८॥

म्हणौनि समूळ हा उचितु। स्वधर्मरूप क्रतु। नानुष्ठी जो मत्तु। लोकीं इये ॥१३९॥

तो पातकांची राशी। जाण भार भूमीसी। जो कुकर्मे इंद्रियांसी। उपेगा गेला ॥१४०॥

तें जन्म कर्म सकळ। अर्जुना अति निष्फळ। जैसें कां अभ्रपटल। अकाळींचें ॥१४१॥

कां गळां स्तन अजेचे। तैसें जियालें देखैं तयाचें। जया अनुष्ठान स्वधर्माचें। घडेचिना ॥१४२॥

म्हणौनि ऐकें पांडवा। हा स्वधर्मु कवणें न संडावा। सर्वभावें भजावा। हाचि एकु ॥१४३॥

हां गा शरीर जरी जाहलें। तरी कर्तव्य वोघें आलें। मग उचित कां आपुलें। ओसंडावें ? ॥१४४॥

परिस पां सव्यसाची। मूर्ति लाहोनि देहाची। खंती करिती कर्माची। ते गांवढे गा ॥१४५॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।

आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥१७॥

देखैं असतेनि देहधर्मीं। एथ तोचि एकु न लिंपे कर्मीं। जो अखंडित रमे। आपणपांचि ॥१४६॥

जे तो आत्मबोधें तोषला। तरी कृतकार्यु देखैं जाहला। म्हणौनि सहजें सांडवला। कर्मसंगु ॥१४७॥

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ॥

न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदार्थव्यपाश्रयः ॥१८॥

तृप्ति जालिया जैसीं। साधनें सरती आपैसीं। देखैं आत्मतुष्टीं तैसीं। कर्मे नाहीं ॥१४८॥

जंववरी अर्जुना। तो बोधु भेटेना मना। तंवचि यया साधना। भजावें लागे ॥१४९॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥१९॥

म्हणौनि तूं नियतु। सकळ कामरहितु। होऊनियां उचितु। स्वधर्मे रहाटें ॥१५०॥

जे स्वधर्मे निष्कामता। अनुसरले पार्था। ते कैवल्यपद तत्त्वतां। पातले जगीं ॥१५१॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

लोकसङ्ग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥२०॥

देख पां जनकादिक। कर्मजात अशेख। न सांडितां मोक्षसुख। पावते जाहले ॥१५२॥

याकारणें पार्था। होआवी कर्मीं आस्था। हे आणिकाहि एका अर्था। उपकारैल ॥१५३॥

जे आचरतां आपणपयां। देखी लागेल लोका यया। तरी चुकेल अपाया। प्रसंगेंचि ॥१५४॥

देखैं प्राप्तार्थ जाहले। जे निष्कामता पावले। तयाही कर्तव्य असे उरलें। लोकांलागीं ॥१५५॥

मार्गीं अंधासरिसा। पुढें देखणाही चाले जैसा। अज्ञाना प्रकटावा धर्मु तैसा। आचरोनी ॥१५६॥

हां गा ऐसें जरी न कीजे। तरी अज्ञाना काय उमजे ? । तिहीं कवणे परी जाणिजे। मार्गातें या ? ॥१५७॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ॥

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥२१॥

एथ वडील जें जें करिती। तया नाम धर्मु ठेविती। तेंचि येर अनुष्ठिती। सामान्य सकळ ॥१५८॥

हें ऐसें असे स्वभावें। म्हणौनि कर्म न संडावें। विशेषें आचरावें। लागे संतीं ॥१५९॥

न मे पार्थाऽस्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ॥

नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥२२॥

आतां आणिकांचिया गोठी। कायशा सांगों किरीटी। देखैं मीच इये राहाटी। वर्तत असें ॥१६०॥

काय सांकडें कांहीं मातें। कीं कवणें एकें आर्तें। आचरें मी धर्मातें। म्हणसी जरी ॥१६१॥

तरी पुरतेपणालागीं। आणिकु दुसरा नाहीं जगीं। ऐसी सामुग्री माझ्या अंगीं। जाणसी तूं ॥१६२॥

मृत गुरुपुत्र आणिला। तो तुवां पवाडा देखिला। तोही मी उगला। कर्मीं वर्तें ॥१६३॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।

मम वत्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥२३॥

परी स्वधर्मीं वर्तें कैसा। साकांक्षु कां होय जैसा। तयाचि एका उद्देशा- । लागोनियां ॥१६४॥

जे भूतजात सकळ। असे आम्हांचि आधीन केवळ। तरी न व्हावें बरळ। म्हणौनियां ॥१६५॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।

स रस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

आम्ही पूर्णकाम होउनी। जरी आत्मस्थिति राहुनी। तरी प्रजा हे कैसेनि। निस्तरेल ? ॥१६६॥

इहीं आमुची वास पाहावी। मग वर्ततीपरी जाणावी। ते लोकस्थिति आघवी। नासिली होईल ॥१६७॥

म्हणौनि समर्थु जो येथें। आथिला सर्वज्ञते। तेणें सविशेषें कर्मातें। त्यजावें ना ॥१६८॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।

कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम्॥२५॥

देखैं फळाचिया आशा। आचरे कामकु जैसा। कर्मीं भरु होआवा तैसा। निराशाही ॥१६९॥

जे पुढतपुढतीं पार्था। हे सकळ लोकसंस्था। रक्षणीय सर्वथा। म्हणौनियां ॥१७०॥

मार्गाधारें वर्तावें। विश्व हें मोहरें लावावें। अलौकिक नोहावें। लोकांप्रति ॥१७१॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।

जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन॥२६॥

जें सायासें स्तन्य सेवी। तें पक्कान्नें केवीं जेवी। म्हणौनि बाळका जैशीं नेदावीं। धनुर्धरा ॥१७२॥

तैशी कर्मीं जयां अयोग्यता। तयांप्रति नैष्कर्म्यता। न प्रगटावी खेळतां। आदिकरुनी ॥१७३॥

तेथें सत्क्रियाचि लावावी। तेचि एकी प्रशंसावी। नैष्कर्मींही दावावी। आचरोनी ॥१७४॥

तया लोकसंग्रहालागीं। वर्ततां कर्मसंगीं। तो कर्मबंधु आंगीं। वाजैल ना ॥१७५॥

जैसी बहुरुपियांचीं रावो राणी। स्त्रीपुरुषभावो नाहीं मनीं। परी लोकसंपादणी। तैशीच करिती ॥१७६॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते॥२७॥

देखैं पुढिलाचें वोझें। जरी आपुला माथां घेईजे। तरी सांगैं कां न दटिजे। धनुर्धरा ? ॥१७७॥

तैसीं शुभाशुभें कर्मीं। जियें निपजती प्रकृतिधर्मीं। तियें मूर्ख मतिभ्रमें। मी कर्ता म्हणे ॥१७८॥

ऐसा अहंकारादिरूढ। एकदेशी मूढ। तया हा परमार्थ गूढ। प्रगटावा ना ॥१७९॥

हें असो प्रस्तुत। सांगिजैल तुज हित। तें अर्जुना देऊनि चित्त। अवधारीं पां ॥१८०॥

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।

गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥२८॥

जें तत्त्वज्ञानियांच्या ठायीं। प्रकृतिभावो नाहीं। जेथ कर्मजात पाहीं। निपजत असे ॥१८१॥

ते देहाभिमानु सांडुनी। गुणकर्में वोलांडुनि। साक्षीभूत होउनी। वर्तती देहीं ॥१८२॥

म्हणौनि शरीरी जरी होती। तरी कर्मबंधा नातळती। जैसा कां भूतचेष्टा गभस्ती। घेपवेना ॥१८३॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।

तानकृत्स्नविदो मन्दांकृत्स्नविन्न विचालयेत्॥२९॥

एथ कर्मीं तोचि लिंपे। जो गुणसंभ्रमें घेपे। प्रकृतीचेनि आटोपे। वर्ततु असे ॥१८४॥

इंद्रियें गुणाधारें। राहाटती निजव्यापारें। तें परकर्म बलात्कारें। आपादी जो ॥१८५॥

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्याध्यात्मचेतसा।

निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥३०॥

तरी उचितें कर्मे आघवीं। तुवां आचरोनि मज अर्पावीं। परी चित्तवृत्ति न्यासावी। आत्मरूपीं ॥१८६॥

आणि हें कर्म मी कर्ता। कां आचरैन या अर्था। ऐसा अभिमानु झणें चित्ता। रिगों देसीं ॥१८७॥

तुवां शरीरपरा नोहावें। कामनाजात सांडावें। मग अवसरोचित भोगावे। भोग सकळ ॥१८८॥

आतां कोदंड घेऊनि हातीं। आरूढ पां इयें रथीं। देईं आलिंगन वीरवृत्ती। समाधानें ॥१८९॥

जगीं कीर्ति रूढवीं। स्वधर्माचा मानु वाढवीं। इया भारापासोनि सोडवीं। मेदिनी हे ॥१९०॥

आतां पार्था निःशंकु होईं। या संग्रामा चित्त देईं। एथ हें वांचूनि कांहीं। बोलों नये ॥१९१॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।

श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥३१॥

हें अनुपरोध मत माझें। जिहीं परमादरें स्वीकारिजे। श्रद्धापूर्वक अनुष्ठिजे। धनुर्धरा ॥१९२॥

तेही सकळ कर्मीं वर्ततु। जाण पां कर्मरहितु। म्हणौनि हें निश्चितु। करणीय गा ॥१९३॥

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।

सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥३२॥

नातरी प्रकृतिमंतु होउनी। इंद्रियां लळा देउनी। जें हें माझें मत अव्हेरुनी। ओसंडिती ॥१९४॥

जे सामान्यत्वें लेखिती। अवज्ञा करूनि देखती। कां हा अर्थवादु म्हणती। वाचाळपणें ॥१९५॥

ते मोहमदिरा भुलले। विषयविखें घारले। अज्ञानपंकीं बुडाले। निभ्रांत मानीं ॥१९६॥

देखैं शवाच्या हातीं दिधलें। जैसें रत्न कां वायां गेलें। नातरी जात्यंधा पाहलें। प्रमाण नोहे ॥१९७॥

कां चंद्राचा उदयो जैसा। उपयोगा न वचे वायसा। मूर्खा विवेकु हा तैसा। रुचेल ना ॥१९८॥

तैसे जे पार्था। विमुख या परमार्था। तयांसी संभाषण सर्वथा। करावेना ॥१९९॥

म्हणौनि ते न मानिती। आणि निंदाही करूं लागती। सांगैं पतंगु काय साहती। प्रकाशातें ? ॥२००॥

पतंगा दीपीं आलिंगन। तेथ त्यासी अचुक मरण। तेंवीं विषयाचरण। आत्मघाता ॥२०१॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।

प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥३३॥

म्हणौनि इंद्रियें एकें। जाणतेनि पुरुखें। लाळावीं ना कौतुकें। आदिकरुनी ॥२०२॥

हां गा सर्पेसीं खेळों येईल ? । कीं व्याघ्रसंसर्ग सिद्धि जाईल ? । सांगैं हाळाहाळ जिरेल। सेविलिया काई ? ॥२०३॥

देखैं खेळतां अग्नि लागला। मग तो न सांवरे जैसा उधवला। तैसा इंद्रियां लळा दिधला। भला नोहे ॥२०४॥

एऱ्हवीं तरी अर्जुना। या शरीरा पराधीना। कां नाना भोगरचना। मेळवावी ? ॥२०५॥

आपण सायासेंकरुनि बहुतें। सकळहि समृद्धिजातें। उदोअस्तु या देहातें। प्रतिपाळावें कां ? ॥२०६॥

सर्वस्वें शिणोनि एथें। अर्जवावीं संपत्तिजातें। तेणें स्वधर्मु सांडुनि देहातें। पोखावें काई ॥२०७॥

मग हे तंव पांचमेळावा। शेखीं अनुसरेल पंचत्वा। ते वेळीं केला कें गिंवसावा। शीणु आपुला ॥२०८॥

म्हणौनि केवळ देहभरण। ते जाणें उघडी नागवण। यालागीं एथ अंतःकरण। देयावेंना ॥२०९॥

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।

तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥३४॥

एऱ्हवीं इंद्रियांचिया अर्था। सारिखा विषो पोखितां। संतोषु कीर चित्ता। आपजेल ॥२१०॥

परी तो संवचोराचा सांगातु। जैसा नावेक स्वस्थु। जंव नगराचा प्रांतु। सांडिजेना ॥२११॥

बापा विषाची मधुरता। झणें आवडी उपजे चित्ता। परी तो परिणामु विचारितां। प्राणु हरी ॥२१२॥

देखैं इंद्रियीं कामु असे। तो लावी सुखदुराशे। जैसा गळीं मीनु आमिषें। भुलविजे गा ॥२१३॥

परी तयामाजीं गळु आहे। जो प्राणातें घेऊनि जाये। तोओ जैसा ठाउवा नोहे। झांकलेपणें ॥२१४॥

तैसें अभिलाषें येणें कीजेल। विषयांची आशा धरिजेल। तरी वरपडा होईजेल। क्रोधानळा ॥२१५॥

जैसा कवळोनियां पारधी। घातेचिये संधी। आणी मृगातें बुद्धि। साधावया ॥२१६॥

एथ तैसीची परी आहे। म्हणौनि संगु हा तुज नोहे। पार्था दोन्ही कामक्रोध हे। घातुक जाणें ॥२१७॥

म्हणौनि हा आश्रोचि न करावा। मनेंहि आठवो न धरावा। एकु निजवृत्तीचा वोलावा। नासों नेदी ॥२१८॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥३५॥

अगा स्वधर्मु हा आपुला। जरी कां कठिणु जाहला। तरी हाचि अनुष्ठिला। भला देखैं ॥२१९॥

येरु आचारु जो परावा। तो देखतां कीर बरवा। परी आचरतेनि आचरावा। आपुलाचि ॥२२०॥
सांन्नें शूद्र घरीं आघवीं। पक्वान्नें आहाति बरवीं। तीं द्वीजें केंवीं सेवावीं। दुर्बळु जरी जाहला ॥२२१॥
हें अनुचित कैसेनि कीजे। अग्राह्य केवीं इच्छिजे। अथवा इच्छिलेंही पाविजे। विचारीं पां ॥२२२॥
तरी लोकांचीं धवळारें। देखोनियां मनोहरें। असतीं आपुलीं तणारें। मोडावीं केवीं ? ॥२२३॥
हें असो वनिता आपुली। कुरूप जरी जाहली। तऱ्ही भोगितां तेचि भली। जियापरी ॥२२४॥
तेवीं आवडे तैसा सांकडु। आचरतां जरी दुवाडु। तऱ्ही स्वधर्मुचि सुरवाडु। परत्रींचा ॥२२५॥
हां गा साकर आणि दूध। हें गौल्य कीर प्रसिद्ध। परी कृमिदोषीं विरुद्ध। घेपे केवीं ? ॥२२६॥
ऐसेनिही जरी सेविजेल। तरी ते अळुकीची उरेल। जे तें परिणामीं पथ्य नव्हेल। धनुर्धरा ॥२२७॥
म्हणौनि आणिकांसी जें विहित। आणि आपणपेयां अनुचित। तें नाचरावें जरी हित। विचारिजे ॥२२८॥
या स्वधर्मातें अनुष्ठितां। वेचु होईल जिविता। तोहि निका वर उभयतां। दिसत असे ॥२२९॥
ऐसें समस्तसुरशिरोमणी। बोलिले जेथ शारङ्गपाणी। तेथ अर्जुन म्हणे विनवणी। असे देवा ॥२३०॥
हें जें तुम्हीं सांगितलें। तें सकळ कीर म्यां परिसिलें। परी आतां पुसेन कांहीं आपुलें। अपेक्षित ॥२३१॥

अर्जुन उवाच ।

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥३६॥

तरी देवा हें ऐसें कैसें। जे ज्ञानियांही स्थिति भ्रंशे। मार्गु सांडुनी अनारिसे। चालत देखों ॥२३२॥
सर्वज्ञुही जे होती। हेयोपादेयही जाणती। तेही परधर्में व्यभिचरिति। कवणें गुणें ? ॥२३३॥
बीजा आणि भूसा। अंधु निवाडू नेणें जैसा। नावेक देखणाही तैसा। बरळे कां पां ? ॥२३४॥
जे असता संगु सांडिती। तेचि संसर्गु करितां न धाती। वनवासीही सेविती। जनपदातें ॥२३५॥
आपण तरी लपती। सर्वस्वें पाप चुकविती। परी बळात्कारें सुइजती। तयाचि माजीं ॥२३६॥
जयाची जीवें घेती विवसी। तेचि जडोनि ठाके जीवेंसीं। चुकवितां ते गिंवसी। तयातेंचि ॥२३७॥
ऐसा बलात्कारु एकु दिसे। तो कवणाचा एथ आग्रहो असे। हें बोलावें हृषीकेशें। पार्थु म्हणे ॥२३८॥

श्रीभगवानुवाच ।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३७॥

तंव हृदयकमळआरामु। जो योगियांचा निष्कामकामु। तो म्हणतसे पुरुषोत्तमु। सांगेन आइक ॥२३९॥
तरी हे काम क्रोधु पाहीं। जयांतें कृपेची सांठवण नाहीं। हें कृतांताच्या ठायीं। मानिजती ॥२४०॥
हे ज्ञाननिधीचे भुजंग। विषयदरीचे वाघ। भजनमार्गींचे मांग। मारक जे ॥२४१॥
हे देहदुर्गींचे धोंड। इंद्रियग्रामीचें कोंड। यांचें व्यामोहादिक दबड। जगावरी ॥२४२॥
हे रजोगुण मानसींचे। समूळ आसुरियेचे। धालेपण ययांचें। अविद्या केलें ॥२४३॥
हे रजाचे कीर जाहले। परी तमासी पढियंते भले। तेणें निजपद यां दिधलें। प्रमादमोहो ॥२४४॥
हे मृत्युच्या नगरीं। मानिजती निकियापरि। जे जीविताचे वैरी। म्हणौनियां ॥२४५॥
जयांसि भुकेलिया आमिषा। हें विश्व न पुरेचि घांसा। कुळवाडियांचिया आशा। चाळीत असे ॥२४६॥
कौतुकें कवळितां मुठीं। जिये चवदा भुवनें थेंकुटी। तिये भ्रांतिही धाकुटी। वाल्हीदुल्ही ॥२४७॥
जे लोकत्रयाचें भातुकें। खेळतांचि खाय कवतिकें। तिच्या दासीपणाचेनि बिकें। तृष्णा जिये ॥२४८॥
हें असो मोहें मानिजे। यांतें अहंकारें घेपे दीजे। जेणें जग आपुलेनि भोजें। नाचवीत असे ॥२४९॥
जेणें सत्याचा भोकसा काढिला। मग अकृत्य तृणकुटा भरिला। तो दंभु रूढविला। जगीं इहीं ॥२५०॥

साध्वी शांती नागविली। मग माया मांगी श्रृंगारिली। तियेकरवीं विटाळविलीं। साधुवृंदें ॥२५१॥
इहीं विवेकाची त्र्याय फेडिली। वैराग्याचि खाल काढिली। जितया मान मोडिली। उपशमाची ॥२५२॥
इहीं संतोषवन खांडिलें। धैर्यदुर्ग पाडिले। आनंदरोप सांडिले। उपडूनियां ॥२५३॥
इहीं बोधाचीं रोपें लुंचिलीं। सुखाची लिपी पुसिली। जिव्हारीं आगी सूदली। तापत्रयाची ॥२५४॥
हे आंगा तंव घडले। जीवींची आथी जडले। परी नातुडती गिंवसिले। ब्रह्मादिकां ॥२५५॥
हे चैतन्याचे शेजारीं। वसती ज्ञानाच्या एका हारीं। म्हणौनि प्रवर्तले महामारी। सांवरती ना ॥२५६॥
हे जळेंविण बुडविती। आगीवीण जाळिती। न बोलतां कवळिती। प्राणियांतें ॥२५७॥
हे शस्त्रेंविण साधिती। दोरेंविण बांधिती। ज्ञानियासी तरी वधिती। पैज घेउनि ॥२५८॥
हे चिखलेंवीण रोविती। पाशिकेंवीण गोंविती। हे कवणाजोगें न होती। आंतौटेपणें ॥२५९॥

धूमेनाऽऽव्रियते वह्निर्यथाऽऽदर्शो मलेन च ।

यथोल्बेनाऽऽवृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥३८॥

जैसी चंदनाची मुळी। गिंवसोनि घेपे व्याळीं। नातरी उल्बाची खोळी। गर्भस्थासी ॥२६०॥
कां प्रभावीण भानु। धूमेवीण हुताशनु। जैसा दर्पण मळहीनु। कहींच नसे ॥२६१॥
तैसें इहींवीण एकलें। आम्हीं ज्ञान नाहीं देखिलें। जैसें कोंडेनि पां गुंतलें। बीज निपजे ॥२६२॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञनिनो नित्यवैरिणा ।

कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥३९॥

तैसें ज्ञान तरी शुद्ध। परी इहीं असे प्ररुद्ध। म्हणौनि तें अगाध। होऊनि ठेले ॥२६३॥
आधीं यांतें जिणावें। मग तें ज्ञान पावावें। तंव पराभवो न संभवे। रागद्वेषां ॥२६४॥
यांतें साधावयालागीं। जें बळ आणिजे आंगीं। तें इंधनें जैसीं आगी। सावावो होय ॥२६५॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।

एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥४०॥

तैसे उपाय कीजती जे जे। ते ते यांसीचि होती विरजे। म्हणौनि हटियांतें जिणिजे। इहींचि जगीं ॥२६६॥
ऐसियांही सांकडां बोला। एक उपायो आहे भला। तो करितां जरी आंगवला। तरी सांगेन तुज ॥२६७॥

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।

पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

यांचा पहिला कुरुठा इंद्रियें। एथूनि प्रवृत्ति कर्मातें विये। आधीं निर्दळुनि घाली तियें। सर्वथैव ॥२६८॥

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥४२॥

मग मनाची धांव पारुषेल। आणि बुद्धीची सोडवण होईल। इतुकेन थारा मोडेल। या पापियांचा ॥२६९॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥४३॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगोनाम तृतीयोऽध्यायः ॥३अ ॥

हे अंतरींहूनि जरी फिटले। तरी निभ्रांत जाण निवटले। जैसें रश्मिवीण उरलें। मृगजळ नाहीं ॥२७०॥
तैसे रागद्वेष जरी निमाले। तरी ब्रह्मींचें स्वराज्य आलें। मग तो भोगी सुख आपुलें। आपणचि ॥२७१॥
ते गुरुशिष्याचि गोठी। पदपिंडाची गांठी। तेथ स्थिर राहोनि नुठी। कवणे काळीं ॥२७२॥
ऐसें सकळ सिद्धांचा रावो। देवी लक्ष्मीयेचा नाहो। राया ऐकें देवदेवो। बोलता जाहला ॥२७३॥

आतां पुनरपि तो अनंतु। आद्य एकी मातु। सांगैल तेथ पंडुसुतु। प्रश्नु करील ॥२७४॥

तया बोलाचा हन पाडु। कीं रसवृत्तीचा निवाडु। येणें श्रोतयां होईल सुरवाडु। श्रवणसुखाचा ॥२७५॥

ज्ञानदेवो म्हणे निवृत्तीचा। चांग उठावा करूनि उन्मेषाचा। मग संवादु श्रीहरिपार्थाचा। भोगावा बापा ॥२७६॥

इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां तृतीयोऽध्यायः ..

.. ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय ४ ..

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय चवथा ।

ज्ञानकर्मसंन्यासयोगः ।

आजि श्रवणेंद्रियां पाहलें। जें येणें गीतानिधान देखिलें। आतां स्वप्नचि हें तुकलें। साचासरिसें ॥१॥

आधींचि विवेकाची गोठी। वरी प्रतिपादी श्रीकृष्ण जगजेठी। आणि भक्तराजु किरीटी। परिसत असे ॥२॥

जैसा पंचमालापु सुगंधु। कीं परिमळु आणि सुस्वादु। तैसा भला जाहला विनोदु। कथेचा इये ॥३॥

कैसी आगळिक दैवाची। जे गंगा जोडली अमृताची। हो कां जपतपें श्रोतयांचीं। फळा आलीं ॥४॥

आतां इंद्रियजात आघवें। तिहीं श्रवणाचें घर रिघावें। मग संवादसुख भोगावें। गीताख्य हें ॥५॥

हा अतिसो अतिप्रसंगें। सांडूनि कथाचि ते सांगें। जे कृष्णार्जुन दोघे। बोलत होते ॥६॥

ते वेळीं संजयो रायातें म्हणे। अर्जुनु अधिष्ठिला दैवगुणें। जे अतिप्रीति श्रीनारायणें। बोलतु असे ॥७॥

जें न संगेचि पितया वसुदेवासी। जें न संगेचि माते देवकीसी। जें न संगेचि बंधु बळिभद्रासी। तें गुह्य अर्जुनेंशीं बोलत ॥८॥

देवी लक्ष्मीयेवढी जवळिक। परी तेही न देखे या प्रेमाचें सुख। आजि कृष्णस्नेहाचें बिक। यातेंचि आथी ॥९॥

सनकादिकांचिया आशा। वाढीनल्या होतिया कीर बहुवसा। परी त्याही येणें मानें यशा। येतीचिना ॥१०॥

या जगदीश्वराचें प्रेम। एथ दिसतसें निरुपम। कैसें पार्थें येणें सर्वोत्तम। पुण्य केलें ॥११॥

हो कां जयाचिया प्रीती। अमूर्त हा आला व्यक्ती। मज एकवंकी याची स्थिती। आवडतु असे ॥१२॥

एऱ्हवीं हा योगियां नाडळे। वेदार्थासी नाकळे। जेथ ध्यानाचेही डोळे। पावतीना ॥१३॥

तो हा निजस्वरूप। अनादि निष्कंप। परी कवणें मानें सकृप। जाहला आहे ॥१४॥

हा त्रैलोक्यपटाची घडी। आकारची पैलथडी। कैसा याचिये आवडी। आवरला असे ॥१५॥

श्रीभगवानुवाच ।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥१॥

मग देव म्हणे अगा पंडुसुता। हाचि योगु आम्हीं विवस्वता। कथिला परी ते वार्ता। बहुतां दिवसांची ॥१६॥

मग तेणें विवस्वतें रवी। हे योगस्थिति आघवी। निरूपिली बरवी। मनूप्रती ॥१७॥

मनूनें आपण अनुष्ठिली। मग इक्ष्वाकुवा उपदेशिली। ऐसी परंपरा विस्तारिली। आद्य हे गा ॥१८॥

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥२॥

मग आणिकही या योगातें। राजर्षि जाहले जाणते। परी तेथोनि आतां सांप्रतें। नेणिजे कोण्ही ॥१९॥

जे प्राणियां कामीं भरु। देहाचिवरी आदरु। म्हणौनि पडिला विसरु। आत्मबोधाचा ॥२०॥

अव्हांटलिया आस्थाबुद्धि। विषयसुखची परमावधि। जीवु तैसा उपाधि। आवडे लोकां ॥२१॥

एरव्हीं तरी खवणेयांच्या गांवीं। पाटाउवें काय करावीं। सांगें जात्यंधा रवी। काय आथी ? ॥२२॥

कां बहिरयांच्या आस्थानीं। कवण गीतातें मानीं। कीं कोल्हेया चांदणीं। आवडी उपजें ? ॥२३॥

पैं चंद्रोदया आरौतें। जयांचे डोळे फुटती असते। ते काउळे केवीं चंद्रातें। वोळखती ? ॥२४॥

तैसी वैराग्याची शिंव न देखती। जे विवेकाची भाष नेणती ?। ते मूर्ख केंवीं पावती। मज ईश्वरातें ? ॥२५॥

कैसा नेणों मोहो वाढीनला। तेणें बहुतेक काळु व्यर्थ गेला। म्हणौनि योगु हा लोपला। लोकीं इये ॥२६॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥३॥

तोचि हा आजि आतां। तुजप्रती कुंतीसुता। सांगितला आम्हीं तत्त्वतां। भ्रांति न करीं ॥२७॥

हें जीवींचें निज गुज। परी केवीं राखों तुज। जे पढियेसी तूं मज। म्हणौनियां ॥२८॥

तूं प्रेमाचा पुतळा। भक्तीचा जिव्हाळा। मैत्रियेचि चित्कळा। धनुर्धरा ॥२९॥

तूं अनुसंगाचा ठावो। आतां तुज काय वंचूं जावों ? । जऱ्ही संग्रामारूढ आहों। जाहलों आम्ही ॥३०॥

तरी नावेक हें सहावें। गाजाबज्यही न धरावें। परी तुझें अज्ञानत्व हरावें। लागे आधीं ॥३१॥

अर्जुन उवाच ।

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।

कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥४॥

तंव अर्जुन म्हणे श्रीहरी। माय आपुलेयाचा स्नेहो करी। एथ विस्मयो काय अवधारीं। कृपानिधी ॥३२॥

तूं संसारश्रांतांची साउली। अनाथ जीवांची माउली। आमुतें कीर प्रसवली। तुझीच कृपा ॥३३॥

देवा पांगुळ एकादें विजे। तरी जन्मौनि जोजारु साहिजे। हें बोलों काय तुझें। तुजचि पुढां ॥३४॥

आतां पुसेन जें मी कांहीं। तेथ निकें चित्त देईं। तेवींचि देवें कोपावें ना कांहीं। बोला एका ॥३५॥

तरी मागील जे वार्ता। तुवां सांगितली होती अनंता। ते नावेक मज चित्ता। मानेचिना ॥३६॥

जे तो विवस्वतु म्हणजे कायी। ऐसें हें वडिलां ठाउवें नाहीं। तरी तुवांचि केवीं पाहीं। उपदेशिला ? ॥३७॥

तो तरी आइकिजे बहुतां काळांचा। आणि तूं तंव श्रीकृष्ण सांपेचा। म्हणौनि गा इये मातुचा। विसंवादु ॥३८॥

तेवींचि देवा चरित्र तुझें। आपण कांहींचि नेणिजे। हें लटिकें केवीं म्हणिजे। एकिहेळां ? ॥३९॥

परि हेचि मातु आघवी। मी परियेसें ऐशी सांगावी। जे तुवांचि रवी केवीं। पाही उपदेशु केला ॥४०॥

श्रीभगवानुवाच ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥५॥

तंव श्रीकृष्ण म्हणे पंडुसुता। तो विवस्वतु जैं होता। तैं आम्हीं नसों ऐसी चित्ता। भ्रांति जरी तुज ॥४१॥

तरी तूं गा हें नेणसी। पैं जन्में आम्हां तुम्हासी। बहुतें गेलीं परी तियें न स्मरसी। आपुलीं तूं ॥४२॥

मी जेणें जेणें अवसरें। जें जें होऊनि अवतरें। तें समस्तही स्मरें। धनुर्धरा ॥४३॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीष्वरोऽपि सन ।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥६॥

म्हणौनि हें आघवें। मागील मज आठवें। मी अजुही परि संभवें। प्रकृतियोगें ॥४४॥

माझें अव्ययत्व तरी न नसे। परी होणें जाणें एक दिसे। तें प्रतिबिंबें मायावशें। माझ्याचि ठायीं ॥४५॥

माझी स्वतंत्रता तरी न मोडे। परी कर्माधीनु ऐसा आवडे। तेही भ्रांतिबुद्धि तरी घडे। एऱ्हवीं नाहीं ॥४६॥

कीं एकचि दिसे दुसरें। तें दर्पणाचेनि आधारें। एऱ्हवीं काय वस्तुविचारें। दुजें आहे ? ॥४७॥

तैसा अमूर्तचि मी किरीटी। परी प्रकृति जैं अधिष्ठीं। तैं साकारपणें नट नटीं। कार्यालागीं ॥४८॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥७॥

जें धर्मजात आघवें। युगायुगीं म्यां रक्षावें। ऐसा ओघु हा स्वभावें। आद्य असे ॥४९॥

म्हणौनि अजत्व परतें ठेवीं। मी अव्यक्तपणही नाठवीं। जे वेळीं धर्मातें अभिभवी। अधर्मु हा ॥५०॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥८॥

ते वेळीं आपुल्याचेनि कैवारें। मी साकारु होऊनि अवतरें। मग अज्ञानाचें आंधारें। गिळूनि घालीं ॥५१॥

अधर्माची अवधी तोडीं। दोषांचीं लिहिलीं फाडीं। सज्जनांकरवीं गुढी। सुखाची उभवीं ॥५२॥

दैत्यांचीं कुळें नाशीं। साधूंचा मानु गिंवशीं। धर्मासीं नीतीशीं। शेंस भरीं ॥५३॥

मी अविवेकाची काजळी। फेडूनि विवेकदीप उजळीं। तैं योगियां पाहे दिवाळी। निरंतर ॥५४॥

सत्सुखें विश्व कोंदे। धर्मुचि जगीं नांदें। भक्तां निघती दोंदे। सात्त्विकाचीं ॥५५॥

तै पापांचा अचळु फिटे। पुण्याची पहांट फुटे। जैं मूर्ति माझी प्रगटे। पंडुकुमरा ॥५६॥

ऐसेया काजालागीं। अवतरें मी युगीं युगीं। परि हेंचि वोळखें जो जगीं। तो विवेकिया ॥५७॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥९॥

माझें अजत्वें जन्मणें। अक्रियताचि कर्म करणें। हें अविकार जो जाणे। तो परममुक्त ॥५८॥

तो चालिला संगें न चळे। देहींचा देहा नाकळे। मग पंचत्वीं तंव मिळे। माझ्याचि रूपीं ॥५९॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।

बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥१०॥

एऱ्हवीं परापर न शोचिती। जे कामनाशून्य होती। वाटा कें वेळीं न वचती। क्रोधाचिया ॥६०॥

सदा मियांचि आथिले। माझिया सेवा जियाले। कीं आत्मबोधें तोषले। वीतराग जे ॥६१॥

जे तपोतेजाचिया राशी। कीं एकायतन ज्ञानासी। जे पवित्रता तीर्थांसी। तीर्थरूप ॥६२॥

ते मद्भावा सहजें आले। मी तेचि ते होऊनि ठेले। जे मज तयां उरले। पदर नाहीं ॥६३॥

सांगैं पितळेची गंधिकाळिक। जैं फिटली होय निःशेख। तैं सुवर्ण काई आणिक। जोडूं जाइजे ? ॥६४॥

तैसे यमनियमीं कडसले। जे तपोज्ञानें चोखाळले। मी तेचि ते जाहले। एथ संशयो कायसा ? ॥६५॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥११॥

एऱ्हवीं तरी पाहीं। जे जैसे माझ्या ठायीं। भजती तयां मीही। तैसाचि भजें ॥६६॥

देखैं मनुष्यजात सकळ। हें स्वभावता भजनशीळ। जाहलें असे केवळ। माझ्याचि ठायीं ॥६७॥

परी ज्ञानेंवीण नाशिले। जे बुद्धिभेदासी आले। तेणेंचि त्या कल्पिलें। अनेकत्व ॥६८॥

म्हणौनि अभेदीं भेदु देखती। यया अनाम्या नामें ठेविती। देवी देवो म्हणती। अचर्चातें ॥६९॥

जे सर्वत्र सदा सम। तेथ विभाग अधमोत्तम। मतिवशें संभ्रम। विवंचिती ॥७०॥

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त हि देवताः ।

क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥१२॥

मग नानाहेतुप्रकारें। यथोचितें उपचारें। मानिलीं देवतांतरें। उपासिती ॥७१॥

तेथ जें जें अपेक्षित। तें तैसेंचि पावती समस्त। परी तें कर्मफळ निश्चित। वोळख तूं ॥७२॥

वांचून देतें घेतें आणिक। निभ्रांत नाहीं सम्यक। एथ कर्मचि फळसूचक। मनुष्यलोकीं ॥७३॥

जैसें क्षेत्रीं जें पेरिजे। तें वांचूनि आन न निपजे। कां पाहिजे तेंचि देखिजे। दर्पणाधारें ॥७४॥

नातरी कडेयातळवटीं। जैसा आपुलाचि बोलू किरीटी। पडिसादु होऊनि उठी। निमित्तयोगें ॥७५॥

तैसा समस्तां यां भजना। मी साक्षिभूतु पैं अर्जुना। एथ प्रतिफळे भावना। आपुलाली ॥७६॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।

तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥१३॥

आतां याचिपरी जाण। चाऱ्ही हे वर्ण। सृजिलें म्यां गुण- । कर्मविभागें ॥७७॥

जे प्रकृतीचेनि आधारें। गुणाचेनि व्यभिचारें। कर्में तदनुसारें। विवंचिली ॥७८॥

एथ एकचि हे धनुष्यपाणी। परी जाहले गा चहूं वर्णीं। ऐसी गुणकर्मकडसणी। केली सहजें ॥७९॥

म्हणौनि आइकें पार्था। हे वर्णभेदसंस्था। मीं कर्ता नव्हें सर्वथा। याचिलागीं ॥८०॥

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।

इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥१४॥

हें मजचिस्तव जाहलें। परी म्यां नाहीं केलें। ऐसें जेणें जाणितलें। तो सुटला गा ॥८१॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥१५॥

मागील मुमुक्षु जे होते। तिहीं ऐशिया जाणोनि मातें। कर्में केलीं समस्तें। धनुर्धरा ॥८२॥

परि तें बीजें जैसीं दग्धलीं। नुगवतींचि पेरिलीं। तैशीं कर्मेंचि परि तयां जाहलीं। मोक्षहेतु ॥८३॥

एथ आणिकही एक अर्जुना। हे कर्माकर्मविवंचना। आपुलिये चाडें सज्ञाना। योग्यु नोहे ॥८४॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।

तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१६॥

कर्म म्हणिपे तें कवण। अथवा अकर्मा काय लक्षण। ऐसें विचारितां विचक्षण। गुंफोनि ठेले ॥८५॥

जैसें कां कुडें नाणें। खऱ्याचेनि सारखेपणें। डोळयांचेंहि देखणें। संशयीं घाली ॥८६॥

तैसें नैष्कर्म्यतेचेनि भ्रमें। गिंवसिजत आहाती कर्में। जे दुजी सृष्टी मनोधर्में। करूं सकती ॥८७॥

वांचूनि मूर्खाची गोठी कायसी। एथ मोहले गा क्रांतदर्शी। म्हणौनि आतां तेंचि परियेसीं। सांगेन तुज ॥८८॥

कर्मण्यो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।

अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥१७॥

तरी कर्म म्हणजे स्वभावें। जेणें विश्वाकारु संभवे। तें सम्यक आधीं जाणावें। लागे एथ ॥८९॥

मग वर्णाश्रमासि उचित। जें विशेष कर्म विहित। तेंही वोळखावें निश्चित। उपयोगेंसी ॥९०॥

पाठीं जें निषिद्ध म्हणिपे। तेंही बुझावें स्वरूपें। येतुलेनि कांहीं न गुंफे। आपैसेंचि ॥९१॥

एऱ्हवीं जग हें कर्माधीन। ऐसी याची व्याप्ती गहन। परी तें असो आइकें चिन्ह। प्राप्तांचें गा ॥९२॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।

स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥१८॥

जो सकळकर्मीं वर्ततां। देखैं आपुली नैष्कर्म्यता। कर्मसंगें निराशता। फळाचिया ॥९३॥

आणि कर्तव्यतेलागीं। जया दुसरें नाहीं जगीं। ऐसिया नैष्कर्म्यता तरी चांगीं। बोधला असे ॥९४॥

तरी क्रियाकलापु आघवा। आचरतु दिसे बरवा। तोचि तो ये चिन्हीं जाणावा। ज्ञानिया गा ॥९५॥

जैसा कां जळापाशीं उभा ठाके। तो जरी आपणपें जळामाजिं देखे। तरी तो निभ्रांत वोळखे। म्हणे मी वेगळा आहें ॥९६॥

अथवा नावें हन जो रिगे। तो थडियेचें रुख जातां देखे वेगें। तेचि साचोकारें जों पाहों लागे। तंव रुख म्हण अचळ ॥९७॥

तैसें सर्व कर्मीं असणें। ते फुडें मानूनि वायाणें। मग आपणया जो जाणे। नैष्कर्म्यु ऐसा ॥९८॥

आणि उदोअस्तुचेनि प्रमाणें। जैसें न चालतां सूर्याचें चालणें। तैसें नैष्कर्म्यत्व जाणें। कर्मींचि असतां ॥९९॥

तो मनुष्यासारिखा तरी आवडे। परी मनुष्यत्व तया न घडे। जैसें जळामाजीं न बुडे। भानुबिंब ॥१००॥

तेणें न पाहतां विश्व देखिलें। न करितां सर्व केलें। न भोगितां भोगिलें। भोग्यजात ॥१०१॥
एकेचि ठायीं बैसला। परि सर्वत्र तोचि गेला। हें असो विश्व जाहला। आंगेंचि तो ॥१०२॥

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥१९॥

जया पुरुषाच्या ठायीं। कर्माचा तरी खेदु नाहीं। परी फलापेक्षा कहीं। संचरेना ॥१०३॥
आणि हें कर्म मी करीन। अथवा आदरिलें सिद्धी नेईन। येणें संकल्पेंहीं जयाचें मन। विटाळेना ॥१०४॥
ज्ञानाग्नीचेनि मुखें। जेणें जाळिलीं कर्मैं अशेखें। तो परब्रह्मचि मनुष्यवेखें। वोळख तूं ॥१०५॥

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ॥२०॥

जो शरीरीं उदासु। फळभोगीं निरासु। नित्यता उल्हासु। होऊनि असे ॥१०६॥
जो संतोषाचा गाभारा। आत्मबोधाचिये वोगरां। पुरे न म्हणेचि धनुर्धरा। आरोगितां ॥१०७॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥२१॥
यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥२२॥

कैसी अधिकाधिक आवडी। घेत महासुखाची गोडी। सांडोनियां आशा कुरोंडी। अहंभावेंसीं ॥१०८॥
म्हणौनि अवसरें जें जें पावे। कीं तेणेंचि तो सुखावे। जया आपुलें आणि परावें। दोन्ही नाहीं ॥१०९॥
तो दिठीं जें पाहे। तें आपणचि होऊनि जाये। आईके तें आहे। तोचि जाहला ॥११०॥
चरणीं हन चाले। मुखें जें जें बोले। ऐसें चेष्टाजात तेतुलें। आपणचि जो ॥१११॥
हें असो विश्व पाहीं। जयासि आपणपेंवांचूनि नाहीं। आतां कवण तें कर्म कायी। बाधी तयातें ॥११२॥
हा मत्सरु जेथ उपजे। तेतुलें नुरेचि जया दुजें। तो निर्मत्सरु काइ म्हणिजे। बोलवरी ? ॥११३॥
म्हणौनि सर्वांपरी मुक्तु। तो सकर्मुचि कर्मरहितु। सगुण परि गुणातीतु। एथ भ्रांति नाहीं ॥११४॥

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥२३॥

तो देहसंगें तरी असे। परी चैतन्यासारिखा दिसे। पाहतां परब्रह्माचेनि कसें। चोखाळु भला ॥११५॥
ऐसाहि परी कौतुकें। जरी कर्मैं करी यज्ञादिकें। तरी तियें लया जाती निःशेखें। तयाच्याचि ठायीं ॥११६॥
अकाळींचीं अभ्रें जैशीं। उर्मीवीण आकाशीं। हारपती आपैशीं। उदयलीं सांती ॥११७॥
तैशीं विधिविधानें विहितें। जरी आचरे तो समस्तें। तरी तियें ऐक्यभावें ऐक्यातें। पावतीचि गा ॥११८॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥२४॥

हें हवन मी होता। कां इयें यज्ञीं हा भोक्ता। ऐसिया बुद्धीसि नाहीं भिन्नता। म्हणौनियां ॥११९॥
जे इष्टयज्ञ यजावे। तें हविर्मंत्रादि आघवें। तो देखतसे अविनाशभावें। आत्मबुद्धि ॥१२०॥
म्हणौनि ब्रह्म तेंचि कर्म। ऐसें बोधा आलें जया सम। तया कर्तव्य तें नैष्कर्म्य। धनुर्धरा ॥१२१॥
आतां अविवेकु कुमारत्वा मुकले। जयां विरक्तीचें पाणिग्रहण जाहलें। मग उपासन जिहीं आणिलें। योगाग्नीचें ॥१२२॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥२५॥

जे यजनशील अहर्निशीं। जिहीं अविद्या हविली मनेंसीं। गुरुवाक्य हुताशीं। हवन केलें ॥१२३॥

तिहीं योगाग्निकीं यजिजे। तो दैवयज्ञु म्हणिजे। जेणें आत्मसुख कामिजे। पंडुकुमरा ॥१२४॥
आतां अवधारी सांगैन आणिक। जे ब्रह्माग्नी साग्निक। तयांतें यज्ञचि यज्ञु देख। उपासिजे ॥१२५॥

श्रोत्रादिनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।

शब्दादीन्विषयानन्ये इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥२६॥

एक संयमाग्निहोत्री। ते युक्तित्रयाच्या मंत्रीं। यजन करिती पवित्रीं। इंद्रियद्रव्यीं ॥१२६॥
एकां वैराग्य रवि विवळे। तंव संयती विहार केले। तेथ अपावृत जाहले। इंद्रियानळ ॥१२७॥
तिहीं विरक्तीची ज्वाळा घेतली। तंव विकारांचीं इंधनें पळिपली। तेथ आशाधूमें सांडिलीं। पांचही कुंडें ॥१२८॥
मग वाक्यविधीचिया निरवडी। विषय आहुती उदंडीं। हवन केलें कुंडीं। इन्द्रियाग्नीच्या ॥१२९॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।

आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥२७॥

एकीं ययापरी पार्था। दोषु क्षाळिले सर्वथा। आणिकीं हृदयारणीं मंथा। विवेकु केला ॥१३०॥
तो उपशमें निहटिला। धैर्येंवरी दाटिला। गुरुवाक्यें काढिला। बळकटपणें ॥१३१॥
ऐसें समरसें मंथन केलें। तेथ झडकरी काजा आलें। जें उज्जीवन जाहलें। ज्ञानाग्नीचें ॥१३२॥
पहिला ऋद्धिसिद्धींचा संभ्रमु। तो निवर्तोनि गेला धूमु। मग प्रगटला सूक्ष्मु। विस्फुलिंगु ॥१३३॥
तया मनाचें मोकळें। तेंचि पेटवण घातले। जें यमनियमीं हळुवारलें। आइतें होतें ॥१३४॥
तेणें सादुकुपणे ज्वाळा समृद्धा। मग वासनांतराचिया समिधा। स्नेहेंसीं नानाविधा। जाळिलिया ॥१३५॥
तेथ सोहंमंत्रें दीक्षितीं। इंद्रियकर्मांच्या आहुती। तियें ज्ञानानळीं प्रदीप्तीं। दिधलिया ॥१३६॥
पाठीं प्राणक्रियेचिये स्रुवेनिशीं। पूर्णाहुती पडली हुताशीं। तेथ अवभृत समरसीं। सहजें जहालें ॥१३७॥
मग आत्मबोधींचें सुख। जें संयमाग्नीचें हुतशेष। तोचि पुरोडाशु देख। घेतला तिहीं ॥१३८॥
एक ऐशिया इहीं यजनीं। मुक्त ते जाहले त्रिभुवनीं। या यज्ञक्रिया तरी आनानीं। परि प्राप्य तें एक ॥१३९॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥२८॥

एक द्रव्युयज्ञु म्हणिपती। एक तपसामग्रीया निपजविती। एक योगयागुही आहाती। जे सांगितलें ॥१४०॥
एकीं शब्दीं शब्दु यजिजे। तो वाग्यज्ञु म्हणिजे। ज्ञानें ज्ञेय गमिजे। तो ज्ञानयज्ञु ॥१४१॥
हें अर्जुना सकळ कुवाडें। जे अनुष्ठितां अतिसांकडें। परी जितेंद्रियासीचि घडे। योग्यतावशें ॥१४२॥
ते प्रवीण तेथ भले। आणि योगसमृद्धि आथिले। म्हणौनि आपणपां तिहीं केलें। आत्महवन ॥१४३॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।

प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥२९॥

मग अपानाग्नीचेनि मुखीं। प्राणद्रव्यें देखीं। हवन केलें एकीं। अभ्यासयोगें ॥१४४॥
एक अपानु प्राणीं अर्पिती। एक दोहींतेंही निरुंधिती। ते प्राणायामी म्हणिपती। पंडुकुमरा ॥१४५॥

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।

सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥३०॥

एक वज्रयोगक्रमें। सर्वाहारसंयमें। प्राणीं प्राणु संभ्रमें। हवन करिती ॥१४६॥
ऐसें मोक्षकाम सकळ। समस्त हे यजनशीळ। जिहीं यज्ञद्वारां मनोमळ। क्षाळण केले ॥१४७॥
जया अविद्याजात जाळितां। जें उरलें निजस्वभावता। जेथ अग्नि आणि होता। उरेचिना ॥१४८॥
जेथ यजितयाचा कामु पुरे। यज्ञींचें विधान सरे। मागुतें जेथूनि वोसरें। क्रियाजात ॥१४९॥
विचार जेथ न रिगे। हेतु जेथ न निगे। जें द्वैतदोषसंगें। सिंपेचिना ॥१५०॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥३१॥

ऐसें अनादिसिद्ध चोखट। जें ज्ञान यज्ञावशिष्ट। तें सेविती ब्रह्मनिष्ठ। ब्रह्माहंमंत्रें ॥१५१॥

ऐसें शेषामृतें धाले। कीं अमर्त्यभावा आले। म्हणौनि ब्रह्म ते जहाले। अनायासें ॥१५२॥

येरां विरक्ति माळ न घालीचि। जयां संयमाग्नीची सेवा न घडेचि। जे योगयागु न करितीचि। जन्मले सांते ॥१५३॥

जयांचें ऐहिक धड नाहीं। तयांचे परत्र पुससी काई। म्हणौनि असो हे गोठी पाहीं। पंडुकुमरा ॥१५४॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।

कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥३२॥

ऐसें बहुतीं परी अनेग। जे सांगितलें तुज कां याग। ते विस्तारूनि वेदेंचि चांग। म्हणितले आहाती ॥१५५॥

परी तेणें विस्तारें काय करावें। हेंचि कर्मसिद्ध जाणावें। येतुलेनि कर्मबंधु स्वभावें। पावेल ना ॥१५६॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ।

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥३३॥

अर्जुना वेदु जयांचें मूळ। जे क्रियाविशेषें स्थूळ। जया नव्हाळियेचें फळ। स्वर्गसुख ॥१५७॥

ते द्रव्यादियागु कीर होती। परी ज्ञानयज्ञाची सरी न पवती। जैशी तारातेजसंपत्ती। दिनकरापाशीं ॥१५८॥

देखैं परमात्मसुखनिधान। साधावया योगीजन। जे न विसंबिती अंजन। उन्मेषनेत्री ॥१५९॥

जें धांवतया कर्माची लाणी। नैष्कर्म्यबोधाची खाणी। जें भुकेलिया धणी। साधनाची ॥१६०॥

जेथ प्रवृत्ति पांगुळ जाहली। तर्काची दिठी गेली। जेणें इंद्रियें विसरलीं। विषयसंगु ॥१६१॥

मनाचें मनपण गेलें। जेथ बोलाचें बोलकेंपण ठेलें। जयामाजी सांपडलें। ज्ञेय दिसे ॥१६२॥

जेथ वैराग्याचा पांगु फिटे। विवेकाचाही सोसु तुटे। जेथ न पाहतां सहज भेटे। आपणपें ॥१६३॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥

तें ज्ञान पैं गा बरवे। जरी मनीं आथि आणावें। तरी संतां यां भजावें। सर्वस्वेसीं ॥१६४॥

जे ज्ञानाचा कुरुठा। तेथ सेवा हा दारवंठा। तो स्वाधीन करी सुभटा। वोळगोनी ॥१६५॥

तरी तनुमनुजीवें। चरणांसीं लागावें। आणि अगर्वता करावें। दास्य सकळ ॥१६६॥

मग अपेक्षित जें आपुलें। तेंही सांगती पुसिलें। जेणें अंतःकरण बोधलें। संकल्पा नये ॥१६७॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।

येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥३५॥

जयाचेनि वाक्य उजिवडें। जाहलें चित्त निधडें। ब्रह्माचेनि पाडें। निःशंकु होय ॥१६८॥

तें वेळीं आपणपेयां सहितें। इयें अशेषेंही भूतें। माझ्या स्वरूपीं अखंडितें। देखसी तूं ॥१६९॥

ऐसें ज्ञानप्रकाशें पाहेल। तैं मोहांधकारु जाईल। जैं गुरुकृपा होईल। पार्था गा ॥१७०॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।

सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥३६॥

जरी कल्मषाचा आगरु। तूं भ्रांतीचा सागरु। व्यामोहाचा डोंगरु। होउनी असती ॥१७१॥

तऱ्ही ज्ञानशक्तिचेनि पाडें। हें आघवेंचि गा थोकडें। ऐसें सामर्थ्य असे चोखडें। ज्ञानीं इये ॥१७२॥

देखैं विश्वभ्रमाऐसा। जो अमूर्ताचा कडवसा। तो जयाचिया प्रकाशा। पुरेचिना ॥१७३॥

तया कायसे हे मनोमळु। हें बोलतांचि अति किडाळु। नाहीं येणें पाडें ढिसाळु। दुजें जगीं ॥१७४॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मासात्कुरुतेऽर्जुन।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥३७॥

सांगै भुवनत्रयाची काजळी। जे गगनामाजि उधवली। तिये प्रळयींचे वाहटुळी। काय अभ्र पुरे ? ॥१७५॥

कीं पवनाचेनि कोपें। पाणियेंचि जो पळिपे। तो प्रळयानळु दडपे। तृणें काष्ठें काई ? ॥१७६॥

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥३८॥

म्हणौनि असो हें न घडे। तें विचारितांचि असंगडें। पुढती ज्ञानाचेनि पाडें। पवित्र न दिसे ॥१७७॥

एथ ज्ञान हें उत्तम होये। आणिकही एक तैसें कें आहे। जैसें चैतन्य कां नोहे। दुसरें गा ॥१७८॥

या महातेजाचेनि कसें। जरी चोखाळु प्रतिबिंब दिसे। कां गिंवसिलें गिंवसे। आकाश हें ॥१७९॥

नातरी पृथ्वीचेनि पाडें। कांटाळें जरी जोडे। तरी उपमा ज्ञानीं घडे। पंडुकुमरा ॥१८०॥

म्हणौनि बहुतीं परी पाहतां। पुढतपुढती निर्धारितां। हें ज्ञानाची पवित्रता। ज्ञानींची आथि ॥१८१॥

जैसी अमृताची चवी निवडिजे। तरी अमृताचिसारिखी म्हणिजे। तैसें ज्ञान हें उपमिजे। ज्ञानेंसींचि ॥१८२॥

आतां यावरी जें बोलणें। तें वायांची वेळु फेडणें। तंव साचचि हें पार्थ म्हणे। जें बोलत असां ॥१८३॥

परी तेंचि ज्ञान केवीं जाणावें। ऐसें अर्जुनें जंव पुसावें। तंव तें मनोगत देवें। जाणितलें ॥१८४॥

मग म्हणतसे किरीटी। आतां चित्त देईं इये गोठी। सांगेन ज्ञानाचिये भेटी। उपावो तुज ॥१८५॥

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥३९॥

तरी आत्मसुखाचिया गोडिया। विटे जो कां सकळ विषयां। जयाच्या ठायीं इंद्रियां। मानु नाहीं ॥१८६॥

जो मनासीं चाड न सांगे। जो प्रकृतीचें केलें नेघे। जो श्रद्धेचेनि संभोगें। सुखिया जाहला ॥१८७॥

तयातेंचि गिंवसित। तें ज्ञान पावे निश्चित। जयामाजि अचुंबित। शांति असे ॥१८८॥

तें ज्ञान हृदयीं प्रतिष्ठे। आणि शांतीचा अंकुर फुटे। मग विस्तार बहु प्रगटे। आत्मबोधाचा ॥१८९॥

मग जेउती वास पाहिजे। तेउती शांतीची देखिजे। तेथ आपपरु नेणिजे। निर्धारितां ॥१९०॥

ऐसा हा उत्तरोत्तरु। ज्ञानबीजाचा विस्तारु। सांगतां असे अपारु। परि असो आतां ॥१९१॥

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।

नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४०॥

ऐकें जया प्राणियाच्या ठायीं। इया ज्ञानाची आवडी नाहीं। तयाचें जियालें म्हणों काई। वरी मरण चांग ॥१९२॥

शून्य जैसें कां गृह। कां चैतन्येंवीण देह। तैसें जीवित तें संमोह। ज्ञानहीन ॥१९३॥

अथवा ज्ञान कीर आपु नोहे। परि ते चाड एकी जरी वाहे। तरी तेथ जिव्हाळा कांहीं आहे। प्राप्तीचा पैं ॥१९४॥

वांचूनि ज्ञानाची गोठी कायसी। परि ते आस्थाही न धरीं मानसीं। तरी तो संशयरूप हुताशीं। पडिला जाण ॥१९५॥

जे अमृतही परि नावडे। ऐसें सावियाचीं आरोचकु जैं पडे। तैं मरण आलें असें फुडें। जाणों येकीं ॥१९६॥

तैसा विषयसुखें रंजे। जो ज्ञानेसींचि माजे। तो संशयें अंगिकारिजे। एथ भ्रांति नाहीं ॥१९७॥

मग संशयीं जरी पडिला। तरी निभ्रांत जाणें नासला। तो ऐहिकपरत्रा मुकला। सुखासि गा ॥१९८॥

जया काळज्वरु आंगीं बाणे। तो शीतोष्णें जैशीं नेणे। आगी आणि चांदिणें। सरिसेंचि मानीं ॥१९९॥

तैसें साच आणि लटिकें। विरुद्ध आणि निकें। संशयीं तो नोळखे। हिताहित ॥२००॥

हा रात्रिदिवसु पाहीं। जैसा जात्यंधा ठाउवा नाहीं। तैसें संशयीं असतां कांहीं। मना नये ॥२०१॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।

आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥४१॥

म्हणौनि संशयाहूनि थोर। आणिक नाहीं पाप घोर। हा विनाशाची वागुर। प्राणियांसि ॥२०२॥

येणें कारणें तुवां त्यजावा। आधीं हाचि एकु जिणावा। जो ज्ञानाचिया अभावा- । माजि असे ॥२०३॥
जैं अज्ञानाचें गडद पडे। तैं हा बहुवस मनीं वाढे। म्हणौनि सर्वथा मार्गु मोडे। विश्वासाचा ॥२०४॥
हृदयीं हाचि न समाये। बुद्धीतें गिंवसूनि ठाये। तेथ संशयात्मक होये। लोकत्रय ॥२०५॥

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥४२॥
ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४अ ॥

ऐसा जरी थोरावें। तरी उपायें एकें आंगवे। जरी हातीं होय बरवें। ज्ञानखड्ग ॥२०६॥
तरी तेणें ज्ञानशस्त्रें तिखटें। निखळु हा निवटे। मग निःशेष खता फिटे। मानसींचा ॥२०७॥
याकारणें पार्था। उठीं वेगीं वरौता। नाशु करोनि हृदयस्था। संशयासी ॥२०८॥
ऐसें सर्वज्ञाचा बापु। जो श्रीकृष्णु ज्ञानदीपु। तो म्हणतसे सकृपु। ऐकें राया ॥२०९॥
तंव या पूर्वापर बोलाचा। विचारूनि कुमरु पंडूचा। कैसा प्रश्नु अवसरींचा। करिता होईल ॥२१०॥
ते कथेची संगति। भावाची संपत्ति। रसाची उन्नति। म्हणिपेल पुढा ॥२११॥
जयाचिया बरवेपणीं। कीजे आठां रसांची वोवाळणी। जो सज्जनाचिये आयणी। विसांवा जगीं ॥२१२॥
तो शांतुचि अभिनवेल। ते परियसा मऱ्हाटे बोल। जे समुद्राहूनि सखोल। अर्थभरित ॥२१३॥
जैसें बिंब तरी बचकें एवढें। परि प्रकाशा त्रैलोक्य थोकडें। शब्दाची व्याप्ति तेणें पाडें। अनुभवावी ॥२१४॥
नातरी कामितयाचिया इच्छा। फळे कल्पवृक्षु जैसा। बोलु व्यापकु होय तैसा। तरी अवधान द्यावें ॥२१५॥
हें असो काय म्हणावें। सर्वज्ञु जाणती स्वभावें। तरी निकें चित्त द्यावें। हे विनंती माझी ॥२१६॥
जेथ साहित्य आणि शांति। हे रेखा दिसे बोलती। जैसी लावण्यगुणकुळवती। आणि पतिव्रता ॥२१७॥
आधींच साखर आवडे। तेचि जरी ओखदां जोडे। तरी सेवावी ना कां कोडें। नावानावा ? ॥२१८॥
सहजें मलयानिळु मंदु सुगंधु। तया अमृताचा होय स्वादु। आणि तेथेंचि जोडे नादु। जरी दैवगत्या ॥२१९॥
तरी स्पर्शें सर्वांग निववी। स्वादें जिव्हेतें नाचवी। तेवींचि कानांकरवीं। म्हणवीं बापु माझा ॥२२०॥
तैसें कथेचें इये ऐकणें। एक श्रवणासी होय पारणें। आणि संसारदुःख मूळवणें। विकृतीविणें ॥२२१॥
जरी मंत्रेंचि वैरी मरे। तरी वायां कां बांधावीं कटारें ? । रोग जाय दूधसाखरें। तरी निंब कां पियावा ? ॥२२२॥
तैसा मनाचा मारु न करितां। आणि इंद्रियां दुःख न देतां। एथ मोक्षु असे आयता। श्रवणाचिमाजि ॥२२३॥
म्हणौनि आथिलिया आराणुका। गीतार्थु हा निका। ज्ञानदेवो म्हणे आइका। निवृत्तिदासु ॥२२४॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां चतुर्थोऽध्यायः ..

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय पांचवा ।

संन्यासयोगः ।

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥१॥

मग पार्थु श्रीकृष्णातें म्हणे। हां हो हें कैसें तुमचें बोलणें। एक होय तरी अंतःकरणें। विचारूं ये ॥१॥
मागां सकळ कर्मांचा सन्यासु। तुम्हींचि निरोपिला होता बहुवसु। तरी कर्मयोगीं केवीं अतिरसु। पोखीतसां पुढती ? ॥२॥
ऐसें द्व्यर्थ हें बोलतां। आम्हां नेणतयांच्या चित्ता। आपुलिये चाडें श्रीअनंता। उमजु नोहे ॥३॥
ऐकें एकसारातें बोधिजे। तरी एकनिष्ठचि बोलिजे। हें आणिकीं काय सांगिजे। तुम्हांप्रति ॥४॥
तरी याचिलागीं तुमतें। म्यां राउळासि विनविलें होतें। जें हा परमार्थु ध्वनितें। न बोलावा ॥५॥
परी मागील असो देवा। आतां प्रस्तुतीं उकलु देखावा। सांगैं दोहींमाजि बरवा। मार्गु कवणु ॥६॥
जो परिणामींचा निर्वाळा। अचुंबितु ये फळा। आणि अनुष्ठितां प्रांजळा। सावियाचि ॥७॥
जैसें निद्रेचें सुख न मोडे। आणि मार्गु तरी बहुसाल सांडे। तैसें सोहोकासन सांगडें। सोहपें होय ॥८॥
येणें अर्जुनाचेनि बोलें। देवो मनीं रिझले। मग होईल ऐकें म्हणितलें। संतोषोनियां ॥९॥
देखा कामधेनु ऐसी माये। सदैवा जया होये। तो चंद्रुही परी लाहे। खेळावया ॥१०॥
पाहे पां श्रीशंभूची प्रसन्नता। तया उपमन्यूचिया आर्ता। काय क्षीराब्धि दूधभाता। देइजेचिना ? ॥११॥
तैसा औदार्याचा कुरुठा। श्रीकृष्णु आपु जाहलिया सुभटा। कां सर्व सुखांचा वसौटा। तोचि नोहावा ? ॥१२॥
एथ चमत्कारु कायसा। गोसावी श्रीलक्ष्मीकांताऐसा। आतां आपुलिया सवेसा। मागावा कीं ॥१३॥
म्हणौनि अर्जुनें म्हणितलें। तें हांसोनि येरें दिधलें। तेंचि सांगेन बोलिलें। काय कृष्णें ॥१४॥

श्रीभगवानुवाच ।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥२॥

तो म्हणे गा कुंतीसुता। हे संन्यासयोगु विचारितां। मोक्षकरु तत्त्वता। दोनीही होती ॥१५॥
तरी जाणां नेणां सकळां। हा कर्मयोगु कीर प्रांजळा। जैसी नाव स्त्रियां बाळां। तोयतरणी ॥१६॥
तैसें सारासार पाहिजे। तरी सोहपा हाचि देखिजे। येणें संन्यासफळ लाहिजे। अनायासें ॥१७॥
आतां याचिलागीं सांगेन। तुज संन्यासियाचें चिन्ह। मग सहजें हें अभिन्न। जाणसी तूं ॥१८॥

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥३॥

तरी गेलियाची से न करी। न पवतां चाड न धरी। जो सुनिश्चळु अंतरीं। मेरु जैसा ॥१९॥
आणि मी माझें ऐसी आठवण। विसरलें जयाचें अंतःकरण। पार्था तो संन्यासी जाण। निरंतर ॥२०॥
जो मनें ऐसा जाहला। संगीं तोचि सांडिला। म्हणौनि सुखें सुख पावला। अखंडित ॥२१॥
आतां गृहादिक आघवें। तें कांहीं नलगे त्यजावें। जें घेतें जाहलें स्वभावें। निःसंगु म्हणौनि ॥२२॥
देखैं अग्नि विझोनि जाये। मग जे राखोंडी केवळु होये। तैं ते कापुसें गिंवसूं ये। जियापरी ॥२३॥

तैसा असतेनि उपाधी। नाकळिजे तो कर्मबंधीं। जयाचिये बुद्धी। संकल्पु नाहीं ॥२४॥

म्हणौनि कल्पना जैं सांडे। तैंचि गा संन्यासु घडे। इयें कारणें दोनी सांगडे। संन्यासयोगु ॥२५॥

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।

एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥४॥

एऱ्हवीं तरी पार्था। जे मूर्ख होती सर्वथा। ते सांख्ययोगुसंस्था। जाणती केवीं ? ॥२६॥

सहजें ते अज्ञान। म्हणौनि म्हणती ते भिन्न। एऱ्हवीं दीपाप्रति काई आनान। प्रकाशु आहाती ? ॥२७॥

पैं सम्यक येणें अनुभवें। जिहीं देखिलें तत्त्व आघवें। तें दोहींतेंही ऐक्यभावें। मानिती गा ॥२८॥

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।

एकं साख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥५॥

आणि सांख्यीं जें पाविजे। तेंचि योगीं गमिजे। म्हणौनि ऐक्य दोहींतें सहजें। इयापरी ॥२९॥

देखैं आकाशा आणि अवकाशा। भेदु नाहीं जैसा। तैसें ऐक्य योगसंन्यासा। वोळखे जो ॥३०॥

तयासीचि जगीं पाहलें। आपणपें तेणेंचि देखिलें। जया सांख्ययोग जाणवले। भेदेंविण ॥३१॥

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमासुमयोगतः ।

योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥६॥

जो युक्तिपंथें पार्था। चढे मोक्षपर्वता। तो महासुखाचा निमथा। वहिला पावे ॥३२॥

येरा योगस्थिति जया सांडे। तो वायांचि गा हव्यासीं पडे। परि प्राप्ति कहीं न घडे। संन्यासाची ॥३३॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।

सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥७॥

जेणें भ्रांतीपासूनि हिरतलें। गुरुवाक्यें मन धुतलें। मग आत्मस्वरूपीं घातलें। हारौनियां ॥३४॥

जैसें समुद्रीं लवण न पडे। तंव वेगळें अल्प आवडे। मग होय सिंधूचि एवढें। मिळे तेव्हां ॥३५॥

तैसें संकल्पोनि काढिलें। जयाचें मनचि चैतन्य जाहलें। तेणें एकदेशियें परी व्यापिलें। लोकत्रय ॥३६॥

आतां कर्ता कर्म करावें। हें खुंटलें तया स्वभावें। आणि करी जऱ्ही आघवें। तऱ्ही अकर्ता तो ॥३७॥

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।

पश्यञ्श्रृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गाच्छन्स्वपन्श्वसन॥८॥

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।

इंद्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन ॥९॥

जे पार्था तया देहीं। मी ऐसा आठऊ नाहीं। तरी कर्तृत्व कैचैं काई। उरे सांगैं ? ॥३८॥

ऐसें तनुत्यागेंवीण। अमूर्ताचे गुण। दिसती संपूर्ण। योगयुक्तां ॥३९॥

एऱ्हवीं आणिकांचिये परी। तोही एक शरीरी। अशेषाही व्यापारीं। वर्ततु दिसे ॥४०॥

तोही नेत्रीं पाहे। श्रवणीं ऐकतु आहे। परि तेथींचा सर्वथा नोहे। नवल देखें ॥४१॥

स्पर्शासि तरी जाणे। परिमळु सेवी घ्राणें। अवसरोचित बोलणें। तयाहि आथी ॥४२॥

आहारातें स्वीकारी। त्यजावें तें परिहरी। निद्रेचिया अवसरीं। निदिजे सुखें ॥४३॥

आपुलेनि इच्छावशें। तोही गा चालतु दिसे। पैं सकळ कर्म ऐसें। रहाटे कीर ॥४४॥

हें सांगों काई एकैक। देखें श्वासोच्छवासादिक। आणि निमिषोन्निमिष। आदिकरूनि ॥४५॥

पार्था तयाचे ठायीं। हें आघवेंचि आथि पाहीं। परी तो कर्ता नव्हे कांहीं। प्रतीतिबळें ॥४६॥

जैं भ्रांति सेजे सुतला। तैं स्वप्नसुखें भुतला। मग तो ज्ञानोदयीं चेइला। म्हणौनियां ॥४७॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।

लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१०॥

आतां अधिष्ठानसंगती। अशेषाही इंद्रियवृत्ती। आपुलालिया अर्थीं। वर्तत आहाती ॥४८॥

दीपाचेनि प्रकाशें। गृहींचे व्यापार जैसे। देहीं कर्मजात तैसे। योगयुक्ता ॥४९॥

तो कर्मे करी सकळें। परी कर्मबंधा नाकळे। जैसें न सिंपे जळीं जळें। पद्मपत्र ॥५०॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।

योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥११॥

देखैं बुद्धीची भाष नेणिजे। मनाचा अंकुर नुदैजे। ऐसा व्यापारु तो बोलिजे। शारीरु गा ॥५१॥

हेंच मराठे परियेशीं। तरी बाळकाची चेष्टा जैशी। योगिये कर्मे करिती तैशीं। केवळा तनु ॥५२॥

मग पांचभौतिक संचलें। जेव्हां शरीर असे निदेलें। तेथ मनचि रहाटें एकलें। स्वप्नीं जेवीं ॥५३॥

नवल ऐकें धनुर्धरा। कैसा वासनेचा संसारा। देहा होऊं नेदी उजगरा। परी सुखदुःखें भोगी ॥५४॥

इंद्रियांच्या गांवीं नेणिजे। ऐसा व्यापारु जो निपजे। तो केवळु गा म्हणिजे। मानसाचा ॥५५॥

योगिये तोही करिती। परी कर्मे तें न बंधिजती। जे सांडिली आहे संगती। अहंभावाची ॥५६॥

आतां जाहालिया भ्रमहत। जैसें पिशाचाचें चित्त। मग इंद्रियांचें चेष्टित। विकळु दिसे ॥५७॥

स्वरूप तरी देखे। आळविलें आइके। शब्दु बोले मुखें। परी ज्ञान नाहीं ॥५८॥

हें असो काजेंविण। जें जें कांहीं करण। तें केवळ कर्म जाण। इंद्रियांचें ॥५९॥

मग सर्वत्र जें जाणतें। ते बुद्धीचें कर्म निरुतें। ओळख अर्जुनातें। म्हणे हरी ॥६०॥

ते बुद्धी धुरे करुनी। कर्म करिती चित्त देऊनी। परी ते नैष्कर्म्यापासुनी। मुक्त दिसती ॥६१॥

जें बुद्धीचिये ठावूनि देही। तयां अहंकाराची सेचि नाहीं। म्हणौनि कर्म करितां पाहीं। चोखाळले ॥६२॥

अगा करितेनवीण कर्म। तेंचि तें नैष्कर्म्य। हें जाणती सुवर्म। गुरुगम्य जें ॥६३॥

आतां शांतरसाचें भरितें। सांडीत आहे पात्रातें। जें बोलणें बोलापरौतें। बोलवलें ॥६४॥

एथ इंद्रियांचा पांगु। जया फिटला आहे चांगु। तयासीचि आथि लागु। परिसावया ॥६५॥

हा असो अतिप्रसंगु। न संडी पां कथालागु। होईल श्लोकसंगति भंगु। म्हणौनियां ॥६६॥

जें मना आकळितां कुवाडें। घाघुसितां बुद्धी नातुडे। तें दैवाचेनि सुरवाडें। सांगवलें तुज ॥६७॥

जें शब्दातीत स्वभावें। तें बोलींचि जरी फावे। तरी आणिकें काय करावें। कथा सांगैं ॥६८॥

हा आर्तिविशेषु श्रोतयांचा। जाणोनि दास निवृत्तीचा। म्हणे संवादु दोघांचा। परिसोनि परिसा ॥६९॥

मग श्रीकृष्ण म्हणे पार्थातें। आतां प्राप्ताचें चिन्ह पुरतें। सांगेन तुज निरुतें। चित्त देईं ॥७०॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।

अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥१२॥

तरी आत्मयोगें आथिला। जो कर्मफळाशीं विटला। तो घर रिघोनि वरिला। शांति जगीं ॥७१॥

येरु कर्मबंधें किरीटी। अभिलाषाचिया गांठीं। कळासला खुंटी। फळभोगाच्या ॥७२॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन ॥१३॥

जैसा फळाचिये हांवें। तैसें कर्म करी आघवें। मग न कीजेचि येणें भावें। उपेक्षी जो ॥७३॥

तो जयाकडे वासु पाहे। तेउती सुखाची सृष्टि होये। तो म्हणे तेथ राहे। महाबोधु ॥७४॥

नवद्वारें देहीं। तो असतुचि परि नाहीं। करितुचि न करी कांहीं। फलत्यागी ॥७५॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।

न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥

जैसा कां सर्वेश्वरू। पाहिजे तंव निर्व्यापारु। परि तोचि रची विस्तारु। त्रिभुवनाचा ॥७६॥
आणि कर्ता ऐसें म्हणिपे। तरी कवणें कर्मीं न शिंपें। जे हातुपावो न लिंपे। उदासवृत्तीचा ॥७७॥
योगनिद्रा तरी न मोडे। अकर्तेपणा सळु न पडे। परी महाभूतांचें दळवाडें। उभारी भले ॥७८॥
जगाच्या जीवीं आहे। परी कवणाचा कहीं नोहे। जगचि हें होय जाये। तो शुद्धीहि नेणे ॥७९॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥१५॥

पापपुण्यें अशेषें। पासींचि असतु न देखें। आणि साक्षीही होऊं न ठके। येरी गोठी कायसी ? ॥८०॥
पैं मूर्तीचेनि मेळें। तो मूर्तचि होऊनि खेळे। परि अमूर्तपण न मैळे। दादुलयाचें ॥८१॥
तो सृजी पाळी संहारी। ऐसें बोलती जे चराचरीं। तें अज्ञान गा अवधारीं। पंडुकुमरा ॥८२॥

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥१६॥

तें अज्ञान जैं समूळ तुटे। तै भ्रांतीचें मसैरें फिटे। मग अकर्तृत्व प्रगटे। मज ईश्वराचें ॥८३॥
एथ ईश्वरु एकु अकर्ता। ऐसें मानलें जरी चित्ता। तरी तोचि मी हें स्वभावता। आदीचि आहे ॥८४॥
ऐसेनि विवेकें उदो चित्तीं। तयासी भेदु कैंचा त्रिजगतीं। देखें आपुलिया प्रतीति। जगचि मुक्त ॥८५॥
जैशी पूर्वदिशेच्या राउळीं। उदया येतांचि सूर्य दिवाळी। कीं येरीही दिशां तियेचि काळीं। काळिमा नाहीं ॥८६॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठातत्परायणः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्ति ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥१७॥

बुद्धिनिश्चयें आत्मज्ञान। ब्रह्मरूप भावी आपणा आपण। ब्रह्मनिष्ठा राखे पूर्ण। तत्परायण अहर्निशीं ॥८७॥
ऐसें व्यापक ज्ञान भलें। जयांचिया हृदया गिंवसित आलें। तयांची समता दृष्टि बोलें। विशेषूं काई ॥८८॥
एक आपणपांचि जैसें। ते देखतीं विश्व तैसें। हें बोलणें कायसें। नवलु एथ ॥८९॥
परी दैव जैसें कवतिकें। कहींचि दैन्य न देखे। कां विवेकु हा नोळखे। भ्रांतीतें जेवीं ॥९०॥
नातरी अंधकाराची वानी। जैसा सूर्यो न देखे स्वप्नीं। अमृत नायके कानीं। मृत्युकथा ॥९१॥
हें असो संतापु कैसा। चंद्रु न स्मरे जैसा। भूतीं भेदु नेणती तैसा। ज्ञानिये ते ॥९२॥

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥१८॥

मग हा मशकु हा गजु। कीं हा श्वपचु हा द्विजु। पैल इतरु हा आत्मजु। हें उरेल कें ? ॥९३॥
ना तरी हे धेनु हें श्वान। एक गुरु एक हीन। हें असो कैचें स्वप्न। जागतया ॥९४॥
एथ भेदु तरी कीं देखावा। जरी अहंभाव उरला होआवा। तो आधींचि नाहीं आघवा। आतां विषमु काई ॥९५॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥१९॥

म्हणौनि सर्वत्र सदा सम। तें आपणचि अद्वय ब्रह्म। हें संपूर्ण जाणें वर्म। समदृष्टीचें ॥९६॥
जिहीं विषयसंगु न सांडितां। इंद्रियांतें न दंडितां। परी भोगिली निसंगता। कामनेविण ॥९७॥
जिहीं लोकांचेनि आधारें। लौकिकेंचि व्यापारें। परि सांडिलें निदसुरें। लौकिकु हें ॥९८॥
जैसा जनामाजि खेचरु। असतुचि जना नोहे गोचरु। तैसा शरीरीं परी संसारु। नोळखे तयांतें ॥९९॥
हें असो पवनाचेनि मेळें। जैसें जळींचि जळ लोळे। तें आणिकें म्हणती वेगळें। कल्लोळ हे ॥१००॥
तैसें नाम रूप तयाचें। एऱ्हवीं ब्रह्मचि तो साचें। मन साम्या आलें जयाचें। सर्वत्र गा ॥१०१॥
ऐसेनि समदृष्टी जो होये। तया पुरुषा लक्षणही आहे। अर्जुना संक्षेपें सांगेन पाहें। अच्युत म्हणे ॥१०२॥

न प्रहृष्योत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।

स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥२०॥

तरी मृगजळाचेनि पूरें। जैसें न लोटिजे कां गिरिवरें। तैसा शुभाशुभीं न विकरे। पातलिया जो ॥१०३॥

तोचि तो निरुता। समदृष्टी तत्त्वतां। हरि म्हणे पंडुसुता। तोचि ब्रह्म ॥१०४॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।

स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥२१॥

जया आपणपें सांडूनि कहीं। इंद्रियग्रामावरी येणेंचि नाहीं। तो विषय न सेवी हें काई। विचित्र येथ ॥१०५॥

सहजें स्वसुखाचेनि अपारें। सुरवाडलेनि अंतरें। रचिला म्हणौनि बाहिरें। पाउल न घाली ॥१०६॥

सांगैं कुमुददळाचेनि ताटें। जो जेविला चंद्रकिरणें चोखटें। तो चकोरु काई वाळुवंटें। चुंबितु असे ? ॥१०७॥

तैसें आत्मसुख उपाइलें। जयासि आपणपेंचि फावलें। तया विषयो सहजें सांडवले। म्हणो काई ? ॥१०८॥

एऱ्हवीं तरी कौतुकें। विचारूनि पाहें पां निकें। या विषयांचेनि सुखें। झकविती कवण ॥१०९॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥२२॥

जिहीं आपणपें नाहीं देखिलें। तेचि इहीं इंद्रियार्थीं रंजले। जैसें रंकु कां आळुकैलें। तुषांतें सेवी ॥११०॥

नातरी मृगें तृषापीडितें। संभ्रमें विसरोनि जळांतें। मग तोयबुद्धी बरडीतें। ठाकूनि येती ॥१११॥

तैसें आपणपें नाहीं दिठे। जयातें स्वसुखाचे सदा खरांटे। तयासीचि विषय हे गोमटे। आवडती ॥११२॥

एऱ्हवीं विषयीं सुख आहे। हे बोलणेंचि सारिखें नोहे। तरी विद्युत्स्फुरणें कां न पाहे। जगामाजीं ॥११३॥

सांगैं वात वर्ष आतपु धरे। ऐसे अभ्रच्छायाचि जरी सरे। तरी त्रिमाळिकें धवळारें। करावीं कां ॥११४॥

म्हणौनि विषयसुख जें बोलिजे। तें नेणतां गा वायां जल्पिजे। जैसें महूर कां म्हणिजे। विषकंदातें ॥११५॥

नातरी भौमा नाम मंगळु। रोहिणीतें म्हणती जळु। तैसा सुखप्रवादु बरळु। विषयिकु हा ॥११६॥

हे असो आघवी बोली। सांग पां सर्पफणीचा साउली। ते शीतल होईल केतुली। मूषकासी ? ॥११७॥

जैसा आमिषकवळु पांडवा। मीनु न सेवी तंवचि बरवा। तैसा विषयसंगु आघवा। निभ्रांत जाणें ॥११८॥

हे विरक्तांचिये दिठी। जैं न्याहाळिजे किरीटी। तैं पांडुरोगाचिये पुष्टी- । सारिखें दिसे ॥११९॥

म्हणौनि विषयभोगीं जें सुख। तें साद्यंतचि जाण दुःख। परि काय कीजे मूर्ख। न सेवितां न सरे ॥१२०॥

तें अंतर नेणती बापुडे। म्हणौनि अगत्य सेवणें घडे। सांगैं पूयपंकींचे किडे। काय चिळसी घेती ॥१२१॥

तयां दुःखियां दुःखचि जिव्हार। ते विषयकर्दमींचे दर्दुर। ते भोगजळींचे जळचर। सांडिती केवीं ॥१२२॥

आणि दुःखयोनि जिया आहाती। तिया निरर्थका तरी नव्हती। जरी विषयांवरी विरक्ती। धरिती जीव ॥१२३॥

नातरी गर्भवासादि संकट। कां जन्ममरणींचे कष्ट। हे विसांवेवीण वाट। वाहावी कवणें ॥१२४॥

जरी विषयीं विषयो सांडिजेल। तरी महादोषीं कें वसिजेल। आणि संसारु हा शब्दु नव्हेल। लटिका जगीं ? ॥१२५॥

म्हणौनि अविद्याजात नाथिलें। तें तिहींचि साच दाविलें। जिहीं सुखबुद्धी घेतलें। विषयदुःख ॥१२६॥

या कारणें गा सुभटा। हा विचारितां विषय वोखटा। तूं झणें कहीं या वाटा। विसरोनि जाशी ॥१२७॥

पैं यातें विरक्त पुरुष। त्यजिती कां जैसें विष। निराशा तयां दुःख। दाविलें नावडे ॥१२८॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्षरीरविमोक्षणात् ।

कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥२३॥

ज्ञानियांच्या हन ठायीं। याची मातुही कीर नाहीं। देहीं देहभावो जिहीं। स्ववश केले ॥१२९॥

जयांतें बाह्याची भाष। नेणिजेचि निःशेष। अंतरीं सुख। एक आथि ॥१३०॥

परि तें वेगळेपणें भोगिजे। जैसें पक्षियें फळ चुंबिजे। तैसें नव्हे तेथ विसरिजे। भोगितेपणही ॥१३१॥

भोगीं अवस्था एकी उठी। ते अहंकाराचा अंचळु लोटी। मग सुखेंसि घे आंटी। गाढेपणें ॥१३२॥
तिये आलिंगनमेळीं। होय आपेंआप कवळी। तेथ जळ जैसें जळीं। वेगळें न दिसे ॥१३३॥
कां आकाशीं वायु हारपे। तेथ दोन्ही हे भाष लोपे। तैसे सुखचि उरे स्वरूपें। सुरतीं तिये ॥१३४॥
ऐसी द्वैताची भाष जाय। मग म्हणों जरी एक होय। तरी तेथ साक्षी कवणु आहे। जाणते जें ॥१३५॥

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेवयः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥२४॥
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥२५॥

म्हणौनि असो हें आघवें। एथ न बोलणें काय बोलावें। ते खुणाचि पावले स्वभावें। आत्माराम ॥१३६॥
जे ऐसेनि सुखें मातले। आपणपांचि आपण गुंतले। ते मी जाणें निखिळ वोतले। सामरस्याचे ॥१३७॥
ते आनंदाचे अनुकार। सुखाचे अंकुर। कीं महाबोधें विहार। केले जैसे ॥१३८॥
ते विवेकाचें गांव। कीं परब्रम्हींचे स्वभाव। नातरी अळंकारले अवयव। ब्रह्मविद्येचे ॥१३९॥
ते सत्त्वाचे सात्त्विक। कीं चैतन्याचे आंगिक। हें बहु असो एकैक। वानिसी काई ॥१४०॥
तूं संतस्तवनीं रतसी। तरी कथेची से न करिसी। कीं निराळीं बोल देखसी। सनागर ॥१४१॥
परि तो रसातिशयो मुकुळीं। मग ग्रंथार्थदीपु उजळीं। करी साधुहृदयराउळीं। मंगळउखा ॥१४२॥
ऐसा श्रीगुरूचा उवायिला। निवृत्तिदासासी पातला। मग तो म्हणे श्रीकृष्ण बोलिला। तेंचि आइका ॥१४३॥
अर्जुना अनंत सुखाच्या डोहीं। एकसरा तळुचि घेतला जिहीं। मग स्थिराऊनि तेही। तेंचि जाहले ॥१४४॥
अथवा आत्मप्रकाशें चोखें। जो आपणपेंचि विश्व देखे। तो देहेंचि परब्रह्म सुखें। मानूं येईल ॥१४५॥
जें साचोकारें परम। ना तें अक्षर निःसीम। जिये गांवींचे निष्काम। अधिकारिये ॥१४६॥
जे महर्षीं वाढले। विरक्तां भागा फिटलें। जे निःसंशया पिकलें। निरंतर ॥१४७॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥२६॥

जिहीं विषयांपासोनि हिरतलें। चित्त आपुलें आपण जिंतिलें। ते निश्चित जेथ सुतले। चेतीचिना ॥१४८ ॥
तें परब्रह्म निर्वाण। जें आत्मविदांचें कारण। तेंचि ते पुरुष जाण। पंडुकुमरा ॥१४९ ॥
ते ऐसे कैसेंनि जहाले। जे देहींचि ब्रह्मत्वा आले। हें पुससी तरी भलें। संक्षेपें सांगों ॥१५० ॥

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥२७॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥२८॥

तरी वैराग्याचेनि आधारें। जिहीं विषय दवडूनि बाहिरें। शरीरीं एकंदरें। केलें मन ॥१५१॥
सहजें तिहीं संधी भेटी। जेथ भ्रूपल्लवां पडे गांठी। तेथ पाठिमोरी दिठी। पारखोनियां ॥१५२॥
सांडूनि दक्षिण वाम। प्राणापानसम। चित्तेंसीं व्योम- । गामिये करिती ॥१५३॥
तेथ जैसीं रथ्योदकें सकळें। घेऊनि गंगा समुद्रीं मिळे। मग एकेकु वेगळें। निवडूं नये ॥१५४॥
तैसी वासनांतराची विवंचना। मग आपैसी पारुखे अर्जुना। जे वेळीं गगनीं लयो मना। पवनें कीजे ॥१५५॥
जेथ हें संसारचित्र उमटे। तो मनोरूपु पटु फाटे। जैसें सरोवर आटे। मग प्रतिभा नाहीं ॥१५६॥
तैसें मन एथ मुद्दल जाय। मग अहंभावादिक कें आहे। म्हणौनि शरीरेंचि ब्रह्म होये। अनुभवी तो ॥१५७॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥२९॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगोनाम पंचमोऽध्यायः ॥५अ ॥

आम्हीं मागां हन सांगितलें। जे देहींचि ब्रह्मत्व पावले। ते येणें मार्गें आले। म्हणौनियां ॥१५८॥

आणि यमनियमांचे डोंगर। अभ्यासाचे सागर। क्रमोनि हे पार। पातले ते ॥१५९॥

तिहीं आपणपें करूनि निर्लेप। प्रपंचाचें घेतलें माप। मग साचाचेंचि रूप। होऊनि ठेले ॥१६०॥

ऐसा योगयुक्तीचा उद्देशु। जेथ बोलिला हृषीकेशु। तेथ अर्जुनु सुदंशु। म्हणौनि चमत्कारला ॥१६१॥

तें देखिलिया कृष्णें जाणितलें। मग हांसोनि पार्थातें म्हणितलें। काई पां चित्त उवाइलें। इये बोलीं तुझें ? ॥१६२॥

तंव अर्जुन म्हणे देवो। परचित्तलक्षणांचा रावो। भला जाणितला जी भावो। मानसु माझा ॥१६३॥

म्यां जें कांहीं विवरोनि पुसावें। तें आधींचि जाणितलें देवें। तरी बोलिलें तेंचि सांगावें। विवळ करूनि ॥१६४॥

एऱ्हवीं तरी अवधारा। जो दाविला तुम्हीं अनुसारा। तो पव्हण्याहूनि पायउतारा। सोहपा जैसा ॥१६५॥

तैसा सांख्याहूनि प्रांजळा। परी आम्हांसारिखियां अभोळां। एथ आहाति परि कांहीं काळा। तो साहों ये वर ॥१६६॥

म्हणौनि एक वेळ देवा। तोचि पडताळा घेयावा। विस्तरेल तरी सांगावा। साद्यंतुचि ॥१६७॥

तंव श्रीकृष्ण म्हणती हो कां। तुज हा मार्गु गमला निका। तरी काय जाहलें आईकीजो कां। सुखें बोलों ॥१६८॥

अर्जुना तूं परिससी। परिसोनि अनुष्ठिसी। तरी आम्हांसीचि वानी कायसी। सांगावयाची ? ॥१६९॥

आधींचि चित्त मायेचें। वरी मिष जाहले पढियंतयाचें। आतां तें अद्भुतपण स्नेहाचें। कवण जाणे ॥१७०॥

तें म्हणो कारुण्यरसाची वृष्टि। कीं नवया स्नेहाची सृष्टि। हें असो नेणिजे दृष्टी। हरीची वानूं ॥१७१॥

जे अमृताची वोतली। कीं प्रेमचि पिऊनि मातली। म्हणौनि अर्जुनमोहें गुंतली। निघों नेणें ॥१७२॥

हें बहु जें जें जल्पिजेल। तेथें कथेसि फांकु होईल। परि तें स्नेहरूपा न येल। बोलवरी ॥१७३॥

म्हणौनि विसुरा काय येणें। तो ईश्वरु कवळावा कवणें। जो आपुलें मान नेणें। आपणचि ॥१७४॥

तरी मागीला ध्वनीआंतु। मज गमला सावियाचि मोहितु। जे बलात्कारें असे म्हणतु। परिस बापा ॥१७५॥

अर्जुना जेणें जेणें भेदें। तुझें कां चित्त बोधे। तैसें तैसें विनोदें। निरूपिजेल ॥१७६॥

तो काइसया नाम योगु। तयाचा कवण उपेगु। अथवा अधिकारप्रसंगु। कवणा येथ ॥१७७॥

ऐसें जें जें कांहीं। उक्त असे इये ठाईं। तें आघवेंचि पाहीं। सांगेन आतां ॥१७८॥

तूं चित्त देऊनि अवधारीं। ऐसें म्हणौनि श्रीहरी। बोलिजेल ते पुढारी। कथा आहे ॥१७९॥

श्रीकृष्ण अर्जुनासी संगु। न सांडोनि सांगेल योगु। तो व्यक्त करूं प्रसंगु। म्हणे निवृत्तिदासु ॥१८०॥

इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां पंचमोऽध्यायः ..

.. ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय ६ ..

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय सहावा ।

आत्मसंयमयोगः ।

मग रायातें म्हणे संजयो। तोचि अभिप्रावो अवधारिजो। कृष्ण सांगती आतां जो। योगरूप ॥१॥
सहजें ब्रह्मरसाचें पारणें। केलें अर्जुनालागीं नारायणें। कीं तेचि अवसरीं पाहुणे। पातलों आम्ही ॥२॥
कैसी दैवाची आगळिक नेणिजे। जैसें तान्हेलिया तोय सेविजे। कीं तेंचि चवी करूनि पाहिजे। तंव अमृत आहे ॥३॥
तैसें आम्हां तुम्हां जाहलें। जे आडमुठीं तत्त्व फावलें। तंव धृतराष्ट्रें म्हणितलें। हें न पुसों तूतें ॥४॥
तया संजया येणें बोलें। रायाचें हृदय चोजवलें। जें अवसरीं आहे घेतलें। कुमारांचिया ॥५॥
हें जाणोनि मनीं हांसिला। म्हणे म्हातारा मोहें नाशिला। एऱ्हवीं बोलु तरी भला जाहला। अवसरीं इये ॥६॥
परि तें तैसें कैसेनि होईल। जात्यंधु कैसें पाहेल। तेवींचि ये रुसें घेईल। म्हणौनि बिहे ॥७॥
परि आपण चित्तीं आपुला। निकियापरी संतोषला। जे तो संवादु फावला। कृष्णार्जुनांचा ॥८॥
तेणें आनंदाचेनि धालेपणें। साभिप्राय अंतःकरणें। आतां आदरेंसीं बोलणें। घडेल तया ॥९॥
तो गीतेमाजी षष्ठींचा। प्रसंगु असे आयणीचा। जैसा क्षीरार्णवीं अमृताचा। निवाडु जाहला ॥१०॥
तैसें गीतार्थाचें सार। जें विवेकसिंधूचें पार। नाना योगविभवभांडार। उघडलें कां ॥११॥
जें आदिप्रकृतीचें विसवणें। जें शब्दब्रह्मासि न बोलणें। जेथूनि गीतावल्लीचें ठाणें। प्ररोहो पावे ॥१२॥
तो अध्यावो सहावा। वरि साहित्याचिया बरवा। सांगिजैल म्हणौनि परिसावा। चित्त देउनी ॥१३॥
माझा मराठाचि बोलु कौतुकें। परि अमृतातेंही पैजां जिंके। ऐसीं अक्षरें रसिकें। मेळवीन ॥१४॥
जिये कोंवळिकेचेनि पाडें। दिसती नादींचें रंग थोडे। वेधें परिमळाचें बीक मोडे। जयाचेनि ॥१५॥
ऐका रसाळपणाचिया लोभा। कीं श्रवणींचि होति जिभा। बोले इंद्रियां लागे कळंभा। एकमेकां ॥१६॥
सहजें शब्दु तरी विषो श्रवणाचा। परि रसना म्हणे हा रसु आमुचा। घ्राणासि भावो जाय परिमळाचा। हा तोचि होईल ॥१७॥
नवल बोलतीये रेखेची वाहणी। देखतां डोळयांही पुरों लागे धणी। ते म्हणती उघडली खाणी। रूपाची हे ॥१८॥
जेथ संपूर्ण पद उभारे। तेथ मनचि धांवे बाहिरें। बोलु भुजाही आविष्करें। आलिंगावया ॥१९॥
ऐशीं इंद्रियें आपुलालिया भावीं। झोंबती परि तो सरिसेपणेंचि बुझावी। जैसा एकला जग चेववी। सहस्त्रकरु ॥२०॥
तैसें शब्दाचें व्यापकपण। देखिजे असाधारण। पाहातयां भावज्ञां फावती गुण। चिंतामणीचे ॥२१॥
हें असोतु या बोलांचीं ताटें भलीं। वरी कैवल्यरसें वोगरिलीं। ही प्रतिपत्ति मियां केली। निष्कामासी ॥२२॥
आतां आत्मप्रभा नीच नवी। तेचि करूनि ठाणदिवी। जो इंद्रियांतें चोरूनि जेवी। तयासीचि फावे ॥२३॥
येथ श्रवणाचेनि पांगें- । वीण श्रोतयां होआवें लागे। हे मनाचेनि निजांगें। भोगिजे गा ॥२४॥
आहाच बोलाची वालीफ फेडिजे। आणि ब्रह्माचियाचि आंगा घडिजे। मग सुखेंसी सुरवाडिजे। सुखाचि माजीं ॥२५॥
ऐसें हळुवारपण जरी येईल। तरीच हें उपेगा जाईल। एऱ्हवीं आघवी गोठी होईल। मुकिया बहिरयाची ॥२६॥
परी तें असो आतां आघवें। नलगे श्रोतयांतें कडसावें। जे अधिकारिये एथ स्वभावें। निष्कामकामु ॥२७॥
जिहीं आत्मबोधाचिया आवडी। केली स्वर्गसंसाराची कुरोंडी। तेवांचूनि एथींची गोडी। नेणती आणिक ॥२८॥
जैसा वायसीं चंद्र नोळखिजे। तैसा प्राकृतीं हा ग्रंथु नेणिजे। आणि तो हिमांशुचि जेविं खाजें। चकोराचें ॥२९॥
तैसा सज्ञानासी तरी हा ठावो। आणि अज्ञानासी आन गांवो। म्हणौनि बोलावया विषय पहा हो। विशेषु नाहीं ॥३०॥
परी अनुवादलों मी प्रसंगें। तें सज्जनीं उपसाहावें लागे। आतां सांगेन काय श्रीरंगें। निरोपिलें जें ॥३१॥

तें बुद्धीही आकळितां सांकडें। म्हणौनि बोलीं विपायें सांपडे। परी श्रीनिवृत्तिकृपादीप उजियेडें। देखैन मी ॥३२॥
जें दिठीही न पविजे। तें दिठीविण देखिजे। जरी अतींद्रिय लाहिजे। ज्ञानबळ ॥३३॥
ना तरी जें धातुवादाही न जोडे। तें लोहींचि पंधरें सांपडे। जरी दैवयोगें चढे। परिसु हातां ॥३४॥
तैसी गुरुकृपा होये। तरी करितां काय आपु नोहे। म्हणौनि तें अपार मातें आहे। ज्ञानदेवो म्हणे ॥३५॥
तेणें कारणें मी बोलेन। बोलीं अरूपाचें रूप दावीन। अतींद्रिय परी भोगवीन। इंद्रियांकरवीं ॥३६॥
आइका यश श्री औदार्य। ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य। हे साही गुणवर्य। वसती जेथ ॥३७॥
म्हणौनि तो भगवंतु। जो निःसंगाचा सांगातु। तो म्हणे पार्था दत्तचित्तु। होईं आतां ॥३८॥

श्रीभगवानुवाच ।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।

स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥१॥

आइकें योगी आणि संन्यासी जनीं। हे एकचि सिनानें झणीं मानीं। एऱ्हवीं विचारिजती जंव दोन्ही। तंव एकचि ते ॥३९॥
सांडिजे दुजया नामाचा आभासु। तरी योगु तोचि संन्यासु। पाहतां ब्रह्मीं नाहीं अवकाशु। दोहींमाजीं ॥४०॥
जैसें नामाचेनि अनारिसेपणें। एका पुरुषातें बोलावणें। कां दोहींमार्गीं जाणें। एकाचि ठाया ॥४१॥
नातरी एकचि उदक सहजें। परि सिनाना घटीं भरिजे। तैसें भिन्नत्व जाणिजे। योगसंन्यासांचें ॥४२॥
आइकें सकळ संमतें जगीं। अर्जुना गा तोचि योगी। जो कर्मे करूनि रागी। नोहेचि फळीं ॥४३॥
जैसी मही हे उद्भिजें। जनी अहंबुद्धीवीण सहजें। आणि तेथिंचीं तियें बीजें। अपेक्षीना ॥४४॥
तैसा अन्वयाचेनि आधारें। जातीचेनि अनुकारें। जें जेणें अवसरें। करणें पावे ॥४५॥
तें तैसेंचि उचित करी। परी साटोपु नोहे शरीरीं। आणि बुद्धीही करोनि फळवेरी। जायेचिना ॥४६॥
ऐसा तोचि संन्यासी। पार्था गा परियेसीं। तोचि भरंवसेनिसीं। योगीश्वरु ॥४७॥
वांचूनि उचित कर्म प्रासंगिक। तयातें म्हणे हे सांडावें बद्धक। तरी टांकोटांकीं आणिक। मांडीचि तो ॥४८॥
जैसा क्षाळूनियां लेपु एकु। सवेंचि लाविजे आणिकु। तैसेनि आग्रहाचा पाइकु। विचंबे वायां ॥४९॥
गृहस्थाश्रमाचें वोझें। कपाळीं आधींचि आहे सहजें। कीं तेंचि संन्याससवा ठेविजे। सरिसें पुढती ॥५०॥
म्हणौनि अग्निसेवा न सांडितां। कर्माची रेखा नोलांडितां। आहे योगसुख स्वभावता। आपणपांचि ॥५१॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।

न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥२॥

ऐकें संन्यासी तोचि योगी। ऐसी एकवाक्यतेची जगीं। गुढी उभविली अनेगीं। शास्त्रांतरीं ॥५२॥
जेथ संन्यासिला संकल्पु तुटे। तेथचि योगाचें सार भेटे। ऐसें हें अनुभवाचेनि धटें। साचें जया ॥५३॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥३॥

आतां योगाचळाचा निमथा। जरी ठाकावा आथि पार्था। तरी सोपाना या कर्मपथा। चुका झणी ॥५४॥
येणें यमनियमांचेनि तळवटें। रिगे आसनाचिये पाउलवाटें। येई प्राणायामाचेनि आडकंठें। वरौता गा ॥५५॥
मग प्रत्याहाराचा अधाडा। जो बुद्धीचियाही पायां निसरडा। जेथ हटिये सांडिती होडा। कडेलग ॥५६॥
तरी अभ्यासाचेनि बळें। प्रत्याहारीं निराळें। नखीं लागेल ढाळें ढाळें। वैराग्याची ॥५७॥
ऐसा पवनाचेनि पाठारें। येतां धारणेचेनि पैसारें। क्रमी ध्यानाचें चवरें। सांपडे तंव ॥५८॥
मग तया मार्गाची धांव। पुरेल प्रवृत्तीची हांव। जेथ साध्यसाधना खेंव। समरसें होय ॥५९॥
जेथ पुढील पैसु पारुखे। मागील स्मरावें तें ठाके। ऐसिये सरिसीये भूमिके। समाधि राहे ॥६०॥

येणें उपायें योगारूढु। जो निरवधि जाहला प्रौढु। तयाचिया चिन्हांचा निवाडु। सांगैन आइकें ॥६१॥
यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥४॥
तरी जयाचिया इंद्रियांचिया घरा। नाहीं विषयांचिया येरझारा। जो आत्मबोधाचिया वोवरां। पहुडला असे ॥६२॥
जयाचें सुखदुःखाचेनि आंगें। झगटलें मानस चेवो नेघे। विषय पासींही आलियां से न रिगे। हें काय म्हणौनि ॥६३॥
इंद्रियें कर्माच्या ठायीं। वाढीनलीं परि कहीं। फळहेतूची चाड नाहीं। अंतःकरणीं ॥६४॥
असतेनि देहें एतुला। जो चेतुचि दिसे निदेला। तोचि योगारूढु भला। वोळखें तूं ॥६५॥
तेथ अर्जुन म्हणे अनंता। हें मज विस्मो बहु आइकतां। सांगे तया ऐसी योग्यता। कवणें दीजे ॥६६॥
उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥
तंव हांसोनि श्रीकृष्ण म्हणे। तुझें नवल ना हें बोलणें। कवणासि काय दिजेल कवणें। अद्वैतीं इये ॥६७॥
पैं व्यामोहाचिये शेजे। बळिया अविद्या निद्रितु होइजे। ते वेळी दुःस्वप्न हा भोगिजे। जन्ममृत्यूंचा ॥६८॥
पाठीं अवसांत ये चेवो। तैं तें अवघेंचि होय वावो। ऐसा उपजे नित्य सद्भावो। तोहि आपणपांचि ॥६९॥
म्हणौनि आपणचि आपणयां। घातु कीजतु असे धनंजया। चित्त देऊनि नाथिलिया। देहाभिमाना ॥७०॥
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥६॥
हा विचारूनि अहंकारु सांडिजे। मग असतीचि वस्तु होईजे। तरी आपली स्वस्ति सहजें। आपण केली ॥७१॥
एऱ्हवीं कोशकीटकाचिया परी। तो आपणया आपण वैरी। जो आत्मबुद्धि शरीरीं। चारुस्थळीं ॥७२॥
कैसे प्राप्तीचिये वेळे। निदैवा अंधळेपणाचे डोहळे। कीं असते आपुले डोळे। आपण झांकी ॥७३॥
कां कवण एकु भ्रमलेपणें। मी तो नव्हे गा चोरलों म्हणे। ऐसा नाथिला छंदु अंतःकरणें। घेऊनि ठाके ॥७४॥
एऱ्हवीं होय तें तोचि आहे। परि काई कीजे बुद्धि तैशी नोहे। देखा स्वप्नींचेनि घायें। कीं मरे साचें ॥७५॥
जैशी ते शुकाचेनि आंगभारें। नळिका भोविन्नली एरी मोहरें। तेणें उडावें परी न पुरे। मनशंका ॥७६॥
वायांचि मान पिळी। अटुवें हियें आंवळी। टिटांतु नळी। धरूनि ठाके ॥७७॥
म्हणे बांधला मी फुडा। ऐसिया भावनेचिया पडे खोडां। कीं मोकळिया पायांचा चवडा। गोंवी अधिकें ॥७८॥
ऐसा काजेंवीण आंतुडला। तो सांग पां काय आणिकें बांधिला। मग न सोडीच जऱ्ही नेला। तोडूनि अर्धा ॥७९॥
म्हणौनि आपणयां आपणचि रिपु। जेणें वाढविला हा संकल्पु। येर स्वयंबुद्धी म्हणे बापु। जो नाथिलें नेघे ॥८०॥
जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥७॥
तया स्वांतःकरणजिता। सकळकामोपशांता। परमात्मा परौता। दुरी नाहीं ॥८१॥
जैसा किडाळाचा दोषु जाये। तरी पंधरें तेंचि होये। तैसें जीवा ब्रह्मत्व आहे। संकल्पलोपीं ॥८२॥
हा घटाकारु जैसा। निमालिया तया अवकाशा। नलगे मिळों जाणें आकाशा। आना ठाया ॥८३॥
तैसा देहाहंकारु नाथिला। हा समूळ जयाचा नाशिला। तोचि परमात्मा संचला। आधींचि आहे ॥८४॥
आतां शीतोष्णाचिया वाहणी। तेथ सुखदुःखाची कडसणीं। इयें न समाती कांहीं बोलणीं। मानापमानांचीं ॥८५॥
जे जिये वाटा सूर्यु जाये। तेउतें तेजाचें विश्व होये। तैसें तया पावे तें आहे। तोचि म्हणौनी ॥८६॥
देखैं मेघौनि सुटती धारा। तिया न रुपती जैसिया सागरा। तैशीं शुभाशुभें योगीश्वरा। नव्हती आनें ॥८७॥
ज्ञ्यानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥८॥

जो हा विज्ञानात्मकु भावो। तया विवरितां जाहला वावो। मग लागला जंव पाहों। तंव ज्ञान तें तोचि ॥८८॥
आतां व्यापकु कीं एकदेशी। हे ऊहापोही जे ऐसी। ते करावी ठेली आपैशी। दुजेनवीण ॥८९॥
ऐसा शरीरीचि परी कौतुकें। परब्रह्माचेनि पाडें तुकें। जेणें जिंतलीं एकें। इंद्रियें गा ॥९०॥
तो जितेंद्रियु सहजें। तोचि योगयुक्तु म्हणिजे। जेणे सानें थोर नेणिजे। कवणें काळीं ॥९१॥
देखैं सोनयाचें निखळ। मेरुयेसणें ढिसाळ। आणि मातियेचें डिखळ। सरिसेंचि मानी ॥९२॥
पाहतां पृथ्वीचें मोल थोडें। ऐसें अनर्घ्य रत्न चोखडें। देखें दगडाचेनि पाडें। निचाडु ऐसा ॥९३॥
सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥९॥
तेथ सुहृद आणि शत्रु। कां उदासु आणि मित्रु। हा भावभेदु विचित्रु। कल्पूं कैंचा ॥९४॥
तया बंधु कोण काह्याचा। द्वेषिया कवणु तयाचा। मीचि विश्व ऐसा जयाचा। बोधु जाहला ॥९५॥
मग तयाचिये दिठी। अधमोत्तम असे किरीटी ? । काय परिसाचिये कसवटी। वानिया कीजे ? ॥९६॥
ते जैशी निर्वाण वर्णुचि करी। तैशी जयाची बुद्धी चराचरीं। होय साम्याची उजरी। निरंतर ॥९७॥
जे ते विश्वालंकाराचें विसुरे। जरी आहाती आनानें आकारें। तरी घडले एकचि भांगारें। परब्रह्में ॥९८॥
ऐसें जाणणें जें बरवें। तें फावलें तया आघवें। म्हणौनि आहाचवाहाच न झकवे। येणें आकारचित्रें ॥९९॥
घापे पटामाजि दृष्टी। दिसे तंतूंची सैंघ सृष्टी। परी तो एकवांचूनि गोठी। दुजी नाहीं ॥१००॥
ऐसेनि प्रतीती हें गवसे। ऐसा अनुभव जयातें असे। तोचि समबुद्धि हे अनारिसें। नव्हे जाणें ॥१०१॥
जयाचें नांव तीर्थरावो। दर्शनें प्रशस्तीसि ठावो। जयाचेनि संगें ब्रह्मभावो। भ्रांतासही ॥१०२॥
जयाचेनि बोलें धर्मु जिये। दिठी महासिद्धितें विये। देखैं स्वर्गसुखादि इयें। खेळु जयाचा ॥१०३॥
विपायें जरी आठवला चित्ता। तरी दे आपुली योग्यता। हें असो तयातें प्रशंसितां। लाभु आथि ॥१०४॥
योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥१०॥
पुढती अस्तवेना ऐसें। जया पाहलें अद्वैतदिवसें। मग आपणपांचि आपणु असे। अखंडित ॥१०५॥
ऐसिया दृष्टी जो विवेकी। पार्था तो एकाकी। सहजें अपरिग्रही जो तिहीं लोकीं। तोचि म्हणौनि ॥१०६॥
ऐसियें असाधारणें। निष्पन्नाचीं लक्षणें। आपुलेनि बहुवसपणें। श्रीकृष्ण बोले ॥१०७॥
जो ज्ञानियांचा बापु। देखणेयांचे दिठीचा दीपु। जया दादुलयाचा संकल्पु। विश्व रची ॥१०८॥
प्रणवाचिये पेठे। जाहलें शब्दब्रह्म माजिठे। तें जयाचिया यशा धाकुटें। वेढूं न पुरे ॥१०९॥
जयाचेनि आंगिकें तेजें। आवो रविशशीचिये वणिजे। म्हणौनि जग हें वेशजे- । वीण असे तया ॥११०॥
हां गा नामचि एक जयाचें। पाहतां गगनही दिसे टांचें। गुण एकैक काय तयाचे। आकळशील तूं ॥१११॥
म्हणौनि असो हें वानणें। सांगों नेणों कवणाचीं लक्षणें। दावावीं मिषें येणें। कां बोलिलों तें ॥११२॥
ऐकें द्वैताचा ठावोचि फेडी। ते ब्रह्मविद्या कीजेल उघडी। तरी अर्जुना पढिये हे गोडी। नासेल हन ॥११३॥
म्हणौनि तें तैसे बोलणें। नव्हे सपातळ आड लावणें। केलें मनचि वेगळवाणें। भोगावया ॥११४॥
जया सोऽहंभाव अटकु। मोक्षसुखालागोनि रंकु। तयाचिये दिठीचा झणें कळंकु। लागेल तुझिया प्रेमा ॥११५॥
विपाये अहंभावो ययाचा जाईल। मी तेंचि हा जरी होईल। तरी मग काय कीजेल। एकलेया ॥११६॥
दिठीची पाहतां निविजें। कां तोंड भरोनि बोलिजे। नातरी दाटूनि खेंव दीजे। ऐसें कवण आहे ? ॥११७॥
आपुलिया मना बरवी। असमाई गोठी जीवीं। ते कवणेंसि चावळावी। जरी ऐक्य जाहलें ॥११८॥
इया काकुळती जनार्दनें। अन्योपदेशाचेनि हाताशनें। बोलामाजि मन मनें। आलिंगूं सरलें ॥११९॥
हें परिसतां जरी कानडें। तरी जाण पां पार्थ उघडें। कृष्णसुखाचेंचि रूपडें। वोतलें गा ॥१२०॥

हें असो वयसेचिये शेवटीं। जैसें एकचि विये वांझोटी। मग ते मोहाची त्रिपुटी। नाचों लागे ॥१२१॥
तैसें जाहलें श्रीअनंता। ऐसें तरी मी न म्हणतां। जरी तयाचा न देखतां। अतिशयो एथ ॥१२२॥
पाहा पां नवल कैसें चोज। कें उपदेशु केउतें झुंज। परी पुढें बालभाचें भोज। नाचत असे ॥१२३॥
आवडी आणि लाजवी। व्यसन आणि शिणवी। पिसें आणि न भुलवी। तरी तेंचि काई ? ॥१२४॥
म्हणौनि भावार्थु तो ऐसा। अर्जुन मैत्रियेचा कुवासा। कीं सुखें श्रृंगारलिया मानसा। दर्पणु तो ॥१२५॥
यापरी बाप पुण्यपवित्र। जगीं भक्तिबीजासि सुक्षेत्र। तो श्रीकृष्णकृपे पात्र। याचिलागीं ॥१२६॥
हो कां आत्मनिवेदनातळींची। जे पीठिका होय सख्याची। पार्थु अधिष्ठात्री तेथिंची। मातृका गा ॥१२७॥
पासींचि गोसावी न वर्णिजे। मग पाइकाचा गुण घेईजे। ऐसा अर्जुनु तो सहजें। पढिये हरी ॥१२८॥
पाहां पां अनुरागें भजें। जे प्रियोत्तमें मानिजे। ते पतीहूनि काय न वानिजे। पतिव्रता ? ॥१२९॥
तैसा अर्जुनचि विशेषें स्तवावा। ऐसें आवडलें मज जीवा। जे तो त्रिभुवनींचिया दैवां। एकायतनु जाहला ॥१३०॥
जयाचिया आवडीचेनि पांगें। अमूर्तुही मूर्ती आवगें। पूर्णाहि परी लागे। अवस्था जयाची ॥१३१॥
तंव श्रोते म्हणती दैव। कैसी बोलाची हवाव। काय नादातें हन बरव। जिणोनि आली ॥१३२॥
हां हो नवल नोहे देशी। मऱ्हाटी बोलिजे तरी ऐशी। वाणें उमटताहे आकाशीं। साहित्य रंगाचे ॥१३३॥
कैसें उन्मेखचांदिणें तार। आणि भावार्थु पडे गार। हेचि श्लोकार्थ कुमुदिनी फार। साविया होती ॥१३४॥
चाडचि निचाडां करी। ऐसी मनोरथीं ये थोरी। तेणें विवळले अंतरीं। तेथ डोलु आला ॥१३५॥
तें निवृत्तिदासें जाणितलें। मग अवधान द्या म्हणितलें। नवल पांडवकुळीं पाहलें। कृष्णदिवसें ॥१३६॥
देवकीया उदरीं वाहिला। यशोदा सायासें पाळिला। कीं शेखीं उपेगा गेला। पांडवांसी ॥१३७॥
म्हणौनि बहुदिवस वोळगावा। कां अवसरु पाहोनि विनवावा। हाही सोसु तया सदैवा। पडेचिना ॥१३८॥
हें असो कथा सांगें वेगीं। मग अर्जुन म्हणे सलगी। देवा इयें संतचिन्हें आंगीं। न ठकती माझ्या ॥१३९॥
एऱ्हवीं या लक्षणांचिया निजसारा। मी अपाडें कीर अपुरा। परि तुमचेनि बोलें अवधारा। थोरावें जरी ॥१४०॥
जी तुम्ही चित्त देयाल। तरी ब्रह्म मियां होईजेल। काय जहालें अभ्यासिजेल। सांगाल जें ॥१४१॥
हां हो नेणों कवणाची काहाणी। आइकोनि श्लाघिजत असों अंतःकरणीं। ऐसी जहालेपणाची शिरयाणी। कायसी देवा ॥१४२॥
हें आंगें म्यां होईजो का। येतुलें गोसावी आपुलेपणें कीजो कां। तंव हांसोनि श्रीकृष्ण हो कां। करूं म्हणती ॥१४३॥
देखा संतोषु एक न जोडे। तंवचि सुखाचें सैंघ सांकडें। मग जोडलिया कवणीकडे। अपुरें असे ? ॥१४४॥
तैसा सर्वेश्वरु बळिया सेवकें। म्हणौनि ब्रह्महीं होय तो कौतुकें। परि कैसा भारें आतला पिकें। दैवाचेनि ॥१४५॥
जो जन्मसहस्रांचियासाठीं। इंद्रादिकांही महागु भेटी। तो आधीनु केतुला किरीटी। जे बोलुही न साहे ॥१४६॥
मग ऐका जें पांडवें। म्हणितलें म्यां ब्रह्म होआवें। तें अशेषही देवें। अवधारिलें ॥१४७॥
तेथ ऐसेंचि एक विचारिलें। जे या ब्रह्मत्वाचे डोहळे जाहले। परि उदरा वैराग्य आहे आलें। बुद्धीचिया ॥१४८॥
एऱ्हवीं दिवस तरी अपुरे। परी वैराग्यवसंताचेनि भरें। जे सोऽहंभाव महुरे। मोडोनि आला ॥१४९॥
म्हणौनि प्राप्तिफळीं फळतां। यासि वेळु न लगेल आतां। होय विरक्तु ऐसा अनंता। भरंवसा जाहला ॥१५०॥
म्हणे जें जें हा अधिष्ठील। तें आरंभींच यया फळेल। म्हणौनि सांगितला न वचेल। अभ्यासु वायां ॥१५१॥
ऐसें विवरोनियां श्रीहरी। म्हणितलें तिये अवसरीं। अर्जुना हा अवधारीं। पंथराजु ॥१५२॥
तेथ प्रवृत्तितरूच्या बुडीं। दिसती निवृत्तिफळाचिया कोडी। जिये मार्गींचा कापडी। महेशु आझुनी ॥१५३॥
पैल योगवृंदे वहिलीं। आडवीं आकाशीं निघालीं। कीं तेथ अनुभवाच्या पाउलीं। धोरणु पडिला ॥१५४॥
तिहीं आत्मबोधाचेनि उजुकारें। धांव घेतली एकसरें। कीं येर सकळ मार्ग निदसुरे। सांडूनियां ॥१५५॥
पाठीं महर्षी येणें आले। साधकांचे सिद्ध जाहाले। आत्मविद थोरावले। येणेंचि पंथें ॥१५६॥

हा मार्गु जैं देखिजे। तैं तहान भूक विसरिजे। रात्रिदिवसु नेणिजे। वाटे इये ॥१५७॥
चालतां पाऊल जेथ पडे। तेथ अपवर्गाची खाणी उघडे। आव्हांटलिया तरी जोडे। स्वर्गसुख ॥१५८॥
निगिजे पूर्वीलिया मोहरा। कीं येइजे पश्चिमेचिया घरा। निश्चळपणें धनुर्धरा। चालणें एथिंचें ॥१५९॥
येणें मार्गे जया ठाया जाइजे। तो गांवो आपणचि होईजे। हें सांगों काय सहजें। जाणसी तूं ॥१६०॥
तेथ पार्थे म्हणितलें देवा। तरी तेंचि मग केव्हां। कां आर्तिसमुद्रौनि न काढावा। बुडतु जी मी ॥१६१॥
तंव श्रीकृष्ण म्हणती ऐसें। हें उत्सृंखळ बोलणें कायसें। आम्हीं सांगतसों आपैसें। वरि पुशिलें तुवां ॥१६२॥
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११॥
तरी विशेषें आतां बोलिजेल। परि तें अनुभवें उपेगा जाईल। म्हणौनि तैसें एक लागेल। स्थान पाहावें ॥१६३॥
जेथ अराणुकेचेनि कोडें। बैसलिया उठों नावडे। वैराग्यासी दुणीव चढे। देखिलिया जें ॥१६४॥
जो संतीं वसविला ठावो। संतोषासि सावावो। मना होय उत्सावो। धैर्याचा ॥१६५॥
अभ्यासुचि आपणयातें करी। हृदयातें अनुभवु वरी। ऐसी रम्यपणाची थोरी। अखंड जेथ ॥१६६॥
जया आड जातां पार्था। तपश्चर्या मनोरथा। पाखांडियाही आस्था। समूळ होय ॥१६७॥
स्वभावें वाटे येतां। जरी वरपडा जाहला अवचितां। तरी सकामुही परि माघौता। निघों विसरे ॥१६८॥
ऐसेनि न राहतयातें राहावी। भ्रमतयातें बैसवी। थापटूनि चेववी। विरक्तीतें ॥१६९॥
हें राज्य वर सांडिजे। मग निवांता एथेंचि असिजे। ऐसें श्रृंगारियांहि उपजे। देखतखेंवो ॥१७०॥
जें येणें मानें बरवंट। आणि तैसेंचि अतिचोखट। जेथ अधिष्ठान प्रगट। डोळां दिसे ॥१७१॥
आणिकही एक पहावें। जें साधकीं वसतें होआवें। आणि जनाचेनि पायरवें। रुळेचिना ॥१७२॥
जेथ अमृताचेनि पाडें। मुळाहीसकट गोडें। जोडती दाटें झाडें। सदा फळतीं ॥१७३॥
पाउला पाउला उदकें। वर्षाकाळेंही अतिचोखें। निर्झरें का विशेखें। सुलभें जेथ ॥१७४॥
हा आतपुही आळुमाळु। जाणिजे तरी शीतळु। पवनु अति निश्चळु। मंदु झुळके ॥१७५॥
बहुत करूनि निःशब्द। दाट न रिगे श्वापद। शुक हन षट्पद। तेउतें नाहीं ॥१७६॥
पाणिलगें हंसें। दोनी चारी सारसें। कवणे एके वेळे बैसे। तरी कोकिळही हो ॥१७७॥
निरंतर नाहीं। तरी आलीं गेलीं कांहीं। होतु कां मयूरेंही। आम्ही ना न म्हणों ॥१७८॥
परि आवश्यक पांडवा। ऐसा ठावो जोडावा। तेथ निगूढ मठ होआवा। कां शिवालय ॥१७९॥
दोहींमाजीं आवडे तें। जें मानलें होय चित्तें। बहुतकरूनि एकांते। बैसिजे गा ॥१८०॥
म्हणौनि तैसें तें जाणावें। मन राहतें पाहावें। राहील तेथ रचावें। आसन ऐसें ॥१८१॥
वरी चोखट मृगसेवडी। माजीं धूतवस्त्राची घडी। तळवटीं अमोडी। कुशांकुर ॥१८२॥
सकोमळ सरिसे। सुबद्ध राहती आपैसे। एकपाडें तैसें। वोजा घालीं ॥१८३॥
परि सावियाचि उंच होईल। तरी आंग हन डोलेल। नीच तरी पावेल। भूमिदोषु ॥१८४॥
म्हणौनि तैसें न करावें। समभावें धरावें। हें बहु असो होआवें। आसन ऐसें ॥१८५॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥१२॥
मग तेथ आपण। एकाग्र अंतःकरण। करूनि सद्गुरुस्मरण। अनुभविजे ॥१८६॥
जेथ स्मरतेनि आदरें। सबाह्य सात्त्विकें भरे। जंव काठिण्य विरे। अहंभावाचें ॥१८७॥
विषयांचा विसरु पडे। इंद्रियांची कसमस मोडे। मनाची घडी घडे। हृदयामाजीं ॥१८८॥
ऐसें ऐक्य हें सहजें। फावें तंव राहिजे। मग तेणेंचि बोधें बैसिजे। आसनावरी ॥१८९॥

आतां आंगातें आंग वरी। पवनातें पवनु धरी। ऐसी अनुभवाची उजरी। होंचि लागे ॥१९०॥
प्रवृत्ति माघौति मोहरे। समाधि ऐलाडी उतरे। आघवें अभ्यासु सरे। बैसतखेंवो ॥१९१॥
मुद्रेची प्रौढी ऐशी। तेचि सांगिजेल आतां परियेसीं। तरी उरु या जघनासी। जडोनि घालीं ॥१९२॥
चरणतळें देव्हडीं। आधारद्रुमाच्या बुडीं। सुघटितें गाढीं। संचरीं पां ॥१९३॥
सव्य तो तळीं ठेविजे। तेणें सिवणीमध्यें पीडिजे। वरी बैसे तो सहजें। वाम चरणु ॥१९४॥
गुद मेंढ्राआंतौतीं। चारी अंगुळें निगुतीं। तेथ सार्ध सार्ध प्रांतीं। सांडूनियां ॥१९५॥
माजी अंगुळ एक निगे। तेथ टांचेचेनि उत्तरभागें। नेहेटिजे वरि आंगें। पेललेनि ॥१९६॥
उचलिलें कां नेणिजे। तैसें पृष्ठांत उचलिजे। गुल्फद्वय धरिजे। तेणेंचि मानें ॥१९७॥
मग शरीर संचु पार्था। अशेषही सर्वथा। पार्ष्णीचा माथा। स्वयंभु होय ॥१९८॥
अर्जुना हें जाण। मूळबंधाचें लक्षण। वज्रासन गौण। नाम यासी ॥१९९॥
ऐसी आधारीं मुद्रा पडे। आणि आधींचा मार्गु मोडे। तेथ अपानु आंतुलेकडे। वोहोटों लागे ॥२००॥
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन ॥१३॥
तंव करसंपुट आपैसें। वाम चरणीं बैसे। तंव बाहुमूळीं दिसे। थोरीव आली ॥२०१॥
माजीं उभारलेनि दंडें। शिरकमळ होय गाढें। नेत्रद्वारींचीं कवाडें। लागूं पाहती ॥२०२॥
वरचिलें पातीं ढळतीं। तळींचीं तळीं पुंजाळती। तेथ अर्धोन्मीलित स्थिती। उपजे तया ॥२०३॥
दिठी राहोनि आंतुलीकडे। बाहेर पाऊल घाली कोडें। ते ठायीं ठावो पडे। नासाग्रपीठीं ॥२०४॥
ऐसें आंतुच्या आंतुचि रचे। बाहेरी मागुतें न वचे। म्हणौनि राहणें आधिये दिठीचें। तेथेंचि होय ॥२०५॥
आतां दिशांची भेटी घ्यावी। कां रूपाची वास पहावी। हे चाड सरे आघवी। आपैसया ॥२०६॥
मग कंठनाळ आटे। हनुवटी हडौती दाटे। ते गाढी होऊनि नेहटे। वक्षःस्थळीं ॥२०७॥
माजीं घंटिका लोपे। वरी बंधु जो आरोपे। तो जालंधरु म्हणिपे। पंडुकुमरा ॥२०८॥
नाभीवरी पोखे। उदर हें थोके। अंतरीं फांके। हृदयकोशु ॥२०९॥
स्वाधिष्ठानावरिचिले कांठीं। नाभिस्थानातळवटीं। बंधु पडे किरीटी। वोढियाणा तो ॥२१०॥
प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिवरते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥१४॥
कुंडलीनी दर्शन. . . .
ऐसी शरीराबाहेरलीकडे। अभ्यासाची पांखर पडे। तंव आंतु त्राय मोडे। मनोधर्माची ॥२११॥
कल्पना निमे। प्रवृत्ती शमे। आंग मन विरमे। सावियाचि ॥२१२॥
क्षुधा काय जाहाली। निद्रा केउती गेली। हे आठवणही हारपली। न दिसे वेगां ॥२१३॥
जो मूळबंधें कोंडला। अपानु माघौता मुरडला। तो सवेंचि वरी सांकडला। धरी फुगूं ॥२१४॥
क्षोभलेपणें माजे। उवाइला ठायीं गाजे। मणिपूरेंसीं झुंजे। राहोनियां ॥२१५॥
मग थावलिये वाहटुळी। सैंघ घेऊनि घर डहुळी। बाळपणींची कुहीटुळी। बाहेर घाली ॥२१६॥
भीतरीं वळी न धरे। कोठ्यामाजीं संचरे। कफपित्तांचे थारे। उरों नेदी ॥२१७॥
धातूंचे समुद्र उलंडी। मेदाचे पर्वत फोडी। आंतली मज्जा काढी। अस्थिगत ॥२१८॥
नाडीतें सोडवी। गात्रांतें विघडवी। साधकातें भेडसावी। परी बिहावें ना ॥२१९॥
व्याधीतें दावी। सवेंचि हरवी। आप पृथ्वी कालवी। एकवाट ॥२२०॥
तंव येरीकडे धनुर्धरा। आसनाचा उबारा। शक्ति करी उजगरा। कुंडलिनीतें ॥२२१॥

नागिणीचें पिलें। कुंकुमें नाहलें। वळण घेऊनि आलें। सेजे जैसें ॥२२२॥
तैशी ते कुंडलिनी। मोटकी औट वळणी। अधोमुख सर्पिणी। निदेली असे ॥२२३॥
विद्युल्लतेची विडी। वन्हिज्वाळांची घडी। पंधरेयाची चोखडी। घोंटीव जैशी ॥२२४॥
तैशी सुबद्ध आटली। पुटीं होती दाटली। तें वज्रासनें चिमुटली। सावधु होय ॥२२५॥
तेथ नक्षत्र जैसें उलंडलें। कीं सूर्याचें आसन मोडलें। तेजाचें बीज विरूढलें। अंकुरेंशीं ॥२२६॥
तैशी वेढियातें सोडिती। कवतिकें आंग मोडिती। कंदावरी शक्ती। उठली दिसे ॥२२७॥
सहजें बहुतां दिवसांची भूक। वरी चेवविली तें होय मिष। मग आवेशें पसरी मुख। ऊर्ध्वा उजू ॥२२८॥
तेथ हृदयकोशातळवटीं। जो पवनु भरे किरीटी। तया सगळेयाचि मिठी। देऊनि घाली ॥२२९॥
मुखींच्या ज्वाळीं। तळीं वरी कवळी। मांसाची वडवाळी। आरोगूं लागे ॥२३०॥
जे जे ठाय समांस। तेथ आहाच जोडे घाउस। पाठी एकदोनी घांस। हियाही भरी ॥२३१॥
मग तळवे तळहात शोधी। उर्ध्वींचे खंड भेदी। झाडा घे संधी। प्रत्यंगाचा ॥२३२॥
अधोभाग तरी न संडी। परि नखींचेंही सत्त्व काढी। त्वचा धुवूनि जडी। पांजरेशीं ॥२३३॥
अस्थींचे नळे निरपे। शिरांचे हीर वोरपे। तंव बाहेरी विरूढी करपे। रोमबीजांची ॥२३४॥
मग सप्तधातूंच्या सागरीं। ताहानेली घोंट भरी। आणि सवेंचि उन्हाळा करी। खडखडीत ॥२३५॥
नासापुटौनि वारा। जो जातसे अंगुळें बारा। तो गच्च धरूनि माघारा। आंतु घाली ॥२३६॥
तेथ अध वरौतें आकुंचे। ऊर्ध्व तळौतें खांचे। तया खेंवामाजि चक्राचे। पदर उरती ॥२३७॥
एर्‍हवीं तरी दोन्ही तेव्हांचि मिळती। परी कुंडलिनी नावेक दुश्चित्त होती। ते तयांतें म्हणे परौती। तुम्हीचि कायसी एथें ? ॥२३८॥
आइकें पार्थिव धातु आघवी। आरोगितां कांहीं नुरवी। आणि आपातें तंव ठेवी। पुसोनियां ॥२३९॥
ऐसी दोनी भूतें खाये। ते वेळीं संपूर्ण धाये। मग सौम्य होउनि राहे। सुषुम्नेपाशीं ॥२४०॥
तेथ तृप्तीचेनि संतोषें। गरळ जें वमी मुखें। तेणें तियेचेनि पीयूषें। प्राणु जिये ॥२४१॥
तो अग्नि आंतूनि निघे। परी सबाह्य निववूंचि लागे। ते वेळीं कसु बांधिती आंगें। सांडिला पुढती ॥२४२॥
मार्ग मोडिती नाडीचे। नवविधपण वायूचें। जाय म्हणौनि शरीराचे। धर्मु नाहीं ॥२४३॥
इडा पिंगळा एकवटती। गांठी तिन्ही सुटती। साही पदर फुटती। चक्रांचे हे ॥२४४॥
मग शशी आणि भानु। ऐसा कल्पिजे जो अनुमानु। तो वातीवरी पवनु। गिंवसितां न दिसे ॥२४५॥
बुद्धीची पुळिका विरे। परिमळु घ्राणीं उरे। तोही शक्तीसवें संचरे। मध्यमेमाजीं ॥२४६॥
तंव वरिलेकडोनि ढाळें। चंद्रामृताचें तळें। कानवडोनी मिळे। शक्तिमुखीं ॥२४७॥
तेणें नाळकें रस भरे। तो सर्वांगामाजीं संचरे। जेथिंचा तेथ मुरे। प्राणपवनु ॥२४८॥
तातलिये मुसें। मेण निघोनि जाय जैसें। मग कोंदली राहे रसें। वोतलेनी ॥२४९॥
तैसें पिंडाचेनि आकारें। ते कळाचि कां अवतरे। वरी त्वचेचेनि पदरें। पांघुरली असे ॥२५०॥
जैशी आभाळाची बुंथी। करूनि राहे गभस्ती। मग फिटलिया दीप्ति। धरूनि ये ॥२५१॥
तैसा आहाचवरि कोरडा। त्वचेचा असे पातोडा। तो झडोनि जाय कोंडा। जैसा होय ॥२५२॥
मग काश्मीरीचे स्वयंभ। कां रत्नबीजा निघाले कोंभ। अवयवकांतीची भांब। तैसी दिसे ॥२५३॥
नातरी संध्यारागींचे रंग। काढूनि वळिलें तें आंग। कीं अंतर्ज्योतीचें लिंग। निर्वाळिलें ॥२५४॥
कुंकुमाचें भरींव। सिद्धरसाचें वोतींव। मज पाहतां सावेव। शांतिचि ते ॥२५५॥
तें आनंदचित्रींचें लेप। नातरी महासुखाचें रूप। कीं संतोषतरूचें रोप। थांबलें जैसें ॥२५६॥
तो कनकचंपकाचा कळा। कीं अमृताचा पुतळा। नाना सासिन्नला मळा। कोंवळिकेचा ॥२५७॥

हो कां जे शारदियेचेनि वोलें। चंद्रबिंब पाल्हेलें। कां तेजचि मूर्त बैसलें। आसनावरी ॥२५८॥
तैसें शरीर होये। जे वेळीं कुंडलिनी चंद्र पीये। मग देहाकृति बिहे। कृतांतु गा ॥२५९॥
वार्धक्य तरी बहुडे। तारुण्याची गांठी विघडे। लोपली उघडे। बाळदशा ॥२६०॥
वयसा तरी येतुलेवरी। एऱ्हवीं बळाचा बळार्थु करी। धैर्याची थोरी। निरुपमु ॥२६१॥
कनकद्रुमाच्या पालवीं। रत्नकळिका नित्य नवी। नखें तैसीं बरवीं। नवीं निघती ॥२६२॥
दांतही आन होती। परि अपाडें सानेजती। जैसी दुबाहीं बैसे पांती। हिरेयांची ॥२६३॥
माणिकुलियांचिया कणिया। सावियाचि अणुमानिया। तैसिया सर्वांगीं उधवती अणियां। रोमांचियां ॥२६४॥
करचरणतळें। जैसीं कां रातोत्पलें। पाखाळींव होती डोळे। काय सांगों ॥२६५॥
निडाराचेनि कोंदाटें। मोतियें नावरती संपुटें। मग शिवणी जैशी उतटे। शुक्तिपल्लवांची ॥२६६॥
तैशीं पातियांचिये कवळिये न समाये। दिठी जाकळोनि निघों पाहे। आधिलीचि परी होये। गगना कवळिती ॥२६७॥
आइके देह होय सोनियाचें। परि लाघव ये वायूचें। जे आप आणि पृथ्वीचे। अंशु नाहीं ॥२६८॥
मग समुद्रापैलीकडील देखे। स्वर्गींचा आलोचु आइके। मनोगत वोळखे। मुंगियेचें ॥२६९॥
पवनाचा वारिकां वळघे। चाले तरी उदकीं पाऊल न लागे। येणें येणें प्रसंगें। येती बहुता सिद्धि ॥२७०॥
आइकें प्राणाचा हातु धरूनी। गगनाची पाउटी करूनी। मध्यमेचेनि दादराहुनी। हृदया आली ॥२७१॥
ते कुंडलिनी जगदंबा। जे चैतन्यचक्रवर्तीची शोभा। जया विश्वबीजाचिया कोंभा। साउली केली ॥२७२॥
जे शून्यलिंगाची पिंडी। जे परमात्मया शिवाची करंडी। जे प्रणवाची उघडी। जन्मभूमी ॥२७३॥
हें असो ते कुंडलिनी बाळी। हृदयाआंतु आली। अनुहताची बोली। चावळे ते ॥२७४॥
शक्तीचिया आंगा लागलें। बुद्धीचें चैतन्य होतें जाहलें। तें तेणें आइकिलें। अळुमाळु ॥२७५॥
घोषाच्या कुंडीं। नादचित्रांचीं रूपडीं। प्रणवाचिया मोडी। रेखिलीं ऐसीं ॥२७६॥
हेंचि कल्पावें तरी जाणिजे। परी कल्पितें कैचें आणिजे। तरी नेणों काय गाजे। तिये ठायीं ॥२७७॥
विसरोनि गेलों अर्जुना। जंव नाशु नाहीं पवना। तंव वाचा आथी गगना। म्हणौनि घुमे ॥२७८॥
तया अनाहताचेनि मेघें। आकाश दुमदुमों लागे। तंव ब्रह्मस्थानींचें बेगें। सहज फिटे ॥२७९॥
आइकें कमळगर्भाकारें। जें महदाकाश दुसरें। जेथ चैतन्य आधातुरें। करूनि असिजे ॥२८०॥
तया हृदयाच्या परिवरीं। कुंडलिनिया परमेश्वरी। तेजाची शिदोरी। विनियोगिली ॥२८१॥
बुद्धीचेनि शाकें। हातबोनें निकें। द्वैत तेथ न देखे। तैसें केलें ॥२८२॥
निजकांती हारविली। मग प्राणुचि केवळ जाहाली। ते वेळीं कैसी गमली। म्हणावी पां ? ॥२८३॥
हो कां जे पवनाची पुतळी। पांघुरली होती सोनसळी। ते फेडूनियां वेगळी। ठेविली तिया ॥२८४॥
नातरी वायूचेनि आंगें झगटली। दीपाची दिठी निवटली। कां लखलखोनि हारपली। वीजु गगनीं ॥२८५॥
तैशी हृदयकमळवेऱ्हीं। दिसे जैशी सोनियाची सरी। नातरी प्रकाशजळाची झरी। वाहत आली ॥२८६॥
मग ते हृदयभूमी पोकळे। जिराली कां एके वेळे। तैसें शक्तीचें रूप मावळे। शक्तीचिमाजीं ॥२८७॥
तेव्हां तरी शक्तीचि म्हणिजे। एऱ्हवीं तो प्राणु केवळ जाणिजे। आतां नादुबिंदु नेणिजे। कळा ज्योती ॥२८८॥
मनाचा हन मारु। कां पवनाचा आधारु। ध्यानाचा आदरु। नाहीं परी ॥२८९॥
हे कल्पना घे सांडी। तें नाहीं इये परवडी। हे महाभूतांची फुडी। आटणी देखां ॥२९०॥
पिंडें पिंडाचा ग्रासु। तो हा नाथसंकेतींचा दंशु। परि दाऊनि गेला उद्देशु। श्रीमहाविष्णु ॥२९१॥
तया ध्वनिताचें केणें सोडुनि। यथार्थाची घडी झाडुनी। उपलविली म्यां जाणुनी। ग्राहीक श्रोते ॥२९२॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्ति निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥१५॥

ऐकें शक्तीचें तेज जेव्हां लोपे। तेथ देहाचें रूप हारपे। मग तो डोळयांमाजीं लपे। जगाचिया ॥२९३॥
एऱ्हवीं आधिलाचि ऐसें। सावयव तरी दिसे। परी वायूचें कां जैसें। वळिलें होय ॥२९४॥
नातरी कर्दळीचा गाभा। बुंथी सांडोनी उभा। कां अवयवचि नभा। उदयला तो ॥२९५॥
तैसें होय शरीर। तैं तें म्हणिजे खेचर। हें पद होतां चमत्कार। पिंडजनीं ॥२९६॥
देखें साधकु निघोनि जाये। मागां पाउलांची वोळ राहे। तेथ ठायीं ठायीं होये। अणिमादिक ॥२९७॥
परि तेणें काय काज आपणयां। अवधारीं ऐसा धनंजया। लोप आथी भूतत्रया। देहींचा देहीं ॥२९८॥
पृथ्वीतें आप विरवी। आपातें तेज जिरवी। तेजातें पवनु हरवी। हृदयामाजीं ॥२९९॥
पाठीं आपण एकला उरे। परि शरीराचेनि अनुकारें। मग तोही निगे अंतरें। गगना मिळे ॥३००॥
ते वेळीं कुंडलिनी हे भाष जाये। मग मारुती ऐसें नाम होये। परि शक्तिपण तें आहे। जंव न मिळे शिवीं ॥३०१॥
मग जालंधर सांडी। ककारांत फोडी। गगनाचिये पाहाडीं। पैठी होय ॥३०२॥
ते ॐ काराचिये पाठी। पाय देत उठाउठी। पश्यंतीचिये पाउटी। मागां घाली ॥३०३॥
पुढां तन्मात्रा अर्धवेरी। आकाशाच्या अंतरीं। भरती गमे सागरीं। सरिता जेवीं ॥३०४॥
मग ब्रह्मरंध्रीं स्थिरावोनी। सोऽहंभावाच्या बाह्या पसरुनी। परमात्मलिंगा धांवोनी। आंगा घडे ॥३०५॥
तंव महाभूतांची जवनिका फिटे। मग दोहींसि होय झटें। तेथ गगनासकट आटे। समरसीं तिये ॥३०६॥
पैं मेघाचेनि मुखीं निवडिला। समुद्र कां वोघीं पडिला। तो मागुता जैसा आला। आपणपयां ॥३०७॥
तेवीं पिंडाचेनि मिषें। पदीं पद प्रवेशे। तें एकत्व होय तैसें। पंडुकुमरा ॥३०८॥
आतां दुजें हन होतें। कीं एकचि हें आइतें। ऐशिये विवंचनेपुरतें। उरेचिना ॥३०९॥
गगनीं गगन लया जाये। ऐसें जें कांहीं आहे। तें अनुभवें जो होये। तो होऊनि ठाके ॥३१०॥
म्हणौनि तेथिंची मातु। न चढेचि बोलाचा हातु। जेणें संवादाचिया गांवाआंतु। पैठी कीजे ॥३११॥
अर्जुना एऱ्हवीं तरी। इया अभिप्रायाचा जे गर्व धरी। ते पाहें पां वैखरी। दुरी ठेली ॥३१२॥
भ्रूलता मागिलीकडे। तेथ मकाराचेंचि आंग न मांडे। सडेया प्राणा सांकडें। गगना येतां ॥३१३॥
पाठीं तेथेंचि तो भेसळला। तैं शब्दाचा दिवो मावळला। मग तयाहि वरी आटु भविन्नला। आकाशाचा ॥३१४॥
आतां महाशून्याचिया डोहीं। जेथ गगनसीचि थावो नाहीं। तेथ तागा लागेल काई। बोलाचा इया ? ॥३१५॥
म्हणौनि आखरामाजीं सांपडे। कीं कानवरी जोडे। हे तैसें नव्हे फुडें। त्रिशुद्धी गा ॥३१६॥
जें कहीं दैवें। अनुभविलें फावे। तैं आपणचि हें ठाकावें। होऊनियां ॥३१७॥
पुढती जाणणें तें नाहींचि। म्हणौनि असो किती हेंचि। बोलावें आतां वायांचि। धनुर्धरा ॥३१८॥
ऐसें शब्दजात माघौतें सरे। तेथ संकल्पाचें आयुष्य पुरे। वाराही जेथ न शिरे। विचाराचा ॥३१९॥
जें उन्मनियेचें लावण्य। जें तुर्येचें तारुण्य। अनादि जें अगण्य। परमतत्त्व ॥३२०॥
जें विश्वाचें मूळ। जें योगद्रुमाचें फळ। जें आनंदाचें केवळ। चैतन्य गा ॥३२१॥
जें आकाराचा प्रांतु। जें मोक्षाचा एकांतु। जेथ आदि आणि अंतु। विरोनी गेले ॥३२२॥
जें महाभूतांचें बीज। जें महातेजाचें तेज। एवं पार्था जें निज- । स्वरूप माझें ॥३२३॥
ते हे चतुर्भुज कोंभेली। जयाची शोभा रूपा आली। देखोनि नास्तिकीं नोकिलीं। भक्तवृंदें ॥३२४॥
तें अनिर्वाच्य महासुख। पैं आपणचि जाहले जे पुरुष। जयांचे कां निष्कर्ष। प्राप्तिवेरीं ॥३२५॥
आम्हीं साधन हें जें सांगितलें। तेंचि शरीरीं जिहीं केलें। ते आमुचेनि पाडें आले। निर्वाळलेया ॥३२६॥
परब्रह्माचेनि रसें। देहाकृतीचिये मुसें। वोतींव जाहले तैसे। दिसती आंगें ॥३२७॥
जरी हे प्रतीति हन अंतरीं फांके। तरी विश्वचि हें अवघें झांके। तंव अर्जुन म्हणे निकें। साचचि जी हें ॥३२८॥
कां जें आपण आतां देवो। हा बोलिले जो उपावो। तो प्राप्तीचा ठावो। म्हणोनि घडे ॥३२९॥

इये अभ्यासीं जे दृढ होती। ते भरंवसेनि ब्रह्मत्वा येती। हें सांगतियाची रीती। कळलें मज ॥३३०॥
देवा गोठीचि हे ऐकतां। बोधु उपजतसे चित्ता। मा अनुभवें तल्लीनता। नोहेल केवीं ? ॥३३१॥
म्हणौनि एथ कांहीं। अनारिसें नाहीं। परी नावभरी चित्त देईं। बोला एका ॥३३२॥
आतां कृष्णा तुवां सांगितला योगु। तो मना तरी आला चांगु। परि न शकें करूं पांगु। योग्यतेचा ॥३३३॥
सहजें आंगिक जेतुलें आहे। तेतुलियाची जरी सिद्धि जाये। तरी हाचि मार्गु सुखोपायें। अभ्यासीन ॥३३४॥
नातरी देवो जैसें सांगतील। तैसें आपणपें जरी न ठकेल। तरी योग्यतेवीण होईल। तेंचि पुसों ॥३३५॥
जीवींचिये ऐसी धारण। म्हणोनि पुसावया जाहलें कारण। मग म्हणे तरी आपण। चित्त देइजो ॥३३६॥
हां हो जी अवधारिलें। जें हें साधन तुम्हीं निरूपिलें। तें आवडतयाहि अभ्यासिलें। फावों शके ? ॥३३७॥
कीं योग्यतेवीण नाहीं। ऐसें हन आहे कांहीं। तेथ श्रीकृष्ण म्हणती काई। धनुर्धरा ॥३३८॥
हें काज कीर निर्वाण। परि आणिकही जें कांहीं साधारण। तेंही अधिकाराचे वोडवेविण। काय सिद्धि जाय ? ॥३३९॥
पैं योग्यता जे म्हणिजे। ते प्राप्तीची अधीन जाणिजे। कां जे योग्य होऊनि कीजे। तें आरंभिलें फळें ॥३४०॥
तरी तैसी एथ कांहीं। सावियाचि केणी नाहीं। आणि योग्यतेची काई। खाणी असे ? ॥३४१॥
नावेक विरक्तु। जाहला देहधर्मीं नियतु। तरि तोचि नव्हे व्यवस्थितु। अधिकारिया ? ॥३४२॥
येतुलालिये आयणीमाजिवडें। योग्यपण तूतेंही जोडे। ऐसें प्रसंगें सांकडें। फेडिलें तयाचें ॥३४३॥
मग म्हणे पार्था। ते हे ऐसी व्यवस्था। अनियतासि सर्वथा। योग्यता नाहीं ॥३४४॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥१६॥

जो रसनेंद्रियाचा अंकिला। कां निद्रेसी जीवें विकला। तो नाहींच एथ म्हणितला। अधिकारिया ॥३४५॥
अथवा आग्रहाचिये बांदोडी। क्षुधा तृषा कोंडी। आहारातें तोडी। मारूनियां ॥३४६॥
निद्रेचिया वाटा नवचे। ऐसा दृढिवेचेनि अवतरणें नाचे। तें शरीरचि नव्हे तयाचें। मा योगु कवणाचा ? ॥३४७॥
म्हणौनि अतिशयें विषयो सेवावा। तैसा विरोधु नोहावा। कां सर्वथा निरोधावा। हेंही नको ॥३४८॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१७॥

आहार तरी सेविजे। परी युक्तीचेनि मापें मविजे। क्रियाजात आचरिजे। तयाचि स्थिती ॥३४९॥
मितला बोलीं बोलिजे। मितलिया पाउलीं चालिजे। निद्रेही मानु दीजे। अवसरें एकें ॥३५०॥
जागणें जरी जाहलें। तरी होआवें तें मितलें। येतुलेनि धातुसाम्य संचलें। असेल सहजें ॥३५१॥
ऐसें युक्तीचेनि हातें। जें इंद्रियां वोपिजे भातें। तैं संतोषासी वाढतें। मनचि करी ॥३५२॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥

बाहेर युक्तीची मुद्रा पडे। तव आंत आंत सुख वाढे। तेथें सहजेंचि योगु घडे। नाभ्यासितां ॥३५३॥
जैसें भाग्याचिया भडसें। उद्यमाचेनि मिसें। मग समृद्धिजात आपैसें। घर रिघे ॥३५४॥
तैसा युक्तिमंतु कौतुकें। अभ्यासाचिया मोहरा ठाके। आणि आत्मसिद्धीचि पिके। अनुभवु तयाचा ॥३५५॥
म्हणोनि युक्ति हे पांडवा। घडे जया सदैवा। तो अपवर्गीचिये राणिवा। अळंकारिजे ॥३५६॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥१९॥

युक्ति योगाचें आंग पावे। ऐसें प्रयाग जेथ होय बरवें। तेथ क्षेत्रसंन्यासें स्थिरावें। मानस जयाचें ॥३५७॥
तयातें योगयुक्त तूं म्हण। हेंही प्रसंगें जाण। तें दीपाचे उपलक्षण। निर्वातींचिया ॥३५८॥

आतां तुझें मनोगत जाणोनी। कांहीं एक आम्ही म्हणौनि। तें निकें चित्त देउनी। परिसावें गा ॥३५९॥
तूं प्राप्तीची चाड वाहसी। परी अभ्यासीं दक्षु नव्हसी। तें सांग पां काय बिहसी। दुवाडपणा ? ॥३६०॥
तरी पार्था हें झणें। सायास घेशीं हो मनें। वायां बागूल इये दुर्जनें। इंद्रियें करिती ॥३६१॥
पाहें पां आयुष्यातें अढळ करी। जें सरतें जीवित वारी। तया औषधातें वैरी। काय जिव्हा न म्हणे ? ॥३६२॥
ऐसें हितासि जें जें निकें। तें सदाचि या इंद्रियां दुःखें। एऱ्हवीं सोपें योगासारिखें। कांहीं आहे ? ॥३६३॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२०॥
सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥२१॥

म्हणौनि आसनाचिया गाढिका। जो आम्हीं अभ्यासु सांगितला निका। तेणें होईल तरी हो कां। निरोधु यया ॥३६४॥
एऱ्हवीं तरी येणें योगें। जैं इंद्रियां विंदाण लागे। तैं चित्त भेटों रिगे। आपणपेयां ॥३६५॥
परतोनि पाठिमोरें ठाके। आणि आपणियांतें आपण देखे। देखतखेवों वोळखे। म्हणे तत्त्व हें मी ॥३६६॥
तिये ओळखीचिसरिसें। सुखाचिया साम्राज्यीं बैसे। मग आपणपां समरसें। विरोनि जाय ॥३६७॥
जयापरतें आणिक नाहीं। जयातें इंद्रियें नेणती कहीं। तें आपणचि आपुलिया ठायीं। होऊनि ठाके ॥३६८॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२॥

मग मेरूपासूनि थोरें। देह दुःखाचेनि डोंगरें। दाटिजो पां पडिभरें। चित्त न दटे ॥३६९॥
कां शस्त्रें वरी तोडिलिया। देह अग्निमाजीं पडलिया। चित्त महासुखीं पहुडलिया। चेवोचि नये ॥३७०॥
ऐसें आपणपां रिगोनि ठाये। मग देहाची वासु न पाहे। आणिकचि सुख होऊनि जाये। म्हणूनि विसरे ॥३७१॥

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥२३॥

जया सुखाचिया गोडी। मग आर्तीची सेचि सोडी। संसाराचिया तोंडीं। गुंतलें जें ॥३७२॥
जें योगाची बरव। संतोषाची राणिव। ज्ञानाची जाणीव। जयालागीं ॥३७३॥
तें अभ्यासिलेनि योगें। सावयव देखावें लागे। देखिलें तरी आंगें। होईजेल गा ॥३७४॥

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥२४॥

तरि तोचि योगु बापा। एके परी आहे सोपा। जरी पुत्रशोकु संकल्पा। दाखविजे ॥३७५॥
हां विषयातें निमालिया आइके। इंद्रियें नेमाचिया धारणीं देखे। तरी हियें घालूनि मुके। जीवित्वासी ॥३७६॥
ऐसें वैराग्य हें करी। तरी संकल्पाची सरे वारी। सुखें धृतीचिया धवळारीं। बुद्धि नांदे ॥३७७॥

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न कींचिदपि चिन्तयेत् ॥२५॥
यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥२६॥

बुद्धी धैर्या होय वसौटा। मनातें अनुभवाचिया वाटा। हळु हळु करी प्रतिष्ठा। आत्मभुवनीं ॥३७८॥
याही एके परी। प्राप्ती आहे विचारीं। हें न ठके तरी सोपारी। आणिक ऐकें ॥३७९॥
आतां नियमुचि हा एकला। जीवें करावा आपुला। जैसा कृतनिश्चयाचिया बोला-। बाहेरा नोहे ॥३८०॥
जरी येतुलेनि चित्त स्थिरावें। तरी काजा आलें स्वभावें। नाहीं तरी घालावें। मोकलुनी ॥३८१॥

मग मोकलिलें जेथ जाईल। तेथूनि नियमूचि घेउनि येईल। ऐसेनि स्थैर्यचि होईल। सावियाचि कीं ॥३८२॥

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥२७॥

पाठीं केतुलेनि एके वेळे। तया स्थैर्याचेनि मेळें। आत्मस्वरूपाजवळें। येईल सहजें ॥३८३॥

तयातें देखोनि आंगा घडेल। तेथ अद्वैतीं द्वैत बुडेल। आणि ऐक्यतेजें उघडेल। त्रैलोक्य हें ॥३८४॥

आकाशीं दिसे दुसरें। तें अभ्र जैं विरे। तैं गगनचि कां भरे। विश्व जैसें ॥३८५॥

तैसें चित्त लया जाये। आणि चैतन्यचि आघवें होये। ऐसी प्राप्ति सुखोपायें। आहे येणें ॥३८६॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥२८॥

या सोपिया योगस्थिती। उकलु देखिला गा बहुतीं। संकल्पाचिया संपत्ती। रुसोनियां ॥३८७॥

तें सुखाचेनि सांगातें। आलें परब्रह्मा आंतौतें। तेथ लवण जैसें जळातें। सांडूं नेणें ॥३८८॥

तैसें होय तिये मेळीं। मग सामरस्याचिया राउळीं। महासुखाची दिवाळी। जगेंसि दिसे ॥३८९॥

ऐसें आपुले पायवरी। चालिजे आपुले पाठीवरी। हें पार्था नागवे तरी। आन ऐकें ॥३९०॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥२९॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥३०॥

तरी मी तंव सकळ देहीं। असे एथ विचारु नाहीं। आणि तैसेंचि माझ्या ठायीं। सकळ असे ॥३९१॥

हें ऐसेंचि संचलें। परस्परें मिसळलें। बुद्धी घेपे एतुलें। होआवें गा ॥३९२॥

एऱ्हवीं तरी अर्जुना। जो एकवटलिया भावना। सर्वभूतीं अभिन्ना। मातें भजे ॥३९३॥

भूतांचेनि अनेकपणें। अनेक नोहे अंतःकरणें। केवळ एकत्वचि माझें जाणें। सर्वत्र जो ॥३९४॥

मग तो एक हा मियां। बोलता दिसतसे वायां। एऱ्हवीं न बोलिजे तरी धनंजया। तो मीचि आहें ॥३९५॥

दीपा आणि प्रकाशा। एकवंकीचा पाडु जैसा। तो माझ्या ठायीं तैसा। मी तयामाजीं ॥३९६॥

जैसा उदकाचेनि आयुष्यें रसु। कां गगनाचेनि मानें अवकाशु। तैसा माझेनि रूपें रूपसु। पुरुषु तो गा ॥३९७॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।

सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥३१॥

जेणें ऐक्याचिये दिठी। सर्वत्र मातेंचि किरीटी। देखिला जैसा पटीं। तंतु एकु ॥३९८॥

कां स्वरूपें तरी बहुतें आहाती। परी तैसीं सोनीं बहुवें न होती। ऐसी ऐक्याचळाची स्थिती। केली जेणें ॥३९९॥

नातरी वृक्षांचीं पानें जेतुलीं। तेतुलीं रोपें नाहीं लाविलीं। ऐसी अद्वैतदिवसें पाहली। रात्री जया ॥४००॥

तो पंचात्मकीं सांपडे। तरी मग सांग पां कैसेनि अडे ? । जो प्रतीतीचेनि पाडें। मजसीं तुके ॥४०१॥

माझें व्यापकपण आघवें। गवसलें तयाचेनि अनुभवें। तरी न म्हणतां स्वभावें। व्यापकु जाहला ॥४०२॥

आतां शरीरीं तरी आहे। परी शरीराचा तो नोहे। ऐसें बोलवरी होये। तें करूं ये काई ॥४०३॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥३२॥

म्हणौनि असो तें विशेषें। आपणपेयांसारिखें। जो चराचर देखे। अखंडित ॥४०४॥

सुखदुःखादि वर्मे। कां शुभाशुभें कर्में। दोनी ऐसीं मनोधर्में। नेणेचि जो ॥४०५॥

हें सम विषम भाव। आणिकही विचित्र जें सर्व। तें मानी जैसे अवयव। आपुले होती ॥४०६॥

हें एकैक काय सांगावें। जया त्रैलोक्यचि आघवें। मी ऐसें स्वभावें। बोधा आलें ॥४०७॥
तयाही देह एकु कीर आथी। लौकिकीं सुखदुःखी तयातें म्हणती। परी आम्हांतें ऐसी प्रतीती। परब्रह्मचि हा ॥४०८॥
म्हणौनि आपणपां विश्व देखिजे। आणि आपण विश्व होईजे। ऐसें साम्यचि एक उपासिजे। पांडवा गा ॥४०९॥
हें तूतें बहुतीं प्रसंगीं। आम्ही म्हणों याचिलागीं। जे साम्यापरौती जगीं। प्राप्ति नाहीं ॥४१०॥
अर्जुन उवाच ।
योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥३३॥
चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥३४॥
तंव अर्जुन म्हणे देवा। तुम्ही सांगा कीर आमुचिया कणवा। परी न पुरों जी स्वभावा। मनाचिया ॥४११॥
हें मन कैसें केवढें। ऐसें पाहों म्हणों तरी न सांपडें। एऱ्हवीं राहाटावया थोडें। त्रैलोक्य यया ॥४१२॥
म्हणौनि ऐसें कैसें घडेल। जे मर्कट समाधी येईल। कां राहा म्हणतलिया राहेल। महावातु ? ॥४१३॥
जें बुद्धीतें सळी। निश्चयातें टाळी। धैर्येसीं हातफळी। मिळऊनि जाय ॥४१४॥
जें विवेकातें भुलवी। संतोषासी चाड लावी। बैसिजे तरी हिंडवी। दाही दिशा ॥४१५॥
जें निरोधलें घे उवावो। जया संयमुचि होय सावावो। तें मन आपुला स्वभावो। सांडील काई ? ॥४१६॥
म्हणौनि मन एक निश्चळ राहेल। मग आम्हांसि साम्य होईल। हें विशेषेंही न घडेल। याचिलागीं ॥४१७॥
श्रीभगवानुवाच ।
असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥३५॥
तंव कृष्ण म्हणती साचचि। बोलत आहासि तें तैसेंचि। यया मनाचा कीर चपळचि। स्वभावो गा ॥४१८॥
परि वैराग्याचेनि आधारें। जरी लाविलें अभ्यासाचिये मोहरें। तरी केतुलेनि एके अवसरें। स्थिरावेल ॥४१९॥
कां जें यया मनाचें एक निकें। जें देखिलें गोडीचिया ठाया सोके। म्हणौनि अनुभवसुखचि कवतिकें। दावीत जाइजे ॥
४२० ॥
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥३६॥
एऱ्हवीं विरक्ति जयांसि नाहीं। जे अभ्यासीं न रिघती कहीं। तयां नाकळे हें आम्हीही। न मनूं कायी ॥४२१॥
परि यमनियमांचिया वाटा न वचिजे। कहीं वैराग्याची से न करिजे। केवळ विषयजळीं ठाकिजे। बुडी देउनी ॥४२२॥
यया जालिया मानसा कहीं। युक्तीची कांबी लागली नाहीं। तरी निश्चळ होईल काई। कैसेनि सांगें ? ॥४२३॥
म्हणौनि मनाचा निग्रहो होये। ऐसा उपाय जो आहे। तो आरंभीं मग नोहे। कैसा पाहों ॥४२४॥
तरी योगसाधन जितुकें। कें अवघेंचि काय लटिकें ? । परि आपणयां अभ्यासूं न ठाके। हेंचि म्हण ॥४२५॥
आंगीं योगाचें होय बळ। तरी मन केतुलें चपळ ? । काय महदादि हें सकळ। आपु नोहे ? ॥४२६॥
तेथ अर्जुन म्हणे निकें। देवो बोलती तें न चुके। साचचि योगबळेंसीं न तुके। मनोबळ ॥४२७॥
तरी तोचि योगु कैसा केवीं जाणों। आम्ही येतुले दिवस याची मातुही नेणों। म्हणौनि मनातें जी म्हणों। अनावर ॥
४२८॥
हा आतां अघवेया जन्मा। तुझेनि प्रसादें पुरुषोत्तमा। योगपरिचयो आम्हां। जाहला आजी ॥४२९॥
अर्जुन उवाच ।
अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।

अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥३७॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।

अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥३८॥

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।

त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥३९॥

परि आणिक एक गोसांविया। मज संशयो असे साविया। तो तूं वांचूनि फेडावया। समर्थु नाहीं ॥४३०॥

म्हणौनि सांगें गोविंदा। कवण एकु मोक्षपदा। झोंबत होता श्रद्धा। उपायेंविण ॥४३१॥

इंद्रियग्रामोनि निघाला। आस्थेचिया वाटे लागला। आत्मसिद्धिचिया पुढिला। नगरा यावया ॥४३२॥

तंव आत्मसिद्धि न ठकेचि। आणि मागुतें न येववेचि। ऐसा अस्तु गेला माझारींचि। आयुष्यभानु ॥४३३॥

जैसें अकाळीं आभाळ। अळुमाळु सपातळ। विपायें आलें केवळ। वसे ना वर्षे ॥४३४ ॥

तैसीं दोन्ही दुरावलीं। जे प्राप्ती तंव अलग ठेली। आणि अप्राप्तीही सांडवली। श्रद्धा तया ॥४३५॥

ऐसा दोंला अंतरला कां जी। जो श्रद्धेच्या समाजीं। बुडाला तया हो जी। कवण गति ? ॥४३६॥

श्रीभगवानुवाच ।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥४०॥

तंव कृष्ण म्हणती पार्था। जया मोक्षसुखीं आस्था। तया मोक्षावांचूनि अन्यथा। गती आहे गा ? ॥४३७॥

परि एतुलें हेंचि एक घडे। जें माझारीं विसवावें पडे। तेंही परी ऐसेनि सुरवाडें। जो देवां नाहीं ॥४३८॥

एऱ्हवीं अभ्यासाचा उचलता। पाउलीं जरी चालता। तरी दिवसाआधीं ठाकिता। सोऽहंसिद्धीतें ॥४३९॥

परि तेतुला वेगु नव्हेचि। म्हणौनि विसांवा तरी निकाचि। पाठीं मोक्षु तंव तैसाचि। ठेविला असे ॥४४०॥

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

ऐकें कवतिक हें कैसें। जें शतमखा लोक सायासें। तें तो पावे अनायासें। कैवल्यकामु ॥४४१॥

मग तेथिंचे जे अमोघ। अलौकिक भोग। भोगितांही सांग। कांटाळे मन ॥४४२॥

हा अंतरायो अवचितां। कां वोढवला भगवंता ? । ऐसा दिविभोग भोगितां। अनुतापी नित्य ॥४४३॥

पाठीं जन्में संसारीं। परि सकळ धर्माचिया माहेरीं। लांबा उगवे आगरीं। विभवश्रियेचा ॥४४४॥

जयातें नीतिपंथें चालिजे। सत्यधूत बोलिजे। देखावें तें देखिजे। शास्त्रदृष्टीं ॥४४५॥

वेद तो जागेश्वरु। जया व्यवसाय निजाचारु। सारासार विचारु। मंत्री जया ॥४४६॥

जयाच्या कुळीं चिंता। जाली ईश्वराची पतिव्रता। जयातें गृहदेवता। आदि ऋद्धि ॥४४७॥

ऐसी निजपुण्याची जोडी। वाढिन्नली सर्वसुखाची कुळवाडी। तिये जन्मे तो सुरवाडी। योगच्युतु ॥४४८॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।

एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥४२॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।

यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥४३॥

अथवा ज्ञानाग्निहोत्री। जे परब्रह्मण्यश्रोत्री। महासुखक्षेत्रीं। आदिवंत ॥४४९॥

जे सिद्धांताचिया सिंहासनीं। राज्य करिती त्रिभुवनीं। जे कूजती कोकिल वनीं। संतोषाच्या ॥४५०॥

जे विवेकद्रुमाचे मुळीं। बैसले आहाति नित्य फळीं। तया योगियांचिया कुळीं। जन्म पावे ॥४५१॥

मोटकी देहाकृति उमटे। आणि निजज्ञानाची पाहांट फुटे। सूर्यापुढें प्रगटे। प्रकाशु जैसा ॥४५२॥

तैसी दशेची वाट न पाहतां। वयसेचिया गांवा न येतां। बाळपणींच सर्वज्ञता। वरी तयातें ॥४५३॥
तिये सिद्धप्रज्ञेचेनि लाभें। मनचि सारस्वतें दुभे। मग सकळ शास्त्रे स्वयंभें। निघती मुखें ॥४५४॥
ऐसें जे जन्म। जयालागीं देव सकाम। स्वर्गीं ठेले जप होम। करिती सदा ॥४५५॥
अमरीं भाट होईजे। मग मृत्युलोकातें वानिजे। ऐसें जन्म पार्था गा जे। तें तो पावे ॥४५६॥
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥४४॥
आणि मागील जे सद्बुद्धि। जेथ जीवित्वा जाहाली होती अवधि। मग तेचि पुढती निरवधि। नवी लाहे ॥४५७॥
तेथ सदैवा आणि पायाळा। वरी दिव्यांजन होय डोळां। मग देखे जैसी अवलीळा। पाताळधनें ॥४५८॥
तैसें दुर्भेद जे अभिप्राय। कां गुरुगम्य हन ठाय। तेथ सौरसेंवीण जाय। बुद्धि तयाची ॥४५९॥
बळियें इंद्रियें येती मना। मन एकवटे पवना। पवन सहजें गगना। मिळोंचि लागे ॥४६०॥
ऐसें नेणों काय अपैसें। तयातेंचि कीजे अभ्यासें। समाधि घर पुसे। मानसाचें ॥४६१॥
जाणिजे योगपीठीचा भैरवु। काय हा आरंभरंभेचा गौरवु। कीं वैराग्यसिद्धीचा अनुभवु। रूपा आला ॥४६२॥
हा संसारु उमाणितें माप। कां अष्टांगसामग्रीचें द्वीप। जैसें परिमळेंचि धरिजे रूप। चंदनाचें ॥४६३॥
तैसा संतोषाचा काय घडिला। कीं सिद्धिभांडारींहूनि काढिला। दिसे तेणें मानें रूढला। साधकदशे ॥४६४॥
प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥४५॥
जे वर्षशतांचिया कोडी। जन्मसहस्रांचिया आडी। लंघितां पातला थडी। आत्मसिद्धीची ॥४६५॥
म्हणौनि साधनजात आघवें। अनुसरे तया स्वभावें। मग आयतिये बैसे राणिवे। विवेकाचिये ॥४६६॥
पाठीं विचारितया वेगां। तो विवेकुही ठाके मागां। मग अविचारणीय तें आंगा। घडोनि जाय ॥४६७॥
तेथ मनाचें मेहुडें विरे। पवनाचें पवनपण सरे। आपणपां आपण मुरे। आकाशही ॥४६८॥
प्रणवाचा माथा बुडे। येतुलेनि अनिर्वाच्य सुख जोडे। म्हणौनि आधींचि बोलु बहुडे। तयालागीं ॥४६९॥
ऐसी ब्रह्मींची स्थिती। जे सकळां गतींसी गती। तया अमूर्ताची मूर्ति। होऊनि ठाके ॥४७०॥
तेणें बहुतीं जन्मीं मागिलीं। विक्षेपांचीं पाणिवळें झाडिलीं। म्हणौनि उपजतखेंवो बुडाली। लग्नघटिका ॥४७१॥
आणि तद्रूपतेसीं लग्न। लागोनि ठेलें अभिन्न। जैसे लोपलें अभ्र गगन। होऊनि ठाके ॥४७२॥
तैसें विश्व जेथ होये। मागौतें जेथ लया जाये। तें विद्यमानेंचि देहें। जाहला तो गा ॥४७३॥
तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥४६॥
जया लाभाचिया आशा। करूनि धैर्यबाहूंचा भरंवसा। घालीत षट्कर्मांचा धारसां। कर्मनिष्ठ ॥४७४॥
कां जिये एक वस्तूलांगीं। बाणोनि ज्ञानाची वज्रांगी। झुंजत प्रपंचेंशीं समरंगीं। ज्ञानिये गा ॥४७५॥
अथवा निलागें निसरडा। तपोदुर्गाचा आडकडा। झोंबती तपिये चाडा। जयाचिया ॥४७६॥
जें भजतियां भज्य। याज्ञिकांचें याज्य। एवं जें पूज्य। सकळां सदा ॥४७७॥
तेंचि तो आपण। स्वयें जाहला निर्वाण। जें साधकांचें कारण। सिद्ध तत्त्व ॥४७८॥
म्हणौनि कर्मनिष्ठा वंद्यु। तो ज्ञानियांसि वेद्यु। तापसांचा आद्यु। तपोनाथु ॥४७९॥
पैं जीवपरमात्मसंगमा। जयाचें येणें जाहलें मनोधर्मा। तो शरीरीचि परी महिमा। ऐशी पावे ॥४८०॥
म्हणौनि याकारणें। तूंतें मी सदा म्हणें। योगी होईं अंतःकरणें। पंडुकुमरा ॥४८१॥
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥४७॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ध्यानयोगो नाम षष्ठोध्यायः ॥६अ ॥

अगा योगी जो म्हणिजे। तो देवांचा देवो जाणिजे। आणि सुख सर्वस्व माझें। चैतन्य तो ॥४८२॥

तेथ भजता भजन भजावें। हें भक्तिसाधन जें आघवें। तो मीचि जाहलों अनुभवें। अखंडित ॥४८३॥

मग तया आम्हां प्रीतीचें। स्वरूप बोलीं निर्वचे। ऐसें नव्हे गा तो साचें। सुभद्रापती ॥४८४॥

तया एकवटलिया प्रेमा। जरी पाडें पाहिजे उपमा। तरी मी देह तो आत्मा। हेंचि होय ॥४८५॥

ऐसे भक्तचकोरचंद्रें। त्रिभुवनैकनरेंद्रें। बोलिलें गुणसमुद्रें। संजयो म्हणे ॥४८६॥

तेथ आदिलापासूनि पार्था। ऐकिजे ऐसीचि आस्था। दुणावली हें यदुनाथा। भावों सरलें ॥४८७॥

कीं सावियाचि मनीं संतोषला। जे बोला आरिसा जोडला। तेणें हरिखें आतां उपलवला। निरूपील ॥४८८॥

तो प्रसंगु आहे पुढां। जेथ शांतु दिसेल उघडा। तो पालविजेल मुडा। प्रमेयबीजाचा ॥४८९॥

जें सात्त्विकाचेनि वडपें। गेलें आध्यात्मिक खरपें। सहजें निडारले वाफे। चतुरचित्ताचे ॥४९०॥

वरी अवधानाचा वाफसा। लाधला सोनया ऐसा। म्हणौनि पेरावया धिंवसा। श्रीनिवृत्तीसी ॥४९१॥

ज्ञानदेव म्हणे मी चाडें। सद्‌गुरूंनीं केलें कोडें। माथां हात ठेविला तें फुडें। बीजचि वाइलें ॥४९२॥

म्हणौनि येणें मुखें जें जें निगे। तें संतांच्या हृदयीं साचचि लागे। हें असो सांगों श्रीरंगें। बोलिलें जें ॥४९३॥

परी तें मनाच्या कानीं ऐकावें। बोल बुद्धीच्या डोळां देखावें। हे सांटोवाटीं घ्यावें। चित्ताचिया ॥४९४॥

अवधानाचेनि हातें। नेयावें हृदयांआतौतें। हे रिझवितील आयणीतें। सज्जनांचिये ॥४९५॥

हे स्वहितातें निववितीं। परिणामातें जीववितीं। सुखाची वाहवितीं। लाखोली जीवां ॥४९६॥

आतां अर्जुनेंसीं श्रीमुकुंदें। नागर बोलिजेल विनोदें। तें वोंवियेचेनि प्रबंधें। सांगेन मी ॥४९७॥

इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां षष्ठोऽध्यायः ..

.. ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय ७ ..

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय सातवा ।

ज्ञानविज्ञानयोगः ।

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥१॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥२॥

आइका मग तो श्रीअनंतु। पार्थातें असे म्हणतु। पैं गा तूं योगयुक्तु। जालासि आतां ॥१॥

मज समग्रातें जाणसी ऐसें। आपुलिया तळहातींचें रत्न जैसें। तुज ज्ञान सांगेन तैसें। विज्ञानेंसीं ॥२॥

एथ विज्ञानें काय करावें। ऐसें घेसी जरी मनोभावें। तरी पैं आधीं जाणावें। तेंचि लागे ॥३॥

मग ज्ञानाचिये वेळे। झांकती जाणिवेचे डोळे। जैसी तीरीं नाव न ढळे। टेकलीसांती ॥४॥

तैसी जाणीव जेथ न रिघे। विचार मागुता पाउलीं निघे। तर्कु आयणी नेघे। आंगीं जयांच्या ॥५॥

अर्जुना तया नांव ज्ञान। येर प्रपंचु हें विज्ञान। तेथ सत्यबुद्धि तें अज्ञान। हेंही जाण ॥६॥

आतां अज्ञान अवघें हरपे। विज्ञान निःशेष करपे। आणि ज्ञान तें स्वरूपें। होऊनि जाइजे ॥७॥

जेणें सांगतयाचें बोलणें खुंटे। ऐकतयाचें व्यसन तुटे। हें जाणणें सानें मोठें। उरों नेदी ॥८॥

ऐसें वर्म जें गूढ। तें किजेल वाक्यारूढ। जेणें थोडेन पुरे कोड। बहुत मनींचें ॥९॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥३॥

पैं गा मनुष्यांचिया सहस्तशां- । माजीं विपाइले याचि धिंवसा। तैसें या धिंवसेकरां बहुवसां। माजीं विरळा जाणे ॥ १०॥

जैसा भरलेया त्रिभुवना- । आंतु एकएकु चांगु अर्जुना। निवडूनि कीजे सेना। लक्षवरी ॥११॥

कीं तयाही पाठीं। जे वेळीं लोह मांसातें घांटी। ते वेळीं विजयश्रियेच्या पाटीं। एकुची बैसे ॥१२॥

तैसें आस्थेच्या महापुरीं। रिघताती कोटिवरी। परी प्राप्तीच्या पैलतीरीं। विपाइला निगे ॥१३॥

म्हणौनि सामान्य गा नोहे। हें सांगतां वडिल गोठी आहे। परी तें बोलों येईल पाहें। आता प्रस्तुत ऐकें ॥१४॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥४॥

तरी अवधारीं गा धनंजया। हे महदादिक माझी माया। जैसी प्रतिबिंबे छाया। निजांगाची ॥१५॥

आणि इयेतें प्रकृति म्हणिजे। जे अष्टधा भिन्न जाणिजे। लोकत्रय निपजे। इयेस्तव ॥१६॥

हे अष्टधा भिन्न कैसी। ऐसा ध्वनि धरिसी जरी मानसीं। तरी तेचि गा आतां परियेसीं। विवंचना ॥१७॥

आप तेज गगन। मही मारुत मन। बुद्धि अहंकारु हे भिन्न। आठै भाग ॥१८॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥५॥

या आठांची जे साम्यावस्था। ते माझी परम प्रकृति पार्था। तिये नाम व्यवस्था। जीवु ऐसी ॥१९॥

जे जडातें जीववी। चेतनेतें चेतवी। मना करवीं मानवी। शोक मोहो ॥२०॥

पैं बुद्धीच्या अंगीं जाणणें। तें जिये जवळिकेचें करणें। जिया अहंकाराचेनि विंदाणें। जगचि धरिजे ॥२१॥
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥६॥
ते सूक्ष्म प्रकृति कोडें। जैं स्थूळाचिया आंगा घडे। तैं भूतसृष्टीची पडे। टांकसाळ ॥२२॥
चतुर्विध ठसा। उमटों लागे आपैसा। मोला तरी सरसा। परी थरचि आनान ॥२३॥
होती चौऱ्यांशीं लक्ष थरा। येरा मिती नेणिजे भांडारा। भरे आदिशून्याचा गाभारा। नाणेयांसी ॥२४॥
ऐसें एकतुके पांचभौतिक। पडती बहुवस टांक। मग तिये समृद्धीचे लेख। प्रकृतीचि धरी ॥२५॥
जे आखूनि नाणें विस्तारी। पाठी तयाची आटणी करी। माजीं कर्माकर्माचिया व्यवहारीं। प्रवर्तु दावी ॥२६॥
हें रूपक परी असो। सांगों उघड जैसें परियेसों। तरी नामरूपाचा अतिसो। प्रकृतीच कीजे ॥२७॥
आणि प्रकृति तंव माझ्या ठायीं। बिंबे येथें आन नाहीं। म्हणौनि आदि मध्य अवसान पाहीं। जगासि मी ॥२८॥
मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥७॥
हें रोहिणीचें जळ। तयाचें पाहतां येइजे मूळ। तैं रश्मि नव्हती केवळ। होय तें भानु ॥२९॥
तयाचिपरी किरीटी। इया प्रकृती जालिये सृष्टी। जैं उपसंहरूनि कीजेल ठी। तैं मीचि आहें ॥३०॥
ऐसें होय दिसे न दिसे। हें मजचि माजीं असे। मियां विश्व धरिजे जैसें। सूत्रें मणि ॥३१॥
सुवर्णाचे मणी केले। ते सोनियाचे सुतीं वोविले। तैसें म्यां जग धरिलें। सबाह्याभ्यंतरीं ॥३२॥
रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥८॥
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥९॥
म्हणौनि उदकीं रसु। कां पवनीं जो स्पर्शु। शशिसूर्यीं जो प्रकाशु। तो मीचि जाण ॥३३॥
तैसाचि नैसर्गिकु शुद्धु। मी पृथ्वीच्या ठायीं गंधु। गगनीं मी शब्दु। वेदीं प्रणवु ॥३४॥
नराच्या ठायीं नरत्व। जें अहंभाविये सत्त्व। तें पौरुष मी हें तत्त्व। बोलिजत असे ॥३५॥
अग्नि ऐसें आहाच। तेज नामाचें आहे कवच। तें परतें केलिया साच। निजतेज तें मी ॥३६॥
आणि नानाविध योनी। जन्मोनि भूतें त्रिभुवनीं। वर्तत आहाति जीवनीं। आपुलाल्या ॥३७॥
एकें पवनेंचि पिती। एकें तृणास्तव जिती। एकें अन्नाधारें राहती। जळें एकें ॥३८॥
ऐसें भूतांप्रति आनान। जें प्रकृतिवशें दिसे जीवन। तें आघवाठायीं अभिन्न। मीचि एक ॥३९॥
बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥१०॥
बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥११॥
पैं आदिचेनि अवसरें। विरूढे गगनाचेनि अंकुरें। जे अंतीं गिळी अक्षरें। प्रणवपीठींचीं ॥४०॥
जंव हा विश्वाकारु असे। तंव जें विश्वाचिसारिखें दिसे। मग महाप्रळयदशे। कैसेंही नव्हे ॥४१॥
ऐसें अनादि जें सहज। तें मी गा विश्वबीज। हें हातातळीं तुज। देइजत असे ॥४२॥
मग उघड करूनि पांडवा। जैं हे आणिसील सांख्याचिया गांवा। तैं ययाचा उपेगु बरवा। देखशील ॥४३॥
परी हे अप्रासंगिक आलाप। आतां असतु न बोलों संक्षेप। जाण तपियांच्या ठायीं तप। तें रूप माझें ॥४४॥
बळियांमाजीं बळ। तें मी जाणें अढळ। बुद्धिमंतीं केवळ। बुद्धि तें मी ॥४५॥

भूतांच्या ठायीं कामु। तो मी म्हणे आत्मारामु। जेणें अर्थास्तव धर्मु। थोरु होय ॥४६॥
एऱ्हवीं विकाराचेनि पैसे। करी कीर इंद्रियांचि ऐसें। परी धर्मासि वेखासें। जावों नेदी ॥४७॥
जो अप्रवृत्तीचा अव्हांटा। सांडूनि विधीचिया निघे वाटा। तेवींचि नियमाचा दिवटा। सवें चाले ॥४८॥
कामु ऐसिया वोजा प्रवर्ते। म्हणौनि धर्मासि होय पुरतें। मोक्षतीर्थीचे मुक्तें। संसार भोगी ॥४९॥
जो श्रुतिगौरवाच्या मांडवीं। काम सृष्टीचा वेलु वाढवी। जंव कर्मफळेंसि पालवी। अपवर्गीं टेंके ॥५०॥
ऐसा नियुत कां कंदर्पु। जो भूतां या बीजरूपु। तो मी म्हणे बापु। योगियांचा ॥५१॥
हें एकेक किती सांगावें। आतां वस्तुजातचि आघवें। मजपासूनि जाणावें। विकारलें असे ॥५२॥
ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥
जे सात्त्विक हन भाव। कां रजतमादि सर्व। तें ममरूपसंभव। वोळखें तूं ॥५३॥
हे जाले तरी माझ्या ठायीं। परी तयामाजीं मी नाहीं। जैसी स्वप्नींच्या डोहीं। जागृति न बुडे ॥५४॥
जैसी रसाचीच सुघट। बीजकणिका घनवट। परी तियेस्तव होय काष्ठ। अंकुरद्वारें ॥५५॥
मग तया काष्ठाच्या ठायीं। सांग पां बीजपण असे काई ? । तैसा मी विकारीं नाहीं। जरी विकारला दिसे ॥५६॥
पैं गगनीं उपजे आभाळ। परी तेथ गगन नाहीं केवळ। अथवा आभाळीं होय सलिल। तेथ अभ्र नाहीं ॥५७॥
मग त्या उदकाचेनि आवेशें। प्रगटलें तेज जें लखलखीत दिसे। तिये विजूमाजीं असे। सलिल कायी ? ॥५८॥
सांगें अग्नीस्तव धूम होये। तिये धूमीं काय अग्नि आहे ? । तैसा विकारु हा मी नोहें। जरी विकारला असे ॥५९॥
त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३॥
परी उदकीं जाली बाबुळी। ते उदकातें जैसी झांकोळी। कां वायांचि आभाळीं। आकाश लोपे ॥६०॥
हां गा स्वप्न लटिकें म्हणों ये। परि निद्रावशें बाणलें होये। तंव आठवु काय देत आहे। आपणपेयां ? ॥६१॥
हें असो डोळयांचें। डोळांचि पडळ रचे। तेणें देखणेंपण डोळयांचे। न गिळजे कायी ? ॥६२॥
तैसी हे माझीच बिंबली। त्रिगुणात्मक साउली। कीं मजचि आड वोडवली। जवनिका जैसी ॥६३॥
म्हणौनि भूतें मातें नेणती। माझींच परी मी नव्हती। जैसी जळींचि जळीं न विरती। मुक्ताफळें ॥६४॥
पैं पृथ्वीयेचा घटु कीजे। सवेंचि पृथ्वीसि मिळे तरी मेळविजे। एऱ्हवीं तोचि अग्निसंगें सिजे। तरी वेगळा होय ॥६५॥
तैसें भूतजात सर्व। हे माझेचि कीर अवयव। परि मायायोगें जीव- । दशे आले ॥६६॥
म्हणौनि माझेचि मी नव्हती। माझेचि मज नोळखती। अहंममताभ्रांती। विषयांध जाले ॥६७॥
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥१४॥
आतां महदादि हे माझी माया। उतरोनियां धनंजया। मी होईजे हें आया। कैसेनि ये ? ॥६८॥
जिये ब्रह्माचळाचा आधाडा। पहिलिया संकल्पजळाचा उभडा। सवेंचि महाभूतांचा बुडबुडा। साना आला ॥६९॥
जे सृष्टिविस्ताराचेनि वोघें। चढत काळकळनेचेनि वेगें। प्रवृत्तिनिवृत्तीचीं तुंगें। तटें सांडी ॥७०॥
जे गुणघनाचेनि वृष्टिभरें। भरली मोहाचेनि महापूरें। घेऊनि जात नगरें। यमनियमांचीं ॥७१॥
जे द्वेषाच्या आवर्तीं दाटत। मत्सराचे वळसे पडत। माजीं प्रमादादि तळपत। महामीन ॥७२॥
जेथ प्रपंचाचीं वळणें। कर्माकर्मांचीं वोभाणें। वरी तरताती वोसाणें। सुखदुःखांचीं ॥७३॥
रतीचिया बेटा। आदळती कामाचिया लाटा। जेथ जीवफेन संघटा। सैंघ दिसे ॥७४॥
अहंकाराचिया चळिया। वरि मदत्रयाचिया उकळिया। जेथ विषयोर्मीच्या आकळिया। उल्लाळ घेती ॥७५॥
उदयास्ताचे लोंढे। पाडीत जन्ममरणाचे चोंढे। जेथ पांचभौतिक बुडबुडे। होती जाती ॥७६॥

सम्मोह विभ्रम मासे। गिळिताती धैर्याचीं आविसें। तेथ देव्हडे भोंवत वळसे। अज्ञानाचे ॥७७॥
भ्रांतीचेनि खडुळें। रेवले आस्थेचे अवगाळें। रजोगुणाचेनि खळाळें। स्वर्गु गाजे ॥७८॥
तमाचे धारसे वाड। सत्त्वाचें स्थिरपण जाड। किंबहुना हे दुवाड। मायानदी ॥७९॥
पैं पुनरावृत्तीचेनि उभडें। झळंबती सत्यलोकींचे हुडे। घायें गडबडती धोंडे। ब्रह्मगोळकाचे ॥८०॥
तया पाणियाचेनि वहिलेपणें। अझुनी न धरिती वोभाणें। ऐसा मायापूर हा कवणें। तरिजेल गा ? ॥८१॥
येथ एक नवलावो। जो जो कीजे तरणोपावो। तो तो अपावो। होय तें एक ॥८२॥
एक स्वयंबुद्धीच्या बाहीं। रिगाले तयांची शुद्धीचि नाहीं। एक जाणिवेचे डोहीं। गर्वेंचि गिळिले ॥८३॥
एकीं वेदत्रयाचिया सांगडी। घेतल्या अहंभावाचिया धोंडी। ते मदमीनाच्या तोंडीं। सगळेचि गेले ॥८४॥
एकीं वयसेचें जाड बांधले। मग मन्मथाचिये कांसे लागले। ते विषयमगरीं सांडिले। चघळूनियां ॥८५॥
आतां वार्धक्याच्या तरंगा- । माजीं मतिभ्रंशाचा जरंगा। तेणें कवळिजताती पैं गा। चहूंकडे ॥८६॥
आणि शोकाचा कडा उपडत। क्रोधाच्या आवर्तीं दाटत। आपदागिधीं चुंबिजत। उधवला ठायीं ॥८७॥
मग दुःखाचेनि बरबटें बोंबले। पाठीं मरणाचिये रेवे रेवले। ऐसे कामाचे कांसे लागले। ते गेले वायां ॥८८॥
एकीं यजनक्रियेची पेटी। बांधोनि घातली पोटीं। ते स्वर्गसुखाच्या कपाटीं। शिरकोनि ठेले ॥८९॥
एकीं मोक्षीं लागावयाचिया आशा। केला कर्मबाह्यांचा भरंवसा। परी ते पडिले वळसां। विधिनिषेधांच्या ॥९०॥
जेथ वैराग्याची नाव न रिगे। विवेकाचा तागा न लगे। वरि कांहीं तरों ये योगें। तरी विपाय तो ॥९१॥
ऐसें तरी जीवाचिये आंगवणें। इये मायानदीचें तरणें। हें कासयासारिखें बोलणें। म्हणावें पां ॥९२॥
जरी अपथ्यशीळा व्याधी। कळे साधूसी दुर्जनाची बुद्धी। कीं रागी सांडी रिद्धी। आली सांती ॥९३॥
जरी चोरां सभा दाटे। अथवा मीनां गळु घोटे। ना तरी भेडा उलटे। विवसी जरी ॥९४॥
पाडस वागुर करांडी। कां मुंगी मेरु वोलांडी। तरी मायेची पैलथडी। देखती जीव ॥९५॥
म्हणौनि गा पंडुसुता। जैसी सकामा न जिणवेचि वनिता। तेवीं मायामय हे सरिता। न तरवें जीवां ॥९६॥
येथ एकचि लीला तरले। जे सर्वभावें मज भजले। तयां ऐलीच थडी सरलें। मायाजळ ॥९७॥
जयां सद्गुरुतारूं फुडें। जे अनुभवाचे कांसे गाढे। जयां आत्मनिवेदन तरांडे। आकळलें ॥९८॥
जे अहंभावाचें वोझें सांडुनी। विकल्पाचिया झुळका चुकाउनी। अनुरागाचा निरुता होउनि। पाणिढाळु ॥९९॥
जया ऐक्याचिया उतारा। बोधाचा जोडला तारा। मग निवृत्तीचिया पैल तीरा। झेंपावले जे ॥१००॥
ते उपरतीच्या वांवीं सेलत। सोऽहंभावाचेनि थावें पेलत। मग निघाले अनकळित। निवृत्तितटीं ॥१०१॥
येणें उपायें मज भजले। ते हे माझी माया तरले। परि ऐसे भक्त विपाइले। बहुवस नाहीं ॥१०२॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१५॥
चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१६॥

जे बहुतां एकां अव्हांतरु। अहंकाराचा भूतसंचारु। जाहला म्हणौनि विसरु। आत्मबोधाचा ॥१०३॥
ते वेळीं नियमाचें वस्त्र नाठवे। पुढील अधोगतीची लाज नेणवे। आणि करितातिजें न करावें। वेदु म्हणे ॥१०४॥
पाहें पां शरीराचिया गांवा। जयालागीं आले पांडवा। तो कार्यार्थु आघवा। सांडूनियां ॥१०५॥
इंद्रियग्रामींचे राजबिदीं। अहंममतेचिया जल्पवादीं। विकारांतरांचि मांदीं। मेळवूनियां ॥१०६॥
दुःखशोकांच्या घाईं। मारिलियाची सेचि नाहीं। हे सांगावया कारण काई। जे ग्रासिले माया ॥१०७॥
म्हणौनि ते मातें चुकले। ऐका चतुर्विध मज भजले। जिहीं आत्महित केलें। वाढतें गा ॥१०८॥
तो पहिला आर्तु म्हणिजे। दुसरा जिज्ञासु बोलिजे। तिजा अर्थार्थी जाणिजे। ज्ञानिया चौथा ॥१०९॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥१७॥

तेथ आर्तु तो आर्तीचेनि व्याजें। जिज्ञासु तो जाणावयालागीं भजे। तिजेनि तेणें इच्छिजे। अर्थसिद्धि ॥११०॥
मग चौथियाच्या ठायीं। कांहींचि करणें नाहीं। म्हणौनि भक्तु एकु पाहीं। ज्ञानिया जो ॥१११॥
जे तया ज्ञानाचेनि प्रकाशें। फिटलें भेदाभेदांचें कडवसें। मग मीचि जाहला समरसें। आणि भक्तुही तेवींचि ॥११२॥
परि आणिकांचिये दिठी नावेक। जैसा स्फटिकुचि आभासे उदक। तैसा ज्ञानी नव्हे कौतुक। सांगतां तो ॥११३॥
जैसा वारा कां गगनीं विरे। मग वारेपण वेगळें नुरे। तेवीं भक्त हे पैज न सरे। जरी ऐक्या आला ॥११४॥
जरी पवनु हालवूनि पाहिजे। तरी गगनावेगळा देखिजे। एऱ्हवीं गगन तो सहजें। असे जैसें ॥११५॥
तैसें शरीरीं हन कर्में। तो भक्तु ऐसा गमे। परी अंतरप्रतीतिधर्में। मीचि जाहला ॥११६॥
आणि ज्ञानाचेनि उजिडलेपणें। मी आत्मा ऐसें तो जाणें। म्हणौनि मीही तैसेंचि म्हणें। उचंबळला सांता ॥११७॥
हां गा जीवापैलीकडिलीये खुणे। जो पावोनि वावरों जाणें। तो देहाचेनि वेगळेपणें। काय वेगळा होय ? ॥११८॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥१८॥

म्हणौनि आपुलाल्या हिताचेनि लोभें। मज आवडे तोहि भक्त झोंबे। परी मीचि करी वालभें। ऐसा ज्ञानिया एकु ॥ ११९॥
पाहें पां दुभतयाचिया आशा। जगचि धेनूसि करीतसे फांसा। परि दोरेंवीण कैसा। वत्साचा बळी ॥१२०॥
कां जे तनुमनुप्राणें। तें आणिक कांहींचि नेणें। देखे तयातें म्हणे। हे माय माझी ॥२१॥
तें येणें मानें अनन्यगती। म्हणौनि धेनुही तैसीचि प्रीति। यालागीं लक्ष्मीपती। बोलिले साचें ॥१२२॥
हें असो मग म्हणितलें। जे कां तुज सांगितलें। तेही भक्त भले। पढियंते आम्हां ॥१२३॥
परि जाणोनियां मातें। जे पाहों विसरले मागौतें। जैसें सागरा येऊनि सरितें। मुरडावें ठेलें ॥१२४॥
तैसी अंतःकरणकुहरीं जन्मली। जयाची प्रतीतिगंगा मज मीनली। तो मी हे काय बोली। फार करूं ? ॥१२५॥
एऱ्हवीं ज्ञानिया जो म्हणिजे। तो चैतन्यचि केवळ माझें। हें न म्हणावें परि काय कीजे। न बोलणें बोलों ॥१२६॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥१९॥

जे तो विषयांची दाट झाडी- । माजीं कामक्रोधांचीं सांकडीं। चुकावूनि आला पाडीं। सद्वासनेचिया ॥१२७॥
मग साधुसंगें सुभटा। उजू सत्कर्माचिया वाटा। अप्रवृत्तीचा अव्हांटा। डावलूनि ॥१२८॥
आणि जन्मशतांचा वाहतवणा। तेविंची आशेचिया न लेचि वाहणा। तेथ फलहेतूचा उगाणा। कवणु चाळी ॥१२९॥
ऐसा शरीरसंयोगाचिये राती- । माजीं धांवतां सडिया आयती। तंव कर्मक्षयाची पाहाती। पाहांट जाली ॥१३०॥
तैसीच गुरुकृपा उखा उजळली। ज्ञानाची वोतपली पडली। तेथ साम्याची ऋद्धि उघडली। तयाचिये दिठी ॥१३१॥
ते वेळीं जयाकडे वास पाहे . तेउता मीचि तया एकु आहे। अथवा निवांत जरी राहे। तऱ्ही मीचि तया ॥१३२॥
हें असो आणिक कांहीं। तया सर्वत्र मीवांचूनि नाहीं। जैसें सबाह्य जळ डोहीं। बुडालिया घटा ॥१३३॥
तैसा तो मजभीतरीं। मी तया आंतुबाहेरी। हें सांगिजेल बोलवरी। तैसें नव्हे ॥१३४॥
म्हणौनि असो हें इयापरी। तो देखे ज्ञानाची वाखारी। तेणें संसरलेनि करी। आपु विश्व ॥१३५॥
हें समस्तही श्रीवासुदेवो। ऐसा प्रतीतिरसाचा वोतला भावो। म्हणौनि भक्तांमाजीं रावो। आणि ज्ञानिया तोचि ॥ १३६॥
जयाचिये प्रतीतीचा वाखारां। पवाडु होय चराचरा। तो महात्मा धनुर्धरा। दुर्लभु आथी ॥१३७॥
येर बहुत जोडती किरीटी। जयांचीं भजनें भोगासाठीं। जे आशातिमिरें दृष्टी। विषयांध जाले ॥१३८॥

कामैस्तैस्तैर्हृज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥२०॥
आणि फळाचिया हांवा। हृदयीं कामा जाला रिगावा। कीं तयाचिये घसणी दिवा। ज्ञानाचा गेला ॥१३९॥
ऐसे उभयतां आंधारीं पडले। म्हणौनि पासींचि मातें चुकले। मग सर्वभावें अनुसरले। देवतांतरां ॥१४०॥
आधींच प्रकृतीचे पाइक। वरी भोगालागीं तंव रंक। मग तेणें लोलुपत्वें कौतुक। कैसेनि भजती ॥१४१॥
कवणीं तिया नियमबुद्धि। कैसिया हन उपचारसमृद्धि। कां अर्पण यथाविधि। विहित करणें ॥१४२॥
यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥
पैं जो जिये देवतांतरीं। भजावयाची चाड करी। तयाची ते चाड पुरी। पुरविता मी ॥१४३॥
देवोदेवीं मीचि पाहीं। हाही निश्चयो त्यासि नाहीं। भावो ते ते ठायीं। वेगळा धरिती ॥१४४॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान ॥२२॥
मग तिया श्रद्धायुक्त। तेथिंचें आराधन जें उचित। तें सिद्धिवरी समस्त। वर्तो लागे ॥१४५॥
ऐसें जेणें जें भाविजे। तें फळ तेणें पाविजे। परी तेंही सकळ निपजे। मजचिस्तव ॥१४६॥
अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भ्वत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥२३॥
परी ते भक्त मातें नेणती। जे कल्पनेबाहेरी न निघती। म्हणौनि कल्पित फळ पावती। अंतवंत ॥१४७॥
किंबहुना ऐसें जें भजन। तें संसाराचेंचि साधन। येर फळभोग तो स्वप्न। नावभरी दिसे ॥१४८॥
हें असो परौंते। मग हो कां आवडे तें। परी यजी जो देवतांतें। तो देवत्वासीचि ये ॥१४९॥
येर तनुमनुप्राणी। जे अनुसरले माझेयाचि वाहणीं। ते देहाच्या निर्वाणीं। मीचि होती ॥१५०॥
अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥
परी तैसें न करिती प्राणिये। वायां आपुलिया हितीं वाणिये। जें पोहताती पाणियें। तळहातींचेनि ॥१५१॥
नाना अमृताच्या सागरीं बुडिजे। मग तोंडा कां वज्रमिठी पाडिजे ?। आणि मनीं तरी आठविजे। थिल्लरोदकातें ? ॥१५२॥
हें ऐसें कासया करावें। जे अमृतींही रिगोनि मरावें। तें सुखें अमृत होऊनि कां नसावें। अमृतामाजीं ? ॥१५३॥
तैसा फळहेतूचा पांजरा। सांडूनियां धनुर्धरा। कां प्रतीतिपाखीं चिदंबरा। गोसाविया नोहावें ? ॥१५४॥
जेथ उंचावलेनि पवाडें। सुखाचा पैसारु जोडे। आपुलेनि सुरवाडें। उडों ये ऐसा ॥१५५॥
तया उमपा माप कां सुवावें। मज अव्यक्ता व्यक्त कां मानावें। सिद्ध असतां कां निमावें। साधनवरी ? ॥१५६॥
परी हा बोल आघवा। जरी विचारीजतसे पांडवा। तरी विशेषें या जीवां। न चोजवे गा ॥१५७॥
नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥
कां जे योगमायापडळें। हे जाले आहाति आंधळे। म्हणौनि प्रकाशाचेनि देहबळें। न देखती मातें ॥१५८॥
एऱ्हवीं मी नसें ऐसें। काय वस्तुजात असे ?। पाहें पां कणव जळ रसें-। रहित आहे ? ॥१५९॥
पवनु कवणातें न शिवेचि। आकाश कें न समायेचि। हें असो एकु मीचि। विश्वीं आहें ॥१६०॥
वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥२६॥

येथें भूतें जियें अतीतलीं। तियें मीचि होऊनि ठेलीं। आणि वर्तत आहाति जेतुलीं। तींही मीचि ॥१६१॥
कां भविष्यमाणें जियें हीं। तींहीं मजवेगळीं नाहीं। हा बोलचि एऱ्हवीं कांहीं। होय ना जाय ॥१६२॥
दोराचिया सापासी। डोंबा बडिया ना गव्हाळा ऐसी। संख्या न करवे कोण्हासी। तेवीं भूतांसि मिथ्यत्वें ॥१६३॥
मी ऐसा पंडुसुता। अनुस्यूतु सदा असतां। या संसार जो भूतां। तो आनें बोलें ॥१६४॥
तरी तेचि आतां थोडीसी। गोठी सांगिजेल परियेसीं। जै अहंकारा तनूंसीं। वालभ पडिलें ॥१६५॥
इच्छाद्वेषसत्मुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥२७॥
तेथ इच्छा हे कुमारी जाली। मग ते कामाचिया तारुण्या आली। तेथ द्वेषेंसीं मांडिली। वऱ्हाडिक ॥१६६॥
तया दोघांस्तव जन्मला। ऐसा द्वंद्वमोहो जाला। मग तो आजेयानें वाढविला। अहंकारें ॥१६७॥
जो धृतीसी सदां प्रतिकूळु। नियमाही नागवे सळु। आशारसें दोंदिलु। जाला सांता ॥१६८॥
असंतुष्टीचिया मदिरा। मत्त होऊनि धनुर्धरा। विषयांचे वोवरां। विकृतीशीं ॥१६९॥
तेणें भावशुद्धीचिये वाटे। विखुरले विकल्पाचे कांटे। मग चिरिलें आव्हांटे। अप्रवृत्तीचे ॥१७०॥
तेणें भूतें भांबावलीं। म्हणौनि संसाराचिया आडवामाजीं पडिलीं। मग महादुःखाच्या घेतलीं। दांडे वरी ॥१७१॥
येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढवरताः ॥२८॥
ऐसे विकल्पाचे वांयाणे। कांटे देखोनि सणाणे। जे मतिभ्रमाचे पासवणें। घेतीचिना ॥१७२॥
उजू एकनिष्ठेच्या पाउलीं। रगडूनि विकल्पाचिया भालीं। महापातकाची सांडिली। अटवीं जिहीं ॥१७३॥
मग पुण्याचे धांवा घेतले। आणि माझी जवळीक पातले। किंबहुना चुकले। वाटवधेयां ॥१७४॥
जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥
एऱ्हवीं तरी पार्था। जन्ममरणाची निमे कथा। ऐसिया प्रयत्नातें आस्था। विये जयांची ॥१७५॥
तयां तो प्रयत्नुचि एके वेळे। मग समग्र परब्रह्में फळे। जया पिकलेया रसु गळे। पूर्णतेचा ॥१७६॥
ते वेळीं कृतकृत्यता जग भरे। तेथ अध्यात्माचें नवलपण पुरे। कर्माचें काम सरे। विरमे मन ॥१७७॥
ऐसा अध्यात्मलाभु तया। होय गा धनंजया। भांडवल जया। उद्यमीं मी ॥१७८॥
तयातें साम्याचिये वाढी। ऐक्याची सांदे कुळवाडी। तेथ भेदाचिया दुबळवाडी। नेणिजे तया ॥१७९॥
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥३०॥
ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७अ ॥
जिहीं साधिभूता मातें। प्रतीतीचेनि हातें। धरूनि अधिदैवातें। शिवतले गा ॥१८०॥
जया जाणिवेचेनि वेगें। मी अधियज्ञुही दृष्टी रिगें। ते तनूचेनि वियोगें। विऱ्हये नव्हती ॥१८१॥
एऱ्हवीं आयुष्याचें सूत्र विघडतां। भूतांची उमटे खडाडता। काय न मरतयाचियाहि चित्ता। युगांतु नोहे ? ॥१८२॥
परी नेणों कैसे पैं गा। जे जडोनि गेले माझिया आंगा। ते प्रयाणींचिया लगबगा। न सांडितीच मातें ॥१८३॥
एऱ्हवी तरीं जाण। ऐसे जे निपुण। तेचि अंतःकरण- । युक्त योगी ॥१८४॥
तंव इये शब्दकुपिकेतळीं। नोडवेचि अवधानाची अंजुळी। जे नावेक अर्जुन तये वेळीं। मागांचि होता ॥१८५॥
जेथ तद्ब्रह्मवाक्यफळें। जिये नानार्थरसें रसाळें। बहकताती परिमळें। भावाचेनि ॥१८६॥
सहज कृपामंदानिळें। कृष्णद्रुमाची वचनफळें। अर्जुन श्रवणाचिये खोळे। अवचित पडिलीं ॥१८७॥

तियें प्रमेयाची हो कां वळलीं। कीं ब्रह्मरसाच्या सागरीं चुबुकळिलीं। मग तैसीचि कां घोळिलीं। परमानंदें ॥१८८॥
तेणें बरवेपणें निर्मळें। अर्जुना उन्मेषाचे डोहळे। घेताति गळाळे। विस्मयामृताचे ॥१८९॥
तिया सुखसंपत्ती जोडलिया। मग स्वर्गा वाती वांकुलिया। हृदयाच्या जीवीं गुतकुलिया। होत आहाती ॥१९०॥
ऐसें वरचिलीचि बरवा। सुख जावों लागलें फावा। तंव रसस्वादाचिया हांवा। लाहो केला ॥१९१॥
झडकरी अनुमानाचेनि करतळें। घेऊनि तियें वाक्यफळें। प्रतीतिमुखीं एके वेळे। घालूं पाहे ॥१९२॥
तंव विचाराचिया रसना न दाटती। परी हेतूच्या दशनीं न फुटती। ऐसें जाणौनि सुभद्रापती। चुंबिचिना ॥१९३॥
मग चमत्कारला म्हणे। इयें जळींचीं मा तारांगणें। कैसा झकविलों असलगपणें। अक्षरांचेनि ॥१९४॥
इयें पदें नव्हती फुडिया। गगनाचिया घडिया। येथ आमुची मति बुडालिया। थावो न निघे ॥१९५॥
वांचूनि जाणावयाची कें गोठी। ऐसें जीवीं कल्पूनि किरीटी। तिया पुनरपि केली दृष्टी। यादवेंद्रा ॥१९६॥
मग विनविलें सुभटें। हां हो जी ये एकवाटे। सातही पदें अनुच्छिष्टें। नवलें आहाती ॥१९७॥
एऱ्हवीं अवधानाचेनि वहिलेपणें। नाना प्रमेयांचें उगाणें। काय श्रवणाचेनि आंगवणें। बोंलों लाहाती ? ॥१९८॥
परी तैसें हें नोहेचि देवा। देखिला अक्षरांचा मेळावा। आणि विस्मयाचिया जीवा। विस्मयो जाला ॥१९९॥
कानाचेनि गवाक्षद्वारें। बोलाचे रश्मी अभ्यंतरें। पाहेना तंव चमत्कारें। अवधान ठकलें ॥२००॥
तेवींचि अर्थाची चाड मज आहे। तें सांगतांही वेळु न साहे। म्हणौनि निरूपण लवलाहें। कीजो देवा ॥२०१॥
ऐसा मागील पडताळा घेउनी। पुढां अभिप्राय दृष्टी सूनी। तेवींचि माजीं शिरौनी। आर्ती आपुली ॥२०२॥
कैसी पुसती पाहें पां जाणिव। भिडेचि तरी लंघों नेदीं शिंव। एऱ्हवीं श्रीकृष्ण हृदयासि खेंव। देवों सरला ॥२०३॥
अहो श्रीगुरूतें जैं पुसावें। तैं येणें मानें सावध होआवें। हें एकचि जाणें आघवें। सव्यसाची ॥२०४॥
आतां तयाचें तें प्रश्न करणें। वरी सर्वज्ञ श्रीहरीचें बोलणें। संजयो आवडलेपणें। सांगैल कैसें ॥२०५॥
तिये अवधान द्यावें गोठी। बोलिजेल नीट मऱ्हाटी। जैसी कानाचे आधीं दिठी। उपेगा जाये ॥२०६॥
बुद्धीचिया जिभा। बोलाचा न चाखतां गाभा। अक्षरांचिया भांबा। इंद्रियें जिती ॥२०७॥
पहा पां मालतीचे कळे। घ्राणासि कीर वाटले परिमळें। परि वरचिला बरवा काइ डोळे। सुखिये नव्हती ? ॥२०८॥
तैसें देशियेचिया हवावा। इंद्रियें करिती राणिवा। मग प्रमेयाचिया गांवा। लेसां जाइजे ॥२०९॥
ऐसेनि नागरपणें। बोलु निमे तें बोलणें। ऐका ज्ञानदेवो म्हणे। निवृत्तीचा ॥२१०॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां सप्तमोध्यायः ॥

.. ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय ८ ..

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय आठवा ।

अक्षरब्रह्मयोगः ।

अर्जुन उवाच ।

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।

अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥१॥

मग अर्जुनें म्हणितलें। हां हो जी अवधारिलें। जें म्यां पुसिलें। तें निरूपिजो ॥१॥

सांगा कवण तें ब्रह्म। कायसया नाम कर्म। अथवा अध्यात्म। काय म्हणिपे ॥२॥

अधिभूत तें कैसें। एथ अधिदैव तें कवण असे। हें उघड मी परियेसें। ऐसें बोला ॥३॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।

प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥२॥

देवा अधियज्ञ तो काई। कवण पां इये देहीं। हें अनुमानासि कांहीं। दिठी न भरे ॥४॥

आणि नियता अंतःकरणीं। तूं जाणिजसी देहप्रयाणीं। तें कैसेनि हे शारङ्गपाणी। परिसवा मातें ॥५॥

देखा धवळारीं चिंतामणीचा। जरी पहुडला होय दैवाचा। तरी वोसणतांही बोलु तयाचा। सोपु न वचे ॥६॥

तैसें अर्जुनाचिया बोलासवें। आलें तेंचि म्हणितलें देवें। तें परियेसें गा बरवें। जे पुसिलें तुवां ॥७॥

किरीटी कामधेनूचा पाडा। वरी कल्पतरूचा आहे मांदोडा। म्हणौनि मनोरथसिद्धीचिया चाडा। तो नवल नोहे ॥८॥

श्रीकृष्ण कोपोनि ज्यासी मारी। तो पावे परब्रह्मसाक्षात्कारीं। मा कृपेनें उपदेशु करी। तो कैशापरी न पवेल ॥९॥

जैं कृष्णचि होइजे आपण। तैं कृष्ण होय आपुलें अंतःकरण। मग संकल्पाचें आंगण। वोळगती सिद्धी ॥१०॥

परि ऐसें जें प्रेम। तें अर्जुनींचि आथि निस्सीम। म्हणौनि तयाचें काम। सदां सफळ ॥११॥

या कारणें श्रीअनंतें। तें मनोगत तयाचें पुसतें। होईल जाणोनि आइतें। वोगरूनि ठेविलें ॥१२॥

जें अपत्य थानीहूनि निगे। तयाची भूक ते मायेसीचि लागे। एऱ्हवीं तें शब्दें काय सांगें। मग स्तन्य दे येरी ? ॥१३॥

म्हणौनि कृपाळुवा गुरूचिया ठायीं। हें नवल नोहे कांहीं। परि तें असो आइका काई। जें देव बोलते जाहले ॥१४॥

श्रीभगवानुवाच ।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥३॥

मग म्हणितलें सर्वेश्वरें। जें आकारीं इयें खोंकरें। कोंदलें असत न खिरे। कवणे काळीं ॥१५॥

एऱ्हवीं सपूरपण तयाचें पहावें। तरी शून्यचि नव्हे स्वभावें। वरी गगनाचेनि पालवें। गाळूनि घेतलें ॥१६॥

जें ऐसेंही परि विरुळें। इये विज्ञानाचिये खोळे। हालवलेंहि न गळे। तें परब्रह्म ॥१७॥

आणि आकाराचेनि जालेपणें। जन्मधर्मातें नेणें। आकारलोपीं निमणें। नाहीं कहीं ॥१८॥

ऐशिया आपुलियाची सहजस्थिती। जया ब्रह्माची नित्यता असती। तया नाम सुभद्रापती। अध्यात्म गा ॥१९॥

मग गगनीं जेविं निर्मळें। नेणों कैचीं एके वेळे। उठती घनपटळें। नानावर्णें ॥२०॥

तैसें अमूर्तीं तिये विशुद्धें। महदादि भूतभेदें। ब्रह्मांडाचे बांधे। होंचि लागती ॥२१॥

पैं निर्विकल्पाचिये बरडीं। फुटे आदिसंकल्पाची विरूढी। आणि तें सवेंचि मोडोनि ये ढोंढी। ब्रह्मगोळकांच्या ॥२२॥

तया एकैकाचे भीतरीं पाहिजे। तंव बीजाचाचि भरिला देखिजे। माजीं होतिया जातिया नेणिजे। लेख जीवा ॥२३॥

मग तया ब्रह्मगोळकांचें अंशांश। प्रसवती आदिसंकल्प असमसहास। हें असो ऐसी बहुवस। सृष्टी वाढे ॥२४॥

परि दुजेनविण एकला। परब्रह्मींचि संचला। अनेकत्वाचा आला। पूर जैसा ॥२५॥
तैसें समविषमत्व नेणों कैचें। वायांचि चराचर रचे। पाहतां प्रसवतिया योनीचे। लक्ष दिसती ॥२६॥
येरी जीवभावाचिये पालवियें। कांहीं मर्यादा करूं नये। पाहिजे कवण हें आघवें वियें। तंव मूळ तें शून्य ॥२७॥
म्हणौनि कर्ता मुदल न दिसे। आणि सेखीं कारणहीं कांहीं नसे। माजीं कार्यचि आपैसें। वाढों लागे ॥२८॥
ऐसा करितेनवीण गोचरु। अव्यक्तीं हा आकारु। निपजे जो व्यापारु। तया नाम कर्म ॥२९॥
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥४॥
आतां अधिभूत जें म्हणिपे। तेंहि सांगों संक्षेपें। तरी होय आणि हारपे। अभ्र जैसें ॥३०॥
तैसें असतेपण आहाच। नाहीं होईजे हें साच। जयातें रूपा आणिती पांचपांच। मिळोनियां ॥३१॥
भूतांतें अधिकरूनि असे। आणि भूतसंयोगें तरी दिसे। जें वियोगवेळे भ्रंशें। नामरूपादिक ॥३२॥
तयातें अधिभूत म्हणिजे। मग अधिदैव पुरुष जाणिजे। जेणें प्रकृतीचें भोगिजे। उपार्जिलें ॥३३॥
जो चेतनेचा चक्षु। जो इंद्रियदेशींचा अध्यक्षु। जो देहास्तमानीं वृक्षु। संकल्प विहंगमाचा ॥३४॥
जो परमात्माचि परी दुसरा। जो अहंकारनिद्रा निदसुरा। म्हणौनि स्वप्नीचिया वोरबारा। संतोषें शिणे ॥३५॥
जीव येणें नांवें। जयातें आळविजे स्वभावें। तें अधिदैवत जाणावें। पंचायतनींचें ॥३६॥
आतां इयेचि शरीरग्रामीं। जो शरीरभावातें उपशमी। तो अधियज्ञु एथ गा मी। पंडुकुमरा ॥३७॥
येर अधिदैवाधिभूत। तेहि मीचि कीर समस्त। परि पंधरें किडाळा मिळत। तें काय सांके नोहे ? ॥३८॥
तरि तें पंधरेपण न मैळे। आणि किडाळाचियाही अंशा न मिळे। परि जंव असे तयाचेनि मेळें। तंव सांकेंचि म्हणिजे ॥ ३९॥
तैसें अधिभूतादि आघवें। हें अविद्येचेनि पालवें। झांकलें तंव मानावें। वेगळें ऐसें ॥४०॥
तेचि अविद्येची जवनिका फिटे। आणि भेदभावाची अवधी तुटे। मग म्हणों एक होऊनि जरी आटे। तरी काय दोनी होती ? ॥४१॥
पैं केशांचा गुंडाळा। वरि ठेविली स्फटिकशिळा। ते वरि पाहिजे डोळां। तंव भेदली गमती ॥४२॥
पाठीं केश परौते नेले। आणि भेदलेपण काय नेणों जाहालें। तरी डांक देऊनि सांदिलें। शिळेतें काई ? ॥४३॥
ना ते अखंडचि आयती। परि संगें भिन्न गमली होती। ते सारिलिया मागौती। जैसी कां तैसी ॥४४॥
तेवींचि अहंभावो जाये। तरी ऐक्य तें आधींचि आहे। हेंचि साचें जेथ होये। तो अधुयज्ञु मी ॥४५॥
पैं गा आम्हीं तुज। सकळ यज्ञ कर्मज। सांगितलें कां जें काज। मनीं धरूनि ॥४६॥
तो हा सकळ जीवांचा विसांवा। नैष्कर्म्य सुखाचा ठेवा। परि उघड करूनि पांडवा। दाविजत असे ॥४७॥
पहिलिया वैराग्यइंधन परिपूर्ती। इंद्रियानळीं प्रदीप्तीं। विषयद्रव्याचिया आहुती। देऊनियां ॥४८॥
मग वज्रासन तेचि उर्वी। शोधूनि आधारमुद्रा बरवी। वेदिका रचे मांडवीं। शरीराच्या ॥४९॥
तेथ संयमाग्नीचीं कुंडें। इंद्रियद्रव्याचेनि पवाडें। यजिजती उदंडें। युक्तिघोषें ॥५०॥
मग मनप्राणसंयमु। हाचि हवनसंपदेचा संभ्रमु। येणें संतोषविजे निर्धूमु। ज्ञानानळु ॥५१॥
ऐसेनि हें सकळ ज्ञानीं समर्पे। मग ज्ञान तें ज्ञेयीं हारपे। पाठी ज्ञेयचि स्वरूपें। निखिल उरे ॥५२॥
तया नांव गा अधियज्ञु। ऐसें बोलिला जंव सर्वज्ञु। तंव अर्जुन अतिप्राज्ञु। तया पातलें तें ॥५३॥
हें जाणोनि म्हणितलें देवें। पार्था परिसतु आहासि बरवें। या कृष्णाचिया बोलासवें। येरु सुखाचा जाहला ॥५४॥
देखा बालकाचिया धणि धाइजे। कां शिष्याचेनि जाहलेपणें होइजे। हें सद्गुरूचि एकलेनि जाणिजे। कां प्रसवतिया ॥ ५५॥
म्हणौनि सात्त्विक भावांची मांदी। कृष्णाआंगीं अर्जुनाआधीं। न समातसे परी बुद्धी। सांवरूनि देवें ॥५६॥

मग पिकलिया सुखाचा परिमळु। कीं निवालिया अमृताचा कल्लोळु। तैसा कोंवळा आणि सरळु। बोलु बोलिला ॥५७॥
म्हणे परिसणेयांचिया राया। आइकें बापा धनंजया। ऐसी जळों सरलिया माया। तेथ जाळितें तेंही जळे ॥५८॥

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥५॥

जें आतांचि सांगितलें होतें। अगा अधियज्ञ म्हणितला जयातें। जे आदींचि तया मातें। जाणोनि अंतीं ॥५९॥
ते देह झोल ऐसें मानुनी। ठेले आपणपें आपण होउनी। जैसा मठ गगना भरुनी। गगनींचि असे ॥६०॥
ये प्रतीतीचिया माजघरीं। तया निश्चयाची वोवरी। आली म्हणौनि बाहेरी। नव्हेचि से ॥६१॥
ऐसें सबाह्य ऐक्य संचलें। मीचि होऊनि असतां रचिलें। बाहेरि भूतांचीं पांचही खवलें। नेणतांचि पडिलीं ॥६२॥
आतां उभेयां उभेपण नाहीं जयाचें। मा पडिलिया गहन कवण तयाचें। म्हणौनि प्रतीतीचिये पोटींचें। पाणी न हाले ॥६३॥
ते ऐक्याची आहे वोतिली। कीं नित्यतेचिया हृदयीं घातली। जैसी समरससमुद्रीं धुतली। रुळेचिना ॥६४॥
पैं अथावीं घट बुडाला। तो आंतबाहेरी उदकें भरला। पाठीं दैवगत्या जरी फुटला। तरी उदक काय फुटे ? ॥६५॥
नातरी सर्पें कवच सांडिलें। कां उबारेनें वस्त्र फेडिलें। तरी सांग पां काय मोडलें। अवेवामाजीं ? ॥६६॥
तैसा आकारु हा आहाच भ्रंशे। वांचूनी वस्तु ते सांचलीचि असे। तेचि बुद्धि जालिया विसकुसे। कैसेनि आतां ॥६७॥
म्हणौनि यापरी मातें। अंतकाळीं जाणतसाते। जे मोकलिती देहातें। ते मीचि होती ॥६८॥
एऱ्हवीं तरी साधारण। उरीं आदळलिया मरण। जो आठवु धरी अंतःकरण। तेंचि होईजे ॥६९॥
जैसा कवणु एकु काकुळती। पळतां पवनगती। दुपाउलीं अवचितीं। कुहामाजीं पडियेला ॥७०॥
आतां तया पडणयाआरौतें। पडण चुकवावया परौतें। नाहीं म्हणौनि तेथें। पडावेंचि पडे ॥७१॥
तेविं मृत्यूचेनि अवसरें एकें। जें येऊनि जीवासमोर ठाके। तें होणें मग न चुके। भलतयापरी ॥७२॥
आणि जागता जंव असिजे। तंव जेणें ध्यानें भावना भाविजे। डोळां लागतखेंवो देखिजे। तेंचि स्वप्नीं ॥७३॥

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥६॥

तेविं जितेनि अवसरें। जें आवडोनि जीवीं उरे। तेंचि मरणाचिये मेरे। फार हों लागे ॥७४॥
आणि मरणीं जया जें आठवे। तो तेचि गतीतें पावे। म्हणौनि सदा स्मरावें। मातेंचि तुवां ॥७५॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥७॥

डोळां जें देखावें। कां कानीं हन ऐकावें। मनीं जें भावावें। बोलावें वाचें ॥७६॥
तें आंत बाहेरी आघवें। मीचि करूनि घालावें। मग सर्वीं काळीं स्वभावें। मीचि आहें ॥७७॥
अर्जुना ऐसें जाहालिया। मग न मरिजे देह गेलिया। मा संग्रामु केलिया। भय काय तुज ? ॥७८॥
तूं मन बुद्धि सांचेंसीं। जरी माझिया स्वरूपीं अर्पिसी। तरी मातेंचि गा पावसी। हे माझी भाक ॥७९॥
हेंच कायिसया वरी होये। ऐसा जरी संदेहो वर्ततु आहे। तरी अभ्यासूनि आदीं पाहें। मग नव्हे तरी कोपें ॥८०॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन ॥८॥

येणेंचि अभ्यासेंसी योगु। चित्तासि करी पां चांगु। अगा उपायबळें पंगु। पहाड ठाकी ॥८१॥
तेविं सदभ्यासें निरंतर। चित्तासि परमपुरुषाची मोहर। लावीं मग शरीर। राहो अथवा जावो ॥८२॥
जें नानागतीतें पाववितें। तें चित्त वरील आत्मयातें। मग कवण आठवी देहातें। गेलें कीं आहे ? ॥८३॥
पैं सरितेचेनि ओघें। सिंधुजळा मीनलें घोघें। तें काय वर्तत आहे मागें। म्हणौनि पाहों येती ? ॥८४॥

ना तें समुद्रचि होऊन ठेलें। तेविं चित्ताचें चैतन्य जाहालें। जेथ यातायात निमालें। घनानंद जें ॥८५॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।

सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥९॥

जयाचें आकारावीण असणें। जया जन्म ना निमणें। जें आघवेंचि आघवेंपणें। देखत असे ॥८६॥

जें गगनाहूनि जुनें। जें परमाणुहूनि सानें। जयाचेनि सन्निधानें। विश्व चळे ॥८७॥

जें सर्वांते यया विये। विश्व सर्व जेणें जिये। हेतु जया बिहे। अचिंत्य जें ॥८८॥

देखे वोळंबा इंगळु न चरे। तेजीं तिमिर न शिरे। जे दिहाचे अंधारें। चर्मचक्षूसीं ॥८९॥

सुसडा सूर्यकणांच्या राशी। जो नित्य उदो ज्ञानियांसी। अस्तमानाचे जयासी। आडनांव नाहीं ॥९०॥

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।

भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१०॥

तया अव्यंगवाणेया ब्रह्मातें। प्रयाणकाले प्राप्ते। जो स्थिरावलेनि चित्तें। जाणोनि स्मरे ॥९१॥

बाहेरी पद्मासन रचुनी। उत्तराभिमुख बैसोनि। जीवीं सुख सूनि। क्रमयोगाचे ॥९२॥

आंतु मीनलेनि मनोधर्में। स्वरूपप्राप्तीचेनि प्रेमें। आपेआप संभ्रमें। मिळावया ॥९३॥

आकळलेनि योगें। मध्यमा मध्य मार्गें। अग्निस्थानौनि निगे। ब्रह्मरंध्रा ॥९४॥

तेथ अचेत चित्ताचा सांगातु। आहाचवाणा दिसे मांडतु। जेथ प्राणु गगनाआंतु। संचरे कां ॥९५॥

परी मनाचेनि स्थैर्यें धरिला। भक्तीचिया भावना भरला। योगबळें आवरला। सज्ज होऊनि ॥९६॥

तो जडाजडातें विरवितु। भ्रूलतामाजीं संचरतु। जैसा घंटानाद लयस्तु। घंटेसीच होय ॥९७॥

कां झांकलिया घटींचा दिवा। नेणिजे काय जाहला केव्हां। या रीतीं जो पांडवा। देह ठेवी ॥९८॥

तो केवळ परब्रह्म। जया परमपुरुष ऐसें नाम। तें माझें निजधाम। होऊनि ठाके ॥९९॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥

सकळां जाणणेयां जे लाणी। तिये जाणिवेची जे खाणी। तयां ज्ञानियांचिये आयणी। जयातें अक्षरु म्हणिपे ॥१००॥

चंडवातेंही न मोडे। तें गगनचि की फुडें। वांचूनि जरी होईल मेहुडें। तरी उरेल कैंचें ? ॥१०१॥

तेविं जाणणेया जें आकळिलें। तें जाणिवलेपणेंचि उमाणलें। मग नेणवेचि तया म्हणितलें। अक्षर सहजें ॥१०२॥

म्हणौनि वेदविद नर। म्हणती जयातें अक्षर। जें प्रकृतीसी पर। परमात्मरूप ॥१०३॥

आणि विषयांचे विष उलंडूनि। जे सर्वेंद्रियां प्रायश्चित्त देऊनि। आहाति देहाचिया बैसोनि। झाडातळीं ॥१०४॥

ते यापरी विरक्त। जयाची निरंतर वाट पाहात। निष्कामासि अभिप्रेत। सर्वदा जें ॥१०५॥

जयाचिया आवडी। न गणिती ब्रह्मचर्याचीं सांकडीं। निष्ठुर होऊनि बापुडीं। इंद्रियें करिती ॥१०६॥

ऐसें जें पद। दुर्लभ आणि अगाध। जयाचिये थडिये वेद। चुबुकळिले ठेले ॥१०७॥

तें ते पुरुष होती। जे यापरी लया जाती। तरी पार्था हेचि स्थिती। एकवेळ सांगों ॥१०८॥

तेथ अर्जुनें म्हणितलें स्वामी। हेंचि म्हणावया होतों पां मी। तंव सहजें कृपा केली तुम्हीं। तरी बोलिजो कां ॥१०९॥

परि बोलावें तें अति सोहोपें। तेथें म्हणितलें त्रिभुवनदीपें। तुज काय नेणों संक्षेपें। सांगेन ऐक ॥११०॥

तरी मना या बाहेरिलीकडे। यावयाची साविया सवे मोडे। हें हृदयाचिया डोहीं बुडे। तैसें कीजे ॥१११॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।

मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥

परी हे तरीच घडे। जरी संयमाचीं अखंडें। सर्वद्वारीं कवाडें। कळासती ॥११२॥

तरी सहजें मन कोंडलें। हृदयींचि असेल उगलें। जैसें करचरणीं मोडलें। परिवरु न संडीं ॥११३॥

तैसें चित्त राहिलिया पांडवा। प्राणांचा प्रणवुचि करावा। मग अनुवृत्तिपंथें आणावा। मूर्ध्निवरी ॥११४॥
तेथ आकाशीं मिळे न मिळे। तैसा धरावा धारणाबळें। जंव मात्रात्रय मावळे। अर्धबिंबीं ॥११५॥
तंववरी तो समीरु। निराळीं कीजे स्थिरु। मग लग्नीं जेविं ॐकारु। बिंबींच विलसे ॥११६॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥
तैसें ॐ हें स्मरों सरे। आणि तेथेंचि प्राणु पुरे। मग प्रणवांतीं उरे। पूर्णघन जें ॥११७॥
म्हणौनि प्रणवैकनाम। हें एकाक्षर ब्रह्म। जो माझें स्वरूप परम। स्मरतसांता ॥११८॥
यापरी त्यजी देहातें। तो त्रिशुद्धी पावे मातें। जया पावणया परौतें। आणिक पावणें नाहीं ॥११९॥
तेथ अर्जुना जरी विपायें। तुझ्या जीवीं हन ऐसें जाये। ना हें स्मरण मग होये। कायसयावरी अंतीं ॥१२०॥
इंद्रियां अनुघडु पडलिया। जीविताचें सुख बुडालिया। आंतुबाहेरी उघडलिया। मृत्युचिन्हें ॥१२१॥
ते वेळीं बैसावेंचि कवणें। मग कवण निरोधी करणें। तेथ काह्याचेनि अंतःकरणें। प्रणव स्मरावा ॥१२२॥
तरि गा ऐशिया हो ध्वनी। झणें थारा देशी हो मनीं। पैं नित्य सेविला मी निदानीं। सेवकु होय ॥१२३॥
अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४॥
मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धि परमां गताः ॥१५॥
जे विषयांसि तिळांजळी देउनी। प्रवृत्तीवरी निगड वाऊनि। मातें हृदयीं सूनि। भोगिताती ॥१२४॥
परि भोगितया आराणुका। भेटणें नाहीं क्षुधादिकां। तेथ चक्षुरादि रंकां। कवण पाडु ॥१२५॥
ऐसें निरंतर एकवटले। जे अंतःकरणीं मजशीं लिगटले। मीचि होऊनि आटले। उपासिती ॥१२६॥
तयां देहावसान जैं पावे। तैं तिहीं मातें स्मरावें। मग म्यां जरी पावावें। तरी उपास्ति ते कायसी ? ॥१२७॥
पैं रंकु एक आडलेपणें। काकुळती धांव गा धांव म्हणे। तरी तयाचिये ग्लानि धांवणें। काय न घडे मज ? ॥१२८॥
आणि भक्तांही तेचि दशा। तरी भक्तीचा सोसु कायसा। म्हणौनि हा ध्वनी ऐसा। न वाखाणावा ॥१२९॥
तिहीं जे वेळीं मी स्मरावा। ते वेळीं स्मरिला कीं पावावा। तो आभारुही जीवां। साहवेचि ना ॥१३०॥
तें ऋणवैपण देखोनि आंगीं। मी आपुलियाचि उत्तीर्णत्वालागीं। भक्तांचियां तनुत्यागीं। परिचर्या करीं ॥१३१॥
देहवैकल्याचा वारा। झणें लागेल या सुकुमारा। म्हणौनि आत्मबोधाचिया पांजिरां। सूयें तयातें ॥१३२॥
वरी आपुलिया स्मरणाची उवाइली। हींव ऐसी करीं साउली। ऐसेनि नित्य बुद्धि संचली। मी आणीं तयातें ॥१३३॥
म्हणौनि देहांतींचें सांकडें। माझिया कहींचि न पडे। मी आपुलियातें आपुलीकडे। सुखेंचि आणीं ॥१३४॥
वरचील देहाची गंवसणी फेडुनी। आहाच अहंकाराचे रज झाडुनी। शुद्ध वासना निवडुनी। आपणपां मेळवीं ॥१३५॥
आणि भक्तां तरी देहीं। विशेष एकवंकीचा ठावो नाहीं। म्हणौनि अव्हेरु करितां कांहीं। वियोगु ऐसा न वाटे ॥१३६॥
नातरी देहांतींचि मियां यावें। मग आपणपें यातें न्यावें। हेंही नाहीं स्वभावें। जे आधींचि मज मीनले ॥१३७॥
येरी शरीराचिया सलिलीं। असतेपण हेचि साउली। वांचूनि चंद्रिका ते ठेली। चंद्रींच आहे ॥१३८॥
ऐसे जे नित्ययुक्त। तयांसि सुलभ मी सतत। म्हणौनि देहांतीं निश्चित। मीचि होती ॥१३९॥
मग क्लेशतरूची वाडी। जे तापत्रयाग्नीची सगडी। जे मृत्युकाकासीं कुरोंडी। सांडिली आहे ॥१४०॥
जें दैन्याचें दुभतें। जें महाभयातें वाढवितें। जें सकळ दुःखाचें पुरतें। भांडवल ॥१४१॥
जें दुर्मतीचें मूळ। जें कुकर्माचें फळ। जें व्यामोहाचें केवळ। स्वरूपचि ॥१४२॥
जें संसाराचें बैसणें। जें विकारांचें उद्यानें। जें सकळ रोगांचें भाणें। वाढिलें आहे ॥१४३॥
जें काळाचा खिचु उशिटा। जें आशेचा आंगवठा। जन्ममरणाचा वोलिंवटा। स्वभावें जें ॥१४४॥

जें भुलीचें भरिव। जें विकल्पाचें वोतिंव। किंबहुना पेंव। विंचुवांचें ॥१४५॥
जें व्याघ्राचें क्षेत्र। जें पण्यांगनेचें मैत्र। जें विषयविज्ञानयंत्र। सुपूजित ॥१४६॥
जें लावेचा कळवळा। निवालिया विषोदकाचा गळाळा। जें विश्वासु आंगवळा। संवचोराचा ॥१४७॥
जें कोढियाचें खेंव। जें काळसर्पाचें मार्दव। गोरियेचें स्वभाव। गायन जें ॥१४८॥
जें वैरियाचा पाहुणेरु। जें दुर्जनाचा आदरु। हें असो जें सागरु। अनर्थांचा ॥१४९॥
जें स्वप्नीं देखिलें स्वप्न। जें मृगजळें सासिन्नलें वन। जें धूम्ररजांचें गगन। ओतलें आहे ॥१५०॥
ऐसें जें हें शरीर। तें ते न पवतीचि पुढती नर। जे होऊनि ठेले अपार। स्वरूप माझें ॥१५१॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥१६॥

एऱ्हवीं ब्रह्मपणाचिये भडसे। न चुकतीचि पुनरावृत्तीचे वळसे। परि निवटलियाचे जैसें। पोट न दुखे ॥१५२॥
नातरी चेइलियानंतरें। न बुडिजे स्वप्नींचेनि महापुरें। तेवीं मातें पावले ते संसारें। लिंपतीचि ना ॥१५३॥
एऱ्हवीं जगदाकाराचें सिरें। जें चिरस्थायीयांचे धुरे। ब्रह्मभुवन गा चवरें। लोकाचळाचें ॥१५४॥
जिये गांवींचा पहारु दिवोवरी। एका अमरेंद्राचें आयुष्य न धरी। विळोनि पांतीं उठी एकसरी। चवदाजणांची ॥१५५॥

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रि युगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥१७॥

जैं चौकडिया सहस्र जाये। तैं ठाये ठावो विळुचि होये। आणि तैसेचि सहस्रवरिये पाहे। रात्री जेथ ॥१५६॥
येवढें अहोरात्र जेथिंचें। तेणें न लोटती जे भाग्याचे। देखती ते स्वर्गींचे। चिरंजीव ॥१५७॥
येरां सुरगणांची नवाई। विशेष सांगावी येथ काई। मुद्दल इंद्राचीचि दशा पाहीं। जे दिहाचे चौदा ॥१५८॥
परि ब्रह्मयाचियाहि आठां पाहारांतें। आपुलिया डोळां देखते। जे आहाति गा तयांतें। अहोरात्रविद म्हणिपे ॥१५९॥

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥१८॥
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥१९॥

तये ब्रह्मभुवनीं दिवसें पाहे। ते वेळीं गणना केहीं न समाये। ऐसें अव्यक्ताचें होये। व्यक्त विश्व ॥१६०॥
पुढती दिहाची चौपाहारी फिटे। आणि हा आकारसमुद्र आटे। पाठीं तैसाचि मग पाहांटे। भरों लागे ॥१६१॥
शारदीयेचिये प्रवेशीं। अभ्रें जिरती आकाशीं। मग ग्रीष्मांतीं जैशीं। निगती पुढती ॥१६२॥
तैशी ब्रह्मदिनाचिये आदी। हे भूतसृष्टीची मांदी। मिळे जंव सहस्रावधी। निमित्त पुरे ॥१६३॥
पाठीं रात्रींचा अवसरु होये। आणि विश्व अव्यक्तीं लया जाये। तोही युगसहस्र मोटका पाहे। आणि तैसेंचि रचे ॥१६४॥
हें सांगावया काय उपपत्ती। जे जगाचा प्रळयो आणि संभूती। इये ब्रह्मभुवनींचिया होती। अहोरात्रामाजीं ॥१६५॥
कैसें थोरिवेचें मान पाहें पां। जो सृष्टीबीजाचा साटोपा। परि पुनरावृत्तीचिया मापा। शीग जाहाला ॥१६६॥
एऱ्हवीं त्रैलोक्य हें धनुर्धरा। तिये गांवींचा गा पसारा। तो हा दिनोदयीं एकसरां। मांडतु असे ॥१६७॥
पाठीं रात्रींचा समो पावे। आणि अपैसाचि सांठवे। म्हणिये जेथिंचें तेथ स्वभावें। साम्यासी ये ॥१६८॥
जैसें वृक्षपण बीजासि आलें। कीं मेघ हें गगन जाहालें। तैसें अनेकत्व जेथ सामावलें। तें साम्य म्हणिपे ॥१६९॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥२०॥

तेथ समविषम न दिसे कांहीं। म्हणौनि भूतें हे भाष नाहीं। जेविं दूधचि जाहालिया दहीं। नामरूप जाय ॥१७०॥
तेविं आकारलोपासरिसें। जगाचें जगपण भ्रंशे। परि जेथें जाहालें तें जैसें। तैसेंचि असे ॥१७१॥

तैं तया नांव सहज अव्यक्त। आणि आकारावेळीं तेंचि व्यक्त। हें एकास्तव एक सूचित। एऱ्हवीं दोनी नाहीं ॥१७२॥
जैसें आटलिया रूपें। आटलेपण ते खोटी म्हणिपे। पुढती तो घनाकारु हारपे। जे वेळीं अलंकार होती ॥१७३॥
हीं दोहीं जैशीं होणीं। एकीं साक्षिभूत सुवर्णीं। तैसी व्यक्ताव्यक्ताची कडसणी। वस्तूच्या ठायीं ॥१७४॥
तें तरी व्यक्त ना अव्यक्त। नित्य ना नाशवंत। या दोहीं भावाअतीत। अनादिसिद्ध ॥१७५॥
जें हें विश्वचि होऊनि असे। परि विश्वपण नासिलेनि न नासे। अक्षरें पुसिल्या न पुसे। अर्थु जैसा ॥१७६॥
पाहें पां तरंग तरी होत जात। परि तेथ उदक तें अखंड असत। तेवीं भूताभावीं न नाशत। अविनाश जें ॥१७७॥
नातरी आटतिये अळंकारीं। नाटतें कनक असे जयापरी। तेवीं मरतिये जीवाकारीं। अमर जें आहे ॥१७८॥
अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥२१॥
पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥२२॥
जयातें अव्यक्त म्हणों ये कोडें। म्हणतां स्तुति हें ऐसें नावडे। जें मनाबुद्धी न सांपडे। म्हणौनियां ॥१७९॥
आणि आकारा आलिया जयाचें। निराकारपण न वचे। आकार लोपें न विसंचे। नित्यता गा ॥१८०॥
म्हणौनि अक्षर जें म्हणिजे। तेवींचि म्हणतां बोधुहि उपजे। जयापरौता पैसु न देखिजे। या नाम परमगती ॥१८१॥
परि आघवा इहीं देहपुरीं। आहे निजेलियाचे परी। जे व्यापारु करवी ना करी। म्हणौनियां ॥१८२॥
एऱ्हवीं जे शारीरचेष्टा। त्यांमाजीं एकही न ठके गा सुभटा। दाहीं इंद्रियांचिया वाटा। वाहतचि आहाती ॥१८३॥
उकलूनि विषयांचा पेटा। होत मनाचा चोहटा। तो सुखदुःखाचा राजवांटा। भीतराहि पावे ॥१८४॥
परि रावो पहुडलिया सुखें। जैसा देशींचा व्यापारु न ठके। प्रजा आपुलालेनि अभिलाखें। करितचि असती ॥१८५॥
तैसें बुद्धीचें हन जाणणें। कां मनाचें घेणें देणें। इंद्रियांचें करणें। स्फुरण वायूचें ॥१८६॥
हे देहक्रिया आघवी। न करवितां होय बरवी। जैसा न चलवितेनि रवी। लोकु चाले ॥१८७॥
अर्जुना तयापरी। सुतला ऐसा आहे शरीरीं। म्हणौनि पुरुषु गा अवधारीं। म्हणिपे जयातें ॥१८८॥
आणि प्रकृति पतिव्रते। पडिला एकपत्नीव्रतें। येणेंहि कारणें जयातें। पुरुषु म्हणों ये ॥१८९॥
पैं वेदाचें बहुवसपण। देखेचिना जयाचें आंगण। हें गगनाचें पांघरूण। होय देखा ॥१९०॥
ऐसें जाणूनि योगीश्वर। जयातें म्हणती परात्पर। जें अनन्यगतीचें घर। गिंवसीत ये ॥१९१॥
जे तनू वाचा चित्तें। नाइकती दुजिये गोष्टीतें। तयां एकनिष्ठेचें पिकतें। सुक्षेत्र जें ॥१९२॥
हें त्रैलोक्यचि पुरुषोत्तमु। ऐसा साच जयाचा मनोधर्मु। तया आस्तिकाचा आश्रमु। पांडवा गा ॥१९३॥
जें निगर्वाचें गौरव। जें निर्गुणाची जाणिव। जें सुखाची राणिव। निराशांसी ॥१९४॥
जें संतोषियां वाढिलें ताट। जें अचिंता अनाथांचें मायपोट। भक्तीसी उजू वाट। जया गांवा ॥१९५॥
हें एकैक सांगोनि वायां। काय फार करूं धनंजया। पैं गेलिया जया ठाया। तो ठावोचि होईजे ॥१९६॥
हिंवाचिया झुळुका। जैसें हिंवचि पडे उष्णोदका। कां समोर जालिया अर्का। तमचि प्रकाशु होय ॥१९७॥
तैसा संसारु जया गांवा। गेला सांता पांडवा। होऊनि ठाके आघवा। मोक्षाचाची ॥१९८॥
तरी अग्नीमाजीं आलें। जैसें इंधनचि अग्नि जहालें। पाठीं न निवडेचि कांहीं केलें। काष्ठपण ॥१९९॥
नातरी साखरेचा माघौता। बुद्धिमंतपणेंही करितां। परि ऊंस नव्हे पंडुसुता। जियापरी ॥२००॥
लोहाचें कनक जाहलें। हें एकें परिसेंचि केलें। आतां आणिक कैचें तें गेलें। लोहत्व आणी ॥२०१॥
म्हणौनि तूप होऊनि माघौतें। जेवीं दूधपणा न येचि निरुतें। तेवीं पावोनियां जयातें। पुनरावृत्ति नाहीं ॥२०२॥
तें माझें परम। साचोकारें निजधाम। हें आंतुवट तुज वर्म। दाविजत असे ॥२०३॥
यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।

प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥२३॥

तेवींचि आणिकेंही एके प्रकारें। हें जाणतां आहे सोपारें। तरी देह सांडितेनि अवसरें। जेथ मिळती योगी ॥२०४॥

अथवा अवचटें ऐसें घडे। जे अवसरें देह सांडे। तरि माघौतें येणें घडे। देहासीचि ॥२०५॥

म्हणौनि काळशुद्धी जरी देह ठेविती। तरी ठेवितखेंवी ब्रह्मचि होती। एऱ्हवीं अकाळीं तरी येती। संसारा पुढती ॥ २०६॥

तैसे सायुज्य आणि पुनरावृत्ती। या दोन्ही अवसराआधीन आहाती। तोचि अवसरु तुजप्रती। प्रसंगें सांगों ॥२०७॥

तरि ऐकें गा सुभटा। पातलिया मरणाचा माजिवटा। पांचै आपुलालिया वाटा। निघती अंतीं ॥२०८॥

ऐसा वरिपडिला प्रयाणकाळीं। बुद्धीतें भ्रमु न गिळी। स्मृति नव्हे आंधळी। न मरे मन ॥२०९॥

हा चेतना वर्गु आघवा। मरणीं दिसे टवटवा। परि अनुभविलिया ब्रह्मभावा। गंवसणी होऊनि ॥२१०॥

ऐसा सावध हा समवावो। आणि निर्वाणवेऱ्हीं निर्वाहो। हें तरीच घडे जरी सावावो। अग्नीचा आथी ॥२११॥

पाहां पां वारेनें कां उदकें। जैं दिवियाचें दिवेपण झांके। तैं असतीच काय देखे। दिठी आपुली ? ॥२१२॥

तैसें देहांतींचेनि विषमवातें। देह आंत बाहेरी श्लेष्माआंते। तैं विझोनि जाय उजितें। अग्नीचें तें ॥२१३॥

ते वेळीं प्राणासि प्राणु नाहीं। तेथ बुद्धि असोनि करील काई। म्हणौनि अग्नीविण देहीं। चेतना न थारे ॥२१४॥

अगा देहींचा अग्नि जरी गेला। तरी देह नव्हे चिखलु वोला। वायां आयुष्यवेळु आपला। आंधारें गिंवसी ॥२१५॥

आणि मागील स्मरण आघवें। तें तेणें अवसरें सांभाळावें। मग देह त्यजूनि मिळावें। स्वरूपीं कीं ॥२१६॥

तंव तया श्लेष्माचे चिखलीं। चेतनाचि बुडोनि गेली। तेथ मागिली पुढिली हे ठेली। आठवण सहजें ॥२१७॥

म्हणौनि आधीं अभ्यासु जो केला। तो मरण न येतांचि निमोनि गेला। जैसें ठेवणें न दिसतां मालवला। दीपु हातींचा ॥ २१८॥

आतां असो हें सकळ। जाण पां ज्ञानासि अग्नि मूळ। तया अग्नीचें प्रयाणीं बळ। संपूर्ण आथी ॥२१९॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।

तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥२४॥

आंत अग्निज्योतीचा प्रकाशु। बाहेरी शुक्लपक्षु आणि दिवसु। आणि सामासांमाजीं मासु। उत्तरायण ॥२२०॥

ऐशिया समयोगाची निरुती। लाहोनि जे देह ठेविती। ते ब्रह्मचि होती। ब्रह्मविद ॥२२१॥

अवधारीं गा धनुर्धरा। येथवरी सामर्थ्य यया अवसरा। तेवींचि हा उजू मार्ग स्वपुरा। यावयां पैं ॥२२२॥

एथ अग्नी हें पहिलें पायतरें। ज्योतिर्मय हें दुसरें। दिवस जाणें तिसरें। चौथें शुक्लपक्ष ॥२२३॥

आणि सामास उत्तरायण। तें वरचील गा सोपान। येणें सायुज्यसिद्धिसदन। पावती योगी ॥२२४॥

हा उत्तम काळु जाणिजे। यातें अर्चिरा मार्गु म्हणिजे। आतां अकाळु तोही सहजें। सांगेन आईक ॥२२५॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।

तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥२५॥

तरी प्रयाणाचिया अवसरें। वातश्लेष्मां सुभरें। तेणें अंतःकरणीं आंधारें। कोंदलें ठाके ॥२२६॥

सर्वेंद्रियां लांकुड पडे। स्मृति भ्रमामाजीं बुडे। मन होय वेडें। कोंडे प्राण ॥२२७॥

अग्नीचें अग्निपण जाये। मग तो धूमचि अवघा होये। तेणें चेतना गिंवसिली ठाये। शरीरींची ॥२२८॥

जैसें चंद्राआड आभाळ। सदट दाटे सजळ। मग गडद ना उजाळ। ऐसें झांवळें होय ॥२२९॥

कां मरे ना सावध। ऐसें जीवितासि पडे स्तब्ध। आयुष्य मरणाची मर्याद। वेळु ठाकी ॥२३०॥

ऐसी मनबुद्धिकरणीं। सभोंवतीं धूमाकुळाची कोंडणी। तेथ जन्में जोडलिये वाहणी। युगचि बुडे ॥२३१॥

हां गा हातींचें जे वेळीं जाये। ते वेळीं आणिका लाभाची गोठी कें आहे। म्हणौनि प्रयाणीं तंव होये। येतुली दशा ॥ २३२॥

ऐशी देहाआंतु स्थिती। बाहेरि कृष्णपक्षु वरि राती। आणि सामासही वोडवती। दक्षिणायन ॥२३३॥
इये पुनरावृत्तीचीं घराणीं। आघवीं एकवटती जयाचिया प्रयाणीं। तो स्वरूपसिद्धीची काहाणी। कैसेंनि आइके ? ॥२३४॥
ऐसा जयाचा देह पडे। तया योगी म्हणौनि चंद्रवरी जाणें घडे। मग तेथूनि मागुता बहुडे। संसारा ये ॥२३५॥
आम्हीं अकाळु जो पांडवा। म्हणितला तो हा जाणावा। आणि हाचि धूम्रमार्गु गांवा। पुनरावृत्तीचिया ॥२३६॥
येर तो अर्चिरा मार्गु। तो वसता आणि असलगु। साविया स्वस्त चांगु। निवृत्तीवरी ॥२३७॥
शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥२६॥
ऐशिया अनादि या दोन्ही वाटा। एकी उजू एकी अव्हांटा। म्हणौनि बुद्धिपूर्वक सुभटा। दाविलिया तुज ॥२३८॥
कां जे मार्गामार्ग देखावे। साच लटिकें वोळखावें। हिताहित जाणावें। हिताचिलागीं ॥२३९॥
पाहें पां नाव देखतां बरवी। कोणी आड घाली काय अथावीं। कां सुपंथ जाणौनियां अडवीं। रिगवत असे ॥२४०॥
जो विष अमृत वोळखे। तो अमृत काय सांडूं शके ? । तेविं जो उजू वाट देखे। तो अव्हांटा न वचे ॥२४१॥
म्हणौनि फुडें। पारखावें खरें कुडें। पारखिलें तरी न पडे। अनवसरें कहीं ॥२४२॥
एऱ्हवीं देहांतीं थोर विषम। या मार्गाचें आहे संभ्रम। जन्मे अभ्यासिलियाचें हन काम। जाईल वायां ॥२४३॥
जरी अर्चिरा मार्गु चुकलिया। अवचटें धूम्रपंथें पडलिया। तरी संसारपांथीं जुंतलिया। भंवतचि असावें ॥२४४॥
हे सायास देखोनि मोठे। आतां कैसेनि पां एकवेळ फिटे। म्हणौनि योगमार्गु गोमटे। शोधिले दोन्ही ॥२४५॥
तंव एकें ब्रह्मत्वा जाइजे। आणि एकें पुनरावृत्ती येइजे। परि दैवगत्या जो लाहिजे। देहांतीं जेणें ॥२४६॥
नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥२७॥
ते वेळीं म्हणितलें हें नव्हे। वांया अवचटें काय पावे। देह त्यजूनि वस्तु होआवें। मार्गेचि कीं ? ॥२४७॥
तरी आतां देह असो अथवा जावो। आम्ही तों केवळ वस्तूचि आहों। कां जे दोरीं सर्पत्व वावो। दोराचिकडुनी ॥२४८॥
मज तरंगपण असे कीं नसे। ऐसें हें उदकासी कहीं प्रतिभासे ? । तें भलतेव्हां जैसें तैसें। उदकचि कीं ॥२४९॥
तरंगाकारें न जन्मेचि। ना तरंगलोपें न निमेचि। तेविं देहीं जे देहेंचि। वस्तु जाहले ॥२५०॥
आतां शरीराचें तयाचिया ठाई। आडनांवही उरलें नाहीं। तरी कोणें काळें काई। निमे तें पाहें पां ॥२५१॥
मग मार्गातें कासया शोधावें ? । कोणें कोठूनि कें जावें ? । जरी देशकालादि आघवें। आपणचि असे ॥२५२॥
आणि हां गा घटु जे वेळीं फुटे। ते वेळीं तेथिंचें आकाश लागे नीट वाटे। वाटा लागे तरी गगना भेटे। एऱ्हवीं चुके ? ॥२५३॥
पाहें पां ऐसें हन आहे। कीं तो आकारुचि जाये। येर गगन तें गगनींचि आहे। घटत्वाहि आधीं ॥२५४॥
ऐसिया बोधाचेनि सुरवाडें। मार्गामार्गाचे सांकडें। तया सोऽहंसिद्धां न पडे। योगियांसी ॥२५५॥
याकारणें पंडुसुता। तुवां होआवें योगयुक्ता। येतुलेनि सर्वकाळीं साम्यता। आपैसया होईल ॥२५६॥
मग भलतेथ भलतेव्हां। देह असो अथवा जावा। परि अबंधा नित्य ब्रह्मभावा। विघडु नाहीं ॥२५७॥
तो कल्पादि जन्मा नागवे। कल्पांतीं मरणें नाप्लवें। माजीं स्वर्गसंसाराचेनि लाघवें। झकवेना ॥२५८॥
येणें बोधें जो योगी होये। तयासीचि या बोधाचें नीटपण आहे। कां जे भोगातें पेलूनि पायें। निजरूपा ये ॥२५९॥
पै गा इंद्रादिकां देवां। जयां सर्वस्वें गाजती राणिवा। तें सांडणें मानूनि पांडवा। डावली जो ॥२६०॥
वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टाम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥२८॥
ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नाम अष्टामोऽध्यायः ॥८अ ॥

जरी वेदाध्ययनाचें जालें। अथवा यज्ञाचें शेतचि पिकलें। कीं तपोदानांचे जोडलें। सर्वस्व हन जें ॥२६१॥

तया आघवयाचि पुण्याचा मळा। भारु आंतौनि जया ये फळा। तें परब्रह्मा निर्मळा। सांटि न सरे ॥२६२॥

जें नित्यानंदाचेनि मानें। उपमेचा कांटाळा न दिसे सानें। पाहा पां वेदयज्ञादि साधनें। जया सुखा ॥२६३॥

जें विटे ना सरे। भोगी तयाचेनि पवाडें पुरे। पुढती महासुखाचें सोयरें। भावंडचि ॥२६४॥

ऐसें दृष्टीचेनि सुखपणें। जयासी अदृष्टाचें बैसणें। जें शतमखाही आंगवणें। नोहेचि एका ॥२६५॥

तयातें योगीश्वर अलौकिकें। दिठीचेनि हाततुकें। अनुमानती कौतुकें। तंव हळुवट आवडे ॥२६६॥

मग तया सुखाची किरीटी। करूनियां गा पाउटी। परब्रह्माचिये पाठीं। आरूढती ॥२६७॥

ऐसे चराचरैक भाग्य। जें ब्रह्मेशां आराधना योग्य। योगियांचें भोग्य। भोगधन जें ॥२६८॥

जो सकळ कळांची कळा। जो परमानंदाचा पुतळा। जो जिवाचा जिव्हाळा। विश्वाचिया ॥२६९॥

जो सर्वज्ञतेचा वोलावा। जो यादवकुळींचा कुळदिवा। तो श्रीकृष्णजी पांडवा- । प्रती बोलिला ॥२७०॥

ऐसा कुरुक्षेत्रींचा वृत्तांतु। संजयो रायासी असे सांगतु। तेचि परियेसा पुढारी मातु। ज्ञानदेव म्हणे ॥२७१॥

इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां अष्टमोध्यायः ॥

.. ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय ९ ..

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय नववा ।

राजविद्याराजगुह्ययोगः ।

तरी अवधान एकलें दीजे। मग सर्वसुखासि पात्र होईजे। हें प्रतिज्ञोत्तर माझें। उघड ऐका ॥१॥
परी प्रौढी न बोलों हो जी। तुम्हां सर्वज्ञांच्या समाजीं। देयावें अवधान हे माझी। विनवणी सलगीची ॥२॥
कां जे लळेयांचे लळे सरती। मनोरथांचे मनोरथ पुरती। जरी माहेरें श्रीमंतें होती। तुम्हां ऐसीं ॥३॥
तुमचे या दिठिवेयाचिये वोलें। सासिन्नले प्रसन्नतेचे मळे। ते साउली देखोनि लोळें। श्रांतु जी मी ॥४॥
प्रभू तुम्ही सुखामृताचे डोहो। म्हणौनि आम्हीं आपुलिया स्वेच्छा वोलावो लाहों। येथही जरी सलगी करूं बिहों। तरी निवों कें पां ? ॥५॥
नातरी बालक बोबडां बोलीं। कां वांकुडा विचुका पाउलीं। ते चोज करूनि माउली। रिझे जेवीं ॥६॥
तेवीं तुम्हां संतांचा पढियावो। कैसेनि तरी आम्हांवरी हो। या बहुवा आळुकिया जी आहों। सलगी करीत ॥७॥
वांचूनि माझिये बोलतिये योग्यते। सर्वज्ञ भवादृश श्रोते। काय धड्यावरी सारस्वतें। पढों सिकिजे ॥८॥
अवधारा आवडे तेसणा धुंधुरु। परि महातेजीं न मिरवे काय करूं। अमृताचिया ताटीं वोगरूं। ऐसी रससोय कैंची ? ॥९॥
हां हो हिमकरासी विंजणें। कीं नादापुढें आइकवणें। लेणियासी लेणें। हें कहीं आथी ? ॥१०॥
सांगा परिमळें काय तुरंबावें। सागरें कवणें ठायीं नाहावें ?। हें गगनचि आडे आघवें। ऐसा पवाडु कैंचा ? ॥११॥
तैसें तुमचें अवधान धाये। आणि तुम्ही म्हणा हें होये। ऐसें वक्तृत्व कवणा आहे। जेणें रिझा तुम्ही ? ॥१२॥
तरी विश्वप्रगटितिया गभस्ती। काय हातिवेन न कीजे आरती ?। कां चुळोदकें आपांपती। अर्घ्यु नेदिजे ? ॥१३॥
प्रभू तुम्ही महेशाचिया मूर्ती। आणि मी दुबळा अर्चितुसें भक्ती। म्हणौनि बोल जऱ्ही गंगावती। तऱ्ही स्वीकाराल कीं ॥१४॥
बाळक बापाचिये ताटीं रिगे। आणि बापातेंचि जेवऊं लागे। कीं तो संतोषिलेनि वेगें। मुखचि वोढवी ॥१५॥
तैसा मीं जरी तुम्हांप्रती। चावटी करीतसें बाळमती। तरी तुम्ही संतोषिजे ऐसी जाती। प्रेमाची असे ॥१६॥
आणि तेणें आपुलेपणाचेनि मोहें। तुम्हीं संत घेतले असा बहुवें। म्हणौनि केलिये सलगीचा नोहे। आभारु तुम्हां ॥१७॥
अहो तान्हयाचें लागतां झटें। तेणें अधिकचि पान्हा फुटे। रोषें प्रेम दुणवटे। पढियंतयाचेनि ॥१८॥
म्हणौनि मज लेंकुरवाचेनि बोलें। तुमचें कृपाळूपण निदैलें। तें चेइलें ऐसें जी जाणवलें। यालागीं बोलिलो मीं ॥१९॥
एऱ्हवीं चांदिणें पिकविजत आहे चेपणीं ?। कीं वारया घापत आहे वाहणी ?। हां हो गगनासि गंवसणी। घालिजे केवीं ? ॥२०॥
आइका पाणी वोथिजावें न लगे। नवनीतीं माथुला न रिगे। तेवीं लाजिलें व्याख्यान निगे। देखोनि जयातें ॥२१॥
हें असो शब्दब्रह्म जिये बाजे। शब्द मावळलेया निवांतु निजे। तो गीतार्थु मऱ्हाठिया बोलिजे। हा पाडु काई ? ॥२२॥
परि ऐसियाही मज धिंवसा। तो पुढति याचि येकी आशा। जे धिटींवा करूनि भवादृशां। पढियंतया होआवें ॥२३॥
तरि आतां चंद्रापासोनि निववितें। जें अमृताहूनि जीववितें। तेणें अवधानें कीजो वाढतें। मनोरथां माझिया ॥२४॥
कां जैं दिठिवा तुमचा वरुषे। तैं सकळार्थ सिद्धि मती पिके। एऱ्हवीं कोंभेला उन्मेषु सुके। जरी उदास तुम्ही ॥२५॥
सहजें तरी अवधारा। वक्तृत्वा अवधानाचा होय चारा। तरी दोंदें पेलती अक्षरां। प्रमेयाचीं ॥२६॥
अर्थ बोलाची वाट पाहे। तेथ अभिप्रावोचि अभिप्रायातें विये। भावाचा फुलौरा होत जाये। मतिवरी ॥२७॥

म्हणौनि संवादाचा सुवावो ढळे। तऱ्ही हृदयाकाश सारस्वतें वोळे। आणि श्रोता दुश्चिता तरि वितुळे। मांडला रसु ॥ २८॥
अहो चंद्रकांतु द्रवता कीर होये। परि ते हातवटी चंद्रीं कीं आहे। म्हणौनि वक्ता तो वक्ता नोहे। श्रोतेनिविण ॥२९॥
परि आतां आमुतें गोड करावें। ऐसें तांदुळीं कायसा विनवावें ? । साइखडियानें काइ प्रार्थावें। सूत्रधारातें ? ॥३०॥
तो काय बाहुलियांचिया काजा नाचवी ? । कीं आपुलिये जाणिवेची कळा वाढवी। म्हणौनि आम्हां या ठेवाठेवी। काय काज ॥३१॥
तवं श्रीगुरू म्हणती काइ जाहलें। हें समस्तही आम्हां पावलें। आतां सांगैं जें निरोपिलें। नारायणें ॥३२॥
येथ संतोषोनि निवृत्तिदासें। जी जी म्हणौनि उल्हासें। अवधारा श्रीकृष्ण ऐसें। बोलते जाहले ॥३३॥
श्रीभगवानुवाच ।
इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१॥
नातरि अर्जुना हें बीज। पुढती सांगिजेल तुज। जें हें अंतःकरणींचें गुज। जिवाचिये ॥३४॥
येणें मानें जीवाचें हिये फोडावें। मग गुज कां पां मज सांगावें ? । ऐसें कांहीं स्वभावें। कल्पिशी जरी ॥३५॥
तरी परियेसी गा प्राज्ञा। तूं आस्थेचीच संज्ञा। बोलिलिये गोष्टीची अवज्ञा। नेणसी करूं ॥३६॥
म्हणौनि गूढपण आपुलें मोडो। वरि न बोलणेंही बोलावें घडो। परि आमुचिये जीवींचें पडो। तुझ्या जीवीं ॥३७॥
अगा थानीं कीर दूध गूढ। परि थानासीचि नव्हे कीं गोड। म्हणौनि सरो कां सेवितयाची चाड। जरी अनन्यु मिळे ॥ ३८॥
मुडांहूनि बीज काढिलें। मग निर्वाळलिये भूमीं पेरिलें। तरि तें सांडीविखुरीं गेलें। म्हणों ये कायी ? ॥३९॥
यालागीं सुमनु आणि शुद्धमती। जो अनिंदकु अनन्यगती। पैं गा गौप्यही परी तयाप्रती। चावळिजे सुखें ॥४०॥
तरि प्रस्तुत आतां गुणीं इहीं। तूं वांचून आणिक नाहीं। म्हणौनि गुज तरी तुझ्या ठायीं। लपऊं नये ॥४१॥
आतां किती नावानावा गुज। म्हणतां कानडें वाटेल तुज। तरी ज्ञान सांगेन सहज। विज्ञानेंसी ॥४२॥
परि तेंचि ऐसेनि निवाडें। जैसें भेसळलें खरें कुडें। मग काढिजे फाडोवाडें। पारखूनियां ॥४३॥
कां चांचूचेनि सांडसें। खांडिजे पय पाणी राजहंसें। तुज ज्ञान विज्ञान तैसें। वांटूनि देऊं ॥४४॥
मग वारयाचिया धारसा। पडिन्नला कोंडा कां नुरेचि जैसा। आणि कणांचा आपैसा। राशिवा जोडे ॥४५॥
तैसें जें जाणितलेयासाठीं। संसार संसाराचिये गांठीं। लाऊनि बैसवी पाटीं। मोक्षश्रियेच्या ॥४६॥
राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥२॥
जे जाणणेया आघवेयांच्या गांवीं। गुरुत्वाची आचार्य पदवी। जें सकळ गुह्यांचा गोसावी। पवित्रां रावो ॥४७॥
आणि धर्माचें निजधाम। तेवींची उत्तमाचें उत्तम। पैं जया येतां नाहीं काम। जन्मांतराचें ॥४८॥
मोटकें गुरुमुखें उदैजत दिसे। आणि हृदयीं स्वयंभचि असे। प्रत्यक्ष फावों लागे तैसें। आपैसयाचि ॥४९॥
तेवींचि गा सुखाच्या पाउटीं। चढतां येइजे जयाच्या भेटी। मग भेटल्या कीर मिठी। भोगणेंयाही पडे ॥५०॥
परि भोगाचिये एलीकडिलिये मेरे। चित्त उभें ठेलें सुखा भरे। ऐसें सुलभ आणि सोपारें। वरि परब्रह्म ॥५१॥
पैं गा आणिकही एक याचें। जें हातां आलिया तरी न वचे। आणि अनुभवितां कांही न वेचे। वरि विटेहि ना ॥५२॥
येथ जरी तूं तर्किका। ऐसी हन घेसी शंका। ना येवढी वस्तु हे लोकां। उरली केविं पां ? ॥५३॥
जे एकोत्तरेयाचिया वाढी। जळतिये आगीं घालिती उडी। ते अनायासें स्वगोडी। सांडिती केवीं ? ॥५४॥
तरी पवित्र आणि रम्य। तेवींचि सुखोपाय गम्य। आणि स्वसुख परम धर्म्य। वरि आपणपां जोडे ॥५५॥

ऐसा अवघाचि हा सुरवाडु आहे। तरी जना हातीं केविं उरों लाहे। हा शंकेचा ठावो कीर होये। परि न धरावी तुवां ॥५६॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥३॥

पाहे पां दूध पवित्र आणि गोड। पासी त्वचेचिया पदराआड। परि तें अव्हेरूनि गोचिड। अशुद्ध काय न सेविती ? ॥५७॥

कां कमलकंदा आणि दर्दुरीं। नांदणूक एकेचि घरीं। परि परागु सेविजे भ्रमरीं। येरां चिखलुचि उरे ॥५८॥

नातरी निदैवाच्या परिवरीं। लोह्या रुतलिया आहाति सहस्रवरी। परि तेथ बैसोनि उपवासु करी। कां दरिद्रें जिये ॥५९॥

तैसा हृदयामध्यें मी रामु। असतां सर्वसुखाचा आरामु। कीं भ्रांतासी कामु। विषयावरी ॥६०॥

बहु मृगजळ देखोनि डोळां। थुंकिजे अमृताचा गिळितां गळाळा। तोडिला परिसु बांधिला गळां। शुक्तिकालाभें ॥६१॥

तैसी अहंममतेचिये लवडसवडी। मातें न पवतीचि बापुडीं। म्हणौनि जन्ममरणाची दुथडीं। डहुळितें ठेलीं ॥६२॥

एऱ्हवीं मी तरी कैसा। मुखाप्रति भानु कां जैसा। कहीं दिसे न दिसे ऐसा। वाणीचा नोहे ॥६३॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥४॥

माझेया विस्तारलेपणा नांवें। हें जगचि नोहे आघवें ?। जैसें दूध मुरालें स्वभावें। तरि तेंचि दहीं ॥६४॥

कां बीजचि जाहलें तरु। अथवा भांगारचि अळंकारु। तैसा मज एकाचा विस्तारु। तें हें जग ॥६५॥

हें अव्यक्तपणें थिजलें। तेंचि मग विश्वाकारें वोथिजलें। तैसें अमूर्तमूर्ति मियां विस्तारलें। त्रैलोक्य जाणें ॥६६॥

महदादि देहांतें। इयें अशेषेंही भूतें। परी माझ्या ठायीं बिंबतें। जैसें जळीं फेण ॥६७॥

परि तया फेणांआंतु पाहतां। जेवीं जळ न दिसे पंडुसुता। नातरी स्वप्नींची अनेकता। चेइलिया नोहिजे ॥६८॥

तैसीं भूतें इयें माझ्या ठायीं। बिंबती तयांमाजीं मी नाहीं। इया उपपत्ती तुज पाहीं। सांगितलिया मागां ॥६९॥

म्हणौनि बोलिलिया बोलाचा अतिसो। न कीजे यालागीं हें असो। परी मज आंत पैसो। दिठी तुझी ॥७०॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥५॥

आमुचा प्रकृतीपैलीकडील भावो। जरी कल्पनेवीण लागसी पाहों। तरी मजमाजीं भूतें हेंही वावो। जें मी सर्व म्हणौनी ॥७१॥

एऱ्हवीं संकल्पाचिये सांजवेळे। नावेक तिमिरेजती बुद्धीचे डोळे। म्हणौनि अखंडितचि परि झांवळे। भूतभिन्न ऐसें देखे ॥७२॥

तेचि संकल्पाची सांज जैं लोपे। तैं अखंडितचि आहे स्वरूपें। जैसें शंका जातखेंवो लोपे। सापपण माळेचें ॥७३॥

एऱ्हवीं तरी भूमीआंतूनि स्वयंभ। काय घडेयागाडगेयाचे निघती कोंभ ?। परि ते कुलालमतीचे गर्भ। उमटले कीं ॥७४॥

नातरी सागरींच्या पाणी। काय तरंगाचिया आहाती खाणी ?। ते अवांतर करणी। वारयाची नव्हे ? ॥७५॥

पाहें पां कापसाच्या पोटीं। काय कापडाची होती पेटी ?। तो वेढितयाचिया दिठी। कापड जाहला ॥७६॥

जरी सोनें लेणें होउनी घडे। तरी तयाचें सोनेंपण न मोडे। येर अळंकार हे वरचिलीकडे। लेतयाचेनि भावें ॥७७॥

सांगें पडिसादाचीं प्रत्युत्तरें। कां आरिसां जें आविष्करें। तें आपलें कीं साचोकारें। तेथेंचि होतें ? ॥७८॥

तैसी इये निर्मळे माझ्या स्वरूपीं। जो भूतभावना आरोपी। तयासी तयाच्या संकल्पीं। भूताभासु असे ॥७९॥

तेचि कल्पिती प्रकृती पुरे। तरि भूताभासु आधींचि सरे। मग स्वरूप उरे एकसरें। निखळ माझें ॥८०॥

हें असो आंगीं भरलिया भवंडी। जैशा भोंवत दिसती अरडीदरडी। तैशी आपुलिया कल्पना अखंडीं। गमती भूतें ॥८१॥
तेचि कल्पना सांडूनि पाहीं। तरि मी भूतीं भूतें माझिया ठायीं। हें स्वप्नींही परि नाहीं। कल्पावयाजोगें ॥८२॥
आतां मीच एक भूतांतें धर्ता। अथवा भूतांमाजीं मी असता। या संकल्पसन्निपाता- । आंतुलिया बोलिया ॥८३॥
म्हणौनि परियेसी गा प्रियोत्तमा। यापरी मी विश्वेंसीं विश्वात्मा। जो इया लटकिया भूतग्रामा। भाव्यु सदा ॥८४॥
रश्मीचेनि आधारें जैसें। नव्हे तेंचि मृगजळ आभासे। माझ्या ठायीं भूतजात तैसें। आणि मातेंहीं भावी ॥८५॥
मी ये परीचा भूतभावनु। परि सर्व भूतांसि अभिन्नु। जैसी प्रभा आणि भानु। एकचि ते ॥८६॥
हा आमुचा ऐश्वर्ययोगु। तुवां देखिला कीं चांगु ? । आतां सांगे कांहीं एथ लागु। भूतभेदाचा असे ? ॥८७॥
यालागीं मजपासूनि भूतें। आनें नव्हती हें निरुतें। आणि भूतांवेगळिया मातें। कहींच न मनीं हो ! ॥८८॥

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥६॥

पैं गगन जेवढें जैसें। पवनुहि गगनीं तेवढाचि असे। सहजें हालविलिया वेगळा दिसे। एऱ्हवीं गगन तेंचि तो ॥८९॥
तैसें भूतजात माझ्या ठायीं। कल्पिजे तरी आभासे कांहीं। निर्विकल्पीं तरी नाहीं। तेथ मीचि मी आघवें ॥९०॥
म्हणौनि नाहीं आणि असे। हें कल्पनेचेनि सौरसें। जें कल्पनालोपें भ्रंशे। आणि कल्पनेसवें होय ॥९१॥
तेंचि कल्पितें मुद्दल जाये। तैं असे नाहीं हें कें आहे ? । म्हणौनि पुढती तूं पाहे। हा ऐश्वर्ययोगु ॥९२॥
ऐसिया प्रतीतिबोधसागरीं। तूं आपणेयातें कल्लोळु एक करीं। मग जंव पाहासी चराचरीं। तंव तूंचि आहासी ॥९३॥
या जाणणेयाचा चेवो। तुज आला ना ? म्हणती देवो। तरी आतां द्वैत स्वप्न वावो। जालें कीं ना ? ॥९४॥
तरी पुढती जरी विपायें। बुद्धीसी कल्पनेची झोंप ये। तरी अभेदबोधु जाये। जैं स्वप्नीं पडिजे ॥९५॥
म्हणौनि ये निद्रेची वाट मोडे। निखळ उद्बोधाचेंचि आपणपें घडे। ऐसें वर्म जें आहे फुडें। तें दावों आतां ॥९६॥
तरी धनुर्धरा धैर्या। निकें अवधान देईं बा धनंजया। पैं सर्व भूतांतें माया। करी हरी गा ॥९७॥

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥७॥

जिये नांव गा प्रकृती। जे द्विविधा सांगितली तुजप्रती। एकी अष्टधा भेदव्यक्ती। दुजी जीवरूपा ॥९८॥
हा प्रकृतीविखो आघवा। तुवां मागां परिसिलासी पांडवा। म्हणौनि असो काई सांगावा। पुढतपुढती ॥९९॥
तरी ये माझिये प्रकृती। महाकल्पाच्या अंतीं। सर्व भूतें अव्यक्तीं। ऐक्यासि येती ॥१००॥
ग्रीष्माच्या अतिरसीं। सबीजें तृणें जैसीं। मागुती भूमीसी। सुलीनें होतीं ॥१०१॥
कां वार्षिये ढेंढें फिटे। जेव्हां शारदीयेचा अनुघडु फुटे। तेव्हां घनजात आटे। गगनींचे गगनीं ॥१०२॥
नातरी आकाशाचे खोंपे। वायु निवांतुचि लोपे। कां तरंगता हारपे। जळीं जेवीं ॥१०३॥
अथवा जागिनलिये वेळे। स्वप्न मनींचें मनीं मावळे। तैसें प्राकृत प्रकृतीं मिळे। कल्पक्षयीं ॥१०४॥
मग कल्पादीं पुढती। मीचि सृजीं ऐसी वदंती। तरी इयेविषयीं निरुती। उपपत्ती आइक ॥१०५॥

प्रकृतिं स्वामवष्टाभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥८॥

तरी हेचि प्रकृती किरीटी। मी स्वकीया सहजें अधिष्ठीं। तेथ तंतूसमवाय पटी। जेंवि विणावणी दिसे ॥१०६॥
मग तिये विणावणीचेनि आधारें। लहाना चौकडिया पटत्व भरे। तैसीं पंचात्मकें आकारें। प्रकृतीचि होय ॥१०७॥
जैसें विरजणियाचेनि संगें। दूधचि आटेजों लागे। तैशी प्रकृती आंगा रिगे। सृष्टीपणाचिया ॥१०८॥
बीज जळाची जवळीक लाहे। आणि तेंचि शाखोपशाखीं होये। तैसें मज करणें आहे। भूतांचें हें ॥१०९॥
अगा नगर हें रायें केलें। या म्हणणया साचपण कीर आलें। परि निरुतें पाहतां काय सिणलें। रायाचे हात ? ॥११०॥
आणि मी प्रकृती अधिष्ठीं तें कैसें। जैसा स्वप्नीं जो असे। मग तोचि प्रवेशे। जागृतावस्थे ॥१११॥

तरी स्वप्नौनि जागृती येतां। काय पाय दुखती पंडुसुता। कीं स्वप्नामाजीं असतां। प्रवासु होय ? ॥११२॥
या आघवियाचा अभिप्रावो कायी। जे हें भूतसृष्टीचें कांहीं। मज एकही करणें नाहीं। ऐसाचि अर्थु ॥११३॥
जैसी रायें अधिष्ठिली प्रजा। व्यापारें आपुलालिया काजा। तैसा प्रकृतिसंगु हा माझा। येर करणें तें इयेचें ॥११४॥
पाहे पां पूर्णचंद्राचिये भेटी। समुद्रीं अपार भरतें दाटी। तेथ चंद्रासि काय किरीटी। उपखा पडे ? ॥११५॥
जड परि जवळिका। लोह चळे तरी चळो कां। तरि कवणु शीणु भ्रामका। सन्निधानाचा ? ॥११६॥
किंबहुना यापरी। मी निजप्रकृति अंगिकारीं। आणि भूतसृष्टी एकसरी। प्रसवोंचि लागे ॥११७॥
जो हा भूतग्रामु आघवा। असे प्रकृतीआधीन पांडवा। जैसी बीजाचिया वेलपालवा। समर्थ भूमी ॥११८॥
नातरी बाळादिकां वयसा। गोसावी देहसंगु जैसा। अथवा घनावळी आकाशा। वार्षिये जेवीं ॥११९॥
कां स्वप्नासि कारण निद्रा। तैसी प्रकृती हे नरेंद्रा। या अशेषाहि भूतसमुद्रा। गोसाविणी गा ॥१२०॥
स्थावरा आणि जंगमा। स्थूळा अथवा सूक्ष्मा। हे असो भूतग्रामा। प्रकृतिचि मूळ ॥१२१॥
म्हणौनि भूतें हन सृजावीं। कां सृजिलीं प्रतिपाळावीं। इयें करणीं न येती आघवीं। आमुचिया आंगा ॥१२२॥
जळीं चंद्रिकेचिया पसरती वेली। ते वाढी चंद्रें नाहीं वाढविली। तेविं मातें पावोनि ठेलीं। दूरी कर्मे ॥१२३॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥९॥

आणि सुटलिया सिंधुजळाचा लोटु। न शके धरूं सैंधवाचा घाटु। तेविं सकळ कर्मा मीचि शेवटु। तीं काय बांधती मातें ? ॥१२४॥
धूम्ररजांची पिंजरीं। वाजतिया वायूतें जरी होकारी। कां सूर्यबिंबामाझारीं। आंधारें शिरे ? ॥१२५॥
हें असो पर्वताचिये हृदयींचें। जेविं पर्जन्यधारास्तव न खोंचें। तेविं कर्मजात प्रकृतीचें। न लगे मज ॥१२६॥
एऱ्हवीं इये प्रकृतिविकारीं। एकु मीचि असे अवधारीं। परि उदासीनाचिया परी। करीं ना करवीं ॥१२७॥
जैसा दीपु ठेविला परिवरीं। कवणातें नियमी ना निवारी। आणि कवण कवणिये व्यापारीं। राहाटे तेंहि नेणें ॥१२८॥
तो जैसा कां साक्षिभूतु। गृहव्यापारप्रवृत्तिहेतु। तैसा भूतकर्मीं अनासक्तु। मी भूतीं असें ॥१२९॥
हा एकचि अभिप्रावो पुढतपुढती। काय सांगों बहुतां उपपत्ती। येथ एकहेळां सुभद्रापती। येतुलें जाण पां ॥१३०॥

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥१०॥

जे लोकचेष्टां समस्तां। जैसा निमित्तमात्र कां सविता। तैसा जगत्प्रभवीं पंडुसुता। हेतु मी जाणें ॥१३१॥
कां जें मियां अधिष्ठिलिया प्रकृती। होती चराचराचिया संभूती। म्हणौनि मी हेतु हे उपपत्ती। घडे यया ॥१३२॥
आतां येणें उजिवडें निरुतें। न्याहाळीं पां ऐश्वर्ययोगातें। जे माझ्या ठायीं भूतें। परी भूतीं मी नसें ॥१३३॥
अथवा भूतें ना माझ्या ठायीं। आणि भूतांमाजीं मी नाहीं। या खुणा तूं कहीं। चुकों नको ॥१३४॥
हें सर्वस्व आमुचें गूढ। परि दाविलें तुज उघड। आतां इंद्रियां देऊनि कवाड। हृदयीं भोगीं ॥१३५॥
हा दंशु जंव नये हातां। तंव माझें साचोकारपण पार्था। न संपडे गा सर्वथा। जेविं तुषीं कणु ॥१३६॥
एऱ्हवीं अनुमानाचेनि पैसें। आवडे कीर कळलें ऐसें। परि मृगजळाचेनि वोलांशें। काय भूमि तिमे ? ॥१३७॥
जें जाळ जळीं पांगिलें। तेथ चंद्रबिंब दिसे आंतुडलें। परि थडिये काढूनि झाडिलें। तेव्हां बिंब कें सांगैं ? ॥१३८॥
तैसें बोलवरी वाचाबळें। वायांचि झकविजती प्रतीतीचें डोळे। मग साचोकारें बोधावेळे। आथि ना होइजे ॥१३९॥

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥११॥

किंबहुना भवा बिहाया। आणि साचें चाड आथि जरी मियां। तरि तूं गा उपपत्ती इया। जतन कीजे ॥१४०॥
एऱ्हवीं दिठी वेधली कवळें। तैं चांदणियातें म्हणे पिंवळें। तेंविं माझ्या स्वरूपीं निर्मळें। देखती दोष ॥१४१॥

नातरी ज्वरें विटाळलें मुख। तें दुधातें म्हणे कडू विख। तेविं अमानुषा मानुष। मानिती मातें ॥१४२॥
म्हणौनि पुढतपुढती धनंजया। झणें विसंबसी या अभिप्राया। जे इया स्थूलदृष्टी वायां। जाइजेल गा ॥१४३॥
पैं स्थूलदृष्टी देखती मातें। तेंचि न देखणें जाण निरुतें। जैसें स्वप्नींचेनि अमृतें। अमरा नोहिजे ॥१४४॥
एऱ्हवीं स्थूलदृष्टी मूढ। मातें जाणती कीर दृढ। परि तें जाणणेचि जाणणेया आड। रिगोनि ठाके ॥१४५॥
जैसा नक्षत्राचिया आभासा- । साठीं घातु झाला तया हंसा। माजीं रत्नबुद्धीचिया आशा। रिगोनियां ॥१४६॥
सांगैं गंगा या बुद्धी मृगजळ। ठाकोनि आलियाचें कवण फळ। काय सुरतरु म्हणौनि बाबुळ। सेविली करी ? ॥१४७॥
हार निळयाचाचि दुसरा। या बुद्धी हातु घातला विखारा। कां रत्नें म्हणौनि गारा। वेंचि जेंवीं ॥१४८॥
अथवा निधान हें प्रगटलें। म्हणौनि खदिरांगार खोळे भरिले। कां साउली नेणतां घातलें। कुहा सिंहें ॥१४९॥
तेवीं मी म्हणौनि प्रपंचीं। जिहीं बुडी दिधली कृतनिश्चयाची। तिहीं चंद्रासाठीं जेवीं जळींची। प्रतिभा धरिली ॥१५०॥
तैसा कृतनिश्चयो वायां गेला। जैसा कोण्ही एकु कांजी प्याला। मग परिणाम पाहों लागला। अमृताचा ॥१५१॥
तैसें स्थूलाकारी नाशिवंतें। भरंवसा बांधोनि चित्तें। पाहती मज अविनाशातें। तरी कैंचा दिसें ? ॥१५२॥
आगा काई पश्चिमसमुद्राचिया तटा। निघिजत आहे पूर्विलिया वाटा। कां कोंडा कांडतां सुभटा। कणु आतुडे ? ॥१५३॥
तैसें विकारलें हें स्थूळ। जाणितले या मी जाणवतसें केवळ। काई फेण पितां जळ। सेविलें होय ? ॥१५४॥
म्हणौनि मोहिलेंनि मनोधर्में। हेंचि मी मानूनि संभ्रमें। मग येथिंची जियें जन्मकर्में। तियें मजचि म्हणती ॥१५५॥
येतुलेनि अनामा नाम। मज अक्रियासि कर्म। विदेहासि देहधर्म। आरोपिती ॥१५६॥
मज आकारशून्या आकारु। निरुपाधिका उपचारु। मज विधिवर्जिता व्यवहारु। आचारादिक ॥१५७॥
मज वर्णहीना वर्णु। गुणातीतासि गुणु। मज अचरणा चरणु। अपाणिया पाणी ॥१५८॥
मज अमेया मान। सर्वगतासी स्थान। जैसें सेजेमाजीं वन। निदेला देखे ॥१५९॥
तैसें अश्रवणा श्रोत्र। मज अचक्षूसी नेत्र। अगोत्रा गोत्र। अरूपा रूप ॥१६०॥
मज अव्यक्तासी व्यक्ती। अनार्तासी आर्ती। स्वयंतृप्ता तृप्ती। भाविती गा ॥१६१॥
मज अनावरणा प्रावरण। भूषणातीतासि भूषण। मज सकळ कारणा कारण। देखती ते ॥१६२॥
मज सहजातें करिती। स्वयंभातें प्रतिष्ठिती। निरंतरातें आव्हानिती। विसर्जिती गा ॥१६३॥
मी सर्वदा स्वतःसिद्धु। तो कीं बाळ तरुण वृद्धु। मज एकरूपा संबंधु। जाणती ऐसे ॥१६४॥
मज अद्वैतासि दुजें। मज अकर्तयासि काजें। मी अभोक्ता कीं भुंजें। ऐसें म्हणती ॥१६५॥
मज अकुळाचें कुळ वानिती। मज नित्याचेनि निधनें शिणती। मज सर्वांतरातें कल्पिती। अरि मित्र गा ॥१६६॥
मी स्वानंदाभिरामु। तया मज अनेक सुखांचा कामु। आघवाचि मी असे समु। कीं म्हणती एकदेशी ॥१६७॥
मी आत्मा एक चराचरीं। म्हणती एकाचा कैंपक्ष करीं। आणि कोपोनि एकातें मारीं। हेंचि वाढविती ॥१६८॥
किंबहुना ऐसें समस्त। जे हे मानुषधर्म प्राकृत। तयाचि नांव मी ऐसें विपरीत। ज्ञान तयांचें ॥१६९॥
जंव आकारु एक पुढां देखती। तंव हा देव येणें भावें भजती। मग तोचि विघडलिया टाकिती। नाहीं म्हणौनि ॥१७०॥
मातें येणें येणें प्रकारें। जाणती मनुष्य ऐसेनि आकारें। म्हणौनि ज्ञानचि तें आंधारें। ज्ञानासि करी ॥१७१॥

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥१२॥

यालागीं जन्मलेचि ते मोघ। जैसें वार्षियेवीण मेघ। कां मृगजळाचे तरंग। दुरूनीचि पाहावें ॥१७२॥
अथवा कोल्हेरीचे असिवार। नातरी वोडंबरीचे अळंकार। कीं गंधर्वनगरीचे आवार। आभासती कां ॥१७३॥
साबरी वाढिन्नल्या सरळा। वरी फळ ना आंतु पोकळा। कां स्तन जाले गळां। शेळिये जैसें ॥१७४॥
तैसें मूर्खाचें तया जियालें। आणि धिग कर्म तयांचें निपजलें। जैसें साबरी फळ आलें। घेपे ना दीजे ॥१७५॥
मग जें कांहीं ते पढिन्नले। तें मर्कटें नारळ तोडिले। कां आंधळया हातीं पडिलें। मोतीं जैसें ॥१७६॥

किंबहुना तयांचीं शास्त्रें। जैशीं कुमारीं हातीं दिधलीं शस्त्रें। कां अशौच्या मंत्रें। बीजें कथिलीं ॥१७७॥
तैसें ज्ञानजात तयां। आणि जें कांहीं आचरलें गा धनंजया। तें आघवेंचि गेलें वायां। जें चित्तहीन ॥१७८॥
पैं तमोगुणाची राक्षसी। जे सद्‌बुद्धीतें ग्रासी। विवेकाचा ठावोचि पुसी। निशाचरी जे ॥१७९॥
तिये प्रकृती वरपडे जाले। म्हणौनि चिंतेचेनि कपोलें गेले। वरि तामसीयेचिये पडिले। मुखामाजीं ॥१८०॥
जेथ आशेचिये लाळे। आंतु हिंसा जीभ लोळे। तेवींचि असंतोषाचे चाकळे। अखंड चघळी ॥१८१॥
जे अनर्थाचे कानवेरी। आवाळुवें चाटीत निघे बाहेरी। जे प्रमादपर्वतींची दरी। सदाचि मातली ॥१८२॥
जेथ द्वेषाचिया दाढा। खसखसां ज्ञानाचा करिती रगडा। जे अगस्ती गवसणी मूढां। स्थूल बुद्धि ॥१८३॥
ऐसे आसुरिये प्रकृतीचे तोंडीं। जे जाले गा भूतोंडीं। ते बुडोनि गेले कुंडीं। व्यामोहाच्या ॥१८४॥
एवं तमाचिये पडिले गर्तें। न पविजतीचि विचाराचेनि हातें। हें असो ते गेले जेथें। ते शुद्धीचि नाहीं ॥१८५॥
म्हणौनि असोतु इयें वायाणीं। कायशीं मूर्खांचीं बोलणीं। वायां वाढवितां वाणी। शिणेल हन ॥१८६॥
ऐसें बोलिलें देवें। तेथ जी जी म्हणितलें पांडवें। आइकें जेथ वाचा विसवे। ते साधुकथा ॥१८७॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतीमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥१३॥

तरी जयाचे चोखटे मानसीं। मी होऊनि असें क्षेत्रसंन्यासी। जया निजेलियातें उपासी। वैराग्य गा ॥१८८॥
जयाचिया आस्थेचिया सद्भावा। आंतु धर्म करी राणिवा। जयाचें मन ओलावा। विवेकासी ॥१८९॥
जे ज्ञानगंगे नाहाले। पूर्णता जेऊनि धाले। जे शांतीसी आले। पालव नवे ॥१९०॥
जे परिणामा निघाले कोंभ। जे धैर्यमंडपाचे स्तंभ। जे आनंदसमुद्रीं कुंभ। चुबकळोनि भरिले ॥१९१॥
जया भक्तीची येतुली प्राप्ती। जे कैवल्यातें परौतें सर म्हणती। जयांचिये लीलेमाजीं नीति। जियाली दिसे ॥१९२॥
जे आघवांचि करणीं। लेईले शांतीचीं लेणीं। जयांचें चित्त गवसणी। व्यापका मज ॥१९३॥
ऐसें जे महानुभाव। दैविये प्रकृतीचें दैव। जे जाणोनियां सर्व। स्वरूप माझें ॥१९४॥
मग वाढतेनि प्रेमें। मातें भजती जे महात्मे। परि दुजेपण मनोधर्में। शिवतलें नाहीं ॥१९५॥
ऐसें मीच होऊनि पांडवा। करिती माझी सेवा। परि नवलावो तो सांगावा। असे आइक ॥१९६॥

सततं किर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥१४॥

तरी कीर्तनाचेनि नटनाचे। नाशिले व्यवसाय प्रायश्चित्ताचे। जें नामचि नाहीं पापाचें। ऐसें केलें ॥१९७॥
यमदमा अवकळा आणिली। तीर्थें ठायावरूनि उठविलीं। यमलोकींची खुंटिली। राहाटी आघवी ॥१९८॥
यमु म्हणे काय यमावें। दमु म्हणे कवणातें दमावें। तीर्थें म्हणतीं काय खावें। दोष ओखदासि नाहीं ॥१९९॥
ऐसें माझेनि नामघोषें। नाहींचि करिती विश्वाचीं दुःखें। अवघें जगचि महासुखें। दुमदुमित भरलें ॥२००॥
ते पाहांटेवीण पाहाविते। अमृतेंवीण जीवविते। योगेंवीण दाविते। कैवल्य डोळां ॥२०१॥
परी राया रंका पाड धरूं। नेणती सानेयां थोरां कडसणी करूं। एकसरें आनंदाचें आवारु। होत जगा ॥२०२॥
कहीं एकाधेनि वैकुंठा जावें। तें तिहीं वैकुंठचि केलें आघवें। ऐसें नामघोषगौरवें। धवळलें विश्व ॥२०३॥
तेजें सूर्य तैसें सोज्वळ। परि तोहि अस्तवे हें किडाळ। चंद्र संपूर्ण एखादे वेळ। हे सदा पुरते ॥२०४॥
मेघ उदार परी वोसरे। म्हणौनि उपमेसी न पुरे। हे निःशंकपणें सपांखरे। पंचानन ॥२०५॥
जयांचे वाचेपुढां भोजें। नाम नाचत असे माझें। जें जन्मसहस्रीं वोळगिजे। एकवेळ यावया ॥२०६॥
तो मी वैकुंठीं नसें। वेळु एक भानुबिंबींही न दिसें। वरी योगियांचींही मानसें। उमरडोनि जाय ॥२०७॥
परी तयांपाशीं पांडवा। मी हारपला गिंवसावा। जेथ नामघोषु बरवा। करिती माझा ॥२०८॥
कैसे माझ्या गुणीं धाले। देशकालातें विसरले। कीर्तनें सुखी झाले। आपणपांचि ॥२०९॥

कृष्ण विष्णु हरि गोविंद। या नामाचे निखळ प्रबंध। माजी आत्मचर्चा विशद। उदंड गाती ॥२१०॥
हे बहु असो यापरी। कीर्तित मातें अवधारीं। एक विचरती चराचरीं। पंडुकुमरा ॥२११॥
मग आणिक ते अर्जुना। साविया बहुवा जतना। पंचप्राण मना। पाढाऊ घेउनी ॥२१२॥
बाहेरी यमनियमांची कांटी लाविली। आंतु वज्रासनाची पौळी पन्नासिली। वरी प्राणायामाचीं मांडिलीं। वाहातीं यंत्रें ॥ २१३॥
तेथ उल्हाट शक्तीचेनि उजिवडें। मन पवनाचेनि सुरवाडें। सतरावियेचें पाणियाडें। बळियाविलें ॥२१४॥
तेव्हां प्रत्याहारें ख्याती केली। विकारांची सपिली बोहलीं। इंद्रियें बांधोनि आणिली। हृदयाआंतु ॥२१५॥
तंव धारणावारु दाटिन्नले। महाभूतांतें एकवटिलें। मग चतुरंग सैन्य निवटिलें। संकल्पाचें ॥२१६॥
तयावरी जैत रे जैत। म्हणौनि ध्यानाचें निशाण वाजत। दिसे तन्मयाचें झळकत। एकछत्र ॥२१७॥
पाठीं समाधीश्रियेचा अशेखा। आत्मानुभव राज्यसुखा। पट्टाभिषेकु देखा। समरसें जाहला ॥२१८॥
ऐसें हें गहन। अर्जुना माझें भजन। आतां ऐकें सांगेन। जे करिती एक ॥२१९॥
तरी दोन्ही पालववेरी। जैसा एक तंतू अंबरीं। तैसा मीवांचूनि चराचरीं। जाणती ना ॥२२०॥
आदि ब्रह्मा करूनी। शेवटीं मशक धरूनी। माजी समस्त हें जाणोनि। स्वरूप माझें ॥२२१॥
मग वाड धाकुटें न म्हणती। सजीव निर्जीव नेणती। देखिलिये वस्तु उजू लुंटिती। मीचि म्हणौनि ॥२२२॥
आपुलें उत्तमत्व नाठवे। पुढील योग्यायोग्य नेणवे। एकसरें व्यक्तिमात्राचेनि नांवें। नमूंचि आवडे ॥२२३॥
जैसें उंचीं उदक पडिलें। ते तळवटवरी ये उगेलें। तैसें नमिजे भूतजात देखिलें। ऐसा स्वभावोचि तयांचा ॥२२४॥
कां फळलिया तरूची शाखा। सहजें भूमीसी उतरे देखा। तैसें जीवमात्रां अशेखां। खालावती ते ॥२२५॥
अखंड अगर्वता होऊनि असती। तयांची विनय हेचि संपत्ती। जे जयजय मंत्रें अर्पिती। माझ्याचि ठायीं ॥२२६॥
नमितां मानापमान गळाले। म्हणौनि अवचितां मीचि जहाले। ऐसे निरंतर मिसळले। उपासिती ॥२२७॥
अर्जुना हे गुरुवी भक्ती। सांगितली तुजप्रती। आतां ज्ञानयज्ञें यजिती। ते भक्त आइकें ॥२२८॥
परि भजन करिती हातवटी। तूं जाणत आहासि किरीटी। जे मागां इया गोष्टी। केलिया आम्हीं ॥२२९॥
तंव आथि जी अर्जुन म्हणे। हें दैविकिया प्रसादाचें करणें। तरि काय अमृताचें आरोगणें। पुरे म्हणवे ? ॥२३०॥
या बोला श्रीअनंतें। लागटा देखिलें तयांतें। कीं सुखावलेनि चित्तें। डोलतु असे ॥२३१॥
म्हणे भलें केलें पार्था। एऱ्हवीं हा अनवसरु सर्वथा। परि बोलवितसे आस्था। तुझी मातें ॥२३२॥
तंव अर्जुन म्हणे हे कायी। चकोरेंवीण चांदणेंचि नाहीं। जगचि निववीजे हा तयाच्या ठायीं। स्वभावो कीं जी ॥२३३॥
येरें चकोरें तिये आपुलिये चाडे। चांचू करिती चंद्राकडे। तेवीं आम्ही विनवूं तें थोकडें। देवो कृपासिंधु ॥२३४॥
जी मेघु आपुलिये प्रौढी। जगाची आर्ती दवडी। वांचूनि चातकाची ताहान केवढी। तो वर्षावो पाहुनी ? ॥२३५॥
परि चुळा एकाचिया चाडे। जेवीं गंगेतेंचि ठाकणें पडे। तेवीं आर्त बहु कां थोडे। तरी सांगावें देवें ॥२३६॥
तेथें देवें म्हणितलें राहें। जो संतोषु आम्हां जाहला आहे। तयावरी स्तुति साहे। ऐसें उरलें नाहीं ॥२३७॥
पैं परिसतु आहासि निकियापरी। तेंचि वक्तृत्वा वऱ्हाडीक करी। ऐसें पुरस्करोनि श्रीहरी। आदरिलें बोलों ॥२३८॥
ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥१५॥
तरी ज्ञानयज्ञु तो एवं रूपु। तेथ आदिसंकल्पु हा यूपु। महाभूतें मंडपु। भेदु तो पशु ॥२३९॥
मग पांचांचे जे विशेष गुण। अथवा इंद्रियें आणि प्राण। हेचि यज्ञोपचारभरण। अज्ञान घृत ॥२४०॥
तेथ मनबुद्धीचिया कुंडा। आंतु ज्ञानाग्नि धडफुडा। साम्य तेचि सुहाडा। वेदिका जाणें ॥२४१॥
सविवेकमतिपाटव। तेचि मंत्र विद्यागौरव। शांति स्रुक- स्रुव। जीवु यज्वा ॥२४२॥
तो प्रतीतीचेनि पात्रें। विवेकमहामंत्रें। ज्ञानाग्निहोत्रें। भेदु नाशी ॥२४३॥

तेथ अज्ञान सरोनि जाये। आणि यजिता यजन हें ठाये। आत्मसमरसीं न्हाये। अवभृथीं जेव्हां ॥२४४॥
तेव्हां भूतें विषय करणें। हें वेगळालें कांहीं न म्हणे। आघवें एकचि ऐसें जाणें। आत्मबुद्धि ॥२४५॥
जैसा चेइला तो अर्जुना। म्हणे स्वप्नींची हे विचित्र सेना। मीचि जाहालों होतों ना। निद्रावशें ? ॥२४६॥
आतां सेना ते सेना नव्हे। हें मीच एक आघवें। ऐसें एकत्वें मानवें। विश्व तयां ॥२४७॥
मग तो जीवु हे भाष सरे। आब्रह्म परमात्मबोधें भरे। ऐसे भजती ज्ञानाध्वरें। एकत्वें येणें ॥२४८॥
अथवा अनादि हें अनेक। जें आनासारिखें एका एक। आणि नामरूपादिक। तेंही विषम ॥२४९॥
म्हणौनि विश्व भिन्न। परि न भेदे तयाचें ज्ञान। जैसे अवयव तरि आन आन। परि एकेचि देहींचे ॥२५०॥
कां शाखा सानिया थोरा। परि आहाति एकाचिया तरुवरा। बहु रश्मि परि दिनकरा। एकाचे जेवीं ॥२५१॥
तेवीं नानाविधा व्यक्ती। आनानें नामें आनानी वृत्ती। ऐसें जाणती भेदलां भूतीं। अभेदा मातें ॥२५२॥
येणें वेगळालेपणें पांडवा। करिती ज्ञानयज्ञु बरवा। जे न भेदती जाणिवा। जाणते म्हणौनि ॥२५३॥
ना तरी जेधवां जिये ठायीं। देखती कां जें जें कांहीं। तें मीवांचूनि नाहीं। ऐसाचि बोधु ॥२५४॥
पाहें पां बुडबुडा जेउता जाये। तेउतें जळचि एक तया आहे। मग विरे अथवा राहे। तऱ्ही जळाचिमाजीं ॥२५५॥
कां पवनें परमाणु उचलले। ते पृथ्वीपणावेगळे नाहीं केले। आणि माघौते जरी पडले। तरी पृथ्वीचिवरी ॥२५६॥
तैसें भलतेथ भलतेणें भावें। भलतेंही हो अथवा नोहावें। परि तें मी ऐसें आघवें। होऊनि ठेले ॥२५७॥
अगा हे जेव्हडी माझी व्याप्ती। तेव्हडीचि तयांची प्रतीती। ऐसें बहुधाकारीं वर्तती। बहुचि होउनि ॥२५८॥
हें भानुबिंब आवडे तया। सन्मुख जैसें धनंजया। तैसे ते विश्वा यया। समोर सदा ॥२५९॥
अगा तयांचिया ज्ञाना। पाठी पोट नाहीं अर्जुना। वायु जैसा गगना। सर्वांगीं असे ॥२६०॥
तैसा मी जेतुला आघवा। तेंचि तुक तयांचिया सद्भावा। तरी न करितां पांडवा। भजन जहालें ॥२६१॥
एऱ्हवीं तरी सकळ मीचि आहें। तरी कवणीं कें उपासिला नोहें ? । एथ एकें जाणणेवीण ठाये। अप्राप्तासी ॥२६२॥
परि तें असो येणें उचितें। ज्ञानयज्ञें यजितसांते। उपासिती मातें। ते सांगितलें ॥२६३॥
अखंड सकळ हें सकळां मुखीं। सहज अर्पत असे मज एकीं। कीं नेणणें यासाठीं मूर्खीं। न पविजेचि मातें ॥२६४॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥१६॥

तोचि जाणिवेचा जरी उदयो होये। तरी मुद्दल वेदु मीचि आहें। आणि तो विधानातें जया विये। तो क्रतुही मीचि ॥ २६५॥
मग तया कर्मापासूनि बरवा। जो सांगोपांगु आघवा। यज्ञु प्रकटे पांडवा। तोही मी गा ॥२६६॥
स्वाहा मी स्वधा। सोमादि औषधी विविधा। आज्य मी समिधा। मंत्रु मी हवि ॥२६७॥
होता मी हवन कीजे। तेथ अग्नी तो स्वरूप माझें। आणि हुतक वस्तु जें जें। तेंही मीचि ॥२६८॥

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥१७॥

पैं जयाचेनि अंगसंगें। इये प्रकृतीस्तव अष्टांगें। जन्म पाविजत असे जगें। तो पिता मी गा ॥२६९॥
अर्धनारीनटेश्वरीं। जो पुरुष तोचि नारी। तेवीं मी चराचरीं। माताही होय ॥२७०॥
आणि जाहाले जग जेथ राहे। जेणें जीवित वाढत आहे। तें मी वांचूनि नोहे। आन निरुतें ॥२७१॥
इयें प्रकृतिपुरुषें दोन्हीं। उपजलीं जयाचिया अमनमनीं। तो पितामह त्रिभुवनीं। विश्वाचा मी ॥२७२॥
आणि आघवेया जाणणेयाचिया वाटा। जया गांवा येती गा सुभटा। वेदांचिया चोहटां। वेद्य जें म्हणिजे ॥२७३॥
जेथ नानामतां बुझावणी जाहाली। एकमेकां शास्त्रांची अनोळखी फिटली। चुकलीं ज्ञानें जेथ मिळों आलीं। जें पवित्र म्हणिजे ॥२७४॥

पैं ब्रह्मबीजा जाहला अंकुरु। घोषध्वनीनादाकारु। तयाचें गा भुवन जो ॐकारु। तोही मी गा ॥२७५॥
जया ॐकाराचिये कुशीं। अक्षरें होतीं अउमकारेंसीं। जियें उपजत वेदेंसीं। उठलीं तिन्हीं ॥२७६॥
म्हणौनि ऋग्यजुःसामु। हे तीन्ही म्हणे मी आत्मारामु। एवं मीचि कुलक्रमु। शब्दब्रह्माचा ॥२७७॥
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥१८॥
हें चराचर आघवें। जिये प्रकृती आंत सांठवे। ते शिणली जेथ विसवे। ते परमगती मी ॥२७८॥
आणि जयाचेनि प्रकृति जिये। जेणें अधिष्ठिली विश्व विये। जो येऊनि प्रकृती इये। गुणातें भोगी ॥२७९॥
तो विश्वश्रियेचा भर्ता। मीचि गा एथ पंडुसुता। मी गोसावी असे समस्ता। त्रैलोक्याचा ॥२८०॥
आकाशें सर्वत्र वसावें। वायूनें नावभरी उगे नसावें। पावकें दाहावें। वर्षावें जळें ॥२८१॥
पर्वतीं बैसका न संडावी। समुद्रीं रेखा नोलांडावी। पृथ्वीया भूतें वाहावीं। हे आज्ञा माझी ॥२८२॥
म्यां बोलिविल्या वेदु बोले। म्यां चालविल्या सूर्यु चाले। म्यां हालविल्या प्राणु हाले। जो जगातें चाळिता ॥२८३॥
मियांचि नियमिलासांता। काळु ग्रासितसे भूतां। इयें म्हणियागतें पंडुसुता। सकळें जयाचीं ॥२८४॥
जो ऐसा समर्थु। तो मी जगाचा नाथु। आणि गगनाऐसा साक्षिभूतु। तोही मीचि ॥२८५॥
इहीं नामरूपीं आघवा। जो भरला असे पांडवा। आणि नामरूपांचाही वोल्हावा। आपणचि जो ॥२८६॥
जैसे जळाचे कल्लोळ। आणि कल्लोळीं आथी जळ। ऐसेनि वसवीतसे सकळ। तो निवासु मी ॥२८७॥
जो मज होय अनन्य शरण। त्याचें निवारी मी जन्ममरण। यालागीं शरणागता शरण्य। मीचि एकु ॥२८८॥
मीचि एक अनेकपणें। वेगळालेनि प्रकृतीगुणें। जीत जगाचेनि प्राणें। वर्तत असें ॥२८९॥
जैसा समुद्र थिल्लर न म्हणतां। भलतेथ बिंबे सविता। तैसा ब्रह्मादि सर्वा भूतां। सुहृद तो मी ॥२९०॥
मीचि गा पांडवा। या त्रिभुवनासि वोलावा। सृष्टिक्षयप्रभवा। मूळ तें मी ॥२९१॥
बीज शाखांतें प्रसवे। मग तें रूखपण बीजीं सामावे। तैसें संकल्पें होय आघवें। पाठीं संकल्पीं मिळे ॥२९२॥
ऐसें जगाचें बीज जो संकल्पु। अव्यक्त वासनारूपु। तया कल्पांतीं जेथ निक्षेपु। होय तें स्थान मी ॥२९३॥
इयें नामरूपे लोटती। वर्णव्यक्ती आटती। जातीचे भेद फिटती। जैं आकारू नाहीं ॥२९४॥
तैं संकल्पवासनासंस्कार। माघौतें रचावया चराचर। जेथ राहोनि असती अमर। तें निधान मी ॥२९५॥
तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥१९॥
मी सूर्याचेनि वेषें। तपें तैं हें शोषे। पाठीं इंद्र होऊनि वर्षें। तैं पुढति भरे ॥२९६॥
अग्नि काष्ठें खाये। तें काष्ठचि अग्नि होये। तैसें मरतें मारितें पाहें। स्वरूप माझें ॥२९७॥
यालागीं मृत्यूच्या भागीं जें जें। तेंही पैं रूप माझें। आणि न मरतें तंव सहजें। मीचि आहें ॥२९८॥
आतां बहु बोलोनि सांगावें। तें एकिहेळां घे पां आघवें। तरी सतासतही जाणावें। मीचि पैं गा ॥२९९॥
म्हणौनि अर्जुना मी नसें। ऐसा कवणु ठाव असे ?। परि प्राणियांचें दैव कैसें। जे न देखती मातें ? ॥३००॥
तरंग पाणियेवीण सुकती। रश्मि वातीवीण न देखती। तैसे मीचि ते मी नव्हती। विस्मो देखें ॥३०१॥
हें आंतबाहेर मियां कोंदलें। जग निखिल माझेंचि वोतिलें। कीं कैसें कर्म तयां आड आलें। जें मीचि नाहीं म्हणती ? ॥३०२॥
परि अमृतकुहां पडिजे। कां आपणयांतें कडिये काढिजे। ऐसे आथी काय कीजे। अप्राप्तासी ॥३०३॥
ग्रासा एका अन्नासाठीं। अंधु धांवताहे किरीटी। आढळला चिंतामणि पायें लोटी। आंधळेपणें ॥३०४॥
तैसें ज्ञान जैं सांडूनि जाये। तैं ऐसी हे दशा आहे। म्हणौनि कीजे तें केलें नोहे। ज्ञानेंवीण ॥३०५॥
आंधळेया गरुडाचे पांख आहाती। ते कवणा उपेगा जाती ?। तैसें सत्कर्माचे उपखे ठाती। ज्ञानेंवीण ॥३०६॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान ॥२०॥

देख पां गा किरीटी। आश्रमधर्मांचिया राहाटी। विधिमार्गां कसवटी। जे आपणचि होती ॥३०७॥
यजन करितां कौतुकें। तिहीं वेदांचा माथा तुके। क्रिया फळेंसि उभी ठाके। पुढां जयां ॥३०८॥
ऐसे दीक्षित जे सोमप। जे आपणचि यज्ञाचें स्वरूप। तींहीं तया पुण्याचेनि नांवें पाप। जोडिलें देखें ॥३०९॥
श्रुतित्रयांतें जाणोनी। शतवरी यज्ञ करुनी। यजिलिया मातें चुकोनी। स्वर्गा वरिती ॥३१०॥
जैसें कल्पतरूतळवटीं। बैसोनि झोळिये देतसे गांठी। मग निदैव निघे किरीटी। दैन्यचि करूं ॥३११॥
तैसे शतक्रतु यजिलें मातें। कीं ईप्सितातिं स्वर्गसुखातें। आतां पुण्य कीं हें निरुतें। पाप नोहे ? ॥३१२॥
म्हणौनि मजवीण पाविजे स्वर्गु। तो अज्ञानाचा पुण्यमार्गु। ज्ञानिये तयातें उपसर्गु। हानि म्हणती ॥३१३॥
एऱ्हवीं तरी नरकींचें दुःख। पावोनि स्वर्गा नाम कीं सुख। वांचूनि नित्यानंद गा निर्दोख। तें स्वरूप माझें ॥३१४॥
मज येतां पैं सुभटा। या द्विविधा गा आव्हांटा। स्वर्गु नरकु या वाटा। चोरांचिया ॥३१५॥
स्वर्गा पुण्यात्मकें पापें येइजे। पापात्मकें पापें नरका जाइजे। मग मातें जेणें पाविजे। तें शुद्ध पुण्य ॥३१६॥
आणि मजचिमाजीं असतां। जेणें मी दुऱ्हावें पंडुसुता। तें पुण्य ऐसें म्हणतां। जीभ न तुटे काई ? ॥३१७॥
परि हें असो आतां प्रस्तुत। ऐकें यापरि ते दीक्षित। यजूनि मातें याचित। स्वर्गभोगु ॥३१८॥
मग मी न पविजे ऐसें। जें पापरूप पुण्य असे। तेणें लाधलेनि सौरसें। स्वर्गा येती ॥३१९॥
जेथ अमरत्व हें सिंहासन। ऐरावतासारिखें वाहन। राजधानीभुवन। अमरावती ॥३२०॥
जेथ महासिद्धींचीं भांडारें। अमृताचीं कोठारें। जिये गांवीं खिल्लारें। कामधेनूंचीं ॥३२१॥
जेथ वोळगे देव पाइका। सैंघ चिंतामणीचिया भूमिका। विनोदवनवाटिका। सुरतरूंचिया ॥३२२॥
गंधर्व गात गाणीं। जेथ रंभे ऐसिया नाचणी। उर्वसी मुख्य विलासिनी। अंतौरिया ॥३२३॥
मदन वोळगे शेजारें। जेथ चंद्र शिंपे सांबरें। पवना ऐसे म्हणियारे। धांवणें जेथ ॥३२४॥
पैं बृहस्पती मुख्य आपण। ऐसे स्वस्तीश्रियेचे ब्राह्मण। ताटियेचे सुरगण। बहुवस जेथें ॥३२५॥
लोकपाळ रांगेचे। राउत जिये पदवीचे। उच्चैःश्रवा खांचे। खोळणिये ॥३२६॥
हे असो बहु ऐसे। भोग इंद्रसुखासरिसे। ते भोगिजती जंव असे। पुण्यलेशु ॥३२७॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥२१॥

मग तया पुण्याची पाउटी सरे। सवेंचि इंद्रपणाची उटी उतरे। आणि येऊं लागती माघारे। मृत्युलोका ॥३२८॥
जैसा वेश्याभोगी कवडा वेंचे। मग दारही चेपूं नये तियेचें। तैसें लाजिरवाणें दीक्षितांचें। काय सांगों ? ॥३२९॥
एवं थितिया मातें चुकले। जींहीं पुण्यें स्वर्ग कामिलें। तयां अमरपण तें वावो जालें। अंतीं मृत्युलोकु ॥३३०॥
मातेचिया उदरकुहरीं। पचूनि विष्ठेएच्या दाथरीं। उकडूनि नवमासवरी। जन्मजन्मोनि मरती ॥३३१॥
अगा स्वप्नीं निधान फावे। परि चेइलिया हारपे आघवें। तैसें स्वर्गसुख जाणावें। वेदज्ञाचें ॥३३२॥
अर्जुना वेदविद जऱ्ही जाहला। तरी मातें नेणता वायां गेला। कणु सांडूनि उपणिला। कोंडा जैसा ॥३३३॥
म्हणौनि मज एकेंविण। हे त्रयीधर्म अकारण। आतां मातें जाणोनि कांहीं नेण। तूं सुखिया होसी ॥३३४॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥२२॥

पैं सर्वभावेसीं उखितें। जे वोपिलें मज चित्तें। जैसा गर्भगोळु उद्यमातें। कोणाही नेणें ॥३३५॥
तैसा मीवांचूनि कांहीं। आणीक गोमटेंचि नाहीं। मजचि नाम पाहीं। जिणेंया ठेविलें ॥३३६॥
ऐसे अनन्यगतिकें चित्तें। चिंतितसांतें मातें। जे उपासिति तयांतें। मीचि सेवीं ॥३३७॥

ते एकवटूनि जिये क्षणीं। अनुसरले गा माझिये वाहणीं। तेव्हांचि तयांची चिंतवणी। मजचि पडली ॥३३८॥
मग तींहीं जें जें करावें। तें मजचि पडिलें आघवें। जैसी अजातपक्षाचेनि जीवें। पक्षिणी जिये ॥३३९॥
आपुली तहान भूक नेणें। तान्हया निकें तें माउलीसीचि करणें। तैसें अनुसरले जे मज प्राणें। तयांचें सर्व मी करीं ॥ ३४०॥
तया माझिया सायुज्याची चाड। तरि तेंचि पुरवीं कोड। कां सेवा म्हणती तरी आड। प्रेम सूयें ॥३४१॥
ऐसा मनीं जो जो धरिती भावो। तो तो पुढां पुढां लागे तयां देवों। आणि दिधलियाचा निर्वाहो। तोही मीचि करीं ॥ ३४२॥
हा योगक्षेमु आघवा। तयांचा मजचि पडिला पांडवा। जयांचिया सर्वभावा। आश्रयो मी ॥३४३॥
येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधीपूर्वकम् ॥२३॥
आतां आणिकही संप्रदायें। परी मातें नेणती समवायें। जें अग्निइंद्रसूर्यसोमाये। म्हणौनि यजिती ॥३४४॥
तेही कीर मातेंचि होये। कां जें हें आघवें मीचि आहें। परि ते भजती उजरी नव्हे। विषम पडे ॥३४५॥
पाहें पां शाखा पल्लव रुखाचें। हे काय नव्हती एकाचि बीजाचें ? । परी पाणी घेणें मुळाचें। तें मुळींचि घापे ॥३४६॥
कां दहाही इंद्रियें आहाती। इयें जरी एकेचि देहींचीं होती। आणि इहीं सेविले विषयो जाती। एकाचि ठायीं ॥३४७॥
तरि करोनि रससोय बरवी। कानीं केवीं भरावी ? । फुलें आणोनि बांधावीं। डोळां केवीं ? ॥३४८॥
तेथ रसु तो मुखेंचि सेवावा। परिमळु तो घ्राणेंचि घ्यावा। तैसा मी तो यजावा। मीचि म्हणौनि ॥३४९॥
येर मातें नेणोनि भजन। तें वायांचि गा आनेंआन। म्हणौनि कर्माचे डोळे ज्ञान। तें निर्दोष होआवें ॥३५०॥
अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजान्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥२४॥
एऱ्हवीं पाहे पां पंडुसुता। या यज्ञोपहारां समस्तां। मीवांचूनि भोक्ता। कवणु आहे ? ॥३५१॥
मी सकळां यज्ञांचा आदि। आणि यजना या मीचि अवधि। कीं मातें चुकोनि दुर्बुद्धि। देवां भजले ॥३५२॥
गंगेचें उदक गंगें जैसें। अर्पिजे देवपितरोद्देशें। माझें मज देती तैसें। परि आनानीं भावी ॥३५३॥
म्हणौनि ते पार्था। मातें न पवतीचि सर्वथा। मग मनीं वाहिली जे आस्था। तेथ आले ॥३५४॥
यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रता ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥२५॥
मनें वाचा करणीं। जयांचीं भजनें देवांचिया वाहणीं। ते शरीर जातिये क्षणीं। देवचि जाले ॥३५५॥
अथवा पितरांचीं व्रतें। वाहती जयांचीं चित्तें। जीवित सरलिया तयांतें। पितृत्व वरी ॥३५६॥
कां क्षुद्रदेवतादि भूतें। तियेचि जयांचि परमदैवतें। जिहीं अभिचारिकीं तयांतें। उपासिलें ॥३५७॥
तयां देहाची जवनिका फिटली। आणि भूतत्वाची प्राप्ती जाहली। एवं संकल्पवशें फळलीं। कर्मे तयां ॥३५८॥
मग मीचि डोळां देखिला। जिहीं कानीं मीचि ऐकिला। मीचि मनीं भविला। वानिला वाचा ॥३५९॥
सर्वांगीं सर्वांठायीं। मीचि नमस्करिला जिहीं। दानपुण्यादिकें जें कांहीं। तें माझियाचि मोहरां ॥३६०॥
जिहीं मातेंचि अध्ययन केलें। जे आंतबाहेरि मियांचि धाले। जयांचें जीवित्व जोडलें। मजचिलागीं ॥३६१॥
जे अहंकारु वाहत आंगीं। आम्ही हरीचे भूषावयालागीं। जे लोभिये एकचि जगीं। माझेनि लोभें ॥३६२॥
जे माझेनि कामें सकाम। जे माझेनि प्रेमें सप्रेम। जे माझिया भुली सभ्रम। नेणती लोक ॥३६३॥
जयांचीं जाणती मजचि शास्त्रें। मी जोडें जयांचेनि मंत्रें। ऐसें जे चेष्टामात्रें। भजले मज ॥३६४॥
ते मरणा ऐलीचकडे। मज मिळोनि गेले फुडे। मग मरणीं आणिकीकडे। जातील केवीं ? ॥३६५॥
म्हणौनि मद्याजी जे जाहाले। ते माझियाचि सायुज्या आले। जिहीं उपचारमिषें दिधलें। आपणपें मज ॥३६६॥

पैं अर्जुना माझे ठायीं। आपणपेंवीण सौरसु नाहीं। मी उपचारें कवणाही। नाकळें गा ॥३६७॥
एथ जाणीव करी तोचि नेणें। आथिलेंपण मिरवी तेंचि उणें। आम्ही जाहलों ऐसें जो म्हणे। तो कांहींचि नव्हे ॥३६८॥
अथवा यज्ञदानादि किरीटी। कां तपें हन जे हुटहुटी। ते तृणा एकासाठीं। न सरे एथ ॥३६९॥
पाहें पां जाणिवेचेनि बळें। कोण्ही वेदांपासूनि असे आगळें ? । कीं शेषाहूनि तोंडाळें। बोलकें आथी ? ॥३७०॥
तोही आंथरुणातळवटीं दडे। येरु नेति नेति म्हणौनि बहुडे। एथ सनकादिक वेडे। पिसे जाहले ॥३७१॥
करितां तापसांची कडसणी। कवणु जवळां ठेविजे शूळपाणी। तोही अभिमानु सांडूनि पायवणी। माथां वाहे ॥३७२॥
नातरी आथिलेपणें सरिशी। कवणी आहे लक्ष्मिये ऐसी ? । श्रियेसारिखिया दासी। घरीं जियेतें ॥३७३॥
तिया खेळतां करिती घरकुलीं। तयां नामें अमरपुरें जरी ठेविलीं। तरि न होती काय बाहुलीं। इंद्रादिक तयांचीं ? ॥
३७४॥
तिया नावडोनि जेव्हां मोडिती। तेव्हां महेंद्राचे रंक होती। तिया झाडा जेउते पाहती। ते कल्पवृक्ष ॥३७५॥
ऐसिया जियेचिया जवळिका। सामर्थ्य घरींचिया पाइका। ते लक्ष्मी मुख्यनायका। न मनेचि एथ ॥३७६॥
मग सर्वस्वें करूनि सेवा। अभिमानु सांडूनि पांडवा। ते पाय धुवावयाचिया दैवा। पात्र जाहाली ॥३७७॥
म्हणौनि थोरपण पऱ्हां सांडिजे। एथ व्युत्पत्ति आघवी विसरिजे। जैं जगा धाकुटें होईजे। तैं जवळीक माझी ॥३७८॥
अगा सहस्रकिरणांचिये दिठी- । पुढां चंद्रही लोपे किरीटी। तेथ खद्योत कां हुटहुटी। आपुलेनि तेजें ? ॥३७९॥
तैसें लक्ष्मियेचें थोरपण न सरे। जेथ शंभूचेंही तप न पुरे। तेथ येर प्राकृत हेंदरें। केवीं जाणों लाहे ? ॥३८०॥
यालागीं शरीरसांडोवा कीजे। सकळ गुणांचें लोण उतरिजे। संपत्तिमदु सांडिजे। कुरवंडी करुनी ॥३८१॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥२६॥

मग निस्सीमभाव उल्हासें। मज अर्पावयाचेनि मिसें। फळ आवडे तैसें। भलतयाचें हो ॥३८२॥
भक्तु माझियाकडे दावी। आणि मी दोन्हीं हात वोडवीं। मग देंठु न फेडितां सेवीं। आदरेंशी ॥३८३॥
पैं गा भक्तीचेनि नांवें। फूल एक मज द्यावें। तें लेखें तरि म्यां तुरंबावें। परि मुखींचि घालीं ॥३८४॥
हें असो कायसीं फुलें। पानचि एक आवडे तें जाहलें। तें साजुकही न हो सुकलें। भलतैसें ॥३८५॥
परि सर्वभावें भरलें देखें। आणि भुकेला अमृतें तोखें। तैसें पत्रचि परि तेणें सुखें। आरोगूं लागें ॥३८६॥
अथवा ऐसेंहीं एक घडे। जे पालाही परी न जोडे। तरि उदकाचें तंव सांकडें। नव्हेल कीं ? ॥३८७॥
तें भलतेथ निमोलें। न जोडितां आहे जोडलें। तेंचि सर्वस्व करूनि अर्पिलें। जेणें मज ॥३८८॥
तेणें वैकुंठांपासोनि विशाळें। मजलागीं केली राऊळें। कौस्तुभाहोनि निर्मळें। लेणीं दिधलीं ॥३८९॥
दुधाचीं सेजारें। क्षीराब्धी ऐसीं मनोहरें। मजलागीं अपारें। सृजिलीं तेणें ॥३९०॥
कर्पूर चंदन अगरु। ऐसेया सुगंधाचा महामेरु। मज हातीवा लाविला दिनकरु। दीपमाळे ॥३९१॥
गरुडासारिखीं वाहनें। मज सुरतरूंचीं उद्यानें। कामधेनूंचीं गोधनें। अर्पिलीं तेणें ॥३९२॥
मज अमृताहूनि सुरसें। बोनीं वोगरिली बहुवसें। ऐसा भक्तांचेनि उदकलेशें। परितोषें गा ॥३९३॥
हें सांगावें काय किरीटी। तुवांचि देखिलें आपुलिया दिठी। मी सुदामाचिया सोडीं गांठीं। पव्हयांलागीं ॥३९४॥
पैं भक्ति एकी मी जाणें। तेथ सानें थोर न म्हणे। आम्ही भावाचे पाहुणे। भलतेया ॥३९५॥
येर पत्र पुष्प फळ। हें भजावया मिस केवळ। वांचूनि आमुचा लाग निष्कळ। भक्तितत्त्व ॥३९६॥
म्हणौनि अर्जुना अवधारीं। तूं बुद्धी एकी सोपारी करीं। तरि सहजें आपुलिया मनोमंदिरीं। न विसंबें मातें ॥३९७॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥२७॥

जे जे कांहीं व्यापार करिसी। कां भोग हन भोगिसी। अथवा यज्ञीं यजिसी। नानाविधीं ॥३९८॥

नातरी पात्रविशेषें दानें। कां सेवकां देसी जीवनें। तपादि हन साधनें। व्रतें करिसी ॥३९९॥
तें क्रियाजात आघवें। जें जैसें निपजेल स्वभावें। तें भावना करोनि करावें। माझिया मोहरा ॥४००॥
परि सर्वथा आपुले जीवीं। केलियाची से कांहींचि नुरवीं। ऐसीं धुवोनि कर्मे द्यावीं। माझियां हातीं ॥४०१॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥२८॥
मग अग्निकुंडीं बीजें घातलीं। तियें अंकुरदशे जेवीं मुकलीं। तेवीं न फळतीचि मज अर्पिलीं। शुभाशुभें ॥४०२॥
अगा कर्मे जैं उरावें। तैं तिहीं सुखदुःखीं फळावें। आणि तयातें भोगावया यावें। देहा एका ॥४०३॥
ते उगाणिलें मज कर्म। तेव्हांचि पुसिलें मरण जन्म। जन्मासवें श्रम। वरचिलही गेले ॥४०४॥
म्हणौनि अर्जुना यापरी। पाहेचा वेळु नव्हेल भारी। हे संन्यासयुक्ति सोपारी। दिधली तुज ॥४०५॥
या देहाचिया बांदोडी न पडिजे। सुखदुःखांचियां सागरीं न बुडिजे। सुखें सुखरूपा घडिजे। माझियाचि आंगा ॥४०६॥
समो~हं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्यो~स्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥२९॥
तो मी पुससी कैसा। तरि जो सर्वभूतीं सदा सरिसा। जेथ आपपरु ऐसा। भागु नाहीं ॥४०७॥
जे ऐसिया मातें जाणोनि। अहंकाराचा कुरुठा मोडोनि। जे जीवें कर्मे करूनि। मातें भजलें ॥४०८॥
ते वर्तत दिसती देहीं। परि ते देहीं ना माझ्या ठायीं। आणि मी तयांच्या हृदयीं। समग्र असे ॥४०९॥
सविस्तर वटत्व जैसें। बीजकणिकेमाजीं असे। आणि बीजकणु वसे। वटीं जेवीं ॥४१०॥
तेवीं आम्हां तयां परस्परें। बाहेरी नामाचींचि अंतरें। वांचूनि आंतुवट वस्तुविचारें। मी तेचि ते ॥४११॥
आतां जायांचें जैसें लेणें। आंगावरी आहाचवाणें। तैसें देहधरणें। उदास तयांचें ॥४१२॥
परिमळु निघालिया पवनापाठीं। मागें वोस फूल राहे देंठीं। तैसें आयुष्याचिये मुठी। केवळ देह ॥४१३॥
येर अवष्टंभु जो आघवा। तो आरूढोनि मद्भावा। मजचि आंतु पांडवा। पैठा जाहला ॥४१४॥
अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३०॥
ऐसे भजतेनि प्रेमभावें। जयां शरीरही पाठीं न पवे। तेणें भलतया व्हावें। जातीचिया ॥४१५॥
आणि आचरण पाहतां सुभटा। तो दुष्कृताचा कीर सेल वांटा। परि जीवित वेंचिलें चोहटां। भक्तीचिया कीं ॥४१६॥
अगा अंतींचिया मती। साचपण पुढिले गती। म्हणौनि जीवित जेणें भक्ती। दिधलें शेखीं ॥४१७॥
तो आधीं जरी दुराचारी। तरी सर्वोत्तमुचि अवधारीं। जैसा बुडाला महापुरीं। न मरतु निघाला ॥४१८॥
तयाचें जीवित ऐलथडिये आलें। म्हणौनि बुडालेपण जेवीं वायां गेलें। तेवीं नुरेचि पाप केलें। शेवटलिये भक्ती ॥४१९॥
यालागीं दुष्कृती जऱ्ही जाहाला। तरी अनुतापतीर्थीं न्हाला। न्हाऊनि मजआंतु आला। सर्वभावें ॥४२०॥
तरी आतां पवित्र तयाचेंचि कुळ। अभिजात्य तेंचि निर्मळ। जन्मलेयाचें फळ। तयासीच जोडलें ॥४२१॥
तो सकळही पढिन्नला। तपें तोचि तपिन्नला। अष्टांग अभ्यासिला। योगु तेणें ॥४२२॥
हें असो बहुत पार्था। तो उतरला कर्मे सर्वथा। जयाची अखंड गा आस्था। मजचिलागीं ॥४२३॥
अवघिया मनोबुद्धीचिया राहटी। भरोनि एकनिष्ठेची पेटी। मजमाजीं किरीटी। निक्षेपिलीं जेणें ॥४२४॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥३१॥
तो आतां अवसरें मजसारिखा होईल। ऐसा हन भाव तुज जाईल। हां गा अमृताआंत राहील। तया मरण कैचें ? ॥
४२५॥
पैं सूर्यु जो वेळु नुदैजे। तया वेळा कीं रात्रि म्हणिजे। तेवीं माझिये भक्तीविण जें कीजे। तें महापाप नोहें ? ॥४२६॥

म्हणौनि तयाचिया चित्ता। माझी जवळिक पंडुसुता। तेव्हांचि तो तत्त्वता। स्वरूप माझें ॥४२७॥
जैसा दीपें दीपु लाविजे। तेथ आदील कोण हें नोळखिजे। तैसा सर्वस्वें जो मज भजे। तो मीचि होऊनि ठाके ॥४२८॥
मग माझी नित्य शांती। तया दशा तेचि कांती। किंबहुना जिती। माझेनि जीवें ॥४२९॥
एथ पार्था पुढतपुढती। तेंचि तें सांगों किती। जरी मियां चाड तरी भक्ती। न विसंबिजे गा ॥४३०॥
अगा कुळाचिया चोखटपणा नलगा। आभिजात्य झणीं श्लाघा। व्युत्पत्तीचा वाउगा। सोसु कां वहावा ? ॥४३१॥
कां रूपवयसा माजा। आथिलेपणें कां गाजा ? । एक भाव नाहीं माझा। तरी पाल्हाळ तें ॥४३२॥
कणेंविण सोपटें। कणसें लागलीं घनदाटें। काय करावें गोमटें। वोस नगर ? ॥४३३॥
नातरी सरोवर आटलें। रानीं दुःखिया दुःखी भेटलें। कां वांझ फुलीं फुललें। झाड जैसें ॥४३४॥
तैसें सकळ तें वैभव। अथवा कुळ जाति गौरव। जैसें शरीर आहे सावेव। परि जीवचि नाहीं ॥४३५॥
तैसें माझिये भक्तीविण। जळो तें जियालेंपण। अगा पृथ्वीवरी पाषाण। नसती काईं ? ॥४३६॥
पैं हिंवराची दाट साउली। सज्जनीं जैसी वाळिली। तैसीं पुण्यें डावलूनि गेलीं। अभक्तांतें ॥४३७॥
निंब निंबोळियां मोडोनि आला। तरी तो काउळियांसीचि सुकाळु जाहला। तैसा भक्तिहीनु वाढिन्नला। दोषांचिलागीं ॥४३८॥
कां षड्रस खापरीं वाढिले। वाढूनि चोहटां ठेविले। ते सुणियांचेचि ऐसे झाले। जियापरी ॥४३९॥
तैसें भक्तिहीनाचें जिणें। जो स्वप्नींहि परि सुकृत नेणे। संसारदुःखासि भाणें। वोगरिलें ॥४४०॥
म्हणौनि कुळ उत्तम नोहावें। जाती अंत्यजहि व्हावें। वरि देहाचेनि नांवें। पशूचेंहि लाभो ॥४४१॥
पाहें पां सावजें हातिरूं धरिलें। तेणें तया काकुळती मातें स्मरिलें। कीं तयाचें पशुत्व वावो जाहलें। पावलिया मातें ॥४४२॥
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य ये~पि स्युः पापयोनयः ॥स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्ते~पि यान्ति परां गतिम् ॥३२॥
अगा नांवें घेतां वोखटीं। जे आघवेया अधमांचिये शेवटीं। तिये पापयोनींही किरीटी। जन्मले जे ॥४४३॥
ते पापयोनि मूढ। मूर्ख जैसे कां दगड। परि माझ्यां ठायीं दृढ। सर्वभावें ॥४४४॥
जयांचिये वाचें माझे आलाप। दृष्टी भोगी माझेंचि रूप। जयांचें मन संकल्प। माझाचि वाहे ॥४४५॥
माझिया कीर्तीविण। जयांचे रिते नाहीं श्रवण। जयां सर्वांगीं भूषण। माझी सेवा ॥४६॥
जयांचे ज्ञान विषो नेणे। जाणीव मज एकातेंचि जाणे। जया ऐसें लाभे तरी जिणें। एऱ्हवीं मरण ॥४४७॥
ऐसा आघवाचि परी पांडवा। जिहीं आपुलिया सर्वभावा। जियावयालागीं वोलावा। मीचि केला ॥४४८॥
ते पापयोनीही होतु कां। ते श्रुताधीतही न होतु कां। परि मजसीं तुकितां तुकां। तुटी नाहीं ॥४४९॥
पाहें पां भक्तीचेनि आथिलेपणें। दैत्यीं देवां आणिलें उणें। माझें नृसिंहत्व लेणें। जयाचिये महिमें ॥४५०॥
तो प्रल्हादु गा मजसाठीं। घेतां बहुतें संकटे सदा किरीटी। कां जें मियां द्यावें ते गोष्टी। तयाचिया जोडे ॥४५१॥
एऱ्हवीं दैत्यकुळ साचोकारें। परि इंद्रही सरी न लाहे उपरें। म्हणौनि भक्ति गा एथ सरे। जाति अप्रमाण ॥४५२॥
राजाज्ञेचीं अक्षरें आहाती। तियें चामा एका जया पडती। तया चामासाठीं जोडती। सकळ वस्तु ॥४५३॥
वांचूनि सोनें रुपें प्रमाण नोहे। एथ राजाज्ञाचि समर्थ आहे। तेंचि चाम एक जैं लाहे। तेणें विकती आघवीं ॥४५४॥
तैसें उत्तमत्व तैंचि तरे। तैंचि सर्वज्ञता सरे। जैं मनोबुद्धि भरे। माझेनि प्रेमें ॥४५५॥
म्हणौनि कुळ जाति वर्ण। हें आघवेंचि गा अकारण। एथ अर्जुना माझेपण। सार्थक एक ॥४५६॥
तेंचि भलतेणें भावें। मन मज आंतु येतें होआवें। आलें तरी आघवें। मागील वावो ॥४५७॥
जैसें तंवचि वहाळ वोहळ। जंव न पवती गंगाजळ। मग होऊनि ठाकती केवळ। गंगारूप ॥४५८॥
कां खैर चंदन काष्ठें। हे विवंचना तंवचि घटे। जंव न घापती एकवटे। अग्नीमाजीं ॥४५९॥
तैसे क्षत्री वैश्य स्त्रिया। कां शूद्र अंत्यजादि इया। जाती तंवचि वेगळालिया। जंव न पवती मातें ॥४६०॥

मग जाती व्यक्ती पडे बिंदुलें। जेव्हां भावें होती मज मीनलें। जैसे लवणकण घातले। सागरामाजीं ॥४६१॥
तंववरी नदानदींचीं नांवें। तंवचि पूर्वपश्चिमेचे यावे। जंव न येती आघवे। समुद्रामाजीं ॥४६२॥
हेंचि कवणें एकें मिसें। चित्त माझे ठायीं प्रवेशे। येतुलें हो मग आपैसें। मीचि होणें असे ॥४६३॥
अगा वरी फोडावयाचि लागीं। लोहो मिळो कां परिसाचे आंगीं। कां जे मिळतिये प्रसंगी। सोनेंचि होईल ॥४६४॥
पाहें पां वालभाचेनि व्याजें। तिया व्रजांगनांचीं निजें। मज मीनलिया काय माझें। स्वरूप नव्हती ? ॥६५॥
नातरी भयाचेनि मिसें। मातें न पविजेचि काय कंसें ? । कीं अखंड वैरवशें। चैद्यादिकीं ॥४६६॥
अगा सोयरेपणेंचि पांडवा। माझें सायुज्य यादवां। कीं ममत्वें वसुदेवा- । दिकां सकळां ॥४६७॥
नारदा ध्रुवा अक्रूरा। शुका हन सनत्कुमारा। यां भक्तीं मी धनुर्धरा। प्राप्यु जैसा ॥४६८॥
तैसाचि गोपीकांसि कामें। तया कंसा भयसंभ्रमें। येरां घातकां मनोधर्मीं। शिशुपालादिकां ॥४६९॥
अगा मी एकुलाणीचें खागें। मज येवों पां भलतेनि मार्गें। भक्ती कां विषयविरागें। अथवा वैरें ॥४७०॥
म्हणौनि पार्था पाहीं। प्रवेशावया माझ्या ठायीं। उपायांची नाहीं। वाणी एथ ॥४७१॥
आणि भलतिया जातीं जन्मावें। मग भजिजे कां विरोधावें। परि भक्त कां वैरिया व्हावें। माझियाचि ॥४७२॥
अगा कवणें एकें बोलें। माझेपण जऱ्ही जाहालें। तरी मी होणें आलें। हाता निरुतें ॥४७३॥
यालागीं पापयोनीही अर्जुना। कां वैश्य शूद्र अंगना। मातें भजतां सदना। माझिया येती ॥४७४॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥३३॥

मग वर्णांमाजीं छत्रचामर। स्वर्ग जयांचें अग्रहार। मंत्रविद्येसि माहेर। ब्राह्मण जे ॥४७५॥
जे पृथ्वीतळींचें देव। जे तपोवतार सावयव। सकळ तीर्थांसि दैव। उदयलें जें ॥४७६॥
जेथ अखंड वसिजे यागीं। जे वेदांची वज्रांगी। जयांचेनि दिठीचिया उत्संगीं। मंगळ वाढे ॥४७७॥
जयांचिये आस्थेचेनि वोलें। सत्कर्म पाल्हाळीं गेलें। संकल्पें सत्य जियालें। जियांचेनि ॥४७८ ॥
जयांचेनि गा बोलें। अग्नीसि आयुष्य जाहालें। म्हणौनि समुद्रें पाणी आपुलें। दिधलें यांचिया प्रीती ॥४७९॥
मियां लक्ष्मी डावलोनि केली परौती। फेडोनि कौस्तुभ घेतला हातीं। मग वोढविली वक्षस्थळाची वाखती। चरणरजां ॥ ४८०॥
आझुनि पाउलाची मुद्रा। मी हृदयीं वाहें गा सुभद्रा। जे आपुलिया दैवसमुद्रा। जतनेलागीं ॥४८१॥
जयांचा कोप सुभटा। काळाग्निरुद्राचा वसौटा। जयांचे प्रसादीं फुकटा। जोडती सिद्धी ॥४८२॥
ऐसे पुण्यपूज्य जे ब्राह्मण। आणि माझ्या ठायीं अतिनिपुण। आतां मातें पावती हे कवण। समर्थावें ? ॥४८३॥
पाहें पां चंदनाचेनि अंगानिळें। शिवतिले निंब होते जे जवळें। तिहीं निर्जिवींही देवांचीं निडळें। बैसणीं केलीं ॥४८४॥
मग तो चंदनु तेथ न पवे। ऐसें मनीं कैसेनि धरावें। अथवा पातला हें समर्थावें। तेव्हां कायी साच ? ॥४८५॥
जेथ निववील ऐशिया आशा। हरें चंद्रमा आधा ऐसा। वाहिजत असे शिरसा। निरंतर ॥४८६॥
तेथ निवविता आणि सगळा। परिमळें चंद्राहूनि आगळा। तो चंदनु केवीं अवलीळा। सर्वांगीं न बैसे ? ॥४८७॥
कां रथ्योदकें जियेचिये कासे। लागलिया समुद्र जालीं अनायासें। तिये गंगेसि काय अनारिसें। गत्यंतर असे ? ॥४८८॥
म्हणौनि राजर्षि कां ब्राह्मण। जयां गति मति मीचि शरण्य। तयां त्रिशुद्धी मीच निर्वाण। स्थितीही मीचि ॥४८९॥
यालागीं शतजर्जर नावें। रिगोनि केवीं निश्चिंत होआवें। कैसेनि उघडिया असावें। शस्त्रवर्षीं ॥४९०॥
आंगावरी पडतां पाषाण। न सुवावें केवीं वोडण। रोगें दाटला आणि उदासपण। वोखदेंसी ? ॥४९१॥
जेथ चहूंकडे जळत वणवा। तेथूनि न निगिजे केवीं पांडवा। तेवीं लोकां येऊनि सोपद्रवां। केवीं न भजिजे मातें ॥४९२॥
अगा मातें न भजावयालागीं। कवण बळ पां आपुलिया आंगीं। काई घरीं कीं भोगी। निश्चिंती केलीं ? ॥४९३॥
नातरी विद्या कीं वयसा। ययां प्राणियांसि हा ऐसा। मज न भजतां भरंवसा। सुखाचा कोण ? ॥४९४॥

तरी भोग्यजात जेतुलें। तें एका देहाचिया निकिया लागलें। आणि एथ देह तंव असे पडिलें। काळाचिये तोंडीं ॥४९५॥
बाप दुःखाचें केणें सुटलें। जेथ मरणाचे भरे लोटले। तिये मृत्युलोकींचिये शेवटिलें। येणें जाहालें हाटवेळे ॥४९६॥
आंता सुखेंसि जीविता। कैंचीं ग्राहिकी किजेल पंडुसुता। काय राखोंडी फुंकितां। दीपु लागे ? ॥४९७॥
अगा विषाचे कांदे वाटुनी। जो रसु घेईजे पिळुनी। तया नाम अमृत ठेवुनी। जैसें अमर होणें ॥४९८॥
तेवीं विषयांचें जें सुख। तें केवळ परम दुःख। परि काय कीजे मूर्ख। न सेवितां न सरे ॥४९९॥
कां शीस खांडूनि आपुलें। पायींच्या खतीं बांधिलें। तैसें मृत्युलोकींचें भलें। आहे आघवें ॥५००॥
म्हणौनि मृत्युलोकीं सुखाची कहाणी। ऐकिजेल कवणाचिये श्रवणीं। कैंची सुखनिद्रा अंथरुणीं। इंगळांच्या ॥५०१॥
जिये लोकींचा चंद्र क्षयरोगी। जेथ उदयो होय अस्तालागीं। दुःख लेऊनि सुखाची आंगीं। सळित जगातें ॥५०२॥
जेथ मंगळाचिया अंकुरीं। सवेंचि अमंगळाची पडे पोहरी। मृत्यु उदराचिया परिवरी। गर्भु गिंवसी ॥५०३॥
जें नाहीं तयातें चिंतवी। तंव तेंचि नेइजे गंधर्वीं। गेलियाची कवणें गांवीं। शुद्धी न लगे ॥५०४॥
अगा गिंवसितां आघविया वाटी। परतलें पाऊलचि नाहीं किरीटी। सैंघ निमालियांचिया गोठी। तियें पुराणें जेथिंचीं ॥५०५॥
जेथिंचिये अनित्यतेची थोरी। करितया ब्रह्मयाचे आयुष्यवेरी। कैसें नाहीं होणें अवधारीं। निपटूनियां ॥५०६॥
ऐसी लोकींची जिये नांदणूक। तेथ जन्मले आथि जे लोक। तयांचिये निश्चिंतीचें कौतुक। दिसत असे ॥५०७॥
पैं दृष्टादृष्टाचिये जोडी- । लागीं भांडवल न सुटे कवडी। जेथ सर्वस्वें हानि तेथ कोडी। वेंचिती गा ॥५०८॥
जो बहुवें विषयविलासें गुंफे। तो म्हणती उवाईं पडिला सापें। जो अभिलाषभारें दडपे। तयातें सज्ञान म्हणती ॥५०९॥
जयाचें आयुष्य धाकुटें होय। बळ प्रज्ञा जिरौनि जाय। तयाचे नमस्कारिती पाय। वडील म्हणुनी ॥५१०॥
जंव जंव बाळ बळिया वाढे। तंव तंव भोजे नाचती कोडें। आयुष्य निमालें आंतुलियेकडे। ते ग्लानीचि नाहीं ॥५११॥
जन्मलिया दिवसदिवसें। हों लागे काळाचेंचि ऐसें। कीं वाढती करिती उल्हासें। उभविती गुढिया ॥५१२॥
अगा मर हा बोलु न साहती। आणि मेलिया तरी रडती। परि असतें जात न गणिती। गहिंसपणें ॥५१३॥
दर्दूर सापें गिळिजतु आहे उभा। कीं तो मासिया वेंटाळी जिभा। तैसें प्राणिये कवणा लोभा। वाढविती तृष्णा ॥५१४॥
अहा कटकटा हें वोखटें। इये मृत्युलोकींचें उफराटें। एथ अर्जुना जरी अवचटें। जन्मलासी तूं ॥५१५॥
तरि झडझडोनि वहिला निघ। इये भक्तीचिये वाटे लाग। जिया पावसी अव्यंग। निजधाम माझें ॥५१६॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥३४॥
ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥९अ ॥
तूं मन हें मीचि करीं। माझिया भजनीं प्रेम धरीं। सर्वत्र नमस्कारीं। मज एकातें ॥५१७॥
माझेनि अनुसंधानें देख। संकल्पु जाळणें निःशेख। मद्याजी चोख। याचि नांव ॥५१८॥
ऐसा मियां आथिला होसी। तेथ माझियाचि स्वरूपा पावसी। हें अंतःकरणींचें तुजपासीं। बोलिजत असें ॥५१९॥
अगा अवघिया चोरिया आपुलें। जें सर्वस्व आम्हीं असें ठेविलें। तें पावोनि सुख संचलें। होऊनि ठासी ॥५२०॥
ऐसें सांवळेनि परब्रह्में। भक्तकामकल्पद्रुमें। बोलिलें आत्मारामें। संजयो म्हणे ॥५२१॥
अहो ऐकिजत असें कीं अवधारा। तंव इया बोला निवांत म्हातारा। जैसा म्हैसा नुठी कां पुरा। तैसा उगाचि असे ॥५२२॥
तेथ संजयें माथा तुकिला। अहा अमृताचा पाऊस वर्षला। कीं हा एथ असतुचि गेला। सेजिया गांवा ॥५२३॥
तऱ्ही दातारु हा आमुचा। म्हणौनि हें बोलतां मैळेल वाचा। काय कीजे ययाचा। स्वभावोचि ऐसा ॥५२४॥
परि बाप भाग्य माझें। जे वृत्तांतु सांगावयाचेनि व्याजें। कैसा रक्षिलों मुनिराजें। श्रीव्यासदेवें ॥५२५॥

येतुलें हें वाड सायासें। जंव बोलत असे दृढमानसें। तंव न धरवेचि आपुलिया ऐसें। सात्त्विकें केलें ॥५२६॥

चित्त चाकाटलें आटु घेत। वाचा पांगुळली जेथिंची तेथ। आपाद कंचुकित। रोमांच आले ॥५२७॥

अर्धोन्मीलित डोळे। वर्षताति आनंदजळें। आंतुलिया सुखोर्मींचेनि बळें। बाहेरी कांपे ॥५२८॥

पैं आघवाचि रोममूळीं। आली स्वेदकणिका निर्मळी। लेइला मोतियांची कडियाळीं। आवडे तैसा ॥५२९॥

ऐसा महासुखाचेनि अतिरसें। जेथ आटणी हों पाहे जीवदशे। तेथ निरोपिलें व्यासें। तें नेदीच हों ॥५३०॥

आणिक श्रीकृष्णाचें बोलणें। घोकरी आलें श्रवणें। कीं देहस्मृतीचा तेणें। वापसा केला ॥५३१॥

तेव्हां नेत्रींचें जळ विसर्जी। सर्वांगींचा स्वेदु परिमार्जी। तेवींचि अवधारा म्हणे हो जी। धृतराष्ट्रातें ॥५३२॥

आतां श्रीकृष्णवाक्यबीजा निवाडु। आणि संजय सात्त्विकाचा बिवडु। म्हणौनि श्रोतयां होईल सुरवाडु। प्रमेय पिकाचा ॥ ५३३॥

अहो अळुमाळ अवधान देयावें। येतुलेनि आनंदाचे राशीवरी बैसावें। बाप श्रवणेंद्रिया दैवें। घातली माळ ॥५३४॥

म्हणौनि विभूतींचा ठावो। अर्जुना दावील सिद्धांचा रावो। तो ऐका म्हणे ज्ञानदेवो। निवृत्तीचा ॥५३५॥

इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां नवमोऽध्यायः ॥

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय दहावा ।

विभूतियोगः ।

नमो विशदबोधविदग्धा। विद्यारविंदप्रबोधा। पराप्रमेयप्रमदा। विलासिया ॥१॥
नमो संसारतमसूर्या। अपरिमितपरमवीर्या। तरुणतरतूर्या। लालनलीला ॥२॥
नमो जगदखिलपालना। मंगळमणिनिधाना। सज्जनवनचंदना। आराध्यलिंगा ॥३॥
नमो चतुरचित्तचकोरचंद्रा। आत्मानुभवनरेंद्रा। श्रुतिसारसमुद्रा। मन्मथमन्मथा ॥४॥
नमो सुभावभजनभाजना। भवेभकुंभभंजना। विश्वोद्भवभुवना। श्रीगुरुराया ॥५॥
तुमचा अनुग्रहो गणेशु। जैं दे आपुला सौरसु। तैं सारस्वतीं प्रवेशु। बाळकाही आथी ॥६॥
जी दैविकीं उदार वाचा। जैं उद्देशु दे नाभिकाराचा। तैं नवरससुधाब्धीचा। थावो लाभे ॥७॥
जी आपुलिया स्नेहाची वागेश्वरी। जरी मुकेयातें अंगिकारी। तो वाचस्पतीशीं करी। प्रबंधुहोडा ॥८॥
हें असो दिठी जयावरी झळके। कीं हा पद्मकरु माथां पारुखे। तो जीवचि परि तुके। महेशेंसीं ॥९॥
एवढें जिये महिमेचें करणें। तें वाचाबळें वानूं मी कवणें। कां सूर्याचिया आंगा उटणें। लागत असे ? ॥१०॥
केउता कल्पतरुवरी फुलौरा ? । कायसेनि पाहुणेरु क्षीरसागरा ? । कवणें वासीं कापुरा। सुवासु देवों ? ॥११॥
चंदनातें कायसेनि चर्चावें। अमृतातें केउतें रांधावें। गगनावरी उभवावें। घडे केवीं ? ॥१२॥
तैसें श्रीगुरूचें महिमान। आकळितें कें असे साधन ? । हें जाणोनि मियां नमन। निवांत केलें ॥१३॥
जरी प्रज्ञेचेनि आथिलेपणें। श्रीगुरूसामर्थ्या रूप करूं म्हणे। तरि तें मोतियां भिंग देणें। तैसें होईल ॥१४॥
कां साडेपंधरया रजतवणी। तैशीं स्तुतींचीं बोलणीं। उगियाचि माथा ठेविजे चरणीं। हेंचि भलें ॥१५॥
मग म्हणितलें जी स्वामी। भलेनि ममत्वें देखिलें तुम्हीं। म्हणौनि कृष्णार्जुनसंगमीं। प्रयागवटु जाहलों ॥१६॥
मागां दूध दे म्हणतलियासाठीं। आघविया क्षीराब्धीची करूनि वाटी। उपमन्यूपुढें धूर्जटी। ठेविली जैसी ॥१७॥
ना तरी वैकुंठपीठनायकें। रुसला ध्रुव कवतिकें। बुझाविला देऊनि भातुकें। ध्रुवपदाचें ॥१८॥
तैसी जे ब्रह्मविद्यारावो। सकळ शास्त्रांचा विसंवता ठावो। ते भगवद्गीता वोंविये गावों। ऐसें केलें ॥१९॥
जे बोलणियाचे रानीं हिंडतां। नायकिजे फळलिया अक्षराची वार्ता। परि ते वाचाचि केली कल्पलता। विवेकाची ॥२०॥
होती देहबुद्धी एकसरी। ते आनंदभांडारा केली वोवरी। मन गीतार्थसागरीं। जळशयन जालें ॥२१॥
ऐसें एकेक देवांचें करणें। तें अपार बोलों केवीं मी जाणें। तऱ्ही अनुवादलों धीटपणें। ते उपसाहिजो जी ॥२२॥
आतां आपुलेनि कृपाप्रसादें। मियां भगवद्गीता वोंवीप्रबंधें। पूर्वखंड विनोदें। वाखाणिलें ॥२३॥
प्रथमीं अर्जुनाचा विषादु। दुजीं बोलिला योगु विशदु। परि सांख्यबुद्धीसि भेदु। दाऊनियां ॥२४॥
तिजीं केवळ कर्म प्रतिष्ठिलें। तेंचि चतुर्थी ज्ञानेंशीं प्रगटिलें। पंचमीं गव्हरिलें। योगतत्त्व ॥२५॥
तेचि षष्ठामाजीं प्रगट। आसनालागोनि स्पष्ट। जीवात्मभाव एकवट। होती जेणें ॥२६॥
तैसी जे योगस्थिती। आणि योगभ्रष्टां जे गती। तें आघवीचि उपपत्ती। सांगितली षष्ठीं ॥२७॥
तयावरी सप्तमीं। प्रकृतिपरिहार उपक्रमीं। करूनि भजती जे पुरुषोत्तमीं। ते बोलिले चाऱ्ही ॥२८॥
पाठीं सप्तप्रश्नविधि। बोलोनि प्रयाणसमयसिद्धी . एवं सकळ वाक्यावधि। अष्टमाध्यायीं ॥२९॥
मग शब्दब्रह्मीं असंख्याकें। जेतुला कांहीं अभिप्राय पिके। तेतुला महाभारतें एकें। लक्षें जोडे ॥३०॥
तिये आघवांचि जें महाभारतीं। तें लाभे कृष्णार्जुनवाचोक्तीं। आणि जो अभिप्रावो सातेंशतीं। तो एकलाचि नवमीं ॥ ३१॥

म्हणौनि नवमींचिया अभिप्राया। सहसा मुद्रा लावावया। बिहाला मग मी वायां। गर्व कां करूं ? ॥३२॥
अहो गूळासाखरे मालयाचे। हे बांधे तरी एकाचि रसाचे। परि स्वाद गोडियेचे। आनआन जैसे ॥३३॥
एक जाणोनियां बोलती। एक ठायें ठावो जाणविती। एक जाणों जातां हारपती। जाणते गुणेंशीं ॥३४॥
हें ऐसें अध्याय गीतेचे। परि अनिर्वाच्यपण नवमाचें। तो अनुवादलों हें तुमचें। सामर्थ्य प्रभू ॥३५॥
अहो एकाचि शाटी तपिन्नली। एकीं सृष्टीवरी सृष्टी केली। एकीं पाषाणीं वाऊनि उतरलीं। समुद्रीं कटकें ॥३६॥
एकीं आकाशीं सूर्यातें धरिलें। एकीं चुळींचि सागरातें भरिलें। तैसें मज मुकयाकरवीं बोलविलें। अनिर्वाच्य तुम्हीं ॥३७॥
परि हें असो एथ ऐसें। राम रावण झुंजिन्नले कैसे। राम रावण जैसे। मीनले समरीं ॥३८॥
तैसें नवमीं कृष्णाचें बोलणें। तें नवमीचियाचि ऐसें मी म्हणें। या निवाडा तत्त्वज्ञु जाणें। जया गीतार्थु हातीं ॥३९॥
एवं नवही अध्याय पहिले। मियां मतीसारिखे वाखाणिले। आतां उत्तरखंड उवाइलें। ग्रंथाचें ऐका ॥४०॥
जेथ विभूति प्रतिविभूती। प्रस्तुत अर्जुना सांगिजेती। ते विदग्धा रसवृत्ती। म्हणिपैल कथा ॥४१॥
देशियेचेनि नागरपणें। शांतु शृंगारातें जिणें। तरि ओंविया होती लेणें। साहित्यासि ॥४२॥
मूळ ग्रंथींचिया संस्कृता। वरि मऱ्हाठी नीट पढतां। अभिप्राय मानलिया उचिता। कवण भूमी हें न चोजवे ॥४३॥
जैसें अंगाचेनि सुंदरपणें। लेणिया आंगचि होय लेणें। तेथ अळंकारिलें कवण कवणें। हें निर्वचेना ॥४४॥
तैसी देशी आणि संस्कृत वाणी। एका भावार्थाच्या सुखासनीं। शोभती आयणी। चोखट आइका ॥४५॥
उठावलिया भावा रूप। करितां रसवृत्तीचें लागे वडप। चातुर्य म्हणे पडप। जोडलें आम्हां ॥४६॥
तैसें देशियेचें लावण्य। हिरोनि आणिलें तारुण्य। मग रचिलें अगण्य। गीतातत्त्व ॥४७॥
जो चराचर परमगुरु। चतुर चित्तचमत्कारु। तो ऐका यादवेश्वरु। बोलता जाहला ॥४८॥
ज्ञानदेव निवृत्तीचा म्हणे। ऐसें बोलिलें श्रीहरी तेणें। अर्जुना आघवियाची मातु अंतःकरणें। धडौता आहासि ॥४९॥
श्रीभगवानुवाच ।
भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥१॥
आम्हीं मागील जें निरूपण केलें। तें तुझें अवधानचि पाहिलें। तवं टाचें नव्हें भलें। पुरतें आहे ॥५०॥
घटीं थोडेसें उदक घालिजे। तेणें न गळे तरी वरिता भरिजे। ऐसा परिसौनि पाहिलासि तवं परिसविजे। ऐसेंचि होतसे ॥५१॥
अवचितयावरी सर्वस्व सांडिजे। मग चोख तरी तोचि भांडारी कीजे। तैसा किरीटी तूं आतां माझें। निजधाम कीं ॥५२॥
ऐसें अर्जुना येउतें सर्वेश्वरें। पाहोनि बोलिलें अत्यादरें। गिरी देखोनि सुभरें। मेघु जैसा ॥५३॥
तैसा कृपाळुवांचा रावो। म्हणे आइकें गा महाबाहो। सांगितलाचि अभिप्रावो। सांगेन पुढती ॥५४॥
पैं प्रतिवर्षीं क्षेत्र पेरिजे। पिकाची जंव जंव वाढी देखिजे। यालागीं नुबगिजे। वाहो करितां ॥५५॥
पुढतपुढती पुटें देतां। जोडे वानियेची अधिकता। म्हणौनि सोनें पंडुसुता। शोधूंचि आवडे ॥५६॥
तैसें एथ पार्था। तुज आभार नाहीं सर्वथा। आम्ही आपुलियाचि स्वार्था। बोलों पुढती ॥५७॥
जैसें बाळका लेवविजे लेणें। तया शृंगारा बाळ काइ जाणे ? । परि ते सुखाचे सोहळे भोगणें। माउलिये दिठी ॥५८॥
तैसें तुझें हित आघवें। जंव जंव कां तुज फावे। तंव तंव आमुचें सुख दुणावे। ऐसें आहे ॥५९॥
आतां अर्जुना असो हे विकडी। मज उघड तुझी आवडी। म्हणौनि तृप्तीची सवडी। बोलतां न पडे ॥६०॥
आम्हां येतुलियाचि कारणें। तेंचि, तें तुजशीं बोलणें। परि असो हें अंतःकरणें। अवधान देईं ॥६१॥
तरी ऐकें गा सुवर्म। वाक्य माझें, परम। जें अक्षरें लेऊनी परब्रह्म। तुज खेंवासि आलें ॥६२॥
परी किरीटी तूं मातें। नेणसी ना निरुतें। तरि तो गा जो मी एथें। तें विश्वचि हें ॥६३॥
न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।

अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥२॥

एथ वेद मुके जाहाले। मन पवन पांगुळले। रातीविण मावळले। रविशशी जेथ ॥६४॥

अगा उदरींचा गर्भु जैसा। न देखें आपुलिये मातेची वयसा। मी आघवेया देवां तैसा। नेणवे कांहीं ॥६५॥

आणि जळचरां उदधीचें मान। मशका नोलांडवेचि गगन। तेवीं महर्षींचें ज्ञान। न देखेचि मातें ॥६६॥

मी कवण पां केतुला। कवणाचा कैं जाहला। या निरुती करितां बोला। कल्प गेले ॥६७॥

कां जे महर्षीं आणि या देवां। येरां भूतजातां सर्वां। मी आदि म्हणौनि पांडवा। अवघड जाणतां ॥६८॥

उतरलें उदक पर्वत वळघे। जरी झाड वाढत मुळीं लागे। तरी मियां जालेनि जगें। जाणिजे मातें ॥६९॥

कां गाभेवनें वटु गिंवसवे। जरी तरंगीं सागरू सांठवे। कां परमाणूमाजीं सामावे। भूगोलु हा ॥७०॥

तरी मियां जालिया जीवां। महर्षीं अथवा देवां। मातें जाणावया होआवा। अवकाशु गा ॥७१॥

ऐसाही जरी विपायें। सांडूनि पुढीले पाये। सर्वेंद्रियांसि होये। पाठिमोरा जो ॥७२॥

प्रवर्तलाही वेगीं बहुडे। देह सांडूनि मागलीकडे। महाभूतांचिया चढे। माथयावरी ॥७३॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।

असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥

तेथ राहोनि ठायठिके। स्वप्रकाशें चोखें। अजत्व माझें देखे। आपुलिया डोळां ॥७४॥

मी आदीसिं परु। सकळलोकमहेश्वरु। ऐसिया मातें जो नरु। यापरी जाणें ॥७५॥

तो पाषाणांमाजीं परिसु। जैसा रसाआंतु सिद्धरसु। तैसा मनुष्याआंतु तो अंशु। माझाचि जाण ॥७६॥

तें चालतें ज्ञानाचें बिंब। तयाचे अवयव ते सुखाचे कोंभ। येर माणुसपण तें भांब। लौकिक भागु ॥७७॥

अगा अवचिता कापुरा- । माजीं सांपडला हिरा। वरी पडिलिया नीरा। न निगे केवीं ॥७८॥

तैसा मनुष्यलोकाआंतु। तो जरी जाहला प्राकृतु। तऱ्ही प्रकृतिदोषाची मातु। नेणेंचि कीं ॥७९॥

तो आपसयेंचि सांडिजे पापीं। जैसा जळत चंदनु सर्पीं। तेवीं मातें जाणें तो संकल्पीं। वर्जूनि घापे ॥८०॥

तेंचि आमुतें कैसें जाणिजे। ऐसें कल्पी जरी चित्त तुझें। तरी मी ऐसा हें माझें। भाव ऐकें ॥८१॥

जे वेगळालिया भूतीं। सारिखे होऊनि प्रकृती। विखुरले आहेती त्रिजगतीं। आघविये ॥८२॥

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।

सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥४॥

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।

भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥५॥

तेथ प्रथम जाण बुद्धी। मग ज्ञान जें निरवधी। असंमोह सहनसिद्धी। क्षमा सत्य ॥८३॥

मग शम दम दोन्ही। सुखदुःख वर्ते जें जनीं। अर्जुना भावाभाव मानीं। भावाचिमाजीं ॥८४॥

पैं भय आणि निर्भयता। अहिंसा आणि समता। तुष्टि तप पंडुसुता। दान जें गा ॥८५॥

अगा यश अपकीर्ती। हे जे भाव सर्वत्र दिसती। ते मजचि पासूनि होती। भूतांचिया ठायीं ॥८६॥

जैसीं भूतें आहाति सिनानीं। तैसेचि हेही वेगळाले मानीं। एक उपजती माझ्या ज्ञानीं। एक नेणती मातें ॥८७॥

प्रकाशु आणि कडवसें। हें सूर्याचिस्तव जैसें। प्रकाश उदयीं दिसे। तम अस्तुसीं ॥८८॥

आणि माझें जाणणें नेणणें। तें तंव भूतांचिया दैवाचें करणें। म्हणौनि भूतीं भावाचें होणें। विषम पडे ॥८९॥

यापरी माझिया भावीं। हे जीवसृष्टि आहे आघवी। गुंतली असे जाणावी। पंडुकुमरा ॥९०॥

आतां इये सृष्टीचे पालक। जयां आधीन वर्तती लोक। ते अकरा भाव आणिक। सांगेन तुज ॥९१॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारी मनवस्तथा ।

मद्भवा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥६॥

तरी आघवांचि गुणीं वृद्ध। जे महर्षींमाजीं प्रबुद्ध। कश्यपादि प्रसिद्ध। सप्तऋषी ॥९२॥
आणिकही सांगिजतील। जे कां चौदाआंतुल मुद्दल। स्वायंभू मुख्य वडील। चारी मनु ॥९३॥
ऐसें हे अकरा। माझ्या मनीं जाहाले धनुर्धरा। सृष्टीचिया व्यापारा-। लागोनियां ॥९४॥
जैं लोकांची व्यवस्था न पडे। जैं या त्रिभुवनाचे कांहीं न मांडे। तैं महाभूतांचे दळवाडें। अचुंबित असे ॥९५॥
तैंचि हे जाहाले। मग इहीं लोक केले। तेथ अध्यक्ष रचूनि ठेविले। इहीं जन ॥९६॥
म्हणौनि अकराही हे राजा। मग येर जग यांचिया प्रजा। एवं विश्वविस्तारु हा माझा। ऐसेंचि जाण ॥९७॥
पाहें पां आरंभीं बीज एकलें। मग तेंचि विरूढलिया बूड जाहालें। बुडीं कोंभ निघाले। खांदियांचे ॥९८॥
खांदियांपासूनि अनेका। फुटलिया नाना शाखा। शाखांस्तव देखा। पल्लव पानें ॥९९॥
पल्लवीं फूल फळ। एवं वृक्षत्व जाहालें सकळ। तें निर्धारितां केवळ। बीजचि आघवें ॥१००॥
तैंसे मी एकचि पहिलें। मग मी तेंचि मनातें व्यालें। तेथ सप्तऋषि जाहाले। आणि चारी मनु ॥१०१॥
इहीं लोकपाळ केले। लोकपाळीं विविध लोक सृजिले। लोकांपासूनि निपजले। प्रजाजात ॥१०२॥
ऐसेनि हें विश्व येथें। मीचि विस्तारिलोंसें निरुतें। परी भावाचेनि हातें। माने जया ॥१०३॥

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥७॥

यालागीं सुभद्रापती। हे भाव इया माझिया विभूती। आणि यांचिया व्याप्ती। व्यापिलें जग ॥१०४॥
म्हणौनि गा यापरी। ब्रह्मादिपिपीलिकावरी। मीवांचूनि दुसरी। गोठी नाहीं ॥१०५॥
ऐसें जाणे जो साचें। तया चेइरें जाहालें ज्ञानाचें। म्हणौनि उत्तमाधम भेदाचें। दुःस्वप्न न देखे ॥१०६॥
मी माझिया विभूती। विभूतीं अधिष्ठिलिया व्यक्ती। हें आघवें योगप्रतीती। एकचि मानी ॥१०७॥
म्हणौनि निःशंकें येणें महायोगें। मज मीनला मनाचेनि आंगें। एथ संशय करणें न लगे। तो त्रिशुद्धी जाहला ॥१०८॥
कां जे ऐसें किरीटी। मातें भजे जो अभेदा दिठी। तयाचिये भजनाचे नाटीं। सूती मज ॥१०९॥
म्हणौनि अभेदें जो भक्तियोगु। तेथ शंका नाहीं नये खंगु। करितां ठेला तरी चांगु। तें सांगितलें षष्ठीं ॥११०॥
तोचि अभेदु कैसा। हें जाणावया मानसा। साद जाली तरी परियेसा। बोलिजेल ॥१११॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥८॥

तरि मीचि एक सर्वां। या जगा जन्म पांडवा। आणि मजचिपासूनि आघवा। निर्वाहो यांचा ॥११२॥
कल्लोळमाळा अनेगा। जन्म जळींचि पैं गा। आणि तयां जळचि आश्रयो तरंगा। जीवनही जळ ॥११३॥
ऐसें आघवाचि ठायीं। तया जळचि जेवीं पाहीं। तैसा मीवांचूनि नाहीं। विश्वीं इये ॥११४॥
ऐसिया व्यापका मातें। मानूनि जे भजती भलतेथें। परि साचोकारें उदितें। प्रेमभावें ॥११५॥
देश काळ वर्तमान। आघवें मजसीं करूनि अभिन्न। जैसा वायु होऊन गगन। गगनींचि विचरे ॥११६॥
ऐसेनि जे निजज्ञानी। खेळत सुखें त्रिभुवनीं। जगद्रूपा मनीं। सांठऊनि मातें ॥११७॥
जें जें भेटे भूत। तें तें मानिजे भगवंत। हा भक्तियोगु निश्चित। जाण माझा ॥११८॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥९॥

चित्तें मीचि जाहाले। मियांचि प्राणें धाले। जीवों मरों विसरले। बोधाचिया भुली ॥११९॥
मग तया बोधाचेनि माजे। नाचती संवादसुखाचीं भोजें। आतां एकमेकां घेपे दीजे। बोधचि वरी ॥१२०॥
जैशीं जवळकेंचीं सरोवरें। उचंबळलिया कालवती परस्परें। मग तरंगासि धवळारें। तरंगचि होती ॥१२१॥
तैसी येरयेरांचिये मिळणी। पडत आनंदकल्लोळांची वेणी। तेथ बोध बोधाचीं लेणीं। बोधेंचि मिरवी ॥१२२॥

जैसें सूर्यें सूर्यातें वोंवाळिलें। कीं चंद्रें चंद्रम्या क्षेम दिधलें। ना तरी सरिसेनि पाडें मीनले। दोनी वोघ ॥१२३॥
तैसें प्रयाग होत सामरस्याचें। वरी वोसाण तरत सात्त्विकाचें। ते संवादचतुष्पथींचे। गणेश जाहले ॥१२४॥
तेव्हां तया महासुखाचेनि भरें। धांवोनि देहाचिये गांवाबाहेरें। मियां धाले तेणें उद्गारें। लागती गाजों ॥१२५॥
पैं गुरुशिष्यांचिया एकांतीं। जे अक्षरा एकाची वदंती। ते मेघाचियापरी त्रिजगतीं। गर्जती सैंघ ॥१२६॥
जैसी कमळकळिका जालेपणें। हृदयींचिया मकरंदातें राखों नेणें। दे राया रंका पारणें। आमोदाचें ॥१२७॥
तैसेंचि मातें विश्वीं कथित। कथितेनि तोषें कथूं विसरत। मग तया विसरामाजीं विरत। आंगें जीवें ॥१२८॥
ऐसें प्रेमाचेनि बहुवसपणें। नाहीं राती दिवो जाणणें। केलें माझें सुख अव्यंगवाणें। आपणपेयां जिहीं ॥१२९॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥१०॥

तयां मग जें आम्ही कांहीं। द्यावें अर्जुना पाहीं। ते ठायींचीच तिहीं। घेतली सेल ॥१३०॥
कां जे ते जिया वाटा। निगाले गा सुभटा। ते सोय पाहोनि अव्हांटा। स्वर्गापवर्ग ॥१३१॥
म्हणौनि तिहीं जें प्रेम धरिलें। तेंचि आमुचें देणें उपाइलें। परि आम्हीं देयावें हेंहि केलें। तिहींची म्हणिपे ॥१३२॥
आतां यावरी येतुलें घडे। जें तेंचि सुख आगळें वाढें। आणि काळाची दृष्टि न पडे। हें आम्हां करणें ॥१३३॥
लळेयाचिया बाळका किरीटी। गवसणी करूनि स्नेहाचिया दिठी। जैसी खेळतां पाठोपाठीं। माउली धांवे ॥१३४॥
तें जो जो खेळ दावी। तो तो पुढें सोनयाचा करूनि ठेवी। तैसी उपास्तीची पदवी। पोषित मी जायें ॥१३५॥
जिये पदवीचेनि पोषकें। ते मातें पावती यथासुखें। हे पाळती मज विशेखें। आवडे करूं ॥१३६॥
पैं गा भक्तासि माझें कोड। मज तयाचे अनन्यगतीची चाड। कां जे प्रेमळांचें सांकड। आमुचिया घरीं ॥१३७॥
पाहें पां स्वर्ग मोक्ष उपाइले। दोन्ही मार्ग तयाचिये वाहणी केले। आम्हीं आंगही शेखीं वेंचिलें। लक्ष्मियेसीं ॥१३८॥
परि आपणपेंवीण जें एक। तें तैसेंचि सुख साजुक। सप्रेमळालागीं देख। ठेविलें जतन ॥१३९॥
हा ठायवरी किरीटी। आम्ही प्रेमळु घेवों आपणयासाठीं। या बोलीं बोलिजत गोष्टी। तैसिया नव्हती गा ॥१४०॥

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥११॥

म्हणौनि मज आत्मयाचा भावो। जिहीं जियावया केला ठावो। एक मीवांचूनि वावो। येर मानिलें जिहीं ॥१४१॥
तयां तत्त्वज्ञां चोखटां। दिवी पोतासाची सुभटा। मग मीचि होऊनि दिवटा। पुढां पुढां चालें ॥१४२॥
अज्ञानाचिये राती- । माजीं तमाचि मिळणी दाटती। ते नाशूनि घालीं परौती। तयां करीं नित्योदयो ॥१४३॥
ऐसें प्रेमळाचेनि प्रियोत्तमें। बोलिलें जेथ पुरुषोत्तमें। तेथ अर्जुन मनोधर्में। निवालों म्हणतसे ॥१४४॥
हां हो जी अवधारा। भला केरु फेडिला संसारा। जाहलों जननीजठरजोहरा- । वेगळा प्रभू ॥१४५॥
जी जन्मलेपण आपुलें। हें आजि मियां डोळां देखिलें। जीवित हातां चढलें। आवडतसें ॥१४६॥
आजि आयुष्या उजवण जाहली। माझिया दैवा दशा उदयली। जे वाक्यकृपा लाधली। दैविकेनि मुखें ॥१४७॥
आतां येणें वचन तेजाकारें। फिटलें आंतील बाहेरील आंधारें। म्हणौनि देखतसें साचोकारें। स्वरूप तुझें ॥१४८॥

अर्जुन उवाच ।
परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥१२॥

तरी होसी गा तूं परब्रह्म। जें या महाभूतां विसंवतें धाम। पवित्र तूं परम। जगन्नाथा ॥१४९॥
तूं परम दैवत तिहीं देवां। तूं पुरुष जी पंचविसावा। दिव्य तूं प्रकृतिभावा- । पैलीकडील ॥१५०॥
अनादिसिद्ध तूं स्वामी। जो नाकळिजसी जन्मधर्मीं। तो तूं हें आम्ही। जाणितलें आतां ॥१५१॥
तूं या कालत्रयासि सूत्री। तूं जीवकळेची अधिष्ठात्री। तूं ब्रह्मकटाहधात्री। हें कळलें फुडें ॥५२॥

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिनारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥१३॥

पैं आणिकही एक परी। इये प्रतीतीची येतसे थोरी। जे मागें ऐसेंचि ऋषीश्वरीं। सांगितलें तूंतें ॥१५३॥
परि तया सांगितलियाचें साचपण। हें आतां माझें देखतसे अंतःकरण। जे कृपा केली आपण। म्हणौनि देवा ॥१५४॥
एऱ्हवीं नारदु अखंड जवळां ये। तोही ऐसेंचि वचनीं गाये। परि अर्थ न बुजोनि ठाये। गीतसुखचि ऐकों ॥१५५॥
जी आंधळेयांच्या गांवीं। आपणपें प्रगटलें रवी। तरी तिहीं वोतपलीचि घ्यावी। वांचूनि प्रकाशु कैंचा ? ॥१५६॥
परि देवर्षि अध्यात्म गातां। आहाच रागांगेंसीं जे मधुरता। तेचि फावे येर चित्ता। नलगेचि कांहीं ॥१५७॥
पैं असिता देवलाचेनि मुखें। मी एवंविधा तूंतें आइकें। परी तैं बुद्धि विषयविखें। घारिली होती ॥१५८॥
विषयविषाचा पडिपाडू। गोड परमार्थु लागे कडू। कडू विषय तो गोडू। जीवासी जाहला ॥१५९॥
आणि हें आणिकांचें काय सांगावें। राउळा आपणचि येऊनि व्यासदेवें। तुझें स्वरूप आघवें। सर्वदा सांगिजे ॥१६० ॥
परि तो अंधारीं चिंतामणि देखिला। जेवीं नव्हे या बुद्धी उपेक्षिला। पाठीं दिनोदयीं वोळखिला। होय म्हणौनि ॥१६१॥
तैसीं व्यासादिकांचीं बोलणीं। तिया मजपाशीं चिद्रत्नांचिया खाणी। परि उपेक्षिल्या जात होतीया तरणी। तुजवीण कृष्णा ॥१६२॥

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥१४॥

ते आतां वाक्यसूर्यकर तुझे फांकले। आणि ऋषीं मार्ग होते जे कथिले। तयां आघवियांचेंचि फिटलें। अनोळखपण ॥१६३॥
जी ज्ञानाचें बीज तयांचे बोल। माजीं हृदयभूमिके पडिले सखोल। वरि इये कृपेची जाहाली वोल। म्हणौनि संवाद फळेंशीं उठलें ॥१६४॥
अहो नारदादिकां संतां। त्यांचिया उक्तिरूप सरितां। महोदधीं जाहलों अनंता। संवादसुखाचा ॥१६५॥
प्रभु आघवेनि येणें जन्में। जियें पुण्यें केलीं मियां उत्तमें। तयांचीं न ठकतीचि अंगीं कामें। सद्गुरु तुवां ॥१६६॥
एऱ्हवीं वडिलवडिलांचेनि मुखें। मी सदां तूंतें कानीं आइकें। परि कृपा न कीजेचि तुवां एकें। तंव नेणवेचि कांहीं ॥१६७॥
म्हणौनि भाग्य जैं सानुकूळ। जालिया केले उद्यम सदां सफळ। तैसें श्रुताधीत सकळ। गुरुकृपा साच ॥१६८॥
जी बनकरु झाडें सिंपी जीवेंसाटीं। पाडूनि जन्में काढी आटी। परि फळेंसी तैंचि भेटी। जैं वसंतु पावे ॥१६९॥
अहो विषमा जैं वोहट पडे। तैं मधुर तें मधुर आवडे। पैं रसायनें तैं गोडें। जैं आरोग्य देहीं ॥१७०॥
कां इंद्रियें वाचा प्राण। यां जालियांचे तैंचि सार्थकपण। जैं चैतन्य येऊनि आपण। संचरे माजीं ॥१७१॥
तैसें शब्दजात आलोडिलें। अथवा योगादिक जें अभ्यासिलें। तें तैंचि म्हणों ये आपुलें। जैं सानुकूल श्रीगुरु ॥१७२॥
ऐसिये जालिये प्रतीतीचेनि माजें। अर्जुन निश्चयाचि नाचतुसें भोजें। तेवींचि म्हणे देवा तुझें। वाक्य मज मानलें ॥१७३॥
तरि साचचि हें कैवल्यपती। मज त्रिशुद्धी आली प्रतीती। जे तूं देवदानवांचिये मती- । जोगा नव्हसी ॥१७४॥
तुझें वाक्य व्यक्ती न येतां देवा। जो आपुलिया जाणे जाणिवा। तो कहींचि नोहे हें मद्भावा। भरंवसेनि आलें ॥१७५॥

स्वयमेवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥१५॥

एथ आपुलें वाढपण जैसें। आपणचि जाणिजे आकाशें। कां मी येतुली घनवट ऐसें। पृथ्वीचि जाणे ॥१७६॥
तैसा आपुलिये सर्वशक्ती। तुज तूंचि जाणसी लक्ष्मीपती। येर वेदादिक मती। मिरवती वायां ॥१७७॥
हां गा मनातें मागां सांडावें। पवनातें वावीं मवावें। आदिशून्य तरोनि जावें। केउतें बाहीं ॥१७८॥

तैसें हें तुझें जाणणें आहे। म्हणौनि कोणाही ठाउकें नोहे। आतां तुझें ज्ञान होये। तुजचिजोगें ॥१७९॥
जी आपणयातें तूंचि जाणसी। आणिकातें सांगावयाही समर्थ होसी। तरी आतां एक वेळ घाम पुसीं। आर्तीचिये निडळींचा ॥१८०॥
हें आइकिलें कीं भूतभावना। त्रिभुवनगजपंचानना। सकळदेवदेवतार्चना। जगन्नायका ॥१८१॥
जरी थोरी तुझी पाहात आहों। तरी पासीं उभे ठाकावयाही योग्य नोहों। या शोच्यता जरी विनवूं बिहों। तरी आन उपायो नाहीं ॥१८२॥
भरले समुद्र सरिता चहूंकडे। परि ते बापियासि कोरडे। कां जैं मेघौनि थेंबुटा पडे। तैं पाणी कीं तया ॥८३॥
तैसे श्रीगुरु सर्वत्र आथी। परि कृष्णा आम्हां तूंचि गती। हें असो मजप्रती। विभूती सांगें ॥१८४॥
वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥१६॥
जी तुझिया विभूती आघविया। परि व्यापिती शक्ति दिव्या जिया। तिया आपुलिया दावाविया। आपण मज ॥१८५॥
जिहीं विभूतीं ययां समस्तां। लोकांतें व्यापूनि आहासी अनंता। तिया प्रधाना नामांकिता। प्रगटा करीं ॥१८६॥
कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥१७॥
जी कैसें मियां जाणावें। काय जाणोनि सदा चिंतावें। जरी तूंचि म्हणों आघवें। तरि चिंतनचि न घडे ॥१८७॥
म्हणौनि मागां भाव जैसे। आपुले सांगितले तुवां उद्देशें। आतां विस्तारोनि तैसे। एक वेळ बोलें ॥१८८॥
जया जया भावाचिया ठायीं। तूंतें चिंतितां मज सायासु नाहीं। तो विवळ करूनि देईं। योगु आपुला ॥१८९॥
विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि श्रृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥१८॥
आणि पुसलिया जिया विभूती। त्याही बोलाविया भूतपती। येथ म्हणसी जरी पुढती। काय सांगों ? ॥१९०॥
तरी हा भाव मना। झणें जाय हो जनार्दना। पैं प्राकृताही अमृतपाना। ना न म्हणवे जेवीं ॥१९१॥
जे काळकूटाचें सहोदर। जें मृत्यूभेणें प्याले अमर। तरि दिहाचे पुरंदर। चौदा जाती ॥१९२॥
ऐसा कवण एक क्षीराब्धीचा रसु। जया वायांचि अमृतपणाचा आभासु। तयाचाही मीठांशु। जे पुरे म्हणों नेदी ॥१९३॥
तया पाबळेयाही येतुलेवरी। गोडियेचि आथि थोरी। मग हें तंव अवधारीं। परमामृत साचें ॥१९४॥
जें मंदराचळु न ढाळितां। क्षीरसागरु न डहुळितां। अनादि स्वभावता। आइतें आहे ॥१९५॥
जें द्रव ना नव्हे बद्ध। जेथ नेणिजती रस गंध। जें भलतयांही सिद्ध। आठवलेंचि फावे ॥१९६॥
जयाची गोठीचि ऐकतखेंवो। आघवा संसारु होय वावो। बळिया नित्यता लागे येवों। आपणपेंया ॥१९७॥
जन्ममृत्यूची भाख। हारपोनि जाय निःशेख। आंत बाहेरी महासुख। वाढोंचि लागे ॥१९८॥
मग दैवगत्या जरी सेविजे। तरी तें आपणचि होऊनि ठाकिजे। तें तुज देतां चित्त माझें। पुरें म्हणों न शके ॥२९९॥
तुझें नामचि आम्हां आवडे। वरि भेटी होय आणि जवळिक जोडे। पाठीं गोठी सांगसी सुरवाडें। आनंदाचेनी ॥२००॥
आतां हें सुख कायिसयासारिखें। कांहीं निर्वचेना मज परितोखें। तरि येतुलें जाणें जे येणें मुखें। पुनरुक्तही हो ॥२०१॥
हां गा सूर्य काय शिळा ?। अग्नि म्हणों येत आहे वोंविळा ?। कां नित्य वाहातया गंगाजळा। पारसेपण असे ? ॥२०२॥
तुंवा स्वमुखें जें बोलिलें। हें आम्हीं नादासि रूप देखिलें। आजि चंदनतरूचीं फुलें। तुरंबीत आहों मां ॥२०३॥
तया पार्थाचिया बोला। सर्वांगें श्रीकृष्ण डोलला। म्हणे भक्तिज्ञानासि जाहला। आगरु हा ॥२०४॥
ऐसा पतिकराचिया तोषा आंतु। प्रेमाचा वेगु उचंबळतु। सायासें सांवरूनि अनंतु। काय बोले ॥२०५॥
श्रीभगवानुवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥१९॥

या चित्राचे निरुपण ऐका

मी पितामहाचा पिता। हें आठवितांही नाठवे चित्ता। कीं म्हणतसे बा पंडुसुता। भलें केलें ॥२०६॥
अर्जुनातें बा म्हणे एथ कांहीं। आम्हां विस्मो करावया कारण नाहीं। आंगें तो लेंकरूं काई। नव्हेचि नंदाचें ? ॥२०७॥
परि प्रस्तुत ऐसें असो। हें करवी आवडीचा अतिसो। मग म्हणे आइकें सांगतसों। धनुर्धरा ॥२०८॥
तरी तुवां पुसलिया विभूती। तयांचें अपारपण सुभद्रापती। ज्या माझियाचि परि माझिये मती। आकळती ना ॥२०९॥
आंगींचिया रोमा किती। जयाचिया तयासि न गणवती। तैसिया माझिया विभूती। असंख्य मज ॥२१०॥
एऱ्हवीं तरी मी कैसा केवढा। म्हणौनि आपणपयांही नव्हेचि फुडा। यालागीं प्रधाना जिया रूढा। तिया आइकें ॥२११॥
जिया जाणतलियासाठीं। आघवीया जाणवतील किरीटी। जैसें बीज आलिया मुठीं। तरूचि आला होय ॥२१२॥
कां उद्यान हाता चढिन्नलें। तरी आपैसीं सांपडलीं फळें फुलें। तेवीं देखिलिया जिया देखवलें। विश्व सकळ ॥२१३॥
एऱ्हवीं साचचि गा धनुर्धरा। नाहीं शेवटु माझिया विस्तारा। पैं गगना ऐशिया अपारा। मजमाजीं लपणें ॥२१४॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥२०॥

आइकें कुटिलालकमस्तका। धनुर्वेदत्र्यंबका। मी आत्मा असें एकैका। भूतमात्राच्या ठायीं ॥२१५॥
आंतुलीकडे मीचि यांचे अंतःकरणीं। भूतांबाहेरी माझीच गंवसणी। आदि मी निर्वाणीं। मध्यही मीचि ॥२१६॥
जैसें मेघां या तळीं वरी। एक आकाशचि आंत बाहेरी। आणि आकाशींचि जाले अवधारीं। असणेंही आकाशीं ॥२१७॥
पाठीं लया जे वेळीं जाती। ते वेळीं आकाशचि होऊनि ठाती। तेवीं आदि स्थिती गती। भूतांसि मी ॥२१८॥
ऐसें बहुवस आणि व्यापकपण। माझें विभूतियोगें जाण। तरी जीवचि करूनि श्रवण। आइकोनि आइक ॥२१९॥
याहीवरी त्या विभूती। सांगणें ठेलें सुभद्रापती। सांगेन म्हणितलें तुजप्रती। त्या प्रधाना आइकें ॥२२०॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान ।
मरीचिर्मरूतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥२१॥

हें बोलोनि तो कृपावंतु। म्हणे विष्णु मी आदित्यांआंतु। रवी मी रश्मिवंतु। सुप्रभांमाजीं ॥२२१॥
मरूद्गणांच्या वर्गीं। मरीचि म्हणे मी शारङ्गी। चंद्रु मी गगनरंगीं। तारांमाजीं ॥२२२॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥२२॥

वेदांआंतु सामवेदु। तो मी म्हणे गोविंदु। देवांमाजी मरुद्वंधु। महेंद्रु तो मी ॥२२३॥
इंद्रियांमाजीं अकरावें। मन तें मी हें जाणावें। भूतांमाजी स्वभावें। चेतना ते मी ॥२२४॥

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥२३॥

अशेषांही रुद्रांमाझारीं। शंकर जो मदनारी। तो मी येथ न धरीं। भ्रांति कांहीं ॥२२५॥
यक्षरक्षोगणांआंतु। शंभूचा सखा जो धनवंतु। तो कुबेरु मी हें अनंतु। म्हणता जाहला ॥२२६॥
मग आठांही वसूंमाझारीं। पावकु तो मी अवधारीं। शिखराथिलियां सर्वोपरी। मेरु तो मी ॥२२७॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥२४॥

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥२५॥

जो स्वर्गसिंहासना सावावो। सर्वज्ञते आदीचा ठावो। तो पुरोहितांमाजीं रावो। बृहस्पती मी ॥२२८॥
त्रिभुवनींचिया सेनापतीं-। आंत स्कंदु तो मी महामती। जो हरवीर्यें अग्निसंगती। कृत्तिकाआंतु जाहला ॥२२९॥
सकळिकां सरोवरांसी। माजीं समुद्र तो मी जळराशी। महर्षींआंतु तपोराशी। भृगु तो मी ॥२३०॥
अशेषांही वाचा-। माजीं नटनाच सत्याचा। तें अक्षर एक मी वैकुंठींचा। वेल्हाळु म्हणे ॥२३१॥
समस्तांही यज्ञांच्या पैकीं। जपयज्ञु तो मी ये लोकीं। जो कर्मत्यागें प्रणवादिकीं। निफजविजे ॥२३२॥
नामजपयज्ञु तो परम। बाधूं न शके स्नानादि कर्म। नामें पावन धर्माधर्म। नाम परब्रह्म वेदार्थें ॥२३३॥
स्थावरां गिरीआंतु। पुण्यपुंज जो हिमवंतु। तो मी म्हणे कांतु। लक्ष्मियेचा ॥२३४॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥२६॥
उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥२७॥

कल्पद्रुम हन पारिजातु। गुणें चंदनुही वाड विख्यातु। तरि ययां वृक्षजातांआंतु। अश्वत्थु तो मी ॥२३५॥
देवऋषींआंतु पांडवा। नारदु तो मी जाणावा। चित्ररथु मी गंधर्वां। सकळिकांमाजीं ॥२३६॥
ययां अशेषांही सिद्धां-। माजीं कपिलाचार्यु मी प्रबुद्धा। तुरंगजातां प्रसिद्धां-। आंत उच्चैःश्रवा मी ॥२३७॥
राजभूषण गजांआंतु। अर्जुना मी गा ऐरावतु। पयोराशी सुरमथितु। अमृतांशु तो मी ॥२३८॥
ययां नरांमाजीं राजा। तो विभूतिविशेष माझा। जयातें सकळ लोक प्रजा। होऊनि सेविती ॥२३९॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥२८॥
अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥२९॥

पैं आघवेयां हातियेरां-। आंत वज्र तें मी धनुर्धरा। जें शतमखोत्तीर्णकरा। आरूढोनि असे ॥२४०॥
धेनूंमध्यें कामधेनु। तें मी म्हणे विष्वक्सेनु। जन्मवितयाआंत मदनु। तो मी जाणें ॥२४१॥
सर्पकुळाआंत अधिष्ठाता। वासुकी गा मी कुंतीसुता। नागांमाजीं समस्तां। अनंतु तो मी ॥२४२॥
अगा यादसांआंतु। जो पश्चिम प्रमदेचा कांतु। तो वरुण मी हें अनंतु। सांगत असे ॥२४३॥
आणि पितृगणां समस्तां-। माजीं अर्यमा जो पितृदेवता। तो मी हें तत्त्वता। बोलत आहें ॥२४४॥
जगाचीं शुभाशुभें लिहिती। प्राणियांच्या मानसांचा झाडा घेती। मग केलियानुरूप होती। भोगनियम जे ॥२४५॥
तयां नियमितयांमाजीं यमु। जो कर्मसाक्षी धर्मु। तो मी म्हणे आत्मारामु। रमापती ॥२४६॥

प्रल्हादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥३०॥

अगा दैत्यांचिया कुळीं। प्रऱ्हादु तो मी न्याहाळीं। म्हणौनि दैत्यभावादि मेळीं। लिंपेचि ना ॥२४७॥
पैं कळितयांमाजीं महाकाळु। तो मी म्हणे गोपाळु। श्वापदांमाजीं शार्दूळु। तो मी जाण ॥२४८॥
पक्षिजातिमाझारीं। गरुड तो मी अवधारीं। यालागीं जो पाठीवरी। वाहों शके मातें ॥२४९॥

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्त्रोतसामस्मि जान्हवी ॥३१॥

पृथ्वीचिया पैसारा-। माजीं घडीं न लगतां धनुर्धरा। एकेचि उड्डाणें सातांहि सागरां। प्रदक्षिणा कीजे ॥२५०॥
तयां वहिलियां गतिमंतां-। आंत पवनु तो मी पंडुसुता। शस्त्रधरां समस्तां-। माजीं श्रीराम तो मी ॥२५१॥
जेणें सांकडलिया धर्माचें कैवारें। आपणपयां धनुष्य करूनि दुसरें। विजयलक्ष्मिये एक मोहरें। केलें त्रेतीं ॥२५२॥

पाठीं उभे ठाकूनि सुवेळीं। प्रतापलंकेश्वराचीं सिसाळीं। गगनीं उदो म्हणतया हस्तबळीं। दिधली भूतां ॥२५३॥
जेणें देवांचा मानु गिंवसिला। धर्मासि जीर्णोद्धारु केला। सूर्यवंशीं उदेला। सूर्य जो कां ॥२५४॥
तो हातियेरुपरजितया आंतु। रामचंद्र मी जानकीकांतु। मकर मी पुच्छवंतु। जळचरांमाजीं ॥२५५॥
पैं समस्तांही वोघां- । मध्यें जे भगीरथें आणितां गंगा। जन्हूनें गिळिली मग जंघा। फाडूनि दिधली ॥२५६॥
ते त्रिभूवनैकसरिता। जान्हवी मी पंडुसुता। जळप्रवाहां समस्तां- । माझारीं जाणें ॥२५७॥
ऐसेनि वेगळालां सृष्टीपैकीं। विभूती नाम सूतां एकेकीं। सगळेन जन्मसहस्रें अवलोकीं। अर्ध्या नव्हती ॥२५८॥

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥३२॥
अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥३३॥

जैसीं अवघींचि नक्षत्रें वेंचावीं। ऐसी चाड उपजेल जैं जीवीं। तैं गगनाची बांधावी। लोथ जेवीं ॥२५९॥
कां पृथ्वीये परमाणूंचा उगाणा घ्यावा। तरि भूगोलुचि काखे सुवावा। तैसा विस्तारु माझा पहावा। तरि जाणावें मातें ॥२६०॥
जैसें शाखांसी फूल फळ। एकिहेळां वेटाळूं म्हणिजे सकळ। तरी उपडूनियां मूळ। जेवीं हातीं घेपे ॥२६१॥
तेवीं माझें विभूतिविशेष। जरी जाणों पाहिजेती अशेष। तरी स्वरूप एक निर्दोष। जाणिजे माझें ॥२६२॥
एऱ्हवीं वेगळालिया विभूती। कायिएक परिससी किती। म्हणौनि एकिहेळां महामती। सर्व मी जाण ॥२६३॥
मी आघवियेचि सृष्टी। आदिमध्यांतीं किरीटी। ओतप्रोत पटीं। तंतु जेवीं ॥२६४॥
ऐसिया व्यापका मातें जैं जाणावें। तैं विभूतिभेदें काय करावें। परि हे तुझी योग्यता नव्हे। म्हणौनि असो ॥२६५॥
कां जे तुवां पुसिलिया विभूती। म्हणौनि तिया आईक सुभद्रापती। तरी विद्यांमाजीं प्रस्तुतीं। अध्यात्मविद्या ते मी ॥२६६॥
अगा बोलतयांचिया ठायीं। वादु तो मी पाहीं। जो सकलशास्त्रसंमतें कहीं। सरेचिना ॥२६७॥
जो निर्वचूं जातां वाढे। आइकतयां उत्प्रेक्षे सळु चढे। जयावरी बोलतयांचीं गोडें। बोलणीं होतीं ॥२६८॥
ऐसा प्रतिपादनामाजीं वादु। तो मी म्हणे गोविंदु। अक्षरांमाजीं विशदु। अकारु तो मी ॥२६९॥
पैं गा समासांमाझारीं। द्वंद्व तो मी अवधारीं। मशकालागोनि ब्रह्मावेरीं। ग्रासिता तो मी ॥२७०॥
मेरुमंदरादिकीं सर्वीं। सहित पृथ्वीतें विरवी। जो एकार्णवातेंही जिरवी। जेथिंचा तेथ ॥२७१॥
जो प्रळयतेजा देत मिठी। सगळिया पवनातें गिळी किरीटी। आकाश जयाचिया पोटीं। सामावलें ॥२७२॥
ऐसा अपार जो काळु। तो मी म्हणे लक्ष्मीलीळु। मग पुढती सृष्टीचा मेळु। सृजिता तो मी ॥२७३॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक् च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥३४॥

आणि सृजिलिया भूतांतें मीचि धरीं। सकळां जीवनही मीचि अवधारीं। शेखीं सर्वांतें या संहारीं। तेव्हां मृत्युही मीचि ॥२७४॥
आतां स्त्रीगणांच्या पैकीं। माझिया विभूती सात आणिकी। तिया ऐक कवतिकीं। सांगिजतील ॥२७५॥
तरी नित्य नवी जे कीर्ति। अर्जुना ते माझी मूर्ती। आणि औदार्येंसी जे संपत्ती। तेही मीचि जाणें ॥२७६॥
आणि ते गा मी वाचा। जे सुखासनीं न्यायाचा। आरूढोनि विवेकाचा। मार्गीं चाले ॥२७७॥
देखिलेनि पदार्थें। जे आठवूनि दे मातें। ते स्मृतिही एथें। त्रिशुद्धी मी ॥२७८॥
पैं स्वहिता अनुयायिनी। मेधा ते गा मी इये जनीं। धृती मी त्रिभुवनीं। क्षमा ते मी ॥२७९॥
एवं नारींमाझारीं। या सातही शक्ति मी अवधारीं। ऐसें संसारगजकेसरी। म्हणता जाहला ॥२८०॥

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥३५॥

वेदराशीचिया सामा- । आंत बृहत्साम जें प्रियोत्तमा। तें मी म्हणे रमा- । प्राणेश्वरु ॥२८१॥
गायत्रीछंद जें म्हणिजे। तें सकळां छंदांमाजीं माझें। स्वरूप हें जाणिजे। निभ्रांत तुवां ॥२८२॥
मासांआंत मार्गशीरु। तो मी म्हणे शारङ्गधरु। ऋतूंमाजीं कुसुमाकरु। वसंतु तो मी ॥२८३॥

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥३६॥
वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥३७॥

छळितयां विंदाणा- । माजीं जूं तें मी विचक्षणा। म्हणौनि चोहटां चोरी परी कवणा। निवारूं न ये ॥२८४॥
अगा अशेषांही तेजसां- । आंत तेज तें मी भरंवसा। विजयो मी कार्योद्देशां। सकळांमाजीं ॥२८५॥
जेणें चोखाळत दिसे न्याय। तो व्यवसायांत व्यवसाय। माझें स्वरूप हें राय। सुरांचा म्हणे ॥२८६॥
सत्त्वाथिलियांआंतु। सत्त्व मी म्हणे अनंतु। यादवांमाजीं श्रीमंतु। तोचि तो मी ॥२८७॥
जो देवकी- वसुदेवास्तव जाहला। कुमारीसाठीं गोकुळीं गेला। तो मी प्राणासकट पियाला। पूतनेतें ॥२८८॥
नुघडतां बाळपणाची फुली। जेणें मियां अदानवीं सृष्टि केली। करीं गिरि धरूनि उमाणिली। महेंद्रमहिमा ॥२८९॥
कालिंदीचें हृदयशल्य फेडिलें। जेणें मियां जळत गोकुळ राखिलें। वासरुवांसाठीं लाविलें। विरंचीस पिसें ॥२९०॥
प्रथमदशेचिये पहांटे- । माजीं कंसा ऐशीं अचाटें। महाधेंडीं अवचटें। लीळाचि नासिलीं ॥२९१॥
हें काय कितीएक सांगावें। तुवांही देखिलें ऐकिलें असे आघवें। तरि यादवांमाजीं जाणावें। हेंचि स्वरूप माझें ॥२९२॥
आणि सोमवंशीं तुम्हां पांडवां- । माजीं अर्जुन तो मी जाणावा। म्हणौनि एकमेकांचिया प्रेमभावा। विघडु न पडे ॥२९३॥
संन्यासी तुवां होऊनि जनीं। चोरूनि नेली माझी भगिनी। तऱ्ही विकल्पु नुपजे मनीं। मी तूं दोन्ही स्वरूप एक ॥२९४॥
मुनीआंत व्यासदेवो। तो मी म्हणे यादवरावो। कवीश्वरांमाजीं धैर्या ठावो। उशनाचार्य तो मी ॥२९५॥

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥३८॥

अगा दमितयांमाझारीं। अनिवार दंडु तो मी अवधारीं। जो मुंगियेलागोनि ब्रह्मावेरीं। नियमित पावे ॥२९६॥
पैं सारासार निर्धारितयां। धर्मज्ञानाचा पक्षु धरितयां। सकळ शास्त्रांमाजीं ययां। नीतिशास्त्र तें मी ॥२९७॥
आघवियाचि गूढां- । माजीं मौन तें मी सुहाडा। म्हणौनि न बोलतयां पुढां। स्रष्टाही नेण होय ॥२९८॥
अगा ज्ञानियांचिया ठायीं। ज्ञान तें मी पाहीं। आतां असो हें ययां कांहीं। पार न देखों ॥२९९॥

यच्चाऽपि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदसेति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥३९॥
नान्तोऽस्ति मम दिव्यांना विभूतीनां परंतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥४०॥

पैं पर्जन्याचिया धारां। वरी लेख करवेल धनुर्धरा। कां पृथ्वीचिया तृणांकुरां। होईल ठी ॥३००॥
पैं महोदधीचिया तरंगां। व्यवस्था धरूं नये जेवीं गा। तेवीं माझिया विशेषलिंगां। नाहीं मिती ॥३०१॥
ऐशियाही सातपांच प्रधाना। विभूती सांगितलिया तुज अर्जुना। तो हा उद्देशु जो गा मना। आहाच गमला ॥३०२॥
येरां विभूतिविस्तारांसि कांहीं। एथ सर्वथा लेख नाहीं। म्हणौनि परिससीं तूं काई। आम्हीं सांगों किती ॥३०३॥
यालागीं एकिहेळां तुज। दऊँ आतां वर्म निज। तरी सर्व भूतांकुरें बीज। विरूढत असे तें मी ॥३०४॥

म्हणौनि सानें थोर न म्हणावें। उंच नीच भाव सांडावे। एक मीचि ऐसें मानावें। वस्तुजातातें ॥३०५॥
तरी यावरी साधारण। आईक पां आणिकही खूण। तरी अर्जुना तें तूं जाण। विभूति माझी ॥३०६॥
यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥४१॥
जेथ जेथ संपत्ति आणि दया। दोन्ही वसती आलिया ठाया। ते ते जाण धनंजया। विभूति माझी ॥३०७॥
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥४२॥
ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०अ ॥
अथवा एकलें एक बिंब गगनीं। प्रभा फांके त्रिभुवनीं। तेवीं एकाकियाची सकळ जनीं। आज्ञा पाळिजे ॥३०८॥
तयांतें एकलें झणीं म्हण। तो निर्धन या भाषा नेण। काय कामधेनूसवें सर्वस्व हन। चालत असे ? ॥३०९॥
तियेतें जें जेधवां जो मागे। तें ते एकसरेंचि प्रसवों लागे। तेवीं विश्वविभव तया आंगें। होऊनि असती ॥३१०॥
तयातें वोळखावया हेचि संज्ञा। जे जगें नमस्कारिजे आज्ञा। ऐसें आथि तें जाण प्राज्ञा। अवतार माझे ॥३११॥
आणि सामान्य विशेष। हें जाणणें एथ महादोष। कां जे मीचि एक अशेष। विश्व हें म्हणौनि ॥३१२॥
तरी आतां साधारण आणि चांगु। ऐसा कैसेनि पां कल्पावा विभागु। वायां आपुलिये मती वंगु। भेदाचा लावावा ॥३१३॥
एऱ्हवीं तूप कासया घुसळावें। अमृत कां रांधूनि अर्धें करावें। हां गा वायूसि काय पां डावें। उजवें आंग आहे ? ॥३१४॥
पैं सूर्यबिंबासि पोट पाठीं। पाहतां नासेल आपुली दिठी। तेवीं माझ्या स्वरूपीं गोठी। सामान्यविशेषाची नाहीं ॥३१५॥
आणि सिनाना इहीं विभूतीं। मज अपारातें मविसील किती। म्हणौनि किंबहुना सुभद्रापती। असो हें जाणणें ॥३१६॥
आतां पैं माझेनि एकें अंशें। हें जग व्यापिलें असे। यालागीं भेदू सांडूनि सरिसें। साम्यें भज ॥३१७॥
ऐसें विबुधवनवसंतें। तेणें विरक्तांचेनि एकांतें। बोलिलें जेथ श्रीमंतें। श्रीकृष्णदेवें ॥३१८॥
तेथ अर्जुन म्हणे स्वामी। येतुलें हें राभस्य बोलिलें तुम्हीं। जे भेदु एक आणि आम्ही। सांडावा एकीं ॥३१९॥
हां हो सूर्य म्हणे काय जगातें। अंधारें दवडा कां परौतें। तेवीं धसाळ म्हणों देवा तूंतें। तरी अधिक हा बोलु ॥३२०॥
तुझें नामचि एक कोण्ही वेळे। जयांचिये मुखासि कां कानां मिळे। तयांचिया हृदयातें सांडूनि पळे। भेदु जी साच ॥३२१॥
तो तूं परब्रह्मचि असकें। मज दैवें दिधलासि हस्तोदकें। तरी आतां भेदु कायसा कें। देखावा कवणें ? ॥३२२॥
जी चंद्रबिंबाचा गाभारां। रिगालियावरीही उबारा। परी राणेपणें शारङ्गधरा। बोला हें तुम्हीं ॥३२३॥
तेथ सावियाचि परितोषोनि देवें। अर्जुनातें आलिंगिलें जीवें। मग म्हणे तुवां न कोपावें। आमुचिया बोला ॥३२४॥
आम्हीं तुज भेदाचिया वाहाणीं। सांगितली जे विभूतींची कहाणी। ते अभेदें काय अंतःकरणीं। मानिली कीं न मनें ॥३२५॥
हेंचि पाहावयालागीं। नावेक बोलिलों बाहेरिसवडिया भंगीं। तंव विभूती तुज चांगी। आलिया बोधा ॥३२६॥
तेथ अर्जुन म्हणे देवें। हें आपुलें आपण जाणावें। परी देखतसें विश्व आघवें। तुवां भरलें ॥३२७॥
पैं राया तो पंडुसुतु। ऐसिये प्रतीतीसि जाहला वरितु। या संजयाचिया बोला निवांतु। धृतराष्ट्र राहे ॥३२८॥
कीं संजयो दुखवलेनि अंतःकरणें। म्हणतसे नवल नव्हे दैव दवडणें। हा जीवें धाडसा आहे मी म्हणें। तंव आंतुही आंधळा ॥३२९॥
परी असो हें तो अर्जुनु। स्वहिताचा वाढवितसे मानु। कीं याहीवरी तया आनु। धिंवसा उपनला ॥३३०॥

म्हणे हेचि हृदया आंतुली प्रतीती। बाहेरी अवतरो कां डोळयांप्रती। इये आर्तीचिया पाउलीं मती। उठती जाहली ॥३३१॥

मियां इहींच दोहीं डोळां। झोंबावें विश्वरूपा सकळा। एवढी हांव तो देवा आगळा। म्हणौनि करी ॥३३२॥

आजि तो कल्पतरूची शाखा। म्हणौनि वांझोळें न लगती देखा। जें जें येईल तयाचि मुखा। तें तें साचचि करितसे येरु ॥३३३॥

जो प्रऱ्हादाचिया बोला। विषाहीसकट आपणचि जाहला। तो सद्गुरु असे जोडला। किरीटीसी ॥३३४॥

म्हणौनि विश्वरूप पुसावयालागीं। पार्थ रिगता होईल कवणें भंगीं। तें सांगेन पुढिलिये प्रसंगीं। ज्ञानदेव म्हणे निवृत्तीचा ॥३३५॥

इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां दशमोऽध्यायः ॥

.. ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय ११ ..

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय अकरावा ।

विश्वरूपदर्शनयोगः ।

आतां यावरी एकादशीं। कथा आहे दोहीं रसीं। येथ पार्था विश्वरूपेंसीं। होईल भेटी ॥१॥

जेथ शांताचिया घरा। अद्‌भुत आला आहे पाहुणेरा। आणि येरांही रसां पांतिकरां। जाहला मानु ॥२॥

अहो वधुवरांचिये मिळणीं। जैशी वराडियां लुगडीं लेणीं। तैसे देशियेच्या सुखासनीं। मिरविले रस ॥३॥

परी शांताद्‌भुत बरवे। जे डोळियांच्या अंजुळीं घ्यावें। जैसे हरिहर प्रेमभावें। आले खेंवा ॥४॥

ना तरी अंवसेच्या दिवशीं। भेटलीं बिंबें दोनी जैशीं। तेवीं एकवळा रसीं। केला एथ ॥५॥

मीनले गंगेयमुनेचे ओघ। तैसें रसां जाहलें प्रयाग। म्हणौनि सुस्नात होत जग। आघवें एथ ॥६॥

माजीं गीता सरस्वती गुप्त। आणि दोनी रस ते ओघ मूर्त। यालागीं त्रिवेणी हे उचित। फावली बापा ॥७॥

एथ श्रवणाचेनि द्वारें। तीर्थीं रिघतां सोपारें। ज्ञानदेवो म्हणे दातारें। माझेनि केलें ॥८॥

तीरें संस्कृताचीं गहनें। तोडोनि मऱ्हाठियां शब्दसोपानें। रचिली धर्मनिधानें। श्रीनिवृत्तिदेवें ॥९॥

म्हणौनि भलतेणें एथ सद्भावें नाहावें। प्रयागमाधव विश्वरूप पहावें। येतुलेनि संसारासि द्यावें। तिळोदक ॥१०॥

हें असो ऐसें सावयव। एथ सासिन्नले आथी रसभाव। तेथ श्रवणसुखाची राणीव। जोडली जगा ॥११॥

जेथ शांताद्‌भुत रोकडे। आणि येरां रसां पडप जोडे। हें अल्पचि परी उघडें। कैवल्य एथ ॥१२॥

तो हा अकरावा अध्यायो। जो देवाचा आपणपें विसंवता ठावो। परी अर्जुन सदैवांचा रावो। जो एथही पातला ॥१३॥

एथ अर्जुनचि काय म्हणों पातला। आजि आवडतयाही सुकाळु जाहला। जे गीतार्थु हा आला। मऱ्हाठिये ॥१४॥

याचिलागीं माझें। विनविलें आइकिजे। तरी अवधान दीजे। सज्जनीं तुम्ही ॥१५॥

तेवींचि तुम्हां संतांचिये सभे। ऐसी सलगी कीर करूं न लभे। परी मानावें जी तुम्ही लोभें। अपत्या मज ॥१६॥

अहो पुंसा आपणचि पढविजे। मग पढे तरी माथा तुकिजे। कां करविलेनि चोजें न रिझे। बाळका माय ॥१७॥

तेवीं मी जें जें बोलें। तें प्रभु तुमचेंचि शिकविलें। म्हणौनि अवधारिजो आपुलें। आपण देवा ॥१८॥

हें सारस्वताचें गोड। तुम्हींचि लाविलें जी झाड। तरी आतां अवधानामृतें वाड। सिंपोनि कीजे ॥१९॥

मग हें रसभाव फुलीं फुलेल। नानार्थ फळभारें फळा येईल। तुमचेनि धर्में होईल। सुरवाडु जगा ॥२०॥

या बोला संत रिझले। म्हणती तोषलों गा भलें केलें। आतां सांगैं जें बोलिलें। अर्जुनें तेथ ॥२१॥

तंव निवृत्तिदास म्हणे। जी कृष्णार्जुनांचें बोलणें। मी प्राकृत काय सांगों जाणें। परी सांगवा तुम्ही ॥२२॥

अहो रानींचिया पालेखाइरा। नेवाणें करविले लंकेश्वरा। एकला अर्जुन परी अक्षौहिणी अकरा। न जिणेचि काई ? ॥२३॥

म्हणौनि समर्थ जें जें करी। तें न हो न ये चराचरीं। तुम्ही संत तयापरी। बोलवा मातें ॥२४॥

आतां बोलिजतसें आइका। हा गीताभाव निका। जो वैकुंठनायका- । मुखौनि निघाला ॥२५॥

बाप बाप ग्रंथ गीता। जो वेदीं प्रतिपाद्य देवता। तो श्रीकृष्ण वक्ता। जिये ग्रंथीं ॥२६॥

तेथिंचे गौरव कैसें वानावें। जें श्रीशंभूचिये मती नागवे। तें आतां नमस्कारिजे जीवेंभावें। हेंचि भलें ॥२७॥

मग आइका तो किरीटी। घालूनि विश्वरूपीं दिठी। पहिली कैसी गोठी। करिता जाहला ॥२८॥

हें सर्वही सर्वेश्वरु। ऐसा प्रतीतिगत जो पतिकरु। तो बाहेरी होआवा गोचरु। लोचनांसी ॥२९॥

हे जिवाआंतुली चाड। परी देवासि सांगतां सांकड। कां जें विश्वरूप गूढ। कैसेनि पुसावें ? ॥३०॥

म्हणे मागां कवणीं कहीं। जें पढियंतेनें पुसिलें नाहीं। ते सहसा कैसें काई। सांगा म्हणों ? ॥३१॥

मी जरी सलगीचा चांगु। तरी काय आइसीहूनी अंतरंगु। परी तेही हा प्रसंगु। बिहाली पुसों ॥३२॥
माझी आवडे तैसी सेवा जाहली। तरी काय होईल गरुडाचिया येतुली ? । परी तोही हें बोली। करीचिना ॥३३॥
मी काय सनकादिकांहूनि जवळां। परी तयांही नागवेचि हा चाळा। मी आवडेन काय प्रेमळां। गोकुळींचिया ऐसा ? ॥
३४॥
तयांतेंही लेकुरपणें झकविलें। एकाचे गर्भवासही साहिले। परी विश्वरूप हें राहविलें। न दावीच कवणा ॥३५॥
हा ठायवरी गुज। याचिये अंतरीचें हें निज। केवीं उराउरी मज। पुसों ये पां ? ॥३६॥
आणि न पुसेंचि जरी म्हणे। तरी विश्वरूप देखिलियाविणें। सुख नोहेचि परी जिणें। तेंही विपायें ॥३७॥
म्हणौनि आतां पुसों अळुमाळसें। मग करूं देवा आवडे तैसें। येणें प्रवर्तला साध्वसें। पार्थु बोलों ॥३८॥
परी तेंचि ऐसेनि भावें। जें एका दों उत्तरांसवें। दावी विश्वरूप आघवें। झाडा देउनी ॥३९॥
अहो वांसरूं देखिलियाचिसाठीं। धेनु खडबडोनि मोहें उठी। मग स्तनामुखाचिये भेटी। काय पान्हा धरे ? ॥४०॥
पाहा पां तया पांडवाचेनि नांवें। जो कृष्ण रानींही प्रतिपाळूं धावे। तयांतें अर्जुनें जंव पुसावें। तंव साहील काई ? ॥
४१॥
तो सहजेंचि स्नेहाचें अवतरण। आणि येरु स्नेहा घातलें आहे माजवण। ऐसियें मिळवणी वेगळेपण। उरे हेंचि बहु ॥४२॥
म्हणौनि अर्जुनाचिया बोलासरिसा। देव विश्वरूप होईल आपैसा। तोचि पहिला प्रसंगु ऐसा। ऐकिजे तरी ॥४३॥
अर्जुन उवाच ।
मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥१॥
मग पार्थु देवातें म्हणे। जी तुम्ही मजकारणें। वाच्य केलें जें न बोलणें। कृपानिधे ॥४४॥
जैं महाभूतें ब्रह्मीं आटती। जीव महदादींचे ठाव फिटती। तैं जें देव होऊनि ठाकती। तें विसवणें शेषींचें ॥४५॥
होतें हृदयाचिये परिवरीं। रोंविलें कृपणाचिये परी। शब्दब्रह्मासही चोरी। जयाची केली ॥४६॥
तें तुम्हीं आजि आपुलें। मजपुढां हियें फोडिलें। जया अध्यात्मा वोवाळिलें। ऐश्वर्य हरें ॥४७॥
ते वस्तु मज स्वामी। एकिहेळां दिधली तुम्ही। हें बोलों तरी आम्ही। तुज पावोनि कैंचे ॥४८॥
परी साचचि महामोहाचिये पुरीं। बुडालेया देखोनि सीसवरी। तुवां आपणपें घालोनि श्रीहरी। मग काढिलें मातें ॥४९॥
एक तूंवांचूनि कांहीं। विश्वीं दुजियाची भाष नाहीं। कीं आमुचें कर्म पाहीं। जे आम्हीं आथी म्हणों ॥५०॥
मी जगीं एक अर्जुनु। ऐसा देहीं वाहे अभिमानु। आणि कौरवांतें इयां स्वजनु। आपुलें म्हणें ॥५१॥
याहीवरी यांतें मी मारीन। म्हणें तेणें पापें कें रिगेन। ऐसें देखत होतों दुःस्वप्न। तों चेवविला प्रभु ॥५२॥
देवा गंधर्वनगरीची वस्ती। सोडूनि निघालों लक्ष्मीपती। होतों उदकाचिया आर्ती। रोहिणी पीत ॥५३॥
जी किरडूं तरी कापडाचें। परी लहरी येत होतिया साचें। ऐसें वायां मरतया जीवाचें। श्रेय तुवां घेतलें ॥५४॥
आपुलें प्रतिबिंब नेणता। सिंह कुहां घालील देखोनि आतां। ऐसा धरिजे तेवीं अनंता। राखिलें मातें ॥५५॥
एऱ्हवीं माझा तरी येतुलेवरी। एथ निश्चय होता अवधारीं। जें आतांचि सातांही सागरीं। एकत्र मिळिजे ॥५६॥
हें जगचि आघवें बुडावें। वरी आकाशहि तुटोनि पडावें। परी झुंजणें न घडावें। गोत्रजेशीं मज ॥५७॥
ऐसिया अहंकाराचिये वाढी। मियां आग्रहजळीं दिधली होती बुडी। चांगचि तूं जवळां एऱ्हवीं काढी। कवणु मातें ॥५८॥
नाथिलें आपण पां एक मानिलें। आणि नव्हतया नाम गोत्र ठेविलें। थोर पिसें होतें लागलें। परि राखिलें तुम्ही ॥५९॥
मागां जळत काढिलें जोहरीं। तैं तें देहासीच भय अवधारीं। आतां हे जोहरवाहर दुसरी। चैतन्यासकट ॥६०॥
दुराग्रह हिरण्याक्षें। माझी बुद्धि वसुंधरा सूदली काखे। मग माहार्णव गवाक्षें। रिघोनि ठेला ॥६१॥
तेथ तुझेनि गोसावीपणें। एकवेळ बुद्धीचिया ठाया येणें। हें दुसरें वराह होणें। पडिलें तुज ॥६२॥
ऐसें अपार तुझें केलें। एकी वाचा काय मी बोलें। परी पांचही पालव मोकलिले। मजप्रती ॥६३॥

तें कांहीं न वचेचि वायां। भलें यश फावलें देवराया। जे साद्यंत माया। निरसिली माझी ॥६४॥
आजीं आनंदसरोवरींचीं कमळें। तैसे हे तुझे डोळे। आपुलिया प्रसादाचीं राउळें। जयालागीं करिती ॥६५॥
हां हो तयाही आणि मोहाची भेटी। हे कायसी पाबळी गोठी ? । केउती मृगजळाची वृष्टी। वडवानळेंसीं ? ॥६६॥
आणि मी तंव दातारा। ये कृपेचिये रिघोनि गाभारां। घेत आहें चारा। ब्रह्मरसाचा ॥६७॥
तेणें माझा जी मोह जाये। एथ विस्मो कांहीं आहे ? । तरी उद्धरलों कीं तुझे पाये। शिवतले आहाती ॥६८॥

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥२॥

पैं कमलायतडोळसा। सूर्यकोटितेजसा। मियां तुजपासोनि महेशा। परिसिलें आजीं ॥६९॥
इयें भूतें जयापरी होती। अथवा लया हन जैसेनि जाती। ते मजपुढां प्रकृती। विवंचिली देवें ॥७०॥
आणि प्रकृती कीर उगाणा दिधला। वरि पुरुषाचाही ठावो दाविला। जयाचा महिमा पांघरोनि जाहला। धडौता वेदु ॥७१॥
जी शब्दराशी वाढे जिये। कां धर्माऐशिया रत्नांतें विये। ते एथिंचे प्रभेचे पाये। वोळगे म्हणौनि ॥७२॥
ऐसें अगाध माहात्म्य। जें सकळमार्गैकगम्य। जें स्वात्मानुभवरम्य। तें इयापरी दाविलें ॥७३॥
जैसा केरु फिटलिया आभाळीं। दिठी रिगे सूर्यमंडळीं। कां हातें सारूनि बाबुळीं। जळ देखिजे ॥७४॥
नातरी उकलतया सापाचे वेढे। जैसें चंदना खेंव देणें घडे। अथवा विवसी पळे मग चढे। निधान हातां ॥७५॥
तैसी प्रकृती हे आड होती। ते देवेंचि सारोनि परौती। मग परतत्त्व माझिये मती। शेजार केलें ॥७६॥
म्हणौनि इयेविषयींचा मज देवा। भरंवसा कीर जाहला जीवा। परी आणीक एक हेवा। उपनला असे ॥७७॥
तो भिडां जरी म्हणों राहों। तरी आना कवणा पुसों जावों। काय तुजवांचोनि ठावो। जाणत आहों आम्ही ? ॥७८॥
जळचरु जळाचा आभारु धरी। बाळक स्तनपानीं उपरोधु करी। तरी तया जिणया श्रीहरी। आन उपायो असे ? ॥७९॥
म्हणौनि भीड सांकडी न धरवे। जीवा आवडे तेंही तुजपुढां बोलावें। तंव राहें म्हणितलें देवें। चाड सांगैं ॥८०॥

एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥३॥

मग बोलिला तो किरीटी। म्हणे तुम्हीं केली जे गोठी। तिया प्रतीतीची दिठी। निवाली माझी ॥८१॥
आतां जयाचेनि संकल्पें। हे लोकपरंपरा होय हारपे। जया ठायातें आपणपें। मी ऐसें म्हणसी ॥८२॥
तें मुद्दल रूप तुझें। जेथूनि इयें द्विभुजें हन चतुर्भुजें। सुरकार्याचेनि व्याजें। घेवों घेवों येसी ॥८३॥
पैं जळशयनाचिया अवगणिया। कां मत्स्य कूर्म इया मिरवणिया। खेळु सरलिया तूं गुणिया। सांठविसी जेथ ॥८४॥
उपनिषदें जें गाती। योगिये हृदयीं रिगोनि पाहाती। जयातें सनकादिक आहाती। पोटाळुनियां ॥८५॥
ऐसें अगाध जें तुझें। विश्वरूप कानीं ऐकिजे। तें देखावया चित्त माझें। उतावीळ देवा ॥८६॥
देवें फेडूनियां सांकड। लोभें पुसिली जरी चाड। तरी हेंचि एकीं वाड। आर्ती जी मज ॥८७॥
तुझें विश्वरूपपण आघवें। माझिये दिठीसि गोचर होआवें। ऐसी थोर आस जीवें। बांधोनि आहें ॥८८॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयाऽत्मानमव्ययम् ॥४॥

परी आणीक एक एथ शारङ्गी। तुज विश्वरूपातें देखावयालागीं। पैं योग्यता माझिया आंगीं। असे कीं नाहीं ॥८९॥
हें आपलें आपण मी नेणें। तें कां नेणसी जरी देव म्हणे। तरी सरोगु काय जाणे। निदान रोगाचें ? ॥९०॥
आणि जी आर्तीचेनि पडिभरें। आर्तु आपुली ठाकी पैं विसरे। जैसा तान्हेला म्हणे न पुरे। समुद्र मज ॥९१॥
ऐशा सचाडपणाचिये भुली। न सांभाळवे समस्या आपुली। यालागीं योग्यता जेवीं माउली। बालकाची जाणे ॥९२॥
तयापरी श्रीजनार्दना। विचारिजो माझी संभावना। मग विश्वरूपदर्शना। उपक्रम कीजे ॥९३॥

तरी ऐसी ते कृपा करा। एऱ्हवीं नव्हे हें म्हणा अवधारा। वायां पंचमालापें बधिरा। सुख केउतें देणें ? ॥९४॥
एऱ्हवीं येकले बापियाचे तृषे। मेघ जगापुरतें काय न वर्षे ? । परी जहालीही वृष्टि उपखे। जऱ्ही खडकीं होय ॥९५॥
चकोरा चंद्रामृत फावलें। येरा आण वाहूनि काय वारिलें ? । परी डोळयांवीण पाहलें। वायां जाय ॥९६॥
म्हणौनि विश्वरूप तूं सहसा। दाविसी कीर हा भरवंसा। कां जे कडाडां आणि गहिंसा- । माजी नीत्य नवा तूं कीं ॥९७॥
तुझें औदार्य जाणों स्वतंत्र। देतां न म्हणसी पात्रापात्र। पैं कैवल्या ऐसें पवित्र। जें वैरियांही दिधलें ॥९८॥
मोक्षु दुराराध्यु कीर होय। परी तोही आराधी तुझे पाय। म्हणौनि धाडिसी तेथ जाय। पाइकु जैसा ॥९९॥
तुवां सनकादिकांचेनि मानें। सायुज्यीं सौरसु दिधला पूतने। जे विषाचेनि स्तनपानें। मारूं आली ॥१००॥
हां गा राजसूय यागाचिया सभासदीं। देखतां त्रिभुवनाची मांदी। कैसा शतधा दुर्वाक्य शब्दीं। निस्तेजिलासी ॥१०१॥
ऐशिया अपराधिया शिशुपाळा। आपणपें ठावो दिधला गोपाळा। आणि उत्तानचरणाचिया बाळा। काय ध्रुवपदीं चाड ? ॥१०२॥
तो वना आला याचिलागीं। जे बैसावें पितयाचिया उत्संगीं। कीं तो चंद्रसूर्यादिकांपरिस जगीं। श्लाघ्यु केला ॥१०३॥
ऐसा वनवासिया सकळां। देतां एकचि तूं धसाळा। पुत्रा आळवितां अजामिळा। आपणपें देसी ॥१०४॥
जेणें उरीं हाणितलासि पांपरा। तयाचा चरणु वाहासी दातारा। अझुनी वैरियांचिया कलेवरा। विसंबसीना ॥१०५॥
ऐसा अपकारियां तुझा उपकारु। तूं अपात्रींही परी उदारु। दान म्हणौनि दारवंठेकरु। जाहलासी बळीचा ॥१०६॥
तूंतें आराधी ना आयकें। होती पुंसा बोलावित कौतुकें। तिये वैकुंठीं तुवां गणिके। सुरवाडु केला ॥१०७॥
ऐसीं पाहूनि वायाणीं मिषें। आपणपें देवों लागसी वानिवसें। तो तूं कां अनारिसें। मजलागीं करिसी ॥१०८॥
हां गा दुभतयाचेनि पवाडें। जे जगाचें फेडी सांकडें। तिये कामधेनूचे पाडे। काय भुकेले ठाती ? ॥१०९॥
म्हणौनि मियां जें विनविलें कांहीं। तें देव न दाखविती हें कीर नाहीं। परी देखावयालागीं देईं। पात्रता मज ॥११०॥
तुझें विश्वरूप आकळे। ऐसे जरी जाणसी माझे डोळे। तरी आर्तीचे डोहळे। पुरवीं देवा ॥१११॥
ऐसी ठायेंठावो विनंती। जंव करूं सरला सुभद्रापती। तंव तया षड्गुणचक्रवर्ती। साहवेचिना ॥११२॥
तो कृपापीयूषसजळु। आणि येरु जवळां आला वर्षाकाळु। नाना कृष्ण कोकिळु। अर्जुन वसंतु ॥११३॥
नातरी चंद्रबिंब वाटोळें। देखोनि क्षीरसागर उचंबळे। तैसा दुणेंही वरी प्रेमबळें। उल्लसितु जाहला ॥११४॥
मग तिये प्रसन्नतेचेनि आटोपें। गाजोनि म्हणितलें सकृपें। पार्था देख देख अमुपें। स्वरूपें माझीं ॥११५॥
एक विश्वरूप देखावें। ऐसा मनोरथु केला पांडवें। कीं विश्वरूपमय आघवें। करूनि घातलें ॥११६॥
बाप उदार देवो अपरिमितु। याचक स्वेच्छा सदोदितु। असे सहस्रवरी देतु। सर्वस्व आपुलें ॥११७॥
अहो शेषाचेहि डोळे चोरिले। वेद जयालागीं झकविले। लक्ष्मीयेही राहविलें। जिव्हार जें ॥११८॥
तें आतां प्रकटुनी अनेकधा। करीत विश्वरूपदर्शनाचा धांदा। बाप भाग्या अगाधा। पार्थाचिया ॥११९॥
जो जागता स्वप्नावस्थे जाये। तो जेवीं स्वप्नींचें आघवें होये। तेवीं अनंत ब्रह्मकटाह आहे। आपणचि जाहला ॥१२०॥
ते सहसा मुद्रा सोडिली। आणि स्थूळदृष्टीची जवनिका फेडिली। किंबहुना उघडिली। योगऋद्धी ॥१२१॥
परी हा हें देखेल कीं नाहीं। ऐसी सेचि न करी कांहीं। एकसरां म्हणतसे पाहीं। स्नेहातुर ॥१२२॥

श्रीभगवानुवाच ।

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥५॥

अर्जुना तुवां एक दावा म्हणितलें। आणि तेंचि दावूं तरी काय दाविलें। आतां देखें आघवें भरिलें। माझ्याचि रूपीं ॥१२३॥
एकें कृशें एकें स्थूळें। एकें ऱ्हस्वें एकें विशाळें। पृथुतरें सरळें। अप्रांतें एकें ॥१२४॥
एकें अनावरें प्रांजळें। सव्यापारें एकें निश्चळें। उदासीनें स्नेहाळें। तीव्रें एकें ॥१२५॥

एके घूर्णितें सावधें। असलगें एकें अगाधें। एकें उदारें अतिबद्धें। क्रुद्धें एकें ॥१२६॥
एकें शांतें सन्मदें। स्तब्धें एकें सानंदें। गर्जितें निःशब्दें। सौम्यें एकें ॥१२७॥
एकें साभिलाषें विरक्तें। उन्निद्रितें एकें निद्रितें। परितुष्टें एकें आर्तें। प्रसन्नें एकें ॥१२८॥
एकें अशस्त्रें सशस्त्रें। एकें रौद्रें अतिमित्रें। भयानकें एकें पवित्रें। लयस्थें एकें ॥१२९॥
एकें जनलीलाविलासें। एकें पालनशीलें लालसें। एकें संहारकें सावेशें। साक्षिभूतें एकें ॥१३०॥
एवं नानाविधें परी बहुवसें। आणि दिव्यतेजप्रकाशें। तेवींचि एकएका ऐसें। वर्णेंही नव्हे ॥१३१॥
एकें तातलें साडेपंधरें। तैसीं कपिलवर्णें अपारें। एकें सर्वांगीं जैसें सेंदुरें। डवरलें नभ ॥१३२॥
एकें सावियाचि चुळुकीं। जैसें ब्रह्मकटाह खचिलें माणिकीं। एकें अरुणोदयासारिखीं। कुंकुमवर्णें ॥१३३॥
एकें शुद्धस्फटिकसोज्वळें। एकें इंद्रनीळसुनीळें। एकें अंजनवर्णें सकाळें। रक्तवर्णें एकें ॥१३४॥
एकें लसत्कांचनसम पिंवळीं। एकें नवजलदश्यामळीं। एकें चांपेगौरीं केवळीं। हरितें एकें ॥१३५॥
एकें तप्तताम्रतांबडीं। एकें श्वेतचंद्र चोखडीं। ऐसीं नानावर्णें रूपडीं। देखें माझीं ॥१३६॥
हे जैसे कां आनान वर्ण। तैसें आकृतींही अनारिसेपण। लाजा कंदर्प रिघाला शरण। तैसीं सुंदरें एकें ॥१३७॥
एकें अतिलावण्यसाकारें। एकें स्निग्धवपु मनोहरें। शृंगारश्रियेचीं भांडारें। उघडिली जैसीं ॥१३८॥
एकें पीनावयवमांसाळें। एकें शुष्कें अति विक्राळें। एकें दीर्घकंठें विताळें। विकटें एकें ॥१३९॥
एवं नानाविधाकृती। इयां पाहतां पारु नाहीं सुभद्रापती। ययांच्या एकेकीं अंगप्रांतीं। देख पां जग ॥१४०॥
पश्यादित्यान्वसून्रुद्रान अश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥६॥
जेथ उन्मीलन होत आहे दिठी। तेथ पसरती आदित्यांचिया सृष्टी। पुढती निमीलनीं मिठीं। देत आहाती ॥१४१॥
वदनींचिया वाफेसवें। होत ज्वाळामय आघवें। जेथ पावकादिक पावे। समूह वसूंचा ॥१४२॥
आणि भ्रूलतांचे शेवट। कोपें मिळों पाहतीं एकवट। तेथ रुद्रगणांचे संघाट। अवतरत देखें ॥१४३॥
पैं सौम्यतेचा बोलावा। मिती नेणिजे अश्विनौदेवां। श्रोत्रीं होती पांडवा। अनेक वायु ॥१४४॥
यापरी एकेकाचिये लीळे। जन्मती सुरसिद्धांचीं कुळें। ऐसीं अपारें आणि विशाळें। रूपें इयें पाहीं ॥१४५॥
जयांतें सांगावया वेद बोबडे। पहावया काळाचेंही आयुष्य थोकडें। धातयाही परी न सांपडे। ठाव जयांचा ॥१४६॥
जयांतें देवत्रयी कधीं नायके। तियें इयें प्रत्यक्ष देख अनेकें। भोगीं आश्चर्याची कवतिकें। महासिद्धी ॥१४७॥
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥७॥
इया मूर्तीचिया किरीटी। रोममूळीं देखें पां सृष्टी। सुरतरुतळवटीं। तृणांकुर जैसे ॥१४८॥
चंडवाताचेनि प्रकाशें। उडत परमाणु दिसती जैसे। भ्रमत ब्रह्मकटाह तैसें। अवयवसंधीं ॥१४९॥
एथ एकैकाचिया प्रदेशीं। विश्व देख विस्तारेंशीं। आणि विश्वाही परौतें मानसीं। जरी देखावें वर्ते ॥१५०॥
तरी इयेही विषयींचें कांहीं। एथ सर्वथा सांकडें नाहीं। सुखें आवडे तें माझिया देहीं। देखसी तूं ॥१५१॥
ऐसें विश्वमूर्ती तेणें। बोलिलें कारुण्यपूर्णें। तंव देखत आहे कीं नाहीं न म्हणे। निवांतुचि येरु ॥१५२॥
एथ कां पां हा उगला ? । म्हणौनि श्रीकृष्णें जंव पाहिला। तंव आर्तीचें लेणें लेइला। तैसाचि आहे ॥१५३॥
न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥
मग म्हणें उत्कंठे वोहट न पडे। अझुनी सुखाची सोय न सांपडे। परी दाविलें तें फुडें। नाकळेचि यया ॥१५४॥
हे बोलोनि देवो हांसिले। हांसोनि देखणियातें म्हणितलें। आम्हीं विश्वरूप तरी दाविलें। परी न देखसीच तूं ॥१५५॥
यया बोला येरें विचक्षणें। म्हणितलें हां जी कवणासी तें उणें ? । तुम्ही बकाकरवीं चांदिणें। चरऊं पहा मा ॥१५६॥

हां हो उटोनियां आरिसा। आंधळिया दॐ बैसा। बहिरियापुढें हृषीकेशा। गाणीव करा ॥१५७॥
मकरंदकणाचा चारा। जाणतां घालूनि दर्दुरा। वायां धाडा शारङ्गधरा। कोपा कवणा ॥१५८॥
जें अतींद्रिय म्हणौनि व्यवस्थिलें। केवळ ज्ञानदृष्टीचिया भागा फिटलें। तें तुम्हीं चर्मचक्षूंपुढें सूदलें। मी कैसेनि देखें ॥१५९॥
परी हें तुमचें उणें न बोलावें। मीचि साहें तेंचि बरवें। एथ आथि म्हणितलें देवें। मानूं बापा ॥१६०॥
साच विश्वरूप जरी आम्ही दावावें। तरी आधीं देखावया सामर्थ्य कीं द्यावें। परी बोलत बोलत प्रेमभावें। धसाळ गेलों ॥१६१॥
काय जाहलें न वाहतां भुई पेरिजे। तरी तो वेलु विलया जाइजे। तरी आतां माझें निजरूप देखिजे। तें दृष्टी देवों तुज ॥१६२॥
मग तिया दृष्टी पांडवा। आमुचा ऐश्वर्ययोगु आघवा। देखोनियां अनुभवा। माजिवडा करीं ॥१६३॥
ऐसें तेणें वेदांतवेद्यें। सकळ लोक आद्यें। बोलिलें आराध्यें। जगाचेनि ॥१६४॥

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वा ततो राजन महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥९॥

पैं कौरवकुलचक्रवर्ती। मज हाचि विस्मयो पुढतपुढती। जे श्रियेहूनि त्रिजगतीं। सदैव असे कवणी ? ॥१६५॥
ना तरी खुणेचें वानावयालागीं। श्रुतीवांचूनि दावा पां जगीं। ना सेवकपण तरी आंगीं। शेषाच्याचि आथी ॥१६६॥
हां हो जयाचेनि सोसें। शिणत आठही पहार योगी जैसे। अनुसरलें गरुडाऐसें। कवण आहे ? ॥१६७॥
परी तें आघवेंचि एकीकडे ठेलें। सापें कृष्णसुख एकंदरें जाहलें। जिये दिवूनि जन्मले। पांडव हे ॥१६८॥
परी पांचांही आंतु अर्जुना। श्रीकृष्ण सावियाचि जाहला अधीना। कामुक कां जैसा अंगना। आपैता कीजे ॥१६९॥
पढविलें पाखरूं ऐसें न बोले। यापरी क्रीडामृगही तैसा न चले। कैसें दैव एथें सुरवाडलें। तें जाणों न ये ॥१७०॥
आजि हें परब्रह्म सगळें। भोगावया सदैव याचेचि डोळे। कैसे वाचेनि हन लळे। पाळीत असे ॥१७१॥
हा कोपे कीं निवांतु साहे। हा रुसे तरी बुझावीत जाये। नवल पिसें लागलें आहे। पार्थाचें देवा ॥१७२॥
एऱ्हवीं विषय जिणोनि जन्मले। जे शुकादिक दादुले। ते विषयोचि वानितां जाहले। भाट ययाचें ॥१७३॥
हा योगियांचें समाधिधन। कीं होऊनि ठेले पार्थाआधीन। यालागीं विस्मयो माझें मन। करीतसे राया ॥१७४॥
तेवींचि संजय म्हणे कायसा। विस्मयो एथें कौरवेशा। श्रीकृष्णें स्वीकारिजे तया ऐसा। भाग्योदय होय ॥१७५॥
म्हणौनि तो देवांचा रावो। म्हणे पार्थाते तुज दृष्टि देवों। जया विश्वरूपाचा ठावो। देखसी तूं ॥१७६॥
ऐसी श्रीमुखौनि अक्षरें। निघती ना जंव एकसरें। तंव अविद्येचे आंधारें। जावोंचि लागे ॥१७७॥
तीं अक्षरें नव्हती देखा। ब्रह्मसाम्राज्यदीपिका। अर्जुनालागीं चित्कळिका। उजळलिया श्रीकृष्णें ॥१७८॥
मग दिव्यचक्षुप्रकाशु प्रगटला। तया ज्ञानदृष्टी फांटा फुटला। ययापरी दाविता जाहला। ऐश्वर्य आपुलें ॥१७९॥
हे अवतार जे सकळ। ते जिये समुद्रींचे कां कल्लोळ। विश्व हें मृगजळ। जया रश्मीस्तव दिसे ॥१८०॥
जिये अनादिभूमिके निटे। चराचर हें चित्र उमटे। आपणपें श्रीवैकुंठें। दाविलें तया ॥१८१॥
मागां बाळपणीं येणें श्रीपती। जैं एक वेळ खादली होती माती। तैं कोपोनियां हातीं। यशोदां धरिला ॥१८२॥
मग भेणें भेणें जैसें। मुखीं झाडा द्यावयाचेनि मिसें। चवदाही भुवनें सावकाशें। दाविलीं तिये ॥१८३॥
ना तरी मधुवनीं ध्रुवासि केलें। जैसें कपोल शंखें शिवतलें। आणि वेदांचियेही मतीं ठेलें। तें लागला बोलों ॥१८४॥
तैसा अनुग्रहो पैं राया। श्रीहरी केला धनंजया। आतां कवणेकडेही माया। ऐसी भाष नेणेंचि तो ॥१८५॥
एकसरें ऐश्वर्यतेजें पाहलें। तया चमत्काराचें एकार्णव जाहलें। चित्त समाजीं बुडोनि ठेलें। विस्मयाचिया ॥१८६॥
जैसा आब्रह्म पूर्णोदकीं। पव्हे मार्कंडेय एकाकीं। तैसा विश्वरूप कौतुकीं। पार्थु लोळे ॥१८७॥

म्हणे केवढें गगन एथ होतें। तें कवणें नेलें पां केउतें। तीं चराचर महाभूतें। काय जाहलीं ? ॥१८८॥
दिशांचे ठावही हारपले। आधोर्ध्व काय नेणों जाहले। चेइलिया स्वप्न तैसे गेले। लोकाकार ॥१८९॥
नाना सूर्यतेजप्रतापें। सचंद्र तारांगण जैसें लोपे। तैसीं गिळिलीं विश्वरूपें। प्रपंचरचना ॥१९०॥
तेव्हां मनासी मनपण न स्फुरे। बुद्धि आपणपें न सांवरें। इंद्रियांचे रश्मी माघारे। हृदयवरी भरले ॥१९१॥
तेथ ताटस्थ्या ताटस्थ्य पडिलें। टकासी टक लागले। जैसें मोहनास्त्र घातलें। विचारजातां ॥१९२॥
तैसा विस्मितु पाहे कोडें। तंव पुढां होतें चतुर्भुज रूपडें। तेंचि नानारूप चहूंकडे। मांडोनि ठेलें ॥१९३॥
जैसें वर्षाकाळींचे मेघौडे। कां महाप्रळयींचें तेज वाढे। तैसें आपणावीण कवणीकडे। नेदीचि उरों ॥१९४॥
प्रथम स्वरूपसमाधान। पावोनि ठेला अर्जुन। सवेचि उघडी लोचन। तंव विश्वरूप देखें ॥१९५॥
इहींचि दोहीं डोळां। पाहावें विश्वरूपा सकळा। तो श्रीकृष्णें सोहळा। पुरविला ऐसा ॥१९६॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥१०॥

मग तेथ सैंघ देखे वदनें। जैसी रमानायकाचीं राजभुवनें। नाना प्रगटलीं निधानें। लावण्यश्रियेचीं ॥१९७॥
कीं आनंदाची वनें सासिन्नलीं। जैसी सौंदर्या राणीव जोडली। तैसीं मनोहरें देखिलीं। हरीचीं वक्त्रें ॥१९८॥
तयांही माजीं एकैकें। सावियाचि भयानकें। काळरात्रीचीं कटकें। उठवलीं जैसीं ॥१९९॥
कीं मृत्यूसीचि मुखें जाहलीं। हो कां जें भयाचीं दुर्गें पन्नासिलीं। कीं महाकुंडें उघडलीं। प्रळयानळाचीं ॥२००॥
तैसीं अद्भुतें भयासुरें। तेथ वदनें देखिलीं वीरें। आणिकें असाधारणें साळंकारें। सौम्यें बहुतें ॥२०१॥
पैं ज्ञानदृष्टीचेनि अवलोकें। परी वदनांचा शेवटु न टके। मग लोचन तें कवतिकें। लागला पाहों ॥२०२॥
तंव नानावर्णें कमळवनें। विकासिलीं तैसे अर्जुनें। डोळे देखिले पालिंगनें। आदित्यांचीं ॥२०३॥
तेथेंचि कृष्णमेघांचिया दाटी- । माजीं कल्पांत विजूंचिया स्फुटी। तैसिया वन्हि पिंगळा दिठी। भ्रूभंगातळीं ॥२०४॥
हें एकैक आश्चर्य पाहतां। तिये एकेचि रूपीं पंडुसुता। दर्शनाची अनेकता। प्रतिफळली ॥२०५॥
मग म्हणे चरण ते कवणेकडे। केउते मुकुट कें दोर्दंडें। ऐसी वाढविताहे कोडें। चाड देखावयाची ॥२०६॥
तेथ भाग्यनिधि पार्था। कां विफलत्व होईल मनोरथा। काय पिनाकपाणीचिया भातां। वायकांडीं आहाती ? ॥२०७॥
ना तरी चतुराननाचिये वाचे। काय आहाती लटिकिया अक्षरांचे साचे ? । म्हणौनि साद्यंतपण अपारांचे। देखिलें तेणें ॥२०८॥
जयाची सोय वेदां नाकळे। तयाचे सकळावयव एकेचि वेळे। अर्जुनाचे दोन्ही डोळे। भोगिते जाहले ॥२०९॥
चरणौनि मुकुटवरी। देखत विश्वरूपाची थोरी। जे नाना रत्न अळंकारीं। मिरवत असे ॥२१०॥
परब्रह्म आपुलेनि आंगें। ल्यावया आपणचि जाहला अनेगें। तियें लेणीं मी सांगें। काइसयासारिखीं ॥२११॥
जिये प्रभेचिये झळाळा। उजाळु चंद्रादित्यमंडळा। जे महातेजाचा जिव्हाळा। जेणें विश्व प्रगटे ॥२१२॥
तो दिव्यतेज शृंगारु। कोणाचिये मतीसी होय गोचरु। देव आपणपेंचि लेइले ऐसें वीरु। देखत असे ॥२१३॥
मग तेथेंचि ज्ञानाचिया डोळां। पहात करपल्लवां जंव सरळा। तंव तोडित कल्पांतींचिया ज्वाळा। तैसीं शस्त्रें झळकत देखे ॥२१४॥
आपण आंग आपण अलंकार। आपण हात आपण हतियार। आपण जीव आपण शरीर। देखें चराचर कोंदलें देवें ॥२१५॥
जयाचिया किरणांचे निखरपणें। नक्षत्रांचे होत फुटाणे। तेजें खिरडला वन्हि म्हणे। समुद्रीं रिघों ॥२१६॥
मग कालकूटकल्लोळीं कवळिलें। नाना महाविजूंचें दांग उमटलें। तैसे अपार कर देखिले। उदितायुधीं ॥२१७॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥११॥

कीं भेणें तेथूनि काढिली दिठी। मग कंठमुगुट पहातसे किरीटी। तंव सुरतरूची सृष्टी। जयांपासोनि कां जाहली ॥२१८॥

जिये महासिद्धींचीं मूळपीठें। शिणली कमळा जेथ वावटे। तैसीं कुसुमें अति चोखटें। तुरंबिलीं देखिलीं ॥२१९॥
मुगुटावरी स्तबक। ठायीं ठायीं पूजाबंध अनेक। कंठीं रुळताति अलौकिक। माळादंड ॥२२०॥
स्वर्गें सूर्यतेज वेढिलें। जैसें पंधरेनें मेरूतें मढिलें। तैसें नितंबावरी गाढिलें। पीतांबरु झळके ॥२२१॥
श्रीमहादेवो कापुरें उटिला। कां कैलासु पारजें डवरिला। नाना क्षीरोदकें पांघरविला। क्षीरार्णवो जैसा ॥२२२॥
जैसी चंद्रमयाची घडी उपलविली। मग गगनाकरवीं बुंथी घेवविली। तैसीं चंदनपिंजरी देखिली। सर्वांगीं तेणें ॥२२३॥
जेणें स्वप्रकाशा कांतीं चढे। ब्रह्मानंदाचा निदाघु मोडे। जयाचेनि सौरभ्यें जीवित जोडे। वेदवतीये ॥२२४॥
जयाचे निर्लेप अनुलेपु करी। जे अनंगुही सर्वांगीं धरी। तया सुगंधाची थोरी। कवण वानी ? ॥२२५॥
ऐसी एकैक शृंगारशोभा। पाहतां अर्जुन जातसें क्षोभा। तेवींचि देवो बैसला कीं उभा। का शयालु हें नेणवें ॥२२६॥
बाहेर दिठी उघडोनि पाहे। तंव आघवें मूर्तिमय देखत आहे। मग आतां न पाहें म्हणौनि उगा राहे। तरी आंतुही तैसेंचि ॥२२७॥
अनावरें मुखें समोर देखे। तयाभेणें पाठीमोरा जंव ठाके। तंव तयाहीकडे श्रीमुखें। करचरण तैसेचि ॥२२८॥
अहो पाहतां कीर प्रतिभासे। एथ नवलावो काय असे ? । परि न पाहतांही दिसे। चोज आइका ॥२२९॥
कैसें अनुग्रहाचें करणें। पार्थाचें पाहणें आणि न पाहणें। तयाही सकट नारायणें। व्यापूनि घेतलें ॥२३०॥
म्हणौनि आश्चर्याच्या पुरीं एकीं। पडिला ठायेठाव थडीं ठाकी। तंव चमत्काराचिया आणिकीं। महार्णवीं पडे ॥२३१॥
तैसा अर्जुनु असाधारणें। आपुलिया दर्शनाचेनि विंदाणें। कवळूनि घेतला तेणें। अनंतरूपें ॥२३२॥
तो विश्वतोमुख स्वभावें। आणि तेचि दावावयालागीं पांडवें। प्रार्थिला आतां आघवें। होऊनि ठेला ॥२३३॥
आणि दीपें कां सूर्यें प्रगटे। अथवा निमुटलिया देखावेंचि खुंटे। तैसी दिठी नव्हे जे वैकुंठें। दिधली आहे ॥२३४॥
म्हणौनि किरीटीसि दोहीं परी। तें देखणें देखें अंधारीं। हें संजयो हस्तिनापुरीं। सांगतसे राया ॥२३५॥
म्हणे किंबहुना अवधारिलें। पार्थें विश्वरूप देखिलें। नाना आभरणीं भरलें। विश्वतोमुख ॥२३६॥
दिवि सूर्य सहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥१२॥
तिये अंगप्रभेचा देवा। नवलावो काइसया ऐसा सांगावा। कल्पांतीं एकुचि मेळावा। द्वादशादित्यांचा होय ॥२३७॥
तैसे ते दिव्यसूर्य सहस्रवरी। जरी उदयजती कां एकेचि अवसरीं। तऱ्ही तया तेजाची थोरी। उपमूं नये ॥२३८॥
आघवयाचि विजूंचा मेळावा कीजे। आणि प्रळयाग्नीची सर्व सामग्री आणिजे। तेवींचि दशकुही मेळविजे। महातेजांचा ॥२३९॥
तऱ्ही तिये अंगप्रभेचेनि पाडें। हें तेज कांहीं कांहीं होईल थोडें। आणि तया ऐसें कीर चोखडें। त्रिशुद्धी नोहे ॥२४०॥
ऐसें महात्म्य या श्रीहरीचें सहज। फांकतसे सर्वांगीचें तेज। तें मुनिकृपा जी मज। दृष्ट जाहलें ॥२४१॥
तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नम् प्रविभक्तमनेकधा ॥अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पांडवस्तदा ॥१३॥
आणि तिये विश्वरूपीं एकीकडे। जग आघवें आपुलेनि पवाडें। जैसे महोदधीमाजीं बुडबुडे। सिनानें दिसती ॥२४२॥
कां आकाशीं गंधर्वनगर। भूतळीं पिपीलिका बांधे घर। नाना मेरुवरी सपूर। परमाणु बैसले ॥२४३॥
विश्व आघवेंचि तयापरी। तया देवचक्रवर्तीचिया शरीरीं। अर्जुन तिये अवसरीं। देखता जाहला ॥२४४॥
ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥१४॥
तेथ एक विश्व एक आपण। ऐसें अळुमाळ होतें जें दुजेपण। तेंही आटोनि गेलें अंतःकरण। विरालें सहसा ॥२४५॥
आंतु आनंदा चेइरें जाहलें। बाहेरि गात्रांचें बळ हारपोनि गेलें। आपाद पां गुंतलें। पुलकांचलें ॥२४६॥
वार्षिये प्रथमदशे। वोहळलया शैलांचें सर्वांग जैसें। विरूढे कोमलांकुरीं तैसे। रोमांच जाहले ॥२४७॥
शिवतला चंद्रकरीं। सोमकांतु द्रावो धरी। तैसिया स्वेदकणिका शरीरीं। दाटलिया ॥२४८॥

माजीं सापडलेनि अलिकुळें। जळावरी कमळकळिका जेवीं आंदोळे। तेवीं आंतुलिया सुखोर्मीचेनि बळें। बाहेरि कांपे ॥ २४९॥
कर्पूरकर्दळीचीं गर्भपुटें। उकलतां कापुराचेनि कोंदाटें। पुलिका गळती तेवीं थेंबुटें। नेत्रौनि पडती ॥२५०॥
उदयलेनि सुधाकरें। जैसा भरलाचि समुद्र भरे। तैसा वेळोवेळां उर्मिभरें। उचंबळत असे ॥२५१॥
ऐसा सात्त्विकांही आठां भावां। परस्परें वर्ततसे हेवा। तेथ ब्रह्मानंदाची जीवा। राणीव फावली ॥२५२॥
तैसाचि तया सुखानुभवापाठीं। केला द्वैताचा सांभाळु दिठी। मग उसासौनि किरीटी। वास पाहिली ॥२५३॥
तेथ बैसला होता जिया सवा। तियाचिया कडे मस्तक खालविला देवा। जोडूनि करसंपुट बरवा। बोलतु असे ॥२५४॥
अर्जुन उवाच ।
पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान ॥ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ मृषींश्चसर्वानुरगांश्च दिव्यान ॥ १५॥
म्हणे जयजयाजी स्वामी। नवल कृपा केली तुम्हीं। जें हें विश्वरूप कीं आम्हीं। प्राकृत देखों ॥२५५॥
परि साचचि भलें केलें गोसाविया। मज परितोषु जाहला साविया। जी देखलासि जो इया। सृष्टीसी तूं आश्रयो ॥२५६॥
देवा मंदराचेनि अंगलगें। ठायीं ठायीं श्वापदांचीं दांगें। तैसीं इयें तुझ्या देहीं अनेगें। देखतसें भुवनें ॥२५७॥
अहो आकाशचिये खोळे। दिसती ग्रहगणांचीं कुळें। कां महावृक्षीं अविसाळें। पक्षिजातीचीं ॥२५८॥
तयापरी श्रीहरी। तुझिया विश्वात्मकीं इये शरीरीं। स्वर्गु देखतसें अवधारीं। सुरगणेंसीं ॥२५९॥
प्रभु महाभूतांचें पंचक। येथ देखत आहे अनेक। आणि भूतग्राम एकेक। भूतसृष्टीचें ॥२६०॥
जी सत्यलोकु तुजमाजीं आहे। देखिला चतुराननु हा नोहे ? । आणि येरीकडे जंव पाहें। तंव कैलासुही दिसे ॥२६१॥
श्रीमहादेव भवानियेशीं। तुझ्या दिसतसे एके अंशीं। आणि तूंतेंही गा हृषीकेशी। तुजमाजीं देखे ॥२६२॥
पैं कश्यपादि ऋषिकुळें। इयें तुझिया स्वरूपीं सकळें। देखतसें पाताळें। पन्नगेंशीं ॥२६३॥
किंबहुना त्रैलोक्यपती। तुझिया एकेकाचि अवयवाचिये भिंती। इयें चतुर्दशभुवनें चित्राकृती। अंकुरलीं जाणों ॥२६४॥
आणि तेथिंचे जे जे लोक। ते चित्ररचना जी अनेक। ऐसें देखतसे अलोकिक। गांभीर्य तुझें ॥२६५॥
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनंतरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूपम् ॥१६॥
त्या दिव्यचक्षूंचेनि पैसें। चहुंकडे जंव पाहात असें। तंव दोर्दंडीं कां जैसें। आकाश कोंभैलें ॥२६६॥
तैसे एकचि निरंतर। देवा देखत असें तुझे कर। करीत आघवेचि व्यापार। एकेचि काळीं ॥२६७॥
मग महाशून्याचेनि पैसारें। उघडलीं ब्रह्मकटाहाचीं भांडारें। तैसीं देखतसें अपारें। उदरें तुझीं ॥२६८॥
जी सहस्रशीर्षयाचें देखिलें। कोडीवरी होताति एकीवेळें। कीं परब्रह्मचि वदनफळें। मोडोनि आलें ॥२६९॥
तैसीं वक्त्रें जी जेउतीं तेउतीं। तुझीं देखितसे विश्वमूर्ती। आणि तयाचिपरी नेत्रपंक्ती। अनेका सैंघ ॥२७०॥
हें असो स्वर्ग पाताळ। कीं भूमी दिशा अंतराळ। हे विवक्षा ठेली सकळ। मूर्तिमय देखतसें ॥२७१॥
हें तुजवीण एकादियाकडे। परमाणूहि एतुला कोडें। अवकाशु पाहतसें परि न सांपडे। ऐसें व्यापिलें तुवां ॥२७२॥
इये नानापरी अपरिमितें। जेतुलीं साठविलीं होतीं महाभूतें। तेतुलाहि पवाडु तुवां अनंतें। कोंदला देखतसें ॥२७३॥
ऐसा कवणें ठायाहूनि तूं आलासी। एथ बैसलासि कीं उभा आहासि। आणि कवणिये मायेचिये पोटीं होतासी। तुझें ठाण केवढें ॥२७४॥
तुझें रूप वय कैसें। तुजपैलीकडे काय असे। तूं काइसयावरी आहासि ऐसें। पाहिलें मियां ॥२७५॥
तंव देखिलें जी आघवेंचि। तरि आतां तुज ठावो तूंचि। तूं कवणाचा नव्हेसि ऐसाचि। अनादि आयता ॥२७६॥
तूं उभा ना बैठा। दिघडु ना खुजटा। तुज तळीं वरी वैकुंठा। तूंचि आहासी ॥२७७॥
तूं रूपें आपणयांचि ऐसा। देवा तुझी तूंचि वयसा। पाठीं पोट परेशा। तुझें तूं गा ॥२७८॥

किंबहुना आतां। तुझें तूंचि आघवें अनंता। हें पुढत पुढती पाहतां। देखिलें मियां ॥२७९॥
परि या तुझिया रूपाआंतु। जी उणीव एक असे देखतु। जे आदि मध्य अंतु। तिन्हीं नाहीं ॥२८०॥
एऱ्हवीं गिंवसिलें आघवां ठायीं। परि सोय न लाहेचि कहीं। म्हणौनि त्रिशुद्धी हे नाहीं। तिन्ही एथ ॥२८१॥
एवं आदिमध्यांतरहिता। तूं विश्वेश्वरा अपरिमिता। देखिलासि जी तत्त्वतां। विश्वरूपा ॥२८२॥
तुज महामूर्तीचिया आंगी। उमटलिया पृथक मूर्ती अनेगी। लेइलासी वानेपरींची आंगीं। ऐसा आवडतु आहासी ॥२८३॥
नाना पृथक मूर्ती तिया द्रुमवल्ली। तुझिया स्वरूपमहाचळीं। दिव्यालंकार फुलीं फळीं। सासिन्नलिया ॥२८४॥
हो कां जे महोदधीं तूं देवा। जाहलासि तरंगमूर्ती हेलावा। कीं तूं एक वृक्षु बरवा। मूर्तिफळीं फळलासी ॥२८५॥
जी भूतीं भूतळ मांडिलें। जैसें नक्षत्रीं गगन गुढलें। तैसें मूर्तिमय भरलें। देखतसें तुझें रूप ॥२८६॥
जी एकेकीच्या अंगप्रांतीं। होय जाय हें त्रिजगती। एवढियाही तुझ्या आंगीं मूर्ती। कीं रोमा जालिया ॥२८७॥
ऐसा पवाडु मांडूनि विश्वाचा। तूं कवण पां एथ कोणाचा। हें पाहिलें तंव आमुचा। सारथी तोचि तूं ॥२८८॥
तरी मज पाहतां मुकुंदा। तूं ऐसाचि व्यापकु सर्वदा। मग भक्तानुग्रहें तया मुग्धा। रूपातें धरिसी ॥२८९॥
कैसें चहूं भुजांचें सांवळें। पाहतां वोल्हावती मन डोळे। खेंव देऊं जाइजे तरी आकळे। दोहींचि बाहीं ॥२९०॥
ऐसी मूर्ति कोडिसवाणी कृपा। करूनि होसी ना विश्वरूपा। कीं अमुचियाचि दिठी सलेपा। जें सामान्यत्वें देखिती ॥२९१॥
तरी आतां दिठीचा विटाळु गेला। तुवां सहजें दिव्यचक्षू केला। म्हणौनि यथारूपें देखवला। महिमा तुझा ॥२९२॥
परी मकरतुंडामागिलेकडे। तोचि होतासि तूं एवढें। रूप जाहलासि हें फुडें। वोळखिलें मियां ॥२९३॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥१७॥

नोहे तोचि हा शिरीं ? । मुकुट लेइलासि श्रीहरी। परी आतांचें तेज आणि थोरी। नवल कीं बहु हें ॥२९४॥
तेंचि हें वरिलियेचि हातीं। चक्र परिजितया आयती। सांवरितासि विश्वमूर्ती। ते न मोडे खूण ॥२९५॥
येरीकडे तेचि हे नोहे गदा। आणि तळिलिया दोनी भुजा निरायुधा। वागोरे सांवरावया गोविंदा। संसरिलिया ॥२९६॥
आणि तेणेंचि वेगें सहसा। माझिया मनोरथासरिसा। जाहलासि विश्वरूपा विश्वेशा। म्हणौनि जाणें ॥२९७॥
परी कायसें बा हें चोज। विस्मयो करावयाहि पाडू नाहीं मज। चित्त होऊनि जातसें निर्बुज। आश्चर्यें येणें ॥२९८॥
हें एथ आथि कां येथ नाहीं। ऐसें श्वसोंही नये कांहीं। नवल अंगप्रभेची नवाई। कैसी कोंदली सैंघ ॥२९९॥
एथ अग्नीचीही दिठी करपत। सूर्य खद्योतु तैसा हारपत। ऐसें तीव्रपण अद्भुत। तेजाचें यया ॥३००॥
हो कां महातेजाचिया महार्णवीं। बुडोनि गेली सृष्टी आघवी। कीं युगांतविजूंच्या पालवीं। झांकलें गगन ॥३०१॥
नातरी संहारतेजाचिया ज्वाळा। तोडोनि माचू बांधला अंतराळां। आतां दिव्य ज्ञानाचिया डोळां। पाहवेना ॥३०२॥
उजाळु अधिकाधिक बहुवसु। धडाडीत आहे अतिदाहसु। पडत दिव्यचक्षुंसही त्रासु। न्याहाळितां ॥३०३॥
हो कां जे महाप्रळयींचा भडाडु। होता काळाग्निरुद्राचिया ठायीं गूढु। तो तृतीयनयनाचा मढू। फुटला जैसा ॥३०४॥
तैसें पसरलेनि प्रकाशें। सैंघ पांचवनिया ज्वाळांचे वळसे। पडतां ब्रह्मकटाह कोळिसे। होत आहाती ॥३०५॥
ऐसा अद्भुत तेजोराशी। जन्मा नवल म्यां देखिलासी। नाहीं व्याप्ती आणि कांतीसी। पारु जी तुझिये ॥३०६॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥१८॥

देवा तूं अक्षर। औटाविये मात्रेसि पर। श्रुती जयाचें घर। गिंवसीत आहाती ॥३०७॥
जें आकाराचें आयतन। जें विश्वनिक्षेपैकनिधान। तें अव्यय तूं गहन। अविनाश जी ॥३०८॥
तूं धर्माचा वोलावा। अनादिसिद्ध तूं नित्य नवा। जाणें मी सदतिसावा। पुरुष विशेष तूं ॥३०९॥

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यं अनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।

पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥१९॥
तूं आदिमध्यांतरहितु। स्वसामर्थ्यें तूं अनंतु। विश्वबाहु अपरिमितु। विश्वचरण तूं ॥३१०॥
पैं चंद्र चंडांशु डोळां। दावितासि कोपप्रसाद लीळा। एकां रुससी तमाचिया डोळां। एकां पाळितोसि कृपादृष्टी ॥३११॥
जी एवंविधा तूंतें। मी देखतसें हें निरुतें। पेटलें प्रळयाग्नीचें उजितें। तैसें वक्त्र हें तुझें ॥३१२॥
वणिवेनि पेटले पर्वत। कवळूनि ज्वाळांचे उभड उठत। तैसी चाटीत दाढा दांत। जीभ लोळे ॥३१३॥
इये वदनींचिया उबा। आणि जी सर्वांगकांतीचिया प्रभा। विश्व तातलें अति क्षोभा। जात आहे ॥३१४॥
द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाऽद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन ॥२०॥
कां जे द्यौर्लोक आणि पाताळ। पृथिवी आणि अंतराळ। अथवा दशदिशा समाकुळ। दिशाचक्र ॥३१५॥
हें आघवेंचि तुंवा एकें। भरलें देखत आहे कौतुकें। परि गगनाहीसकट भयानकें। आप्लविजे जेवीं ॥३१६॥
नातरी अद्भुतरसाचिया कल्लोळीं। जाहली चवदाही भुवनांसि कडियाळीं। तैसें आश्चर्यचि मग मी आकळीं। काय एक ? ॥३१७॥
नावरे व्याप्ती हे असाधारण। न साहवे रूपाचें उग्रपण। सुख दूरी गेलें परि प्राण। विपायें धरीजे ॥३१८॥
देवा ऐसें देखोनि तूंतें। नेणों कैसें आलें भयाचें भरितें। आतां दुःखकल्लोळीं झळंबतें। तिन्हीं भुवनें ॥३१९॥
एऱ्हवीं तुज महात्मयाचें देखणें। तरि भयदुःखासि कां मेळवणें ? । परि हें सुख नव्हेचि जेणें गुणें। तें जाणवत आहे मज ॥३२०॥
जंव तुझें रूप नोहे दिठें। तंव जगासि संसारिक गोमटें। आतां देखिलासि तरी विषयविटें। उपनला त्रासु ॥३२१॥
तेवींचि तुज देखिलियासाठीं। काय सहसा तुज देवों येईल मिठी। आणि नेदीं तरी शोकसंकटीं। राहों केवीं ? ॥३२२॥
म्हणौनि मागां सरों तंव संसारु। आडवीत येतसे अनिवारु। आणि पुढां तूं तंव अनावरु। न येसि घेवों ॥३२३॥
ऐसा माझारलिया सांकडां। बापुड्या त्रैलोक्याचा होतसे हुरडा। हा ध्वनि जी फुडा। चोजवला मज ॥३२४॥
जैसा आरंबळला आगीं। तो समुद्रा ये निवावयालागीं। तंव कल्लोळपाणियाचिया तरंगीं। आगळा बिहे ॥३२५॥
तैसें या जगासि जाहलें। तूंतें देखोनि तळमळित ठेलें। यामाजीं पैल भले। ज्ञानशूरांचे मेळावे ॥३२६॥
अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः स्तुवन्ति त्वां सुतिभिः पुष्कलाभिः ॥२१॥
हे तुझेनि आंगिकें तेजें। जाळूनि सर्व कर्मांचीं बीजें। मिळत तुज आंतु सहजें। सद्भावेसीं ॥३२७॥
आणिक एक सावियाचि भयभीरु। सर्वस्वें धरूनि तुझी मोहरु। तुज प्रार्थिताति करु। जोडोनियां ॥३२८॥
देवा अविद्यार्णवीं पडिलों। जी विषयवागुरें आंतुडलों। स्वर्गसंसाराचिया सांकडलों। दोहीं भागीं ॥३२९॥
ऐसें आमुचें सोडवणें। तुजवांचोनि कीजेल कवणें ? । तुज शरण गा सर्वप्राणें। म्हणत देवा ॥३३०॥
आणि महर्षी अथवा सिद्ध। कां विद्याधरसमूह विविध। हे बोलत तुज स्वस्तिवाद। करिती स्तवन ॥३३१॥
रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोश्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥२२॥
हे रुद्रादित्यांचे मेळावे। वसु हन साध्य आघवे। अश्विनौ देव विश्वेदेव विभवें। वायुही हे जी ॥३३२॥
अवधारा पितर हन गंधर्व। पैल यक्षरक्षोगण सर्व। जी महेंद्रमुख्य देव। कां सिद्धादिक ॥३३३॥
हे आघवेचि आपुलालिया लोकीं। सोत्कंठित अवलोकीं। हे महामूर्ती दैविकी। पाहात आहाती ॥३३४॥
मग पाहात पाहात प्रतिक्षणीं। विस्मित होऊनि अंतःकरणीं। करित निजमुकटीं वोवाळणी। प्रभुजी तुज ॥३३५॥
ते जय जय घोष कलरवें। स्वर्ग गाजविताती आघवे। ठेवित ललाटावरी बरवे। करसंपुट ॥३३६॥
तिये विनयद्रुमाचिये आरवीं। सुरवाडली सात्त्विकांची माधवी। म्हणौनि करसंपुटपल्लवीं। तूं होतासि फळ ॥३३७॥

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाऽहम् ॥२३॥

जी लोचनां भाग्य उदेलें। मना सुखाचें सुयाणें पाहलें। जे अगाध तुझें देखिलें। विश्वरूप इहीं ॥३३८॥
हें लोकत्रयव्यापक रूपडें। पाहतां देवांही वचक पडे। याचें सन्मुखपण जोडें। भलतयाकडुनी ॥३३९॥
ऐसें एकचि परी विचित्रें। आणि भयानकें वक्त्रें। बहुलोचन हे सशस्त्रें। अनंतभुजा ॥३४०॥
अनंत चारु बाहु चरण। बहूदर आणि नानावर्ण। कैसें प्रतिवदनीं मातलेपण। आवेशाचें ॥३४१॥
हो कां महाकल्पाचिया अंतीं। तवकलेनि यमें जेउततेउतीं। प्रळयाग्नीचीं उजितीं। आंबुखिलीं जैसीं ॥३४२॥
नातरी संहारत्रिपुरारीचीं यंत्रें। कीं प्रळयभैरवाचीं क्षेत्रें। नाना युगांतशक्तीचीं पात्रें। भूतखिचा वोढविलीं ॥३४३॥
तैसीं जियेतियेकडे। तुझीं वक्त्रें जीं प्रचंडें। न समाती दरीमाजीं सिंव्हाडे। तैसे दशन दिसती रागीट ॥३४४॥
जैसें काळरात्रीचेनि अंधारें। उल्हासत निघतीं संहारखेंचरें। तैसिया वदनीं प्रळयरुधिरें। काटलिया दाढा ॥३४५॥
हें असो काळें अवंतिलें रण। कां सर्व संहारें मातलें मरण। तैसें अतिभिंगुळवाणेंपण। वदनीं तुझिये ॥३४६॥
हे बापुडी लोकसृष्टी। मोटकीये विपाइली दिठी। आणि दुःखकालिंदीचिया तटीं। झाड होऊनि ठेली ॥३४७॥
तुज महामृत्यूचिया सागरीं। आतां हे त्रैलोक्य जीविताची तरी। शोकदुर्वातलहरी। आंदोळत असे ॥३४८॥
एथ कोपोनि जरी वैकुंठें। ऐसें हन म्हणिपैल अवचटें। जें तुज लोकांचें काई वाटे ? । तूं ध्यानसुख हें भोगीं ॥३४९॥
तरी जी लोकांचें कीर साधारण। वायां आड सूतसे वोडण। केवीं सहसा म्हणे प्राण। माझेचि कांपती ॥३५०॥
ज्या मज संहाररुद्र वासिपे। ज्या मजभेणें मृत्यु लपे। तो मी एथें अहाळबाहळीं कांपें। ऐसें तुवां केलें ॥३५१॥
परि नवल बापा हे महामारी। इया नाम विश्वरूप जरी। हे भ्यासुरपणें हारी। भयासि आणी ॥३५२॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥२४॥

ठेलीं महाकाळेंसि हटेंतटें। तैसी कितीएकें मुखें रागिटें। इहीं वाढोनियां धाकुटें। आकाश केलें ॥३५३॥
गगनाचेंनि वाडपणें नाकळे। त्रिभुवनींचियाही वारिया न वेंटाळे। ययाचेनि वाफा आगी जळे। कैसें धडाडीत असे ॥३५४॥
तेवींचि एकसारिखें एक नोहे। एथ वर्णावर्णाचा भेदु आहे। हो कां जें प्रळयीं सावावो लाहे। वन्हं ययाचा ॥३५५॥
जयाचिये आंगींची दीप्ती येवढी। जे त्रैलोक्य कीजे राखोंडी। कीं तयाही तोंडें आणि तोंडीं। दांत दाढा ॥३५६॥
कैसा वारया धनुर्वात चढला। समुद्र कीं महापुरीं पडिला। विषाग्नि मारा प्रवर्तला। वडवानळासी ॥३५७॥
हळाहळ आगी पियालें। नवल मरण मारा प्रवर्तलें। तैसें संहारतेजा या जाहलें। वदन देखा ॥३५८॥
परी कोणें मानें विशाळ। जैसें तुटलिया अंतराळ। आकाशासि कव्हळ। पडोनि ठेलें ॥३५९॥
नातरी काखे सूनि वसुंधरी। जैं हिरण्याक्षु रिगाला विवरीं। तैं उघडले हाटकेश्वरीं। जेवीं पाताळकुहर ॥३६०॥
तैसा वक्त्रांचा विकाशु। माजीं जिव्हांचा आगळाचि आवेशु। विश्व न पुरे म्हणौनि घांसु। न भरीचि कोंडें ॥३६१॥
आणि पाताळव्याळांचिया फूत्कारीं। गरळज्वाळा लागती अंबरीं। तैसी पसरलिये वदनदरी- । माजीं हे जिव्हा ॥३६२॥
काढूनि प्रळयविजूंचीं जुंबाडें। जैसें पन्नासिलें गगनाचे हुडे। तैसे आवाळुवांवरी आंकडे। धगधगीत दाढांचे ॥३६३॥
आणि ललाटपटाचिये खोळे। कैसें भयातें भेडविताती डोळे। हो कां जे महामृत्यूचे उमाळे। कडवसां राहिले ॥३६४॥
ऐसें वाऊनि भयाचें भोज। एथ काय निपजवूं पाहातोसि काज। तें नेणों परी मज। मरणभय आलें ॥३६५॥
देवा विश्वरूप पहावयाचे डोहळे। केले तिये पावलों प्रतिफळें। बापा देखिलासि आतां डोळे। निवावे तैसे निवाले ॥३६६॥
अहो देहो पार्थिव कीर जाये। ययाची काकुळती कवणा आहे। परि आतां चैतन्य माझें विपायें। वांचे कीं न वांचे ॥३६७॥

एऱ्हवीं भयास्तव आंग कांपे। नावेक आगळें तरी मन तापे। अथवा बुद्धिही वासिपे। अभिमानु विसरिजे ॥३६८॥
परी येतुलियाही वेगळा। जो केवळ आनंदैककळा। तया अंतरात्मयाही निश्चळा। शियारी आली ॥३६९॥
बाप साक्षात्काराचा वेधु। कैसा देशधडी केला बोधु। हा गुरुशिष्यसंबंधु। विपायें नांदे ॥३७०॥
देवा तुझ्या ये दर्शनीं। जें वैकल्य उपजलें आहे अंतःकरणीं। तें सावरावयालागीं गंवसणी। धैर्याची करितसें ॥३७१॥
तंव माझेनि नामें धैर्य हारपलें। कीं तयाहीवरी विश्वरूपदर्शन जाहलें। हें असो परि मज भलें आतुडविलें। उपदेशा इया ॥३७२॥
जीव विसंवावयाचिया चाडा। सैंघ धांवाधांवी करितसे बापुडा। परि सोयही कवणेंकडां। न लभे एथ ॥३७३॥
ऐसें विश्वरूपाचिया महामारी। जीवित्व गेलें आहें चराचरीं। जी न बोलें तरि काय करीं। कैसेनि राहें ? ॥३७४॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥२५॥

पैं अखंड डोळयांपुढें। फुटलें जैसें महाभयाचें भांडें। तैशीं तुझीं मुखें वितंडें। पसरलीं देखें ॥३७५॥
असो दांत दाढांची दाटी। न झांकवे मा दों दों वोठीं। सैंघ प्रळयशस्त्रांचिया दाट कांटी। लागलिया जैशा ॥३७६॥
जैसें तक्षका विष भरलें। हो कां जे काळरात्रीं भूत संचरलें। कीं आग्नेयास्त्र परजिलें। वज्राग्नि जैसें ॥३७७॥
तैशीं तुझीं वक्त्रें प्रचंडें। वरि आवेश हा बाहेरी वोसंडे। आले मरणरसाचे लोंढे। आम्हांवरी ॥३७८॥
संहारसमयींचा चंडानिळु। आणि महाकल्पांत प्रळयानळु। या दोहीं जैं होय मेळु। तैं काय एक न जळे ? ॥३७९॥
तैसीं संहारकें तुझीं मुखें। देखोनि धीरु कां आम्हां पारुखे ? । आतां भुललों मी दिशा न देखें। आपणपें नेणें ॥३८०॥
मोटकें विश्वरूप डोळां देखिलें। आणि सुखाचें अवर्षण पडिलें। आतां जापाणीं जापाणीं आपुलें। अस्ताव्यस्त हें ॥३८१॥
ऐसें करिसी म्हणौनि जरी जाणें। तरी हे गोष्टी सांगावीं कां मी म्हणें। आतां एक वेळ वांचवी जी प्राणें। या स्वरूपप्रळयापासोनि ॥३८२॥
जरी तूं गोसावी आमुचा अनंता। तरी सुईं वोडण माझिया जीविता। सांटवीं पसारा हा मागुता। महामारीचा ॥३८३॥
आइकें सकळ देवांचिया परदेवते। तुवां चैतन्यें गा विश्व वसतें। तें विसरलासी हें उपरतें। संहारूं आदरिलें ॥३८४॥
म्हणौनि वेगीं प्रसन्न होईं देवराया। संहरीं संहरीं आपुली माया। काढीं मातें महाभया- । पासोनियां ॥३८५॥
हा ठायवरी पुढतपुढतीं। तूंतें म्हणिजे बहुवा काकुळती। ऐसा मी विश्वमूर्ती। भेडका जाहलों ॥३८६॥
जैं अमरावतीये आला धाडा। तैं म्यां एकलेनि केला उवेडा। जो मी काळाचियाही तोंडा। वासिपु न धरीं ॥३८७॥
परी तया आंतुल नव्हे हें देवा। एथ मृत्यूसही करूनि चढावा। तुवां आमुचाचि घोटू भरावा। या सकळ विश्वेंसीं ॥३८८॥
कैसा नव्हता प्रळयाचा वेळु। गोखा तूंचि मिनलासि काळु। बापुडा हा त्रिभुवनगोळु। अल्पायु जाहला ॥३८९॥
अहा भाग्या विपरीता। विघ्न उठिलें शांत करितां। कटाकटा विश्व गेलें आतां। तूं लागलासि ग्रासूं ॥३९०॥
हें नव्हे मा रोकडें। सैंघ पसरूनियां तोंडें। कवळितासि चहूंकडे। सैन्यें इयें ॥३९१॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथाऽसौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥२६॥

नोहेति ? हे कौरवकुळींचे वीर। आंधळिया धृतराष्ट्राचे कुमर। हे गेले गेले सहपरिवार। तुझिया वदनीं ॥३९२॥
आणि जे जे यांचेनि सावायें। आले देशोदेशींचे राये। तयांचें सांगावया जावों न लाहे। ऐसें सरकटित आहासी ॥३९३॥
मदमुखाचिया संघटा। घेत आहासि घटघटां। आरणीं हन थाटा। देतासि मिठी ॥३९४॥
जंत्रावरिचील मार। पदातींचे मोगर। मुखाआंत भार। हारपताति मा ॥३९५॥
कृतांताचिया जावळी। जें एकचि विश्वातें गिळी। तियें कोटीवरी सगळीं। गिळितासि शस्त्रें ॥३९६॥
चतुरंगा परिवारा। संजोडियां रहंवरां। दांत न लाविसी मा परमेश्वरा। कसा तुष्टलासि बरवा ॥३९७॥
हां गा भीष्माऐसा कवणु। सत्यशौर्यनिपुणु। तोही आणि ब्राह्मण द्रोणु। ग्रासिलासि कटकटा ॥३९८॥

अहा सहस्रकराचा कुमरु। एथ गेला गेला कर्णवीरु। आणि आमुचिया आघवयांचा केरु। फेडिला देखें ॥३९९॥
कटकटा धातया। कैसें जाहलें अनुग्रहा यया। मियां प्रार्थूनि जगा बापुडिया। आणिलें मरण ॥४००॥
मागां थोडिया बहुवा उपपत्ती। येणें सांगितलिया विभूती। तैसा नसेचि मा पुढती। बैसलों पुसों ॥४०१॥
म्हणौनि भोग्य तें त्रिशुद्धी न चुके। आणि बुद्धिही होणारासारिखी ठाके। माझ्या कपाळीं पिटावें लोकें। तें लोटेल कांह्यां ॥४०२॥
पूर्वीं अमृतही हातां आलें। परी देव नसतीचि उगले। मग काळकूट उठविलें। शेवटीं जैसें ॥४०३॥
परी तें एकबगीं थोडें। केलिया प्रतिकारामाजिवडें। आणि तिये अवसरीचें तें सांकडें। निस्तरविलें शंभू ॥४०४॥
आतां हा जळतां वारा कें वेंटाळे ? । कोणा हे विषा भरलें गगन गिळे ? । महाकाळेंसि कें खेळें ? । आंगवत असे ॥४०५॥
ऐसा अर्जुन दुःखें शिणतु। शोचित असे जिवाआंतु। परी न देखें तो प्रस्तुतु। अभिप्राय देवाचा ॥४०६॥
जे मी मारिता हे कौरव मरते। ऐसेनि वेंटाळिला होता मोहें बहुतें। तो फेडावयालागीं अनंतें। हें दाखविलें निज ॥४०७॥
अरे कोण्ही कोणातें न मारी। एथ मीचि हो सर्व संहारीं। हें विश्वरूपव्याजें हरी। प्रकटित असे ॥४०८॥
परी वायांचि व्याकुलता। ते न चोजवेचि पंडुसुता। मग अहा कंपु नव्हता। वाढवित असे ॥४०९॥

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥२७॥

तेथ म्हणे पाहा हो एके वेळे। सासिकवचेंसि दोन्ही दळें। वदनीं गेलीं आभाळें। गगनीं कां जैसीं ॥४१०॥
कां महाकल्पाचिया शेवटीं। जैं कृतांतु कोपला होय सृष्टी। तैं एकविसांही स्वर्गां मिठी। पाताळासकट दे ॥४११॥
नातरी उदासीनें दैवें। संचकाचीं वैभवें। जेथींचीं तेथ स्वभावें। विलया जाती ॥४१२॥
तैसीं सासिन्नलीं सैन्यें एकवटें। इये मुखीं जाहलीं प्रविष्टें। परी एकही तोंडौनि न सुटे। कैसें कर्म देखा ॥४१३॥
अशोकाचे अंगवसे। चघळिले कऱ्हेनि जैसे। लोक वक्त्रामाजीं तैसे। वायां गेले ॥४१४॥
परि सिसाळें मुकुटेंसीं। पडिली दाढांचे सांडसीं। पीठ होत कैसीं। दिसत आहाती ॥४१५॥
तियें रत्नें दांतांचिये सवडीं। कूट लागलें जिभेच्या बुडीं। कांहीं कांहीं आगरडीं। द्रंष्ट्रांचीं माखलीं ॥४१६॥
हो कां जे विश्वरूपें काळें। ग्रासिलीं लोकांचीं शरीरें बळें। परि जीवित्व देहींचीं सिसाळें। अवश्य कीं राखिलीं ॥४१७॥
तैसीं शरीरामाजीं चोखडीं। इयें उत्तमांगें होतीं फुडीं। म्हणौनि महाकाळाचियाही तोंडीं। परि उरलीं शेखीं ॥४१८॥
मग म्हणे हें काई। जन्मलयां आन मोहरचि नाहीं। जग आपैसेंचि वदनडोहीं। संचारताहे ॥४१९॥
यया आपेंआप आघविया सृष्टी। लागलिया आहाति वदनाच्या वाटीं। आणि हा जेथिंचिया तेथ मिठी। देतसे उगला ॥४२०॥
ब्रह्मादिक समस्त। उंचा मुखामाजीं धांवत। येर सामान्य हे भरत। ऐलीच वदनीं ॥४२१॥
आणीकही भूतजात। तें उपजलेचि ठायीं ग्रासित। परि याचिया मुखा निभ्रांत। न सुटेचि कांहीं ॥४२२॥

यथा नदीनाम् बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥२८॥

जैसे महानदीचे वोघ। वहिले ठाकिती समुद्राचें आंग। तैसें आघवाचिकडूनि जग। प्रवेशत मुखीं ॥४२३॥
आयुष्यपंथें प्राणिगणी। करोनि अहोरात्रांची मोवणी। वेगें वक्त्रामिळणीं। साधिजत आहाती ॥४२४॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥२९॥

जळतया गिरीच्या गवखा- । माजीं घापती पतंगाचिया झाका। तैसे समग्र लोक देखा। इये वदनीं पडती ॥४२५॥
परि जेतुलें येथ प्रवेशलें। तें तातलिया लोहें पाणीचि पां गिळिलें। वहवटींहि पुसिलें। नामरूप तयांचें ॥४२६॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥३०॥
आणि येतुलाही आरोगण। करितां भुके नाहीं उणेपण। कैसें दीपन असाधारण। उदयलें यया ॥४२७॥
जैसा रोगिया ज्वराहूनि उठिला। का भणगा दुकाळु पाहला। तैसा जिभांचा लळलळाटु देखिला। आवाळुवें चाटितां ॥ ४२८॥
तैसें आहाराचे नांवें कांहीं। तोंडापासूनि उरलेंचि नाहीं। कैसी समसमीत नवाई। भुकेलेपणाची ॥४२९॥
काय सागराचा घोंटु भरावा ? । कीं पर्वताचा घांसु करावा ? । ब्रह्मकटाहो घालावा। आघवाचि दाढे ॥४३०॥
दिशा सगळियाचि गिळावियां। चांदिणिया चाटूनि घ्यावियां। ऐसें वर्तत आहे साविया। लोलुप्य बा तुझें ॥४३१॥
जैसा भोगीं कामु वाढे। कां इंधनें आगीसि हाकाक चढे। तैसी खातखातांचि तोंडें। खाखांतें ठेलीं ॥४३२॥
कैसें एकचि केवढें पसरलें। त्रिभुवन जिव्हाग्रीं आहे टेकलें। जैसें कां कवीठ घातलें। वडवानळीं ॥४३३॥
ऐसीं अपार वदनें। आतां येतुलीं कैंचीं त्रिभुवनें। कां आहारु न मिळतां येणें मानें। वाढविलीं सैंघ ॥४३४॥
अगा हा लोकु बापुडा। जाहला वदनज्वाळां वरपडा। जैसी वणवेयाचिया वेढां। सांपडती मृगें ॥४३५॥
आतां तैसें यां विश्वा जाहालें। देव नव्हे हें कर्म आलें। कां जग चळचळां पांगिलें। काळजाळें ॥४३६॥
आतां इये अंगप्रभेचिये वागुरे। कोणीकडूनि निगिजैल चराचरें। हीं वक्त्रें नोहेती जोहारें। वोडवलीं जगा ॥४३७॥
आगी आपुलेनि दाहकपणें। कैसेनि पोळिजे तें नेणे। परी जया लागे तया प्राणें। सुटिकाची नाहीं ॥४३८॥
नातरी माझेनि तिखटपणें। कैसें निवटे हें शस्त्र कायि जाणें। कां आपुलियां मारा नेणें। विष जैसें ॥४३९॥
तैसी तुज कांहीं। आपुलिया उग्रपणाची सेचि नाहीं। परी ऐलीकडिले मुखीं खाई। हो सरली जगाची ॥४४०॥
अगा आत्मा तूं एकु। सकळ विश्वव्यापकु। तरी कां आम्हां अंतकु। तैसा वोडवलासी ? ॥४४१॥
तरी मियां सांडिली जीवित्वाची चाड। आणि तुवांही न धरावी भीड। मनीं आहे तें उघड। बोल पां सुखें ॥४४२॥
किती वाढविसी या उग्ररूपा। आंगींचें भगवंतपण आठवीं बापा। नाहीं तरी कृपा। मजपुरती पाही ॥४४३॥
आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामिभवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥३१॥
तरी एक वेळ वेदवेद्या। जी त्रिभुवनैक आद्या। विनवणी विश्ववंद्या। आइकें माझी ॥४४४॥
ऐसें बोलोनि वीरें। चरण नमस्कारिलें शिरें। मग म्हणें तरी सर्वेश्वरें। अवधारिजो ॥४४५॥
मियां होआवया समाधान। जी पुसिलें विश्वरूपध्यान। आणि एकेंचि काळें त्रिभुवन। गिळितुचि उठिलासी ॥४४६॥
तरी तूं कोण कां येतुलीं। इयें भ्यासुरें मुखें कां मेळविलीं। आघवियाचि करीं परिजिलीं। शस्त्रें कांह्या ॥४४७॥
जी जंव तंव रागीटपणें। वाढोनि गगना आणितोसि उणें। कां डोळे करूनि भिंगुळवाणे। भेडसावीत आहासी ॥४४८॥
एथ कृतांतेंसि देवा। कासया किजतसे हेवा। हा आपुला तुवां सांगावा। अभिप्राय मज ॥४४९॥
या बोला म्हणे अनंतु। मी कोण हें आहासी पुसतु। आणि कायिसयालागीं असे वाढतु। उग्रतेसी ॥४५०॥
श्रीभगवानुवाच ।
कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ॥ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥३२॥
तरी मी काळु गा हें फुडें। लोक संहारावयालागीं वाढें। सैंघ पसरिलीं आहातीं तोंडें। आतां ग्रासीन हें आघवें ॥४५१॥
एथ अर्जुन म्हणे कटकटा। उबगिलों मागिल्या संकटा। म्हणौनि आळविला तंव वोखटा। उवाइला हा ॥४५२॥
तेवींचि कठिण बोलें आसतुटी। अर्जुन होईल हिंपुटी। म्हणौनि सवेंचि म्हणे किरीटी। परि आन एक असे ॥४५३॥
तरी आतांचिये संहारवाहरे। तुम्हीं पांडव असा बाहिरे। तेथ जातजातां धनुर्धरें। सांवरिले प्राण ॥४५४॥
होता मरणमहामारीं गेला। तो मागुता सावधु जाहला। मग लागला बोला। चित्त देऊं ॥४५५॥

ऐसें म्हणिजत आहे देवें। अर्जुना तुम्ही माझें हें जाणावें। येर जाण मी आघवें। सरलों ग्रासूं ॥४५६॥
वज्रानळीं प्रचंडीं। जैसी घापे लोणियाची उंडी। तैसें जग हें माझिया तोंडीं। तुवां देखिलें जें ॥४५७॥
तरी तयामाझारीं कांहीं। भरंवसेनि उणें नाहीं। इये वायांचि सैन्यें पाहीं। बरवतें आहाती ॥४५८॥
ऐसा चतुरंगाचिया संपदा। करित महाकाळेंसीं स्पर्धा। वांटिवेचिया मदा। वघळले जे ॥४५९॥
हे जे मिळोनियां मेळे। कुंथती वीरवृत्तीचेनि बळें। यमावरी गजदळें। वाखाणिजताती ॥४६०॥
म्हणती सृष्टीवरी सृष्टी करूं। आण वाहूनि मृत्यूतें मारूं। आणि जगाचा भरूं। घोंटु यया ॥४६१॥
पृथ्वी सगळीचि गिळूं। आकाश वरिच्यावरी जाळूं। कां बाणवरी खिळूं। वारयातें ॥४६२॥
बोल हतियेराहूनि तिखट। दिसती अग्निपरिस दासट। मारकपणें काळकूट। महुर म्हणत ॥४६३॥
तरी हे गंधर्वनगरींचे उमाळे। जाण पोकळीचे पेंडवळें। अगा चित्रीव फळें। वीर हे देखें ॥४६४॥
हां गा मृगजळाचा पूर आला। दळ नव्हे कापडाचा साप केला। इया शृंगारूनियां खाला। मांडिलिया पैं ॥४६५॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन ॥३३॥

येर चेष्टवितें जें बळ। तें मागांचि मियां ग्रासिलें सकळ। आतां कोल्हारिचे वेताळ। तैसे निर्जीव हे आहाती ॥४६६॥
हालविती दोरी तुटली। तरी तियें खांबावरील बाहुलीं। भलतेणें लोटिलीं। उलथोनि पडती ॥४६७॥
तैसा सैन्याचा यया बगा। मोडतां वेळू न लगेल पैं गा। म्हणौनि उठीं उठीं वेगां। शाहाणा होईं ॥४६८॥
तुवां गोग्रहणाचेनि अवसरें। घातलें मोहनास्त्र एकसरें। मग विराटाचेनि महाभेडें उत्तरें। आसडूनि नागाविलें ॥४६९॥
आतां हें त्याहूनि निपटारें जहालें। निवटीं आयितें रण पडिलें। घेईं यश रिपु जिंतिले। एकलेनि अर्जुनें ॥४७०॥
आणि कोरडें यशचि नोहे। समग्र राज्यही आलें आहे। तूं निमित्तमात्रचि होयें। सव्यसाची ॥४७१॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान ॥३४॥

द्रोणाचा पाडु न करीं। भीष्माचें भय न धरीं। कैसेनि कर्णावरी। परजूं हें न म्हण ॥४७२॥
कोण उपायो जयद्रथा कीजे। हें न चिंतूं चित्त तुझें। आणिकही आथि जे जे। नावाणिगे वीर ॥४७३॥
तेही एक एक आघवें। चित्रींचे सिंहाडे मानावे। जैसे वोलेनि हातें घ्यावें। पुसोनियां ॥४७४॥
यावरी पांडवा। काइसा युद्धाचा मेळावा ?। हा आभासु गा आघवा। येर ग्रासिलें मियां ॥४७५॥
जेव्हां तुवां देखिले। हे माझिया वदनीं पडिले। तेव्हांचि यांचें आयुष्य सरलें। आतां रितीं सोपें ॥४७६॥
म्हणौनि वहिला उठीं। मियां मारिले तूं निवटीं। न रिगे शोकसंकटीं। नाथिलिया ॥४७७॥
आपणचि आडखिळा कीजे। तो कौतुकें जैसा विंधोनि पाडिजे। तैसें देखें गा तुझें। निमित्त आहे ॥४७८॥
बापा विरुद्ध जें जाहलें। तें उपजतांचि वाघें नेलें। आतां राज्येंशीं संचलें। यश तूं भोगीं ॥४७९॥
सावियाचि उतत होते दायाद। आणि बळिये जगीं दुर्मद। ते वधिले विशद। सायासु न लागतां ॥४८०॥
ऐसिया इया गोष्टी। विश्वाच्या वाक्पटीं। लिहूनि घाली किरीटी। जगामाजीं ॥४८१॥

संजय उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ॥नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥३५॥

ऐसी आघवीचि हे कथा। तया अपूर्ण मनोरथा। संजयो सांगे कुरुनाथा। ज्ञानदेवो म्हणे ॥४८२॥
मग सत्यलोकौनि गंगाजळ। सुटलिया वाजत खळाळ। तैशी वाचा विशाळ। बोलतां तया ॥४८३॥
नातरी महामेघांचे उमाळे। घडघडीत एके वेळे। कां घुमघुमिला मंदराचळें। क्षीराब्धी जैसा ॥४८४॥
तैसें गंभीरें महानादें। हें वाक्य विश्वकंदें। बोलिलें अगाधें। अनंतरूपें ॥४८५॥
तें अर्जुनें मोटकें ऐकिलें। आणि सुख कीं भय दुणावलें। हें नेणों परि कांपिन्नलें। सर्वांग तयाचें ॥४८६॥

सखोलपणें वळली मोट। आणि तैसेचि जोडले करसंपुट। वेळोवेळां ललाट। चरणीं ठेवी ॥४८७॥

तेवींचि कांहीं बोलों जाये। तंव गळा बुजालाचि ठाये। हें सुख कीं भय होये। हें विचारा तुम्हीं ॥४८८॥

परि तेव्हां देवाचेनि बोलें। अर्जुना हें ऐसें जाहलें। मियां पदांवरूनि देखिलें। श्लोकींचिया ॥४८९॥

मग तैसाचि भेणभेण। पुढती जोहारूनि चरण। मग म्हणे जी आपण। ऐसें बोलिलेती ॥४९०॥

अर्जुन उवाच ।

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ॥रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥३६॥

ना तरी अर्जुना मी काळु। आणि ग्रासिजे तो माझा खेळु। हा बोलु तुझा कीर अढळु। मानूं आम्ही ॥४९१॥

परि तुवां जी काळें। आजि स्थितीचिये वेळे। ग्रासिजे हें न मिळे। विचारासी ॥४९२॥

कैसेनि आंगींचें तारुण्य काढावें ? । कैचें नव्हे तें वार्धक्य आणावें ? । म्हणौनि करूं म्हणसी तें नव्हे। बहुतकरुनी ॥४९३॥

हां जी चौपाहारी न भरतां। कोणेही वेळे श्रीअनंता। काय माध्यान्हीं सविता। मावळतु आहे ? ॥४९४॥

पैं तुज अखंडिता काळा। तिन्ही आहाती जी वेळा। त्या तिन्ही परी सबळा। आपुलालिया समयीं ॥४९५॥

जे वेळीं हों लागे उत्पत्ती। ते वेळीं स्थिति प्रळयो हारपती। आणि स्थितिकाळीं न मिरविती। उत्पत्ति प्रळयो ॥४९६॥

पाठीं प्रळयाचिये वेळे। उत्पत्ति स्थिति मावळे। हें कायसेनही न ढळे। अनादि ऐसें ॥४९७॥

म्हणौनि आजि तंव भरें भोगें। स्थिति वर्तिजत आहे जगें। एथ ग्रसिसी तूं हें न लगे। माझ्या जीवीं ॥४९८॥

तंव संकेतें देव बोले। अगा या दोन्ही सैन्यांसीचि मरण पुरलें। तें प्रत्यक्षचि तुज दाविलें। येर यथाकाळें जाण ॥४९९॥

हा संकेतु जंव अनंता। वेळु लागला बोलतां। तंव अर्जुनें लोकु मागुता। देखिला यथास्थिति ॥५००॥

मग म्हणतसे देवा। तूं सूत्रीं विश्वलाघवा। जग आला मा आघवा। पूर्वस्थिति पुढती ॥५०१॥

परी पडिलिया दुःखसागरीं। तूं काढिसी कां जयापरी। ते कीर्ति तुझी श्रीहरी। आठवित असे ॥५०२॥

कीर्ति आठवितां वेळोवेळां। भोगितसें महासुखाचा सोहळा। तेथ हर्षामृतकल्लोळा। वरी लोळत आहें ॥५०३॥

देवा जियालेपणें जग। धरी तुझ्या ठायीं अनुराग। आणि दुष्टां तयां भंग। अधिकाधिक ॥५०४॥

पैं त्रिभुवनींचिया राक्षसां। महाभय तूं हृषीकेशा। म्हणौनि पळताती दाही दिशां। पैलीकडे ॥५०५॥

येथ सुर नर सिद्ध किन्नर। किंबहुना चराचर। ते तुज देखोनि हर्षनिर्भर। नमस्कारित असती ॥५०६॥

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।

अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥३७॥

एथ गा कवणा कारणा। राक्षस हे नारायणा। न लगतीचि चरणा। पळते जाहले ॥५०७॥

आणि हें काय तूंतें पुसावें। येतुलें आम्हांसिही जाणवे। तरी सूर्योदयीं राहावें। कैसेनि तमें ? ॥५०८॥

जी तूं प्रकाशाचा आगरु। आणि जाहला आम्हासि गोचरू। म्हणौनिया निशाचरां केरु। फिटला सहजें ॥५०९॥

हें येतुले दिवस आम्हां। कांहीं नेणवेचि श्रीरामा। आतां देखतसों महिमा। गंभीर तुझा ॥५१०॥

जेथूनि नाना सृष्टींचिया वोळी। पसरती भूतग्रामाचिया वेली। तया महद्ब्रह्मातें व्याली। दैविकी इच्छा ॥५११॥

देवो निःसीम तत्त्व सदोदितु। देवो निःसीम गुण अनंतु। देवो निःसीम साम्य सततु। नरेंद्र देवांचा ॥५१२॥

जी तूं त्रिजगतिये वोलावा। अक्षर तूं सदाशिवा। तूंचि सदसत देवा। तयाही अतीत तें तूं ॥५१३॥

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।

वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥३८॥

तूं प्रकृतिपुरुषांचिया आदी। जी महत्तत्वां तूंचि अवधी। स्वयें तूं अनादि। पुरातनु ॥५१४॥

तूं सकळ विश्वजीवन। जीवांसि तूंचि निधान। भूतभविष्याचें ज्ञान। तुझ्याचि हातीं ॥५१५॥

जी श्रुतीचियां लोचनां। स्वरूपसुख तूंचि अभिन्ना। त्रिभुवनाचिया आयतना। आयतन तूं ॥५१६॥
म्हणौनि जी परम। तूंतें म्हणिजे महाधाम। कल्पांतीं महद्ब्रह्म। तुजमाजीं रिगे ॥५१७॥
किंबहुना तुवां देवें। विश्व विस्तारिलें आहे आघवें। तरि अनंतरूपा वानावें। कवणें तूंतें ॥५१८॥
वायुर्यमोग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तुसहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥३९॥
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥४०॥
जी काय एक तूं नव्हसी। कवणे ठायीं नससी। हें असो जैसा आहासी। तैसिया नमो ॥५१९॥
वायु तूं अनंता। यम तूं नियमिता। प्राणिगणीं वसता। अग्नि तो तूं ॥५२०॥
वरुण तूं सोम। स्रष्टा तूं ब्रह्म। पितामहाचाही परम। आदि जनक तूं ॥५२१॥
आणिकही जें जें कांहीं। रूप आथि अथवा नाहीं। तया नमो तुज तैसयाही। जगन्नाथा ॥५२२॥
ऐसें सानुरागें चित्तें। नमन केलें पंडुसुतें। मग पुढती म्हणे नमस्ते। नमस्ते प्रभो ॥५२३॥
पाठीं तिये साद्यंते। न्याहाळी श्रीमूर्तीतें। आणि पुढती म्हणे नमस्ते। नमस्ते प्रभो ॥५२४॥
पाहतां पाहतां प्रांतें। समाधान पावे चित्तें। आणि पुढती म्हणे नमस्ते। नमस्ते प्रभो ॥५२५॥
इये चराचरीं जीं भूतें। सर्वत्र देखे तयांतें। आणि पुढती म्हणे नमस्ते। नमस्ते प्रभो ॥५२६॥
ऐसीं रूपें तियें अद्‌भुतें। आश्चर्यें स्फुरती अनंतें। तंव तंव नमस्ते। नमस्तेचि म्हणे ॥५२७॥
आणिक स्तुतिही नाठवे। आणि निवांतुही न बैसवे। नेणें कैसा प्रेमभावें। गाजोंचि लागे ॥५२८॥
किंबहुना इयापरी। नमन केलें सहस्रवरी। कीं पुढती म्हणे श्रीहरी। तुज सन्मुखा नमो ॥५२९॥
देवासि पाठी पोट आथि कीं नाहीं। येणें उपयोगु आम्हां काई। तरि तुज पाठिमोरेयाही। नमो स्वामी ॥५३०॥
उभा माझिये पाठीसीं। म्हणौनि पाठीमोरें म्हणावें तुम्हांसी। सन्मुख विन्मुख जगेंसीं। न घडे तुज ॥५३१॥
आतां वेगळालिया अवयवां। नेणें रूप करूं देवा। म्हणौनि नमो तुज सर्वा। सर्वात्मका ॥५३२॥
जी अनंतबळसंभ्रमा। तुज नमो अमित विक्रमा। सकळकाळीं समा। सर्वरूपा ॥५३३॥
आघविया आकाशीं जैसें। अवकाशचि होऊनि आकाश असे। तूं सर्वपणें तैसें। पातलासि सर्व ॥५३४॥
किंबहुना केवळ। सर्व हें तूंचि निखिळ। परी क्षीरार्णवीं कल्लोळ। पयाचे जैसे ॥५३५॥
म्हणौनिया देवा। तूं वेगळा नव्हसी सर्वां। हें आलें मज सद्भावा। आतां तूंचि सर्व ॥५३६॥
सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥४१॥
परि ऐसिया तूतें स्वामी। कहींच नेणों जी आम्ही। म्हणौनि सोयरे संबंधधर्मीं। राहाटलों तुजसीं ॥५३७॥
अहा थोर वाउर जाहलें। अमृतें संमार्जन म्यां केलें। वारिकें घेऊनि दिधलें। कामधेनूतें ॥५३८॥
परिसाचा खडवाचि जोडला। कीं फोडोनि आम्ही गाडोरा घातला। कल्पतरू तोडोनि केला। कूंप शेता ॥५३९॥
चिंतामणीची खाणी लागली। तेणें करें वोढाळें वोल्हांडिली। तैसी तुझी जवळिक धाडिली। सांगातीपणें ॥५४०॥
हें आजिचेंचि पाहें पां रोकडें। कवण झुंज हें केवढें। एथ परब्रह्म तूं उघडें। सारथी केलासी ॥५४१॥
यया कौरवांचिया घरा। शिष्टाई धाडिलासि दातारा। ऐसा वणिजेसाठीं जागेश्वरा। विकलासि आम्हीं ॥५४२॥
तूं योगियांचें समाधिसुख। कैसा जाणेचिना मी मूर्ख। उपरोधु जी सन्मुख। तुजसीं करूं ॥५४३॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥४२॥
तूं या विश्वाची अनादि आदी। बैससी जिये सभासदीं। तेथें सोयरीकीचिया संबंधीं। रळीं बोलों ॥५४४॥

विपायें राउळा येवों। तरि तुझेनि अंगें मानु पावों। न मानिसी तरी जावों। रुसोनि सलगी ॥५४५॥
पायां लागोनि बुझावणी। तुझ्या ठायीं शारङ्गपाणी। पाहिजे ऐशी करणी। बहु केली आम्हीं ॥५४६॥
सजणपणाचिया वाटा। तुजपुढें बैसें उफराटा। हा पाडु काय वैकुंठा ? । परि चुकलों आम्हीं ॥५४७॥
देवेंसि कोलकाठी धरूं। आखाडा झोंबीलोंबी करूं। सारी खेळतां आविष्करूं। निकरेंही भांडों ॥५४८॥
चांग तें उराउरीं मागों। देवासि कीं बुद्धि सांगों। तेवींचि म्हणों काय लागों। तुझें आम्ही ॥५४९॥
ऐसा अपराधु हा आहे। जो त्रिभुवनीं न समाये। जी नेणतांचि कीं पाये। शिवतिले तुझे ॥५५०॥
देवो बोनयाच्या अवसरीं। लोभें कीर आठवण करी। परी माझा निसुग गर्व अवधारीं। जे फुगूनचि बैसें ॥५५१॥
देवाचिया भोगायतनीं। खेळतां आशंकेना मनीं। जी रिगोनियां शयनीं। सरिसा पहुडें ॥५५२॥
' कृष्ण म्हणौनि हाकारिजे। यादवपणें तूंतें लेखिजे। आपली आण घालिजे। जातां तुज ॥५५३॥
मज एकासनीं बैसणें। कां तुझा बोलु न मानणें। हें वोतटीचेनि दाटपणें। बहुत घडलें ॥५५४॥
म्हणौनि काय काय आतां। निवेदिजेल अनंता। मी राशि आहें समस्तां। अपराधांचि ॥५५५॥
यालागीं पुढां अथवा पाठीं। जियें राहटलों बहुवें वोखटीं। तियें मायेचिया परी पोटीं। सामावीं प्रभो ॥५५६॥
जी कोण्ही एके वेळे। सरिता घेऊन येती खडुळें। तियें सामाविजेति सिंधुजळें। आन उपायो नाहीं ॥५५७॥
तैसी प्रीती कां प्रमादें। देवेंसीं मज विरुद्धें। बोलविलीं तियें मुकुंदें। उपसाहावीं जी ॥५५८॥
आणि देवाचेनि क्षमत्वें क्षमा। आधारु जाली आहे या भूतग्रामा। म्हणौनि जी पुरुषोत्तमा। विनवूं तें थोडें ॥५५९॥
तरी आतां अप्रमेया। मज शरणागता आपुलिया। क्षमा कीजो जी यया। अपराधांसि ॥५६०॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ॥४३॥

जी जाणितलें मियां साचें। महिमान आतां देवाचें। जे देवो होय चराचराचें। जन्मस्थान ॥५६१॥
हरिहरादि समस्तां। देवा तूं परम देवता। वेदांतेंही पढविता। आदिगुरु तूं ॥५६२॥
गंभीर तूं श्रीरामा। नाना भूतैकसमा। सकळगुणीं अप्रतिमा। अद्वितीया ॥५६३॥
तुजसी नाहीं सरिसें। हें प्रतिपादनचि कायसें ? । तुवां जालेनि आकाशें। सामाविलें जग ॥५६४॥
तया तुझेनि पाडें दुजें। ऐसें बोलतांचि लाजिजे। तेथ अधिकाची कीजे। गोठी केवीं ॥५६५॥
म्हणौनि त्रिभुवनीं तूं एकु। तुजसरिखा ना अधिकु। तुझा महिमा अलौकिकु। नेणिजे वानूं ॥५६६॥

तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥४४॥

ऐसें अर्जुनें म्हणितलें। मग पुढती दंडवत घातलें। तेथें सात्त्विकाचें आलें। भरतें तया ॥५६७॥
मग म्हणतसे प्रसीद प्रसीद। वाचा होतसे सद्गद। काढी जी अपराध- । समुद्रौनि मातें ॥५६८॥
तुज विश्वसुहृदातें कहीं। सोयरेपणें न मनूंचि पाहीं। तुज विईश्वेश्वराचिया ठायीं। ऐश्वर्य केलें ॥५६९॥
तूं वर्णनीय परी लोभें। मातें वर्णिसी पां सभे। तरि मियां वल्गिजे क्षोभें। अधिकाधिक ॥५७०॥
आतां ऐसिया अपराधां। मर्यादा नाहीं मुकुंदा। म्हणौनि रक्ष रक्ष प्रमादा। पासोनियां ॥५७१॥
जी हेंचि विनवावयालागीं। कैंची योग्यता माझिया आंगीं। परी अपत्य जैसें सलगी। बापेंसीं बोले ॥५७२॥
पुत्राचे अपराध। जरी जाहले अगाध। तरी पिता साहे निर्द्वंद्व। तैसें साहिजो जी ॥५७३॥
सख्याचें उद्धत। सखा साहे निवांत। तैसें तुवां समस्त। साहिजो जी ॥५७४॥
प्रियाचिया ठायीं सन्मान। प्रिय न पाहें सर्वथा जाण। तेवीं उच्छिष्ट काढिलें आपण। ते क्षमा कीजो जी ॥५७५॥
नातरी प्राणाचें सोयरें भेटे। मग जीवें भूतलीं जियें संकटें। तियें निवेदितां न वाटे। संकोचु कांहीं ॥५७६॥
कां उखितें आंगें जीवें। आपणपें दिधलें जिया मनोभावें। तिया कांतु मिनलिया न राहवें। हृदय जेवीं ॥५७७॥

तयापरी जी मियां। हें विनविलें तुमतें गोसाविया। आणि कांहीं एक म्हणावया। कारण असे ॥५७८॥
अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥४५॥
तरी देवेंसीं सलगी केली। जे विश्वरूपाची आळी घेतली। ते मायबापें पुरविली। स्नेहाळाचेनि ॥५७९॥
सुरतरूंची झाडें। आंगणीं लावावीं कोडें। देयावें कामधेनुचें पाडें। खेळावया ॥५८०॥
मियां नक्षत्रीं डाव पाडावा। चंद्र चेंडुवालागीं आणावा। हा छंदु सिद्धी नेला आघवा। माउलिये तुवां ॥५८१॥
जिया अमृतलेशालागीं सायास। तयाचा पाऊस केला चारी मास। पृथ्वी वाहून चासेचास। चिंतामणी पेरिले ॥५८२॥
ऐसा कृतकृत्य केला स्वामी। बहुवे लळा पाळिला तुम्हीं। दाविलें जें हरब्रह्मीं। नायकिजे कानीं ॥५८३॥
मा देखावयाची केउती गोठी। जयाची उपनिषदां नाहीं भेटी। ते जिव्हारींची गांठी। मजलागीं सोडिली ॥५८४॥
जी कल्पादीलागोनि। आजिची घडी धरुनी। माझीं जेतुलीं होउनी। गेलीं जन्में ॥५८५॥
तयां आघवियांचि आंतु। घरडोळी घेऊनि असें पाहतु। परि ही देखिली ऐकिली मातु। आतुडेचिना ॥५८६॥
बुद्धीचें जाणणें। कहीं न वचेचि याचेनि आंगणें। हे सादही अंतःकरणें। करवेचिना ॥५८७॥
तेथा डोळयां देखी होआवी। ही गोठीचि कायसया करावी। किंबहुना पूर्वीं। दृष्ट ना श्रुत ॥५८८॥
तें हें विश्वरूप आपुलें। तुम्हीं मज डोळां दाविलें। तरी माझें मन झालें। हृष्ट देवा ॥५८९॥
परि आतां ऐसी चाड जीवीं। जे तुजसीं गोठी करावी। जवळीक हे भोगावी। आलिंगावासी ॥५९०॥
ते याचि रूपीं करूं म्हणिजे। तरि कोणे एके मुखेंसी चावळिजे। आणि कवणा खेंव देईजे। तुज लेख नाहीं ॥५९१॥
म्हणौनि वारियासवें धावणें। न ठके गगना खेंव देणें। जळकेली खेळणें। समुद्रीं केउतें ? ॥५९२॥
यालागीं जी देवा। एथिंचें भय उपजतसे जीवा। म्हणौनि येतुला लळा पाळावा। जे पुरे हें आतां ॥५९३॥
पैं चराचर विनोदें पाहिजे। मग तेणें सुखें घरीं राहिजे। तैसें चतुर्भुज रूप तुझें। तो विसांवा आम्हां ॥५९४॥
आम्हीं योगजात अभ्यासावें। तेणें याचि अनुभवा यावें। शास्त्रांतें आलोडावें। परि सिद्धांतु तो हाचि ॥५९५॥
आम्हीं यजनें किजती सकळें। परि तियें फळावीं येणेंचि फळें। तीर्थें होतु सकळें। याचिलागीं ॥५९६॥
आणीकही कांहीं जें जें। दान पुण्य आम्हीं कीजे। तया फळीं फळ तुझें। चतुर्भुज रूप ॥५९७॥
ऐसी तेथिंची जीवा आवडी। म्हणौनि तेंचि देखावया लवडसवडी। वर्तत असे ते सांकडी। फेडीजे वेगीं ॥५९८॥
अगा जीवींचें जाणतेया। सकळ विश्ववसवितेया। प्रसन्न होईं पूजितया। देवांचिया देवा ॥५९९॥
किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥४६॥
कैसें नीलोत्पलातें रांवित। आकाशाही रंगु लावित। तेजाची वोज दावित। इंद्रनीळा ॥६००॥
जैसा परिमळ जाहला मरगजा। कां आनंदासि निघालिया भुजा। ज्याचे जानुवरी मकरध्वजा। जोडली बरव ॥६०१॥
मस्तकीं मुकुटातें ठेविलें। कीं मुकुटा मुकुट मस्तक झालें। शृंगारा लेणें लाधलें। आंगाचेनि जया ॥६०२॥
इंद्रधनुष्याचिये आडणी। माजीं मेघ गगनरंगणीं। तैसें आवरिलें शारङ्गपाणी। वैजयंतिया ॥६०३॥
आतां कवणी ते उदार गदा। असुरां देत कैवल्य पदा। कैसें चक्र हन गोविंदा। सौम्यतेजें मिरवे ॥६०४॥
किंबहुना स्वामी। तें देखावया उत्कंठित पां मी। म्हणौनि आतां तुम्हीं। तैसया होआवें ॥६०५॥
हे विश्वरूपाचे सोहळे। भोगूनि निवाले जी डोळे। आतां होताति आंधळे। कृष्णमूर्तीलागीं ॥६०६॥
तें साकार कृष्णरूपडें। वांचूनि पाहों नावडे। तें न देखतां थोडें। मानिताती हे ॥६०७॥
आम्हां भोगमोक्षाचिया ठायीं। श्रीमूर्तीवांचूनि नाहीं। म्हणौनि तैसाचि साकारु होईं। हें सांवरीं आतां ॥६०८॥
श्रीभगवानुवाच ।
मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।

तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥४७॥

या अर्जुनाचिया बोला। विश्वरूपा विस्मयो जाहला। म्हणे ऐसा नाहीं देखिला। धसाळ कोणी ॥६०९॥

कोण हे वस्तु पावला आहासी। तया लाभाचा तोषु न घेसी। मा भेणें काय नेणों बोलसी। हेकाडु ऐसा ॥६१०॥

आम्हीं सावियाचि जैं प्रसन्न होणें। तैं आंगचिवरी म्हणें देणें। वांचोनि जीव असे वेंचणें। कवणासि गा ॥६११॥

तें हें तुझिये चाडे। आजि जिवाचेंचि दळवाडें। कामऊनियां येवढें। रचिलें ध्यान ॥६१२॥

ऐसी काय नेणों तुझिये आवडी। जाहली प्रसन्नता आमुची वेडी। म्हणौनि गौप्याचीही गुढी। उभविली जगीं ॥६१३॥

तें हें अपारां अपार। स्वरूप माझें परात्पर। एथूनि ते अवतार। कृष्णादिक ॥६१४॥

हें ज्ञानतेजाचें निखिळ। विश्वात्मक केवळ। अनंत हे अढळ। आद्य सकळां ॥६१५॥

हें तुजवांचोनि अर्जुना। पूर्वीं श्रुत दृष्ट नाहीं आना। जे जोगें नव्हे साधना। म्हणौनियां ॥६१६॥

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।

एवं रूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥४८॥

याची सोय पातले। आणि वेदीं मौनचि घेतलें। याज्ञिकी माघौते आले। स्वर्गौनियां ॥६१७॥

साधकीं देखिला आयासु। म्हणौनि वाळिला योगाभ्यासु। आणि अध्ययनें सौरसु। नाहीं एथ ॥६१८॥

सीगेचीं सत्कर्में। धाविन्नलीं संभ्रमें। तिहीं बहुतेकीं श्रमें। सत्यलोकु ठाकिला ॥६१९॥

तपीं ऐश्वर्य देखिलें। आणि उग्रपण उभयांचि सांडिलें। एक तपसाधन जें ठेलें। अपारांतरें ॥६२०॥

तें हें तुवां अनायासें। विश्वरूप देखिलें जैसें। इये मनुष्यलोकीं तैसें। न फवेचि कवणा ॥६२१॥

आजि ध्यानसंपत्तीलागीं। तूंचि एकु आथिला जगीं। हें परम भाग्य आंगीं। विरंचीही नाहीं ॥६२२॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।

व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥४९॥

म्हणौनि विश्वरूपलाभें श्लाघ। एथिचें भय नेघ नेघ। हें वांचूनि अन्य चांग। न मनीं कांहीं ॥६२३॥

हां गा समुद्र अमृताचा भरला। आणि अवसांत वरपडा जाहला। मग कोणीही आथि वोसंडिला। बुडिजैल म्हणौनि ? ॥६२४॥

नातरी सोनयाचा डोंगरु। येसणा न चले हा थोरु। ऐसें म्हणौनि अव्हेरु। करणें घडे ? ॥६२५॥

दैवें चिंतामणी लेईजे। कीं हें ओझें म्हणौनि सांडिजे ? । कामधेनु दवडिजे। न पोसवे म्हणौनि ? ॥६२६॥

चंद्रमा आलिया घरा। म्हणिजे निगे करितोसि उबारा। पडिसायि पाडितोसि दिनकरा। परता सर ॥६२७॥

तैसें ऐश्वर्य हें महातेज। आजि हातां आलें आहे सहज। कीं एथ तुज गजबज। होआवी कां ? ॥६२८॥

परि नेणसीच गांवढिया। काय कोपों आतां धनंजया। आंग सांडोनि छाया। आलिंगितोसि मा ? ॥६२९॥

हें नव्हे जो मी साचें। एथ मन करूनियां काचें। प्रेम धरिसी अवगणियेचें। चतुर्भुज जें ॥६३०॥

तरि अझुनिवरी पार्था। सांडीं सांडीं हे व्यवस्था। इयेविषयीं आस्था। करिसी झणें ॥६३१॥

हें रूप जरी घोर। विकृति आणि थोर। तरी कृतनिश्चयाचें घर। हेंचि करीं ॥६३२॥

कृपण चित्तवृत्ति जैसी। रोंवोनि घालीं ठेवयापासीं। मग नुसधेनि देहेंसीं। आपण असे ॥६३३॥

कां अजातपक्षिया जवळा। जीव बैसवूनि अविसाळां। पक्षिणी अंतराळा- । माजीं जाय ॥६३४॥

नाना गाय चरे डोंगरीं। परि चित्त बांधिलें वत्सें घरीं। प्रेम एथिंचें करीं। स्थानपती ॥६३५॥

येरें वरिचिलेनि चित्तें। बाह्य सख्य सुखापुरतें। भोगिजो कां श्रीमूर्तीतें। चतुर्भुज ॥६३६॥

परि पुढतपुढती पांडवा। हा एक बोलु न विसरावा। जे इये रूपींहूनि सद्भावा। नेदावें निघों ॥६३७॥

हें कहीं नव्हतेंचि देखिलें। म्हणौनि भय जें तुज उपजलें। तें सांडीं एथ संचलें। असों दे प्रेम ॥६३८॥

आतां करूं तुजयासारखें। ऐसें म्हणितलें विश्वतोमुखें। तरि मागील रूप सुखें। न्याहाळीं पां तूं ॥६३९॥

संजय उवाच ।

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ॥आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५०॥

ऐसें वाक्य बोलतखेंवो। मागुता मनुष्य जाहला देवो। हें ना परि नवलावो। आवडीचा तिये ॥६४०॥

श्रीकृष्णचि कैवल्य उघडें। वरि सर्वस्व विश्वरूपायेवढें। हातीं दिधलें कीं नावडे। अर्जुनासि ॥६४१॥

वस्तु घेऊनि वाळिजे। जैसें रत्नासि दूषण ठेविजे। नातरी कन्या पाहूनियां म्हणिजे। मना न ये हे ॥६४२॥

तया विश्वरूपायेवढी दशा। करितां प्रीतीचा वाढू कैसा। सेल दीधलीसे उपदेशा। किरीटीसिं देवें ॥६४३॥

मोडोनि भांगाराचा रवा। लेणें घडिलें आपलिया सवा। मग नावडे जरी जीवा। तरी आटिजे पुढती ॥६४४॥

तैसें शिष्याचिये प्रीती जाहलें। कृष्णत्व होतें तें विश्वरूप केलें। तें मना नयेचि मग आणिलें। कृष्णपण मागुतें ॥६४५॥

हा ठाववरी शिष्याची निकसी। सहातें गुरु आहाती कवणे देशीं ? । परि नेणिजे आवडी कैशी। संजयो म्हणे ॥६४६॥

मग विश्वरूप व्यापुनि भोंवतें। जें दिव्य तेज प्रगटलें होतें। तेंचि सामावलें मागुतें। कृष्णरूपीं तये ॥६४७॥

जैसें त्वंपद हें आघवें। तत्पदीं सामावे। अथवा द्रुमाकारु सांठवे। बीजकणिके जेवीं ॥६४८॥

नातरी स्वप्नसंभ्रमु जैसा। गिळी चेइली जीवदशा। श्रीकृष्णें योगु हा तैसा। संहारिला तो ॥६४९॥

जैसी प्रभा हारपली बिंबीं। कीं जळदसंपत्ती नभीं। नाना भरतें सिंधुगर्भीं। रिगालें राया ॥६५०॥

हो कां जे कृष्णाकृतीचिये मोडी। होती विश्वरूपपटाची घडी। ते अर्जुनाचिये आवडी। उकलूनि दाविली ॥६५१॥

तंव परिमाणा रंगु। तेणें देखिलें साविया चांगु। तेथ ग्राहकीये नव्हेचि लागु। म्हणौनि घडी केली पुढती ॥६५२॥

तैसें वाढीचेनि बहुवसपणें। रूपें विश्व जिंतिलें जेणें। तें सौम्य कोडिसवाणें। साकार जाहलें ॥६५३॥

किंबहुना अनंतें। धरिलें धाकुटपण मागुतें। परि आश्वासिलें पार्थातें। बिहालियासी ॥६५४॥

जो स्वप्नीं स्वर्गा गेला। तो अवसांत जैसा चेइला। तैसा विस्मयो जाहला। किरीटीसी ॥६५५॥

नातरी गुरुकृपेसवें। वोसरलेया प्रपंचज्ञान आघवें। स्फुरे तत्त्व तेवीं पांडवें। श्रीमूर्ति देखिली ॥६५६॥

तया पांडवा ऐसें चित्तीं। आड विश्वरूपाची जवनिका होती। ते फिटोनि गेली परौती। हें भलें जाहलें ॥६५७॥

काय काळातें जिणोनि आला। कीं महावातु मागां सांडिला। आपुलिया बाही उतरला। सातही सिंधु ॥६५८॥

ऐसा संतोष बहु चित्तें। घेइजत असे पंडुसुतें। विश्वरूपापाठीं कृष्णातें। देखोनियां ॥६५९॥

मग सूर्याचिया अस्तमानीं। मागुती तारा उगवती गगनीं। तैसी देखों लागला अवनीं। लोकांसहित ॥६६०॥

पाहे तंव तेंचि कुरुक्षेत्र। तैसेंचि देखे दोहीं भागीं गोत्र। वीर वर्षताती शस्त्रास्त्र। संघाटवरी ॥६६१॥

तया बाणांचिया मांडवाआंतु। तैसाचि रथु देखे निवांतु। धुरे बैसला लक्ष्मीकांतु। आपण तळीं ॥६६२॥

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।

इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृउतिं गतः ॥५१॥

एवं मागील जैसें तैसें। तेणें देखिलें वीरविलासें। मग म्हणे जियालों ऐसें। जाहलें आतां ॥६६३॥

बुद्धीतें सांडोनि ज्ञान। भेणें वळघलें रान। अहंकारेंसी मन। देशोधडी जाहलें ॥६६४॥

इंद्रियें प्रवृत्ती भुललीं। वाचा प्राणा चुकली। ऐसें आपांपरी होती जाली। शरीरग्रामीं ॥६६५॥

तियें आघवींचि मागुतीं। जिवंत भेटलीं प्रकृती। आतां जिताणें श्रीमूर्ती। जाहलें मियां ॥६६६॥

ऐसें सुख जीवीं घेतलें। मग श्रीकृष्णातें म्हणितलें। मियां तुमचें रूप देखिलें। मानुष हें ॥६६७॥

हें रूप दाखवणें देवराया। कीं मज अपत्या चुकलिया। बुझावोनि तुवां माया। स्तनपान दिधलें ॥६६८॥

जी विश्वरूपाचिया सागरीं। होतों तरंग मवित वांवेवरी। तो इये निजमूर्तीच्या तीरीं। निगालों आतां ॥६६९॥

आइकें द्वारकापुरसुहाडा। मज सुकतिया जी झाडा। हे भेटी नव्हे बहुडा। मेघाचा केला ॥६७०॥

जी सावियाची तृषा फुटला। तया मज अमृतसिंधु हा भेटला। आतां जिणयाचा जाहला। भरंवसा मज ॥६७१॥
माझिया हृदयरंगणीं। होताहे हरिखलतांची लावणी। सुखेंसीं बुझावणी। जाहली मज ॥६७२॥
श्रीभगवानुवाच ।
सुदुदर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शकाङ्क्षिणः ॥५२॥
यया पार्थाचिया बोलासवें। हें काय म्हणितलें देवें। तुवां प्रेम ठेवूनि यावें। विश्वरूपीं कीं ॥६७३॥
मग इये श्रीमूर्ती। भेटावें सडिया आयती। ते शिकवण सुभद्रापती। विसरलासि मा ॥६७४॥
अगा आंधळिया अर्जुना। हाता आलिया मेरूही होय साना। ऐसा आथी मना। चुकीचा भावो ॥६७५॥
तरी विश्वात्मक रूपडें। जें दाविलें आम्ही तुजपुढें। तें शंभूही परि न जोडे। तपें करितां ॥६७६॥
आणि अष्टांगादिसंकटीं। योगी शिणताति किरीटी। परि अवसरु नाहीं भेटी। जयाचिये ॥६७७॥
तें विश्वरूप एकादे वेळ। कैसेनि देखों अळुमाळ। ऐसें स्मरतां काळ। जातसे देवां ॥६७८॥
आशेचिये अंजुळी। ठेऊनि हृदयाचिया निडळीं। चातक निराळीं। लागले जैसे ॥६७९॥
तैसे उत्कंठा निर्भर। होऊनियां सुरवर। घोकीत आठही पाहार। भेटी जयाची ॥६८०॥
परि विश्वरूपासारिखें। स्वप्नींही कोण्ही न देखे। तें प्रत्यक्ष तुवां सुखें। देखिलें हें ॥६८१॥
नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्यं एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥५३॥
पैं उपायांसि वाटा। न वाहती एथ सुभटा। साहीसहित वोहटा। वाहिला वेदीं ॥६८२॥
मज विश्वरूपाचिया मोहरा। चालावया धनुर्धरा। तपांचियाही संभारा। नव्हेचि लागु ॥६८३॥
आणि दानादि कीर कानडें। मी यज्ञींही तैसा न सांपडें। जैसेनि कां सुरवाडें। देखिला तुवां ॥६८४॥
तैसा मी एकीचि परि। आंतुडें गा अवधारीं। जरी भक्ति येऊनि वरी। चित्तातें गा ॥६८५॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥५४॥
परि तेचि भक्ति ऐसी। पर्जन्याची सुटिका जैसी। धरावांचूनि अनारिसी। गतीचि नेणें ॥६८६॥
कां सकळ जळसंपत्ती। घेऊनि समुद्रातें गिंवसिती। गंगा जैसी अनन्यगती। मिळालीचि मिळे ॥६८७॥
तैसें सर्वभावसंभारें। न धरत प्रेम एकसरें। मजमाजीं संचरे। मीचि होऊनि ॥६८८॥
आणि तेवींचि मी ऐसा। थडिये माझारीं सरिसा। क्षीराब्धि कां जैसा। क्षीराचाचि ॥६८९॥
तैसें मजलागुनि मुंगीवरी। किंबहुना चराचरीं। भजनासि कां दुसरी। परीचि नाहीं ॥६९०॥
तयाचि क्षणासवें। एवंविध मी जाणवें। जाणितला तरी स्वभावें। दृष्टही होय ॥६९१॥
मग इंधनीं अग्नि उद्दीपें। आणि इंधन हें भाष हारपे। तें अग्निचि होऊनि आरोपें। मूर्त जेवीं ॥६९२॥
कां उदय न कीजे तेजाकारें। तंव गगनचि होऊनि असे आंधारें। मग उदईलिया एकसरें। प्रकाशु होय ॥६९३॥
तैसें माझिये साक्षात्कारीं। सरे अहंकाराची वारी। अहंकारलोपीं अवधारीं। द्वैत जाय ॥६९४॥
मग मी तो हें आघवें। एक मीचि आथी स्वभावें। किंबहुना सामावे। समरसें तो ॥६९५॥
मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः ॥निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥५५॥
ॐ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगोनाम एकादशोऽध्यायः ॥११अ ॥
जो मजचि एकालागीं। कर्मे वाहातसे आंगीं। जया मीवांचोनि जगीं। गोमटें नाहीं ॥६९६॥
दृष्टादृष्ट सकळ। जयाचें मीचि केवळ। जेणें जिणयाचें फळ। मजचि नाम ठेविलें ॥६९७॥

मग भूतें हे भाष विसरला। जे दिठी मीचि आहें सूदला। म्हणौनि निर्वैर जाहला। सर्वत्र भजे ॥६९८॥

ऐसा जो भक्तु होये। तयाचें त्रिधातुक हें जैं जाये। तैं मीचि होउनि ठायें। पांडवा गा ॥६९९॥

ऐसें जगदुदरदोंदिलें। तेणें करुणारसरसाळें। संजयो म्हणे बोलिलें। श्रीकृष्णदेवें ॥७००॥

ययावरी तो पंडुकुमरु। जाहला आनंदसंपदा थोरु। आणि कृष्णचरणचतुरु। एक तो जगीं ॥७०१॥

तेणें देवाचिया दोनही मूर्ती। निकिया न्याहाळिलिया चित्तीं। तंव विश्वरूपाहूनि कृष्णाकृतीं। देखिला लाभु ॥७०२॥

परि तयाचिये जाणिवे। मानु न कीजेचि देवें। जें व्यापकाहूनि नव्हे। एकदेशी ॥७०३॥

हेंचि समर्थावयालागीं। एक दोन चांगी। उपपत्ती शारङ्गी। दाविता जाहला ॥७०४॥

तिया ऐकोनि सुभद्राकांतु। चित्तीं आहे म्हणतु। तरि होय बरवें दोन्हीं आंतु। तें पुढती पुसों ॥७०५॥

ऐसा आलोचु करूनि जीवीं। आतां पुसती वोज बरवी। आदरील ते परिसावी। पुढें कथा ॥७०६॥

प्रांजळ ओंवीप्रबंधें। गोष्टी सांगिजेल विनोदें। तें परिसा आनंदें। ज्ञानदेवो म्हणे ॥७०७॥

भरोनि सद्भावाची अंजुळी। मियां वोंवियाफुलें मोकळीं। अर्पिलीं अंघ्रियुगुलीं। विश्वरूपाच्या ॥७०८॥

इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां एकादशोऽध्यायः ॥

.. ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय १२ ..

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय बारावा ।

भक्तियोगः ।

जय जय वो शुद्धे। उदारे प्रसिद्धे। अनवरत आनंदे। वर्षतिये ॥१॥
विषयव्याळें मिठी। दिधलिया नुठी ताठी। ते तुझिये गुरुकृपादृष्टी। निर्विष होय ॥२॥
तरी कवणातें तापु पोळी। कैसेनि वो शोकु जाळी। जरी प्रसादरसकल्लोळीं। पुरें येसि तूं ॥३॥
योगसुखाचे सोहळे। सेवकां तुझेनि स्नेहाळे। सोऽहंसिद्धीचे लळे। पाळिसी तूं ॥४॥
आधारशक्तीचिया अंकीं। वाढविसी कौतुकीं। हृदयाकाशपल्लकीं। परीये देसी निजे ॥५॥
प्रत्यक्ज्योतीची वोवाळणी। करिसी मनपवनाचीं खेळणीं। आत्मसुखाची बाळलेणीं। लेवविसी ॥६॥
सतरावियेचें स्तन्य देसी। अनुहताचा हल्लरू गासी। समाधिबोधें निजविसी। बुझाऊनि ॥७॥
म्हणौनि साधकां तूं माउली। पिके सारस्वत तुझिया पाउलीं। या कारणें मी साउली। न संडीं तुझी ॥८॥
अहो सद्गुरुचिये कृपादृष्टी। तुझें कारुण्य जयातें अधिष्ठी। तो सकलविद्यांचिये सृष्टीं। धात्रा होय ॥९॥
म्हणौनि अंबे श्रीमंते। निजजनकल्पलते। आज्ञापीं मातें। ग्रंथनिरूपणीं ॥१०॥
नवरसीं भरवीं सागरु। करवीं उचित रत्नांचे आगरु। भावार्थाचे गिरिवरु। निफजवीं माये ॥११॥
साहित्यसोनियाचिया खाणी। उघडवीं देशियेचिया क्षोणीं। विवेकवल्लीची लावणी। हों देईं सैंघ ॥१२॥
संवादफळनिधानें। प्रमेयाचीं उद्यानें। लावीं म्हणे गहनें। निरंतर ॥१३॥
पाखांडाचे दरकुटे। मोडीं वाग्वाद अव्हांटे। कुतर्कांचीं दुष्टें। सावजें फेडीं ॥१४॥
श्रीकृष्णगुणीं मातें। सर्वत्र करीं वो सरतें। राणिवे बैसवी श्रोते। श्रवणाचिये ॥१५॥
ये मऱ्हाठियेचिया नगरीं। ब्रह्मविद्येचा सुकाळु करीं। घेणें देणें सुखचिवरी। हों देईं या जगा ॥१६॥
तूं आपुलेनि स्नेहपल्लवें। मातें पांघुरविशील सदैवें। तरी आतांचि हें आघवें। निर्मीन माये ॥१७॥
इये विनवणीयेसाठीं। अवलोकिलें गुरु कृपादृष्टी। म्हणे गीतार्थेंसी उठी। न बोलें बहु ॥१८॥
तेथ जी जी महाप्रसादु। म्हणौनि साविया जाहला आनन्दु। आतां निरोपीन प्रबंधु। अवधान दीजे ॥१९॥
अर्जुन उवाच ।
एवं सतत युक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥१॥
तरी सकलवीराधिराजु। जो सोमवंशीं विजयध्वजु। तो बोलता जाहला आत्मजु। पंडुनृपाचा ॥२०॥
कृष्णातें म्हणे अवधारिलें। आपण विश्वरूप मज दाविलें। तें नवल म्हणौनि बिहालें। चित्त माझें ॥२१॥
आणि इये कृष्णमूर्तीची सवे। यालागीं सोय धरिली जीवें। तंव नको म्हणोनि देवें। वारिलें मातें ॥२२॥
तरी व्यक्त आणि अव्यक्त। हें तूंचि एक निभ्रांत। भक्ती पाविजे व्यक्त। अव्यक्त योगें ॥२३॥
या दोनी जी वाटा। तूंतें पावावया वैकुंठा। व्यक्ताव्यक्त दारवंठां। रिगिजे येथ ॥२४॥
पैं जे वानी श्यातुका। तेचि वेगळिये वाला येका। म्हणौनि एकदेशिया व्यापका। सरिसा पाडू ॥२५॥
अमृताचिया सागरीं। जे लाभे सामर्थ्याची थोरी। तेचि दे अमृतलहरी। चुळीं घेतलेया ॥२६॥
हे कीर माझ्या चित्तीं। प्रतीति आथि जी निरुती। परि पुसणें योगपती। तें याचिलागीं ॥२७॥
जें देवा तुम्हीं नावेक। अंगिकारिलें व्यापक। तें साच कीं कवतिक। हें जाणावया ॥२८॥
तरी तुजलागीं कर्म। तूंचि जयांचें परम। भक्तीसी मनोधर्म। विकोनि घातला ॥२९॥
इत्यादि सर्वीं परीं। जे भक्त तूंतें श्रीहरी। बांधोनियां जिव्हारीं। उपासिती ॥३०॥

आणि जें प्रणवापैलीकडे। वैखरीयेसी जें कानडें। कायिसयाहि सांगडें। नव्हेचि जें वस्तु ॥३१॥
तें अक्षर जी अव्यक्त। निर्देश देशरहित। सोऽहंभावें उपासित। ज्ञानिये जे ॥३२॥
तयां आणि जी भक्तां। येरयेरांमाजी अनंता। कवणें योगु तत्त्वतां। जाणितला सांगा ॥३३॥
इया किरीटीचिया बोला। तो जगद्बंधु संतोषला। म्हणे हो प्रश्नु भला। जाणसी करूं ॥३४॥
श्री भगवानुवाच ।
मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥
तरी अस्तुगिरीचियां उपकंठीं। रिगालिया रविबिंबापाठीं। रश्मी जैसे किरीटी। संचरती ॥३५॥
कां वर्षाकाळीं सरिता। जैसी चढों लागें पांडुसुता। तैसी नीच नवी भजतां। श्रद्धा दिसे ॥३६॥
परी ठाकिलियाहि सागरु। जैसा मागीलही यावा अनिवारु। तिये गंगेचिये ऐसा पडिभरु। प्रेमभावा ॥३७॥
तैसें सर्वेंद्रियांसहित। मजमाजीं सूनि चित्त। जे रात्रिदिवस न म्हणत। उपासिती ॥३८॥
इयापरी जे भक्त। आपणपें मज देत। तेचि मी योगयुक्त। परम मानीं ॥३९॥
ये त्वक्षर्मनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवं ॥३॥
आणि येर तेही पांडवा। जे आरूढोनि सोऽहंभावा। झोंबती निरवयवा। अक्षरासी ॥४०॥
मनाची नखी न लगे। जेथ बुद्धीची दृष्टी न रिगे। ते इंद्रियां कीर जोगें। कायि होईल ? ॥४१॥
परी ध्यानाही कुवाडें। म्हणौनि एके ठायीं न संपडे। व्यक्तीसि माजिवडें। कवणेही नोहे ॥४२॥
जया सर्वत्र सर्वपणें। सर्वांही काळीं असणें। जें पावूनि चिंतवणें। हिंपुटी जाहलें ॥४३॥
जें होय ना नोहे। जें नाहीं ना आहे। ऐसें म्हणौनि उपाये। उपजतीचि ना ॥४४॥
जें चळे ना ढळे। सरे ना मैळे। तें आपुलेनीचि बळें। आंगविलें जिहीं ॥४५॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥४॥
पैं वैराग्यमहापावकें। जाळूनि विषयांचीं कटकें। अधपलीं तवकें। इंद्रियें धरिलीं ॥४६॥
मग संयमाची धाटी। सूनि मुरडिलीं उफराटीं। इंद्रियें कोंडिलीं कपाटीं। हृदयाचिया ॥४७॥
अपानींचिया कवाडा। लावोनि आसनमुद्रा सुहाडा। मूळबंधाचा हुडा। पन्नासिला ॥४८॥
आशेचे लाग तोडिले। अधैर्याचे कडे झाडिले। निद्रेचें शोधिलें। काळवखें ॥४९॥
वज्राग्नीचिया ज्वाळीं। करूनि सप्तधातूंची होळी। व्याधींच्या सिसाळीं। पूजिलीं यंत्रें ॥५०॥
मग कुंडलिनियेचा टेंभा। आधारीं केला उभा। तया चोजवलें प्रभा। निमथावरी ॥५१॥
नवद्वारांचिया चौचकीं। बाणूनि संयतीची आडवंकी। उघडिली खिडकी। ककारांतींची ॥५२॥
प्राणशक्तिचामुंडे। प्रहारूनि संकल्पमेंढे। मनोमहिषाचेनि मुंडें। दिधलीं बळी ॥५३॥
चंद्रसूर्यां बुझावणी। करूनि अनुहताची सुडावणी। सतरावियेचें पाणी। जिंतिलें वेगीं ॥५४॥
मग मध्यमा मध्य विवरें। तेणें कोरिवें दादरें। ठाकिलें चवरें। ब्रह्मरंध्र ॥५५॥
वरी मकारांत सोपान। ते सांडोनिया गहन। काखे सूनियां गगन। भरले ब्रह्मीं ॥५६॥
ऐसे जे समबुद्धी। गिळावया सोऽहंसिद्धी। आंगवितातीं निरवधी। योगदुर्गें ॥५७॥
आपुलिया साटोवाटीं। शून्य घेती उठाउठीं। तेही मातेंचि किरीटी। पावती गा ॥५८॥
वांचूनि योगचेनि बळें। अधिक कांहीं मिळे। ऐसें नाहीं आगळें। कष्टचि तया ॥५९॥
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।

अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥५॥
जिहीं सकळ भूतांचिया हितीं। निरालंबीं अव्यक्तीं। पसरलिया आसक्ती। भक्तीवीण ॥६०॥
तयां महेन्द्रादि पदें। करिताति वाटवधें। आणि ऋद्धिसिद्धींचीं द्वंद्वें। पाडोनि ठाती ॥६१॥
कामक्रोधांचे विलग। उठावती अनेग। आणि शून्येंसीं आंग। झुंजवावें कीं ॥६२॥
ताहानें ताहानचि पियावी। भुकेलिया भूकचि खावी। अहोरात्र वावीं। मवावा वारा ॥६३॥
उनी दिहाचें पहुडणें। निरोधाचें वेल्हावणें। झाडासि साजणें। चाळावें गा ॥६४॥
शीत वेढावें। उष्ण पांघुरावें। वृष्टीचिया असावें। घरांआंतु ॥६५॥
किंबहुना पांडवा। हा अग्निप्रवेशु नीच नवा। भातारेंवीण करावा। तो हा योगु ॥६६॥
एथ स्वामीचें काज। ना वापिकें व्याज। परी मरणेंसीं झुंज। नीच नवें ॥६७॥
ऐसें मृत्यूहूनि तीख। कां घोंटे कढत विख। डोंगर गिळितां मुख। न फाटे काई ? ॥६८॥
म्हणौनि योगाचियां वाटा। जे निगाले गा सुभटा। तयां दुःखाचाचि शेलवांटा। भागा आला ॥६९॥
पाहें पां लोहाचे चणे। जैं बोचरिया पडती खाणें। तैं पोट भरणें कीं प्राणें। शुद्धी म्हणों ॥७०॥
म्हणौनि समुद्र बाहीं। तरणे आथि केंही। कां गगनामाजीं पाईं। खोलिजतु असें ? ॥७१॥
वळघलिया रणाची थाटी। आंगीं न लागतां कांठी। सूर्याची पाउटी। कां होय गा ॥७२॥
यालागीं पांगुळा हेवा। नव्हे वायूसि पांडवा। तेवीं देहवंता जीवां। अव्यक्तीं गति ॥७३॥
ऐसाही जरी धिंवसा। बांधोनियां आकाशा। झोंबती तरी क्लेशा। पात्र होती ॥७४॥
म्हणौनि येर ते पार्था। नेणतीचि हे व्यथा। जे कां भक्तिपंथा। वोटंगले ॥७५॥
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥६॥
कर्मेंद्रियें सुखें। करिती कर्में अशेखें। जियें कां वर्णविशेखें। भागा आलीं ॥७६॥
विधीतें पाळित। निषेधातें गाळित। मज देऊनि जाळित। कर्मफळें ॥७७॥
ययापरी पाहीं। अर्जुना माझें ठाईं। संन्यासूनि नाहीं। करिती कर्में ॥७८॥
आणीकही जे जे सर्व। कायिक वाचिक मानसिक भाव। तयां मीवांचूनि धांव। आनौती नाहीं ॥७९॥
ऐसे जे मत्पर। उपासिती निरंतर। ध्यानमिषें घर। माझें झाले ॥८०॥
जयांचिये आवडी। केली मजशीं कुळवाडी। भोग मोक्ष बापुडीं। त्यजिलीं कुळें ॥८१॥
ऐसे अनन्ययोगें। विकले जीवें मनें आंगें। तयांचे कायि एक सांगें। जें सर्व मी करीं ॥८२॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥
किंबहुना धनुर्धरा। जो मातेचिया ये उदरा। तो मातेचा सोयरा। केतुला पां ॥८३॥
तेवीं मी तयां। जैसे असती तैसियां। कळिकाळ नोकोनियां। घेतला पट्टा ॥८४॥
एऱ्हवीं तरी माझियां भक्तां। आणि संसाराची चिंता। काय समर्थाची कांता। कोरान्न मागे ॥८५॥
तैसे ते माझें। कलत्र हें जाणिजे। कायिसेनिही न लजें। तयांचेनि मी ॥८६॥
जन्ममृत्यूचिया लाटीं। झळंबती इया सृष्टी। तें देखोनियां पोटीं। ऐसें जाहलें ॥८७॥
भवसिंधूचेनि माजें। कवणासि धाकु नुपजे। तेथ जरी कीं माझे। बिहिती हन ॥८८॥
म्हणौनि गा पांडवा। मूर्तीचा मेळावा। करूनि त्यांचिया गांवा। धांवतु आलों ॥८९॥
नामाचिया सहस्रवरी। नावा इया अवधारीं। सजूनियां संसारीं। तारू जाहलों ॥९०॥
सडे जे देखिले। ते ध्यानकासे लाविले। परीग्रहीं घातले। तरियावरी ॥९१॥

प्रेमाची पेटी। बांधली एकाचिया पोटीं। मग आणिले तटीं। सायुज्याचिया ॥९२॥
परी भक्तांचेनि नांवें। चतुष्पदादि आघवे। वैकुंठींचिये राणिवे। योग्य केले ॥९३॥
म्हणौनि गा भक्तां। नाहीं एकही चिंता। तयांतें समुद्धर्ता। आथि मी सदा ॥९४॥
आणि जेव्हांचि कां भक्तीं। दीधली आपुली चित्तवृत्ती। तेव्हांचि मज सूति। त्यांचिये नाटीं ॥९५॥
याकारणें गा भक्तराया। हा मंत्र तुवां धनंजया। शिकिजे जे यया। मार्गा भजिजे ॥९६॥
मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत उर्ध्वं न संशयः ॥८॥
अगा मानस हें एक। माझ्या स्वरूपीं वृत्तिक। करूनि घालीं निष्टंक। बुद्धि निश्चयेंसीं ॥९७॥
इयें दोनीं सरिसीं। मजमाजीं प्रेमेसीं। रिगालीं तरी पावसी। मातें तूं गा ॥९८॥
जे मन बुद्धि इहीं। घर केलें माझ्यां ठायीं। तरी सांगें मग काइ। मी तू ऐसें उरे ? ॥९९॥
म्हणौनि दीप पालवे। सवेंचि तेज मालवे। कां रविबिंबासवें। प्रकाशु जाय ॥१००॥
उचललेया प्राणासरिसीं। इंद्रियेंही निगती जैसीं। तैसा मनोबुद्धिपाशीं। अहंकारु ये ॥१०१॥
म्हणौनि माझिया स्वरूपीं। मनबुद्धि इयें निक्षेपीं। येतुलेनि सर्वव्यापी। मीचि होसी ॥१०२॥
यया बोला कांहीं। अनारिसें नाहीं। आपली आण पाहीं। वाहतु असें गा ॥१०३॥
अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छासुं धनन्जय ॥९॥
अथवा हें चित्त। मनबुद्धिसहित। माझ्यां हातीं अचुंबित। न शकसी देवों ॥१०४॥
तरी गा ऐसें करीं। यया आठां पाहारांमाझारीं। मोटकें निमिषभरी। देतु जाय ॥१०५॥
मग जें जें कां निमिख। देखेल माझें सुख। तेतुलें अरोचक। विषयीं घेईल ॥१०६॥
जैसा शरत्कालु रिगे। आणि सरिता वोहटूं लागे। तैसें चित्त काढेल वेगें। प्रपंचौनि ॥१०७॥
मग पुनवेहूनि जैसें। शशिबिंब दिसेंदिसें। हारपत अंवसे। नाहींचि होय ॥१०८॥
तैसें भोगाआंतूनि निगतां। चित्त मजमाजीं रिगतां। हळूहळू पंडुसुता। मीचि होईल ॥१०९॥
अगा अभ्यासयोगु म्हणिजे। तो हा एकु जाणिजे। येणें कांहीं न निपजे। ऐसें नाहीं ॥११०॥
पैं अभ्यासाचेनि बळें। एकां गति अंतराळें। व्याघ्र सर्प प्रांजळे। केले एकीं ॥१११॥
विष कीं आहारीं पडे। समुद्रीं पायवाट जोडे। एकीं वाग्ब्रह्म थोकडें। अभ्यासें केलें ॥११२॥
म्हणौनि अभ्यासासी कांहीं। सर्वथा दुष्कर नाहीं। यालागी माझ्या ठायीं। अभ्यासें मीळ ॥११३॥
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥
कां अभ्यासाही लागीं। कसु नाहीं तुझिया अंगीं। तरी आहासी जया भागीं। तैसाचि आस ॥११४॥
इंद्रियें न कोंडीं। भोगातें न तोडीं। अभिमानु न संडीं। स्वजातीचा ॥११५॥
कुळधर्मु चाळीं। विधिनिषेध पाळीं। मग सुखें तुज सरळी। दिधली आहे ॥११६॥
परी मनें वाचा देहें। जैसा जो व्यापारु होये। तो मी करीतु आहें। ऐसें न म्हणें ॥११७॥
करणें कां न करणें। हें आघवें तोचि जाणे। विश्व चळतसे जेणें। परमात्मेनि ॥११८॥
उणयापुरेयाचें कांहीं। उरों नेदी आपुलिया ठायीं। स्वजाती करूनि घेईं। जीवित्व हें ॥११९॥
माळियें जेउतें नेलें। तेउतें निवांतचि गेलें। तया पाणिया ऐसें केलें। होआवें गा ॥१२०॥
म्हणौनि प्रवृत्ति आणि निवृत्ती। इयें वोझीं नेघे मती। अखंड चित्तवृत्ती। माझ्या ठायीं ॥१२१॥
एऱ्हवीं तरी सुभटा। उजू कां अव्हाटां। रथु काई खटपटा। करितु असे ? ॥१२२॥

आणि जें जें कर्म निपजे। तें थोडें बहु न म्हणिजे। निवांतचि अर्पिजे। माझ्यां ठायीं ॥१२३॥
ऐसिया मद्भावना। तनुत्यागीं अर्जुना। तूं सायुज्य सदना। माझिया येसी ॥१२४॥
अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान ॥११॥
ना तरी हेंही तूज। नेदवे कर्म मज। तरी तूं गा बुझ। पंडुकुमरा ॥१२५॥
बुद्धीचिये पाठीं पोटीं। कर्माआदि कां शेवटीं। मातें बांधणें किरीटी। दुवाड जरी ॥१२६॥
तरी हेंही असो। सांडीं माझा अतिसो। परि संयतिसीं वसो। बुद्धि तुझी ॥१२७॥
आणि जेणें जेणें वेळें। घडती कर्में सकळें। तयांचीं तियें फळें। त्यजितु जाय ॥१२८॥
वृक्ष कां वेली। लोटती फळें आलीं। तैसीं सांडीं निपजलीं। कर्में सिद्धें ॥१२९॥
परि मातें मनीं धरावें। कां मजौद्देशें करावें। हें कांहीं नको आघवें। जऊँ दे शून्यीं ॥१३०॥
खडकीं जैसें वर्षलें। कां आगीमाजीं पेरिलें। कर्म मानी देखिलें। स्वप्न जैसें ॥१३१॥
अगा आत्मजेच्या विषीं। जीवु जैसा निरभिलाषी। तैसा कर्मीं अशेषीं। निष्कामु होईं ॥१३२॥
वन्हीची ज्वाळा जैसी। वायां जाय आकाशीं। क्रिया जिरों दे तैसी। शून्यामाजी ॥१३३॥
अर्जुना हा फलत्यागु। आवडे कीर असलगु। परी योगामाजीं योगु। धुरेचा हा ॥१३४॥
येणें फलत्यागें सांडे। तें तें कर्म न विरूढे। एकचि वेळे वेळुझाडें। वांझें जैसीं ॥१३५॥
तैसें येणेंचि शरीरें। शरीरा येणें सरे। किंबहुना येरझारे। चिरा पडे ॥१३६॥
पैं अभ्यासाचिया पाउटीं। ठाकिजे ज्ञान किरीटी। ज्ञानें येइजे भेटी। ध्यानाचिये ॥१३७॥
मग ध्यानासि खेंव। देती आघवेचि भाव। तेव्हां कर्मजात सर्व। दूरी ठाके ॥१३८॥
कर्म जेथ दुरावे। तेथ फलत्यागु संभवे। त्यागास्तव आंगवे। शांति सगळी ॥१३९॥
म्हणौनि यावया शांति। हाचि अनुक्रमु सुभद्रापती। म्हणौनि अभ्यासुचि प्रस्तुतीं। करणें एथ ॥१४०॥
श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात् कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिनिरन्तरम् ॥१२॥
अभ्यासाहूनि गहन। पार्था मग ज्ञान। ज्ञानापासोनि ध्यान। विशेषिजे ॥१४१॥
मग कर्मफलत्यागु। तो ध्यानापासोनि चांगु। त्यागाहूनि भोगु। शांतिसुखाचा ॥१४२॥
ऐसिया या वाटा। इहींचि पेणा सुभटा। शांतीचा माजिवटा। ठाकिला जेणें ॥१४३॥
अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥१३॥
जो सर्व भूतांच्या ठायीं। द्वेषांतें नेणेंचि कहीं। आपपरु नाहीं। चैतन्या जैसा ॥१४४॥
उत्तमातें धरिजे। अधमातें अव्हेरिजे। हें काहींचि नेणिजे। वसुधा जेवीं ॥१४५॥
कां रायाचें देह चाळूं। रंकातें परौतें गाळूं। हें न म्ल्हेचि कृपाळू। प्राणु पैं गा ॥१४६॥
गाईची तृषा हरूं। कां व्याघ्रा विष होऊनि मारूं। ऐसें नेणेंचि गा करूं। तोय जैसें ॥१४७॥
तैसी आघवियांचि भूतमात्रीं। एकपणें जया मैत्री। कृपेशीं धात्री। आपणचि जो ॥१४८॥
आणि मी हे भाष नेणें। माझें काहींचि न म्हणे। सुख दुःख जाणणें। नाहीं जया ॥१४९॥
तेवींचि क्षमेलागीं। पृथ्वीसि पवाडु आंगीं। संतोषा उत्संगीं। दिधलें घर ॥१५०॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥
वार्षियेवीण सागरू। जैसा जळें नित्य निर्भरु। तैसा निरुपचारु। संतोषी जो ॥१५१॥

वाहूनि आपुली आण। धरी जो अंतःकरण। निश्चया साचपण। जयाचेनि ॥१५२॥
जीवु परमात्मा दोन्ही। बैसऊनि ऐक्यासनीं। जयाचिया हृदयभुवनीं। विराजती ॥१५३॥
ऐसा योगसमृद्धि। होऊनि जो निरवधि। अर्पी मनोबुद्धी। माझ्या ठायीं ॥१५४॥
आंतु बाहेरि योगु। निर्वाळलेयाहि चांगु। तरी माझा अनुरागु। सप्रेम जया ॥१५५॥
अर्जुना गा तो भक्तु। तोचि योगी तोचि मुक्तु। तो वल्लभा मी कांतु। ऐसा पढिये ॥१५६॥
हें ना तो आवडे। मज जीवाचेनि पाडें। हेंही एथ थोकडें। रूप करणें ॥१५७॥
तरी पढियंतयाची काहाणी। हे भुलीची भारणी। इयें तंव न बोलणीं। परी बोलवी श्रद्धा ॥१५८॥
म्हणौनि गा आम्हां। वेगां आली उपमा। एऱ्हवीं काय प्रेमा। अनुवादु असे ? ॥१५९॥
आतां असो हें किरीटी। पैं प्रियाचिया गोष्टी। दुणा थांव उठी। आवडी गा ॥१६०॥
तयाही वरी विपायें। प्रेमळु संवादिया होये। तिये गोडीसी आहे। कांटाळें मग ? ॥१६१॥
म्हणौनि गा पंडुसुता। तूंचि प्रियु आणि तूंचि श्रोता। वरी प्रियाची वार्ता। प्रसंगें आली ॥१६२॥
तरी आतां बोलों। भलें या सुखा मीनलों। ऐसें म्हणतखेंवीं डोलों। लागला देवो ॥१६३॥
मग म्हणे जाण। तया भक्तांचे लक्षण। जया मी अंतःकरण। बैसों घालीं ॥१६४॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

तरी सिंधूचेनि माजें। जळचरां भय नुपजे। आणि जळचरीं नुबगिजे। समुद्रु जैसा ॥१६५॥
तेवीं उन्मत्तें जगें। जयासि खंती न लगे। आणि जयाचेनि आंगें। न शिणे लोकु ॥१६६॥
किंबहुना पांडवा। शरीर जैसें अवयवां। तैसा नुबगे जीवां। जीवपणें जो ॥१६७॥
जगचि देह जाहलें। म्हणौनि प्रियाप्रिय गेलें। हर्षामर्ष ठेले। दुजेनविण ॥१६८॥
ऐसा द्वंद्वनिर्मुक्तु। भयोद्वेगरहितु। याहीवरी भक्तु। माझ्यां ठायीं ॥१६९॥
तरी तयाचा गा मज मोहो। काय सांगों तो पढियावो। हें असे जीवें जीवो। माझेनि तो ॥१७०॥
जो निजानंदें धाला। परिणामु आयुष्या आला। पूर्णते जाहला। वल्लभु जो ॥१७१॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

जयाचिया ठायीं पांडवा। अपेक्षे नाहीं रिगावा। सुखासि चढावा। जयाचें असणें ॥१७२॥
मोक्ष देऊनि उदार। काशी होय कीर। परी वेचावें लागें शरीर। तिये गांवीं ॥१७३॥
हिमवंतु दोष खाये। परी जीविताची हानि होये। तैसें शुचित्व नोहे। सज्जनाचें ॥१७४॥
शुचित्वें शुचि गांग होये। आणि पापतापही जाये। परी तेथें आहे। बुडणें एक ॥१७५॥
खोलिये पारु नेणिजे। तरी भक्तीं न बुडिजे। रोकडाचि लाहिजे। न मरतां मोक्षु ॥१७६॥
संताचेनि अंगलगें। पापातें जिणणें गंगे। तेणें संतसंगें। शुचित्व कैसें ॥१७७॥
म्हणौनि असो जो ऐसा। शुचित्वें तीर्थां कुवासा। जेणें उल्लंघविलें दिशा। मनोमळ ॥१७८॥
आंतु बाहेरी चोखाळु। सूर्य जैसा निर्मळु। आणि तत्त्वार्थींचा पायाळु। देखणा जो ॥१७९॥
व्यापक आणि उदास। जैसें कां आकाश। तैसें जयाचें मानस। सर्वत्र गा ॥१८०॥
संसारव्यथे फिटला। जो नैराश्यें विनटला। व्याधाहातोनि सुटला। विहंगु जैसा ॥१८१॥
तैसा सतत जो सुखें। कोणीही टवंच न देखे। नेणिजे गतायुषें। लज्जा जेवीं ॥१८२॥
आणि कर्मारंभालागीं। जया अहंकृती नाही आंगीं। जैसें निरिंधन आगी। विझोनि जाय ॥१८३॥
तैसा उपशमुचि भागा। जयासि आला पैं गा। जो मोक्षाचिया आंगा। लिहिला असे ॥१८४॥

अर्जुना हा ठावोवरी। जो सोऽहंभावो सरोभरीं। द्वैताच्या पैलतीरीं। निगों सरला ॥१८५॥
कीं भक्तिसुखालागीं। आपणपेंचि दोही भागीं। वांटूनियां आंगीं। सेवकै बाणी ॥१८६॥
येरा नाम मी ठेवी। मग भजती वोज बरवी। न भजतया दावी। योगिया जो ॥१८७॥
तयाचे आम्हां व्यसन। आमुचें तो निजध्यान। किंबहुना समाधान। तो मिळे तैं ॥१८८॥
तयालागीं मज रूपा येणें। तयाचेनि मज येथें असणें। तया लोण कीजे जीवें प्राणें। ऐसा पढिये ॥१८९॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥
जो आत्मलाभासारिखें। गोमटें कांहींचि न देखे। म्हणौनि भोगविशेखें। हरिखेजेना ॥१९०॥
आपणचि विश्व जाहला। तरी भेदभावो सहजचि गेला। म्हणौनि द्वेषु ठेला। जया पुरुषा ॥१९१॥
पैं आपुलें जें साचें। तें कल्पांतींहीं न वचे। हें जाणोनि गताचें। न शोची जो ॥१९२॥
आणि जयापरौतें कांहीं नाहीं। तें आपणपेंचि आपुल्या ठायीं। जाहला यालागीं जो कांहीं। आकांक्षी ना ॥१९३॥
वोखटें कां गोमटें। हें काहींचि तया नुमटे। रात्रिदिवस न घटे। सूर्यासि जेवीं ॥१९४॥
ऐसा बोधुचि केवळु। जो होवोनि असे निखळु। त्याहीवरी भजनशीळु। माझ्या ठायीं ॥१९५॥
तरी तया ऐसें दुसरें। आम्हां पढियंतें सोयरें। नाहीं गा साचोकारें। तुझी आण ॥१९६॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथामानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१८॥
पार्था जयाचिया ठायीं। वैषम्याची वार्ता नाहीं। रिपुमित्रां दोहीं। सरिसा पाडु ॥१९७॥
कां घरींचियां उजियेडु करावा। पारखियां आंधारु पाडावा। हें नेणेचि गा पांडवा। दीपु जैसा ॥१९८॥
जो खांडावया घावो घाली। कां लावणी जयानें केली। दोघां एकचि साउली। वृक्षु दे जैसा ॥१९९॥
नातरी इक्षुदंडु। पाळितया गोडु। गाळितया कडु। नोहेंचि जेवीं ॥२००॥
अरिमित्रीं तैसा। अर्जुना जया भावो ऐसा। मानापमानीं सरिसा। होतु जाये ॥२०१॥
तिहीं ऋतूं समान। जैसें कां गगन। तैसा एकचि मान। शीतोष्णीं जया ॥२०२॥
दक्षिण उत्तर मारुता। मेरु जैसा पंडुसुता। तैसा सुखदुःखप्राप्तां। मध्यस्थु जो ॥२०३॥
माधुर्यें चंद्रिका। सरिसी राया रंका। तैसा जो सकळिकां। भूतां समु ॥२०४॥
आघवियां जगा एक। सेव्य जैसें उदक। तैसें जयातें तिन्ही लोक। आकांक्षिती ॥२०५॥
जो सबाह्यसंग। सांडोनिया लाग। एकाकीं असे आंग। आंगीं सूनी ॥२०६॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥
जो निंदेतें नेघे। स्तुति न श्लाघे। आकाशा न लगे। लेपु जैसा ॥२०७॥
तैसें निंदे आणि स्तुति। मानु करूनि एके पांती। विचरे प्राणवृत्ती। जनीं वनीं ॥२०८॥
साच लटिकें दोन्ही। बोलोनि न बोले जाहला मौनी। जो भोगितां उन्मनी। आरायेना ॥२०९॥
जो यथालाभें न तोखे। अलाभें न पारुखे। पाउसेवीण न सुके। समुद्र जैसा ॥२१०॥
आणि वायूसि एके ठायीं। बिढार जैसें नाहीं। तैसा न धरीच कहीं। आश्रयो जो ॥२११॥
आघवाची आकाशस्थिति। जेवीं वायूसि नित्य वसती। तेवीं जगचि विश्रांती- . स्थान जया ॥२१२॥
हें विश्वचि माझें घर। ऐसी मती जयाची स्थिर। किंबहुना चराचर। आपण जाहला ॥२१३॥
मग याहीवरी पार्था। माझ्या भजनीं आस्था। तरी तयातें मी माथां। मुकुट करीं ॥२१४॥
उत्तमासि मस्तक। खालविजे हें काय कौतुक। परी मानु करिती तिन्ही लोक। पायवणियां ॥२१५॥

तरी श्रद्धावस्तूसी आदरु। करितां जाणिजे प्रकारु। जरी होय श्रीगुरु। सदाशिवु ॥२१६॥
परी हे असो आतां। महेशातें वानितां। आत्मस्तुति होतां। संचारु असे ॥२१७॥
ययालागीं हें नोहे। म्हणितलें रमानाहें। अर्जुना मी वाहें। शिरीं तयातें ॥२१८॥
जे पुरुषार्थसिद्धि चौथी। घेऊनि आपुलिया हातीं। रिगाला भक्तिपंथीं। जगा देतु ॥२१९॥
कैवल्याचा अधिकारी। मोक्षाची सोडी बांधी करी। कीं जळाचिये परी। तळवटु घे ॥२२०॥
म्हणौनि गा नमस्कारूं। तयातें आम्ही माथां मुगुट करूं। तयाची टांच धरूं। हृदयीं आम्हीं ॥२२१॥
तयाचिया गुणांचीं लेणीं। लेववूं अपुलिये वाणी। तयाची कीर्ति श्रवणीं। आम्हीं लेवूं ॥२२२॥
तो पहावा हे डोहळे। म्हणौनि अचक्षूसी मज डोळे। हातींचेनि लीलाकमळें। पुजूं तयातें ॥२२३॥
दोंवरी दोनी। भुजा आलों घेउनि। आलिंगावयालागुनी। तयाचें आंग ॥२२४॥
तया संगाचेनि सुरवाडें। मज विदेहा देह धरणें घडे। किंबहुना आवडे। निरुपमु ॥२२५॥
तेणेंसीं आम्हां मैत्र। एथ कायसें विचित्र ? । परी तयाचें चरित्र। ऐकती जे ॥२२६॥
तेही प्राणापरौते। आवडती हें निरुतें। जे भक्तचरित्रातें। प्रशंसिती ॥२२७॥
जो हा अर्जुना साद्यंत। सांगितला प्रस्तुत। भक्तियोगु समस्त- । योगरूप ॥२२८॥
तया मी प्रीति करी। कां मनीं शिरसा धरीं। येवढी थोरी। जया स्थितीये ॥२२९॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव प्रियाः ॥२०॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२अ ॥

ते हे गोष्टी रम्य। अमृतधारा धर्म्य। करिती प्रतीतिगम्य। आइकोनि जे ॥२३०॥
तेसीचि श्रद्धेचेनि आदरें। जयांचे ठायीं विस्तरे। जीवीं जयां थारे। जे अनुष्ठिती ॥२३१॥
परी निरूपली जैसी। तैसीच स्थिति मानसीं। मग सुक्षेत्रीं जैसी। पेरणी केली ॥२३२॥
परी मातें परम करूनि। इयें अर्थीं प्रेम धरूनि। हेंचि सर्वस्व मानूनि। घेती जे पैं ॥२३३॥
पार्था गा जगीं। तेचि भक्त तेचि योगी। उत्कंठा तयांलागीं। अखंड मज ॥२३४॥
तें तीर्थ तें क्षेत्र। जगीं तेंचि पवित्र। भक्ति कथेसि मैत्र। जयां पुरुषां ॥२३५॥
आम्हीं तयांचें करूं ध्यान। ते आमुचें देवतार्चन। ते वांचूनि आन। गोमटें नाहीं ॥२३६॥
तयांचें आम्हां व्यसन। ते आमुचें निधिनिधान। किंबहुना समाधान। ते मिळती तैं ॥२३७॥
पैं प्रेमळाची वार्ता। जे अनुवादती पंडुसुता। ते मानूं परमदेवता। आपुली आम्ही ॥२३८॥
ऐसे निजजनानंदें। तेणें जगदादिकंदें। बोलिलें मुकुंदें। संजयो म्हणे ॥२३९॥
राया जो निर्मळु। निष्कलंक लोककृपाळु। शरणागतां प्रतिपाळु। शरण्यु जो ॥२४०॥
पैं सुरसहायशीळु। लोकलालनलीळु। प्रणतप्रतिपाळु। हा खेळु जयाचा ॥२४१॥
जो धर्मकीर्तिधवलु। आगाध दातृत्वें सरळु। अतुळबळें प्रबळु। बळिबंधनु ॥२४२॥
जो भक्तजनवत्सळु। प्रेमळजन प्रांजळु। सत्यसेतु सकळु। कलानिधी ॥२४३॥
तो श्रीकृष्ण वैकुंठींचा। चक्रवर्ती निजांचा। सांगे येरु दैवाचा। आइकतु असे ॥२४४॥
आतां ययावरी। निरूपिती परी। संजयो म्हणे अवधारीं। धृतराष्ट्रातें ॥२४५॥
तेचि रसाळ कथा। मऱ्हाठिया प्रतिपथा। आणिजेल आतां। आवधारिजो ॥२४६॥
ज्ञानदेव म्हणे तुम्ही। संत वोळगावेति आम्ही। हें पढविलों जी स्वामी। निवृत्तिदेवीं ॥२४७॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां द्वादशोऽध्यायः ॥

॥ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय १३ ॥

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय तेरावा ।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगः ।

आत्मरूप गणेशु केलिया स्मरण। सकळ विद्यांचें अधिकरण। तेचि वंदूं श्रीचरण। श्रीगुरूंचे ॥१॥

जयांचेनि आठवें। शब्दसृष्टि आंगवे। सारस्वत आघवें। जिव्हेसि ये ॥२॥

वक्तृत्वा गोडपणें। अमृतातें पारुखें म्हणे। रस होती वोळंगणें। अक्षरांसी ॥३॥

भावाचें अवतरण। अवतरविती खूण। हाता चढे संपूर्ण। तत्त्वभेद ॥४॥

श्रीगुरूंचे पाय। जैं हृदय गिंवसूनि ठाय। तैं येवढें भाग्य होय। उन्मेखासी ॥५॥

ते नमस्कारूनि आतां। जो पितामहाचा पिता। लक्ष्मीयेचा भर्ता। ऐसें म्हणे ॥६॥

श्रीभगवानुवाच ।

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।

एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥१॥

तरी पार्था परिसिजे। देह हें क्षेत्र म्हणिजे। जो हें जाणे तो बोलिजे। क्षेत्रज्ञु एथें ॥७॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥२॥

तरि क्षेत्रज्ञु जो एथें। तो मीचि जाण निरुतें। जो सर्व क्षेत्रांतें। संगोपोनि असे ॥८॥

क्षेत्र आणि क्षेत्रज्ञातें। जाणणें जें निरुतें। ज्ञान ऐसें तयातें। मानूं आम्ही ॥९॥

तत् क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ।

स च यो यत्प्रभावश्च तत् समासेन मे श्रुणु ॥३॥

तरि क्षेत्र येणें नावें। हें शरीर जेणें भावें। म्हणितलें तें आघवें। सांगों अतां ॥१०॥

हें क्षेत्र का म्हणिजे। कैसें कें उपजे। कवणाकवणीं वाढविजे। विकारीं एथ ॥११॥

हें औट हात मोटकें। कीं केवढें पां केतुकें। बरड कीं पिके। कोणाचें हें ॥१२॥

इत्यादि सर्व। जे जे याचे भाव। ते बोलिजती सावेव। अवधान देईं ॥१३॥

पैं याचि स्थळाकारणें। श्रुति सदा बोबाणे। तर्कु येणेंचि ठिकाणें। तोंडाळु केला ॥१४॥

चाळिता हेचि बोली। दर्शनें शेवटा आलीं। तेवींचि नाहीं बुझविली। अझुनि द्वंद्वें ॥१५॥

शास्त्रांचिये सोयरिके। विचळिजे येणेंचि एकें। याचेनि एकवंकें। जगासि वादु ॥१६/।

तोंडेसीं तोंडा न पडे। बोलेंसीं बोला न घडे। इया युक्ती बडबडे। त्राय जाहली ॥१७॥

नेणों कोणाचें हें स्थळ। परि कैसें अभिलाषाचें बळ। जेघरोघरीं कपाळ। पिटवीत असे ॥१८॥

नास्तिका द्यावया तोंड। वेदांचें गाढें बंड। दे देखोनि पाखांड। आनचि वाजे ॥१९॥

म्हणे तुम्ही निर्मूळ। लटिकें हें वाग्जाळ। ना म्हणसी तरी पोफळ। घातलें आहे ॥२०॥

पाखांडाचे कडे। नागवीं लुंचिती मुंडे। नियोजिली वितंडें। ताळासि येती ॥२१॥

म्त्युबळाचेनि माजें। हें जाईल वीण काजें। तें देखोनियां व्याजें। निघाले योगी ॥२२॥

म्त्यूनि आधाधिले। तिहीं निरंजन सेविलें। यमदमांचे केले। मेळावे पुरे ॥२३॥

येणेंचि क्षेत्राभिमानें। राज्य त्यजिलें ईशानें। गुंति जाणोनि स्मशानें। वासु केला ॥२४॥

ऐसिया पैजा महेशा। पांघुरणें दाही दिशा। लांचकरू म्हणोनि कोळसा। कामु केला ॥२५॥

पैं सत्यलोकनाथा। वदनें आलीं बळार्था। तरी तो सर्वथा। जाणेचिना ॥२६॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥४॥

एक म्हणती हें स्थळ। जीवाचेंचि समूळ। मग प्राण हें कूळ। तयाचें एथ ॥२७॥
जे प्राणाचे घरीं। अंगें राबती भाऊ चारी। आणि मना ऐसा आवरी। कुळवाडीकरु ॥२८॥
तयातें इंद्रियबैलांची पेटी। न म्हणे अंवसीं पाहाटीं। विषयक्षेत्रीं आटी। काढी भली ॥२९॥
मग विधीची वाफ चुकवी। आणि अन्यायाचें बीज वाफवी। कुकर्माचा करवी। राबु जरी ॥३०॥
तरी तयाचिसारिखें। असंभड पाप पिके। मग जन्मकोटी दुःखें। भोगी जीवु ॥३१॥
नातरी विधीचिये वाफे। सत्क्रिया बीज आरोपे। तरी जन्मशताचीं मापें। सुखचि मवीजे ॥३२॥
तंव आणिक म्हणती हें नव्हे। हें जिवाचेंचि न म्हणावें। आमुतें पुसा आघवें। क्षेत्राचें या ॥३३॥
अहो जीवु एथ उखिता। वस्तीकरु वाटे जातां। आणि प्राणु हा बलौता। म्हणौनि जागे ॥३४॥
अनादि जे प्रकृती। सांख्य जियेतें गाती। क्षेत्र हे वृत्ती। तियेची जाणा ॥३५॥
आणि इयेतेंचि आघवा। आथी घरमेळावा। म्हणौनि ते वाहिवा। घरीं वाहे ॥३६॥
वाह्याचिये रहाटी। जे कां मुद्दल तिघे इये सृष्टीं। ते इयेच्याचि पोटीं। जहाले गुण ॥३७॥
रजोगुण पेरी। तेतुलें सत्त्व सोंकरी। मग एकलें तम करी। संवगणी ॥३८॥
रचूनि महत्तत्त्वाचें खळें। मळी एके काळुगेनि पोळें। तेथ अव्यक्ताची मिळे। सांज भली ॥३९॥
तंव एकीं मतिवंतीं। या बोलाचिया खंतीं। म्हणितलें या ज्ञप्ती। अर्वाचीना ॥४०॥
हां हो परतत्त्वाआंतु। कें प्रकृतीची मातु। हा क्षेत्र वृत्तांतु। उगेंचि आइका ॥४१॥
शून्यसेजेशालिये। सुलीनतेचिये तुळिये। निद्रा केली होती बळियें। संकल्पें येणें ॥४२॥
तो अवसांत चेइला। उद्यमीं सदैव भला। म्हणौनि ठेवा जोडला। इच्छावशें ॥४३॥
निरालंबींची वाडी। होती त्रिभुवनायेवढी। हे तयाचिये जोडी। रूपा आली ॥४४॥
मग महाभूतांचें एकवाट। सैरा वेंटाळूनि भाट। भूतग्रामांचे आघाट। चिरिले चारी ॥४५॥
यावरी आदी। पांचभूतिकांची मांदी। बांधली प्रभेदीं। पंचभूतिकीं ॥४६॥
कर्माकर्माचे गुंडे। बांध घातले दोहींकडे। नपुंसकें बरडें। रानें केलीं ॥४७॥
तेथ येरझारेलागीं। जन्ममृत्यूची सुरंगी। सुहाविली निलागी। संकल्पें येणें ॥४८॥
मग अहंकारासि एकलाधी। करूनि जीवितावधी। वहाविलें बुद्धि। चराचर ॥४९॥
यापरी निराळीं। वाढे संकल्पाची डाहाळी। म्हणौनि तो मुळीं। प्रपंचा यया ॥५०॥
यापरी मत्तमुगुतकीं। तेथ पडिघायिलें आणिकीं। म्हणती हां हो विवेकीं। कैसें तुम्ही ॥५१॥
परतत्त्वाचिया गांवीं। संकल्पसेज देखावी। तरी कां पां न मनावी। प्रकृति तयाची ? ॥५२॥
परि असो हें नव्हे। तुम्ही या न लगावें। आतांचि हें आघवें। सांगिजैल ॥५३॥
तरी आकाशीं कवणें। केलीं मेघाचीं भरणें। अंतरिक्ष तारांगणें। धरी कवण ? ॥५४॥
गगनाचा तडावा। कोणें वेढिला केधवां। पवनु हिंडतु असावा। हें कवणाचें मत ? ॥५५॥
रोमां कवण पेरी। सिंधू कवण भरी। पर्जन्याचिया करी। धारा कवण ? ॥५६॥
तैसें क्षेत्र हें स्वभावें। हे वृत्ती कवणाची नव्हे। हें वाहे तया फावे। येरां तुटे ॥५७॥
तंव आणिकें एकें। क्षोभें म्हणितलें निकें। तरी भोगिजे एकें। काळें केवीं हें ? ॥५८॥
तरी ययाचा मारु। देखताति अनिवारु। परी स्वमतीं भरु। अभिमानियां ॥५९॥
हें जाणों मृत्यु रागिटा। सिंहाडयाचा दरकुटा। परी काय वांजटा। पूरिजत असे ? ॥६०॥

महाकल्पापरौतीं। कव घालूनि अवचितीं। सत्यलोकभद्रजाती। आंगीं वाजे ॥६१॥
लोकपाळ नित्य नवे। दिग्गजांचे मेळावे। स्वर्गींचिये आडवे। रिगोनि मोडी ॥६२॥
येर ययाचेनि अंगवातें। जन्ममृत्यूचिये गर्तें। निर्जिवें होऊनि भ्रमतें। जीवमृगें ॥६३॥
न्याहाळीं पां केव्हडा। पसरलासे चवडा। जो करूनियां माजिवडा। आकारगजु ॥६४॥
म्हणौनि काळाची सत्ता। हाचि बोलु निरुता। ऐसे वाद पंडुसुता। क्षेत्रालागीं ॥६५॥
हे बहु उखिविखी। ॠषीं केली नैमिषीं। पुराणें इयेविषीं। मतपत्रिका ॥६६॥
अनुष्टुभादि छंदें। प्रबंधीं जें विविधें। ते पत्रावलंबन मदें। करिती अझुनी ॥६७॥
वेदींचें बृहत्सामसूत्र। जें देखणेपणें पवित्र। परी तयाही हें क्षेत्र। नेणवेचि ॥६८॥
आणीक आणीकींही बहुतीं। महाकवीं हेतुमंतीं। ययालागीं मती। वेंचिलिया ॥६९॥
परी ऐसें हें एवढें। कीं अमुकेयाचेंचि फुडें। हें कोणाही वरपडें। होयचिना ॥७०॥
आतां यावरी जैसें। क्षेत्र हें असे। तुज सांगों तैसें। साद्यंतु गा ॥७१॥

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥५॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥६॥

तरि महाभूतपंचकु। आणि अहंकारु एकु। बुद्धि अव्यक्त दशकु। इंद्रियांचा ॥७२॥
मन आणीकही एकु। विषयांचा दशकु। सुख दुःख द्वेषु। संघात इच्छा ॥७३॥
आणि चेतना धृती। एवं क्षेत्रव्यक्ती। सांगितली तुजप्रती। आघवीची ॥७४॥
आतां महाभूतें कवणें। कवण विषयो कैसीं करणे। हें वेगळालेपणें। एकैक सांगों ॥७५॥
तरी पृथ्वी आप तेज। वायु व्योम इयें तुज। सांगितलीं बुझ। महाभूतें पांचें ॥७६॥
आणि जागतिये दशे। स्वप्न लपालें असे। नातरी अंवसे। चंद्र गूढु ॥७७॥
नाना अप्रौढबाळकीं। तारुण्य राहे थोकीं। कां न फुलतां कळिकीं। आमोदु जैसा ॥७८॥
किंबहुना काष्ठीं। वन्हि जेवीं किरीटी। तेवीं प्रकृतिचिया पोटीं। गोप्यु जो असे ॥७९॥
जैसा ज्वरु धातुगतु। अपथ्याचें मिष पहातु। मग जालिया आंतु। बाहेरी व्यापी ॥८०॥
तैसी पांचांही गांठीं पडे। जैं देहाकारु उघडे। तैं नाचवी चहूंकडे। तो अहंकारु गा ॥८१॥
नवल अहंकाराची गोठी। विशेषें न लगे अज्ञानापाठीं। सज्ञानाचे झोंबे कंठीं। नाना संकटीं नाचवी ॥८२॥
आतां बुद्धि जे म्हणिजे। ते ऐशियां चिन्हीं जाणिजे। बोलिलें यदुराजें। तें आइकें सांगों ॥८३॥
तरी कंदर्पाचेनि बळें। इंद्रियवृत्तीचेनि मेळें। विभांडूनि येती पाळे। विषयांचे ॥८४॥
तो सुखदुःखांचा नागोवा। जेथ उगाणों लागे जीवा। तेथ दोहींसी बरवा। पाडु जे धरी ॥८५॥
हें सुख हें दुःख। हें पुण्य हें दोष। कां हें मैळ हें चोख। ऐसें जे निवडी ॥८६॥
जिथे अधमोत्तम सुझे। जिये सानें थोर बुझे। जिया दिठी पारखिजे। विषो जीवें ॥८७॥
जे तेजतत्त्वांची आदी। जे सत्त्वगुणाची वृद्धी। जे आत्मया जीवाची संधी। वसवीत असे जे ॥८८॥
अर्जुना ते गा जाण। बुद्धि तूं संपूर्ण। आतां आइकें वोळखण। अव्यक्ताची ॥८९॥
पैं सांख्यांचिया सिद्धांतीं। प्रकृती जे महामती। तेचि एथें प्रस्तुतीं। अव्यक्त गा ॥९०॥
आणि सांख्ययोगमतें। प्रकृती परिसविली तूंतें। ऐसी दोहीं परीं जेथें। विवंचिली ॥९१॥
तेथ दुजी जे जीवदशा। तिये नांव वीरेशा। येथ अव्यक्त ऐसा। पर्यावो हा ॥९२॥
तर्‍ही पाहालया रजनी। तारा लोपती गगनीं। कां हारपें अस्तमानीं। भूतक्रिया ॥९३॥

नातरी देहो गेलिया पाठीं। देहादिक किरीटी। उपाधि लपे पोटीं। कृतकर्माच्या ॥९४॥
कां बीजमुद्रेआंतु। थोके तरु समस्तु। कां वस्त्रपणे तंतु- । दशे राहे ॥९५॥
तैसे सांडोनियां स्थूळधर्म। महाभूतें भूतग्राम। लया जाती सूक्ष्म। होऊनि जेथे ॥९६॥
अर्जुना तया नांवें। अव्यक्त हें जाणावें। आतां आइकें आघवें। इंद्रियभेद ॥९७॥
तरी श्रवण नयन। त्वचा घ्राण रसन। इयें जाणें ज्ञान- । करणें पांचें ॥९८॥
इये तत्त्वमेळापकीं। सुखदुःखांची उखिविखी। बुद्धि करिते मुखीं। पांचें इहीं ॥९९॥
मग वाचा आणि कर। चरण आणि अधोद्वार। पायु हे प्रकार। पांच आणिक ॥१००॥
कर्मेंद्रियें म्हणिपती। तीं इयें जाणिजती। आइकें कैवल्यपती। सांगतसे ॥१०१॥
पैं प्राणाची अंतौरी। क्रियाशक्ति जे शरीरीं। तियेचि रिगिनिगी द्वारीं। पांचे इहीं ॥१०२॥
एवं दाहाही करणें। सांगितलीं देवो म्हणे। परिस आतां फुडेपणें। मन तें ऐसें ॥१०३॥
जें इंद्रियां आणि बुद्धि। माझारिलिये संधीं। रजोगुणाच्या खांदीं। तरळत असे ॥१०४॥
नीळिमा अंबरीं। कां मृगतृष्णालहरी। तैसें वायांचि फरारी। वावो जाहलें ॥१०५॥
आणि शुक्रशोणिताचा सांधा। मिळतां पांचांचा बांधा। वायुतत्त्व दशधा। एकचि जाहलें ॥१०६॥
मग तिहीं दाहे भागीं। देहधर्माच्या खैवंगीं। अधिष्ठिलें आंगीं। आपुलाल्या ॥१०७॥
तेथ चांचल्य निखळ। एकलें ठेलें निढाळ। म्हणौनि रजाचें बळ। धरिलें तेणें ॥१०८॥
तें बुद्धीसि बाहेरी। अहंकाराच्या उरावरी। ऐसां ठायीं माझारीं। बळियावलें ॥१०९॥
वायां मन हें नांव। एऱ्हवीं कल्पनाचि सावेव। जयाचेनि संगें जीव- । दशा वस्तु ॥११०॥
जें प्रवृत्तीसि मूळ। कामा जयाचे बळ। जें अखंड सूये छळ। अहंकारासी ॥१११॥
जें इच्छेतें वाढवी। आशेतें चढवी। जें पाठी पुरवी। भयासि गा ॥११२॥
द्वैत जेथें उठी। अविद्या जेणें लाठी। जें इंद्रियांतें लोटी। विषयांमजी ॥११३॥
संकल्पें सृष्टी घडी। सवेंचि विकल्पूनि मोडी। मनोरथांच्या उतरंडी। उतरी रची ॥११४॥
जें भुलीचें कुहर। वायुतत्त्वाचें अंतर। बुद्धीचें द्वार। झाकविलें जेणें ॥११५॥
तें गा किरीटी मन। या बोला नाहीं आन। आतां विषयाभिधान। भेदू आइकें ॥११६॥
तरी स्पर्शु आणि शब्दु। रूप रसु गंधु। हा विषयो पंचविधु। ज्ञानेंद्रियांचा ॥११७॥
इहीं पांचैं द्वारीं। ज्ञानासि धांव बाहेरी। जैसा कां हिरवे चारीं। भांबावे पशु ॥११८॥
मग स्वर वर्ण विसर्गु। अथवा स्वीकार त्यागु। संक्रमण उत्सर्गु। विण्मूत्राचा ॥११९॥
हे कर्मेंद्रियांचे पांच। विषय गा साच। जे बांधोनियां माच। क्रिया धांवे ॥१२०॥
ऐसे हे दाही। विषय गा इये देहीं। आतां इच्छा तेही। सांगिजैल ॥१२१॥
तरि भूतलें आठवे। कां बोलें कान झांकवे। ऐसियावरि चेतवे। जे गा वृत्ती ॥१२२॥
इंद्रियाविषयांचिये भेटी- । सरसीच जे गा उठी। कामाची बाहुटी। धरूनियां ॥१२३॥
जियेचेनि उठिलेपणें। मना सैंघ धावणें। न रिगावें तेथ करणें। तोंडें सुती ॥१२४॥
जिये वृत्तीचिया आवडी। बुद्धी होय वेडी। विषयां जिया गोडी। ते गा इच्छा ॥१२५॥
आणी इच्छिलिया सांगडें। इंद्रियां आमिष न जोडे। तेथ जोडे ऐसा जो डावो पडे। तोचि द्वेषु ॥१२६॥
आतां यावरी सुख। तें एवंविध देख। जेणें एकेंचि अशेख। विसरे जीवु ॥१२७॥
मना वाचे काये। जें आपुली आण वाये। देहस्मृतीची त्राये। मोडित जें ये ॥१२८॥
जयाचेनि जालेपणें। पांगुळा होईजे प्राणें। सात्त्विकासी दुणें। वरीही लाभु ॥१२९॥
कां आघवियाचि इंद्रियवृत्ती। हृदयाचिया एकांतीं। थापटूनि सुषुप्ती। आणी जें गा ॥१३०॥

किंबहुना सोये। जीव आत्मयाची लाहे। तेथ जें होये। तया नाम सुख ॥१३१॥
आणि ऐसी हे अवस्था। न जोडतां पार्था। जें जीजे तेंचि सर्वथा। दुःख जाणे ॥१३२॥
तें मनोरथसंगें नव्हे। एऱ्हवीं सिद्धी गेलेंचि आहे। हे दोनीचि उपाये। सुखदुःखासी ॥१३३॥
आतां असंगा साक्षिभूता। देहीं चैतन्याची जे सत्ता। तिये नाम पंडुसुता। चेतना येथें ॥१३४॥
जे नखौनि केशवरी। उभी जागे शरीरीं। जे तिहीं अवस्थांतरी। पालटेना ॥१३५॥
मनबुद्ध्यादि आघवीं। जियेचेनि टवटवीं। प्रकृतिवनमाधवीं। सदांचि जे ॥१३६॥
जडाजडीं अंशीं। राहाटे जे सरिसी। ते चेतना गा तुजसी। लटिकें नाहीं ॥१३७॥
पैं रावो परिवारु नेणे। आज्ञाचि परचक्र जिणे। कां चंद्राचेनि पूर्णपणें। सिंधू भरती ॥१३८॥
नाना भ्रामकाचें सन्निधान। लोहो करी सचेतन। कां सूर्यसंगु जन। चेष्टवी गा ॥१३९॥
अगा मुख मेळेंवीण। पिलियाचें पोषण। करी निरीक्षण। कूर्मी जेवीं ॥१४०॥
पार्था तियापरी। आत्मसंगती इये शरीरीं। सजीवत्वाचा करी। उपेगु जडा ॥४१॥
मग तियेतें चेतना। म्हणिपे पैं अर्जुना। आतां धृतिविवंचना। भेदु आइक ॥१४२॥
तरी भूतां परस्परें। उघड जाति स्वभाववैरें। नव्हे पृथ्वीतें नीरें। न नाशिजे ? ॥१४३॥
नीरातें आटी तेज। तेजा वायूसि झुंज। आणि गगन तंव सहज। वायू भक्षी ॥१४४॥
तेवींचि कोणेही वेळे। आपण कायिसयाही न मिळे। आंतु रिगोनि वेगळें। आकाश हें ॥१४५॥
ऐसीं पांचही भूतें। न साहती एकमेकांतें। कीं तियेंही ऐक्यातें। देहासी येती ॥१४६॥
द्वंद्वाची उखिविखी। सोडूनि वसती एकीं। एकेकातें पोखी। निजगुणें गा ॥१४७॥
ऐसें न मिळे तयां साजणें। चळे धैर्यें जेणें। तयां नांव म्हणें। धृती मी गा ॥१४८॥
आणि जीवेंसी पांडवा। या छत्तिसांचा मेळावा। तो हा एथ जाणावा। संघातु पैं गा ॥१४९॥
एवं छत्तीसही भेद। सांगितले तुज विशद। यया येतुलियातें प्रसिद्ध। क्षेत्र म्हणिजे ॥१५०॥
रथांगांचा मेळावा। जेवीं रथु म्हणिजे पांडवा। कां अधोर्ध्व अवेवां। नांव देहो ॥१५१॥
करीतुरंगसमाजें। सेना नाम निफजे। कां वाक्यें म्हणिपती पुंजे। अक्षरांचे ॥१५२॥
कां जळधरांचा मेळा। वाच्य होय आभाळा। नाना लोकां सकळां। नाम जग ॥१५३॥
कां स्नेहसूत्रवन्ही। मेळु एकिचि स्थानीं। धरिजे तो जनीं। दीपु होय ॥१५४॥
तैसीं छत्तीसही इयें तत्त्वें। मिळती जेणें एकत्वें। तेणें समूह परत्वें। क्षेत्र म्हणिपे ॥१५५॥
आणि वाहतेनि भौतिकें। पाप पुण्य येथें पिके। म्हणौनि आम्ही कौतुकें। क्षेत्र म्हणों ॥१५६॥
आणि एकाचेनि मतें। देह म्हणती ययातें। परी असो हें अनंतें। नामें यया ॥१५७॥
पैं परतत्त्वाआरौतें। स्थावराआंतौतें। जें कांहीं होतें जातें। क्षेत्रचि हें ॥१५८॥
परि सुर नर उरगीं। घडत आहे योनिविभागीं। तें गुणकर्मसंगीं। पडिलें सातें ॥१५९॥
हेचि गुणविवंचना। पुढां म्हणिपैल अर्जुना। प्रस्तुत आतां तुज ज्ञाना। रूप दावूं ॥१६०॥
क्षेत्र तंव सविस्तर। सांगितलें सविकार। म्हणौनि आतां उदार। ज्ञान आइकें ॥१६१॥
जया ज्ञानालागीं। गगन गिळिताती योगी। स्वर्गाची आडवंगी। उमरडोनि ॥१६२॥
न करिती सिद्धीची चाड। न धरिती ऋद्धीची भीड। योगाऐसें दुवाड। हेळसिती ॥१६३॥
तपोदुर्गें वोलांडित। क्रतुकोटि वोवांडित। उलथूनि सांडित। कर्मवल्ली ॥१६४॥
नाना भजनमार्गीं। धांवत उघडिया आंगीं। एक रिगताति सुरंगीं। सुषुम्नेचिये ॥१६५॥
ऐसी जिये ज्ञानीं। मुनीश्वरांची उतान्ही। वेदतरूच्या पानोवानीं। हिंडताती ॥१६६॥
देईल गुरुसेवा। इया बुद्धि पांडवा। जन्मशतांचा सांडोवा। टाकित जे ॥१६७॥

जया ज्ञानाची रिगवणी। अविद्ये उणें आणी। जीवा आत्मया बुझावणी। मांडूनि दे ॥१६८॥
जें इंद्रियांचीं द्वारें आडी। प्रवृत्तीचे पाय मोडी। जें दैन्यचि फेडी। मानसाचें ॥१६९॥
द्वैताचा दुकाळु पाहे। साम्याचें सुयाणें होये। जया ज्ञानाची सोये। ऐसें करी ॥१७०॥
मदाचा ठावोचि पुसी। जें महामोहातें ग्रासी। नेदी आपपरु ऐसी। भाष उरों ॥१७१॥
जें संसारातें उन्मूळी। संकल्पपंकु पाखाळी। अनावरातें वेंटाळी। ज्ञेयातें जें ॥१७२॥
जयाचेनि जालेपणें। पांगुळा होईजे प्राणें। जयाचेनि विंदाणें। जग हें चेष्टें ॥१७३॥
जयाचेनि उजाळें। उघडती बुद्धीचे डोळे। जीवु दोंदावरी लोळे। आनंदाचिया ॥१७४॥
ऐसें जें ज्ञान। पवित्रैकनिधान। जेथ विटाळलें मन। चोख कीजे ॥१७५॥
आत्मया जीवबुद्धी। जे लागली होती क्षयव्याधी। ते जयाचिये सन्निधी। निरुजा कीजे ॥१७६॥
तें अनिरूप्य कीं निरूपिजे। ऐकतां बुद्धी आणिजे। वांचूनि डोळां देखिजे। ऐसें नाहीं ॥१७७॥
मग तेचि इये शरीरीं। जैं आपुला प्रभावो करी। तैं इंद्रियांचिया व्यापारीं। डोळांहि दिसे ॥१७८॥
पैं वसंताचें रिगवणें। झाडांचेनि साजेपणें। जाणिजे तेवीं करणें। सांगती ज्ञान ॥१७९॥
अगा वृक्षासि पाताळीं। जळ सांपडे मुळीं। तें शाखांचिये बाहाळीं। बाहेर दिसे ॥१८०॥
कां भूमीचें मार्दव। सांगे कोंभाची लवलव। नाना आचारगौरव। सुकुलीनाचें ॥१८१॥
अथवा संभ्रमाचिया आयती। स्नेहो जैसा ये व्यक्ती। कां दर्शनाचिये प्रशस्तीं। पुण्यपुरुष ॥१८२॥
नातरी केळीं कापूर जाहला। जेवीं परिमळें जाणों आला। कां भिंगारीं दीपु ठेविला। बाहेरी फांके ॥१८३॥
तैसें हृदयींचेनि ज्ञानें। जियें देहीं उमटती चिन्हें। तियें सांगों आतां अवधानें। चागें आइक ॥१८४॥

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥७॥

तरी कवणेही विषयींचें। साम्य होणें न रुचे। संभावितपणाचें। वोझें जया ॥१८५॥
आथिलेचि गुण वानितां। मान्यपणें मानितां। योग्यतेचें येतां। रूप आंगा ॥१८६॥
तैं गजबजों लागे कैसा। व्याधें रुंधला मृगु जैसा। कां बाहीं तरतां वळसा। दाटला जेवीं ॥१८७॥
पार्था तेणें पाडें। सन्मानें जो सांकडे। गरिमेतें आंगाकडे। येवोंचि नेदी ॥१८८॥
पूज्यता डोळां न देखावी। स्वकीर्ती कानीं नायकावी। हा अमुका ऐसी नोहावी। सेचि लोकां ॥१८९॥
तेथ सत्काराची कें गोठी। कें आदरा देईल भेटी। मरणेंसीं साटी। नमस्कारितां ॥१९०॥
वाचस्पतीचेनि पाडें। सर्वज्ञता तरी जोडे। परी वेडिवेमाजीं दडे। महमेभेणें ॥१९१॥
चातुर्य लपवी। महत्त्व हारवी। पिसेपण मिरवी। आवडोनि ॥१९२॥
लौकिकाचा उद्वेगु। शास्त्रांवरी उबगु। उगेपणीं चांगु। आथी भरु ॥१९३॥
जगें अवज्ञाचि करावी। संबंधीं सोयचि न धरावी। ऐसी ऐसी जीवीं। चाड बहु ॥१९४॥
तळौटेपण बाणे। आंगीं हिणावो खेवणें। तें तेंचि करणें। बहुतकरुनी ॥१९५॥
हा जीतु ना नोहे। लोक कल्पी येणें भावें। तैसें जिणें होआवें। ऐसी आशा ॥१९६॥
पै चालतु कां नोहे। कीं वारेनि जातु आहे। जना ऐसा भ्रमु जाये। तैसें होईजे ॥१९७॥
माझें असतेपण लोपो। नामरूप हारपो। मज झणें वासिपो। भूतजात ॥१९८॥
ऐसीं जयाचीं नवसियें। जो नित्य एकांता जातु जाये। नामेंचि जो जिये। विजनाचेनि ॥१९९॥
वायू आणि तया पडे। गगनेंसीं बोलों आवडे। जीवें प्राणें झाडें। पढियंतीं जया ॥२००॥
किंबहुना ऐसीं। चिन्हें जया देखसी। जाण तया ज्ञानेंसीं। शेज जाहली ॥२०१॥
पैं अमानित्व पुरुषीं। तें जाणावें इहीं मिषीं। आतां अदंभाचिया वोळखीसी। सौरसु देवों ॥२०२॥

तरी अदंभित्व ऐसें। लोभियाचें मन जैसें। जीवु जावो परी नुमसे। ठेविला ठावो ॥२०३॥
तयापरी किरीटी। पडिलाही प्राणसंकटीं। तरी सुकृत न प्रकटी। आंगें बोलें ॥२०४॥
खडाणें आला पान्हा। पळवी जेवीं अर्जुना। कां लपवी पण्यांगना। वडिलपण ॥२०५॥
आढ्यु आतुडे आडवीं। मग आढ्यता जेवीं हारवी। नातरी कुळवधू लपवी। अवेवांतें ॥२०६॥
नाना कृषीवळु आपुलें। पांघुरवी पेरिलें। तैसें झांकी निपजलें। दानपुण्य ॥२०७॥
वरिवरी देहो न पूजी। लोकांतें न रंजी। स्वधर्मु वाग्ध्वजीं। बांधों नेणे ॥२०८॥
परोपकारु न बोले। न मिरवी अभ्यासिलें। न शके विकूं जोडलें। स्फीतीसाठीं ॥२०९॥
शरीर भोगाकडे। पाहतां कृपणु आवडे। एऱ्हवीं धर्मविषयीं थोडें। बहु न म्हणे ॥२१०॥
घरीं दिसे सांकड। देहींची आयती रोड। परी दानीं जया होड। सुरतरूसीं ॥२११॥
किंबहुना स्वधर्मीं थोरु। अवसरीं उदारु। आत्मचर्चे चतुरु। एऱ्हवी वेडा ॥२१२॥
केळीचें दळवाडें। हळू पोकळ आवडे। परी फळोनियां गाढें। रसाळ जैसें ॥२१३॥
कां मेघांचें आंग झील। दिसे वारेनि जैसें जाईल। परी वर्षती नवल। घनवट तें ॥२१४॥
तैसा जो पूर्णपणीं। पाहतां धाती आयणी। एऱ्हवीं तरी वाणी। तोचि ठावो ॥२१५॥
हें असो या चिन्हांचा। नटनाचु ठायीं जयाच्या। जाण ज्ञान तयाच्या। हातां चढें ॥२१६॥
पैं गा अदंभपण। म्हणितलें तें हें जाण। आतां आईक खूण। अहिंसेची ॥२१७॥
तरी अहिंसा बहुतीं परीं। बोलिली असे अवधारीं। आपुलालिया मतांतरीं। निरूपिली ॥२१८॥
परी ते ऐसी देखा। जैशा खांडूनियां शाखा। मग तयाचिया बुडुखा। कूंप कीजे ॥२१९॥
कां बाहु तोडोनि पचविजे। मग भूकेची पीडा राखिजे। नाना देऊळ मोडोनि कीजे। पौळी देवा ॥२२०॥
तैसी हिंसाचि करूनि अहिंसा। निफजविजे हा ऐसा। पैं पूर्वमीमांसा। निर्णो केला ॥२२१॥
जे अवृष्टीचेनि उपद्रवें। गादलें विश्व आघवें। म्हणौनि पर्जन्येष्टी करावे। नाना याग ॥२२२॥
तंव तिये इष्टीचिया बुडीं। पशुहिंसा रोकडी। मग अहिंसेची थडी। कैंची दिसे ? ॥२२३॥
पेरिजे नुसधी हिंसा। तेथ उगवैल काय अहिंसा ? । परी नवल बापा धिंवसा। या याज्ञिकांचा ॥२२४॥
आणि आयुर्वेदु आघवा। तो याच मोहोरा पांडवा। जे जीवाकारणें करावा। जीवघातु ॥२२५॥
नाना रोगें आहाळलीं। लोळतीं भूतें देखिलीं। ते हिंसा निवारावया केली। चिकित्सा कां ॥२२६॥
तंव ते चिकित्से पहिलें। एकाचे कंद खणविले। एका उपडविलें। समूळीं सपत्रीं ॥२२७॥
एकें आड मोडविली। अजंगमाची खाल काढविली। एकें गर्भिणी उकडविली। पुटामाजीं ॥२२८॥
अजातशत्रु तरुवरां। सर्वांगीं देवविल्या शिरा। ऐसे जीव घेऊनि धनुर्धरा। कोरडे केले ॥२२९॥
आणि जंगमाही हात। लाऊनि काढिलें पित्त। मग राखिले शिणत। आणिक जीव ॥२३०॥
अहो वसतीं धवळारें। मोडूनि केलीं देव्हारें। नागवूनि वेव्हारें। गवांदी घातली ॥२३१॥
मस्तक पांघुरविलें। तंव तळवटीं उघडें पडलें। घर मोडोनि केले। मांडव पुढें ॥२३२॥
नाना पांघुरणें। जाळूनि जैसें तापणें। जालें आंगधुणें। कुंजराचें ॥२३३॥
नातरी बैल विकूनि गोठा। पुंसा लावोनि बांधिजे गांठा। इया करणी कीं चेष्टा ? । काइ हसों ॥२३४॥
एकीं धर्माचिया वाहणी। गाळूं आदरिलें पाणी। तंव गाळितया आहाळणीं। जीव मेले ॥२३५॥
एक न पचवितीचि कण। इये हिंसेचे भेण। तेथ कदर्थले प्राण। तेचि हिंसा ॥२३६॥
एवं हिंसाचि अहिंसा। कर्मकांडीं हा ऐसा। सिद्धांतु सुमनसा। वोळखें तूं ॥२३७॥
पहिलें अहिंसेचें नांव। आम्हीं केलें जंव। तंव स्फूर्ति बांधली हांव। इये मती ॥२३८॥
तरि कैसेनि इयेतें गाळावें। म्हणौनि पडिलें बोलावें। तेवींचि तुवांही जाणावें। ऐसा भावो ॥२३९॥

बहुतकरूनि किरीटी। हाचि विषो इये गोठी। एऱ्हवी कां आडवाटीं। धाविजैल गा ? ॥२४०॥
आणि स्वमताचिया निर्धारा- । लागोनियां धनुर्धरा। प्राप्तां मतांतरां। निर्वेचु कीजे ॥२४१॥
ऐसी हे अवधारीं। निरूपिती परी। आतां ययावरी। मुख्य जें गा ॥२४२॥
तें स्वमत बोलिजैल। अहिंसे रूप किजैल। जेणें उठलिया आंतुल। ज्ञान दिसे ॥२४३॥
परी तें अधिष्ठिलेनि आंगें। जाणिजे आचरतेनि बगें। जैसी कसवटी सांगे। वानियातें ॥२४४॥
तैसें ज्ञानामनाचिये भेटी। सरिसेंचि अहिंसेचें बिंब उठी। तेंचि ऐसें किरीटी। परिस आतां ॥२४४॥
तरी तरंगु नोलांडितु। लहरी पायें न फोडितु। सांचलु न मोडितु। पाणियाचा ॥२४६॥
वेगें आणि लेसा। दिठी घालूनि आंविसा। जळीं बकु जैसा। पाउल सुये ॥२४७॥
कां कमळावरी भ्रमर। पाय ठेविती हळुवार। कुचुंबैल केसर। इया शंका ॥२४८॥
तैसे परमाणु पां गुंतले। जाणूनि जीव सानुले। कारुण्यामाजीं पाउलें। लपवूनि चाले ॥२४९॥
ते वाट कृपेची करितु। ते दिशाचि स्नेह भरितु। जीवातळीं आंथरितु। आपुला जीवु ॥२५०॥
ऐसिया जतना। चालणें जया अर्जुना। हें अनिर्वाच्य परिमाणा। पुरिजेना ॥२५१॥
पैं मोहाचेनि सांगडें। लासी पिलीं धरी तोंडें। तेथ दांतांचे आगरडे। लागती जैसे ॥२५२॥
कां स्नेहाळु माये। तान्हयाची वास पाहे। तिये दिठी आहे। हळुवार जें ॥२५३॥
नाना कमळदळें। डोलविजती ढाळें। तो जेणें पाडें बुबुळें। वारा घेपे ॥२५४॥
तैसेनि मार्दवें पाय। भूमीवरी न्यसीतु जाय। लागती तेथ होय। जीवां सुख ॥२५५॥
ऐसिया लघिमा चालतां। कृमि कीटक पंडुसुता। देखे तरी माघौता। हळूचि निघे ॥२५६॥
म्हणे पावो धडफडील। तरी स्वामीची निद्रा मोडैल। रचलेपणा पडैल। झोती हन ॥२५७॥
इया काकुळती। वाहणी घे माघौती। कोणेही व्यक्ती। न वचे वरी ॥२५८॥
जीवाचेनि नांवें। तृणातेंही नोलांडवे। मग न लेखितां जावें। हे कें गोठी ? ॥२५९॥
मुंगिये मेरु नोलांडवे। मशका सिंधु न तरवे। तैसा भेटलियां न करवे। अतिक्रमु ॥२६०॥
ऐसी जयाची चाली। कृपाफळी फळा आली। देखसी जियाली। दया वाचे ॥२६१॥
स्वयें श्वसणेंचि सुकुमार। मुख मोहाचें माहेर। माधुर्या जाहले अंकुर। दशन तैसे ॥२६२॥
पुढां स्नेह पाझरे। माघां चालती अक्षरें। शब्द पाठीं अवतरे। कृपा आधीं ॥२६३॥
तंव बोलणेंचि नाहीं। बोलों म्हणे जरी कांहीं। तरी बोल कोणाही। खुपेल कां ॥२६४॥
बोलतां अधिकुही निघे। तरी कोण्हाही वर्मीं न लगे। आणि कोण्हासि न रिघे। शंका मनीं ॥२६५॥
मांडिली गोठी हन मोडैल। वासिपैल कोणी उडैल। आइकोनिचि वोवांडिल। कोण्ही जरी ॥२६६॥
तरी दुवाळी कोणा नोहावी। भुंवई कवणाची नुचलावी। ऐसा भावो जीवीं। म्हणौनि उगा ॥२६७॥
मग प्रार्थिला विपायें। जरी लोभें बोलों जाये। तरी परिसतया होये। मायबापु ॥२६८॥
कां नादब्रह्मचि मुसे आलें। कीं गंगापय असललें। पतिव्रते आलें। वार्धक्य जैसे ॥२६९॥
तैसें साच आणि मवाळ। मितले आणि रसाळ। शब्द जैसे कल्लोळ। अमृताचे ॥२७०॥
विरोधुवादुबळु। प्राणितापढाळु। उपहासु छळु। वर्मस्पर्शु ॥२७१॥
आटु वेगु विंदाणु। आशा शंका प्रतारणु। हे संन्यासिले अवगुणु। जया वाचा ॥२७२॥
आणि तयाचि परी किरीटी। थाउ जयाचिये दिठी। सांडिलिया भ्रुकुटी। मोकळिया ॥२७३॥
कां जे भूतीं वस्तु आहे। तियें रुपों शके विपायें। म्हणौनि वासु न पाहे। बहुतकरूनी ॥२७४॥
ऐसाही कोणे एके वेळे। भीतरले कृपेचेनि बळें। उघडोनियां डोळे। दृष्टी घाली ॥२७५॥
तरी चंद्रबिंबौनि धारा। निघतां नव्हती गोचरा। परि एकसरें चकोरां। निघती दोंदें ॥२७६॥

तैसें प्राणियांसि होये। जरी तो कहींवासु पाहे। तया अवलोकनाची सोये। कूर्मींही नेणे ॥२७७॥
किंबहुना ऐसी। दिठी जयाची भूतांसी। करही देखसी। तैसेचि ते ॥२७८॥
तरी होऊनियां कृतार्थ। राहिले सिद्धांचे मनोरथ। तैसे जयाचे हात। निर्व्यापार ॥२७९॥
अक्षमें आणि संन्यासिलें। कीं निरिंधन आणि विझालें। मुकेनि घेतलें। मौन जैसें ॥२८०॥
तयापरी कांहीं। जयां करां करणें नाहीं। जे अकर्तयाच्या ठायीं। बैसों येती ॥२८१॥
आसुडैल वारा। नख लागेल अंबरा। इया बुद्धी करां। चळों नेदी ॥२८२॥
तेथ आंगावरिलीं उडवावीं। कां डोळां रिगतें झाडावीं। पशुपक्ष्यां दावावीं। त्रासमुद्रा ॥२८३॥
इया केउतिया गोठी। नावडे दंडु काठी। मग शस्त्राचें किरीटी। बोलणें कें ? ॥२८४॥
लीलाकमळें खेळणें। कांपुष्पमाळा झेलणें। न करी म्हणे गोफणें। ऐसें होईल ॥२८५॥
हालवतील रोमावळी। यालागीं आंग न कुरवाळी। नखांची गुंडाळी। बोटांवरी ॥२८६॥
तंव करणेयाचाचि अभावो। परी ऐसाही पडे प्रस्तावो। तरी हातां हाचि सरावो। जे जोडिजती ॥२८७॥
कां नाभिकारा उचलिजे। हातु पडिलियां देइजे। नातरी आर्तातें स्पर्शिजे। अळुमाळु ॥२८८॥
हेंही उपरोधें करणें। तरी आर्तभय हरणें। नेणती चंद्रकिरणें। जिव्हाळा तो ॥२८९॥
पावोनि तो स्पर्शु। मलयानिळु खरपुसु। तेणें मानें पशु। कुरवाळणें ॥२९०॥
जे सदा रिते मोकळे। जैशी चंदनांगें निसळें। न फळतांही निर्फळें। होतीचिना ॥२९१॥
आतां असो हें वाग्जाळ। जाणें तें करतळ। सज्जनांचे शीळ। स्वभाव जैसे ॥२९२॥
आतां मन तयाचें। सांगों म्हणों जरी साचें। तरी सांगितले कोणाचे। विलास हे ? ॥२९३॥
काइ शाखा नव्हे तरु ? । जळेंवीण असे सागरु ? । तेज आणि तेजाकारु। आन काई ? ॥२९४॥
अवयव आणि शरीर। हे वेगळाले कीर ? । कीं रसु आणि नीर। सिनानीं आथी ? ॥२९५॥
म्हणौनि हे जे सर्व। सांगितले बाह्य भाव। ते मनचि गा सावयव। ऐसें जाणें ॥२९६॥
जें बीज भुईं खोंविलें। तेंचि वरी रुख जाहलें। तैसें इंद्रियाद्वारीं फांकलें। अंतरचि कीं ॥२९७॥
पैं मानसींचि जरी। अहिंसेची अवसरी। तरी कैंची बाहेरी। वोसंडेल ? ॥२९८॥
आवडे ते वृत्ती किरीटी। आधीं मनौनीचि उठी। मग ते वाचे दिठी। करांसि ये ॥२९९॥
वांचूनि मनींचि नाहीं। तें वाचेसि उमटेल काई ? । बींवीण भुईं। अंकुर असे ? ॥३००॥
म्हणौनि मनपण जैं मोडे। तैं इंद्रिय आधींचि उबडें। सूत्रधारेंवीण साइखडें। वावो जैसें ॥३०१॥
उगमींचि वाळूनि जाये। तें वोघीं कैचें वाहे। जीवु गेलिया आहे। चेष्टा देहीं ? ॥३०२॥
तैसें मन हें पांडवा। मूळ या इंद्रियभावा। हेंचि राहटे आघवां। द्वारीं इहीं ॥३०३॥
परी जिये वेळीं जैसें। जें होऊनि आंतु असे। बाहेरी ये तैसें। व्यापाररूपें ॥३०४॥
यालागी साचोकारें। मनीं अहिंसा थांवे थोरें। पिकली द्रुती आदरें। बोभात निघे ॥३०५॥
म्हणौनि इंद्रियें तेचि संपदा। वेचितां हीं उदावादा। अहिंसेचा धंदा। करितें आहाती ॥३०६॥
समुद्रीं दाटे भरितें। तैं समुद्रचि भरी तरियांते। तैसें स्वसंपत्ती चित्तें। इंद्रियां केलें ॥३०७॥
हें बहु असो पंडितु। धरुनि बाळकाचा हातु। वोळी लिही व्यक्तु। आपणचि ॥३०८॥
तैसें दयाळुत्व आपुलें। मनें हातापायां आणिलें। मग तेथ उपजविलें। अहिंसेतें ॥३०९॥
याकारणें किरीटी। इंद्रियांचिया गोठी। मनाचिये राहाटी। रूप केलें ॥३१०॥
ऐसा मनें देहें वाचा। सर्व संन्यासु दंडाचा। जाहला ठायीं जयाचा। देखशील ॥३११॥
तो जाण वेल्हाळ। ज्ञानाचें वेळाउळ। हें असो निखळ। ज्ञानचि तो ॥३१२॥
जे अहिंसा कानें ऐकिजे। ग्रंथाधारें निरूपिजे। ते पाहावी हें उपजे। तैं तोचि पाहावा ॥३१३॥

ऐसें म्हणितलें देवें। तें बोलें एकें सांगावें। परी फांकला हें उपसाहावें। तुम्हीं मज ॥३१४॥
म्हणाल हिरवें चारीं गुरूं। विसरे मागील मोहर धरूं। कां वारेलगें पांखिरूं। गगनीं भरे ॥३१५॥
तैसिया प्रेमाचिया स्फूर्ती। फावलिया रसवृत्तीं। वाहविला मती। आकळेना ॥३१६॥
तरि तैसें नोहे अवधारा। कारण असें विस्तारा। एऱ्हवीं पद तरी अक्षरां। तिहींचेंचि ॥३१७॥
अहिंसा म्हणतां थोडी। परी ते तैंचि होय उघडी। जैं लोटिजती कोडी। मतांचिया ॥३१८॥
एऱ्हवीं प्राप्तें मतांतरें। थातंबूनि आंगभरें। बोलिजैल ते न सरे। तुम्हांपाशीं ॥३१९॥
रत्नपारखियांच्या गांवीं। जाईल गंडकी तरी सोडावी। काश्मीरीं न करावी। मिडगण जेवीं ॥३२०॥
काइसा वासु कापुरा। मंद जेथ अवधारा। पिठाचा विकरा। तिये सातें ? ॥३२१॥
म्हणौनि इये सभे। बोलकेपणाचेनि क्षोभें। लाग सरूं न लभे। बोला प्रभु ॥३२२॥
सामान्या आणि विशेषा। सकळै कीजेल देखा। तरी कानाचेया मुखा- । कडे न्याल ना तुम्ही ॥३२३॥
शंकेचेनि गदळें। जैं शुद्ध प्रमेय मैळे। तैं मागुतिया पाउलीं पळे। अवधान येतें ॥३२४॥
कां करूनि बाबुळियेची बुंथी। जळें जियें ठाती। तयांची वास पाहाती। हंसु काई ? ॥३२५॥
कां अभ्रापैलीकडे। जैं येत चांदिणें कोडें। तैं चकोरें चांचुवडें। उचलितीना ॥३२६॥
तैसें तुम्ही वास न पाहाल। ग्रंथु नेघा वरी कोपाल। जरी निर्विवाद नव्हैल। निरूपण ॥३२७॥
न बुझावितां मतें। न फिटे आक्षेपाचें लागतें। तें व्याख्यान जी तुमतें। जोडूनि नेदी ॥३२८॥
आणि माझें तंव आघवें। ग्रथन येणेचि भावें। जे तुम्हीं संतीं होआवें। सन्मुख सदां ॥३२९॥
एऱ्हवीं तरी साचोकारें। तुम्ही गीतार्थाचे सोइरे। जाणोनि गीता एकसरें। धरिली मियां ॥३३०॥
जें आपुलें सर्वस्व द्याल। मग इयेतें सोडवूनि न्याल। म्हणौनि ग्रंथु नव्हे वोल। साचचि हे ॥३३१॥
कां सर्स्वाचा लोभु धरा। वोलीचा अव्हेरु करा। तरी गीते मज अवधारा। एकचि गती ॥३३२॥
किंबहुना मज। तुमचिया कृपा काज। तियेलागीं व्याज। ग्रंथाचें केलें ॥३३३॥
तरी तुम्हां रसिकांजोगें। व्याख्यान शोधावें लागे। म्हणौनि जी मतांगें। बोलों गेलों ॥३३४॥
तंव कथेसि पसरु जाहला। श्लोकार्थु दूरी गेला। कीजो क्षमा यया बोला। अपत्या मज ॥३३५॥
आणि घांसाआंतिल हरळु। फेडितां लागे वेळु। ते दूषण नव्हें खडळु। सांडावा कीं ॥३३६॥
कां संवचोरा चुकवितां। दिवस लागलिया माता। कोपावें कीं जीविता। जिताणें कीजे ? ॥३३७॥
परी यावरील हें नव्हे। तुम्हीं उपसाहिलें तेंचि बरवें। आतां अवधारिजो देवें। बोलिलें ऐसें ॥३३८॥
म्हणे उन्मेखसुलोचना। सावध होईं अर्जुना। करूं तुज ज्ञाना। वोळखी आतां ॥३३९॥
तरी ज्ञान गा तें एथें। वोळख तूं निरुतें। आक्रोशेंवीण जेथें। क्षमा असे ॥३४०॥
अगाध सरोवरीं। कमळिणी जियापरी। कां सदैवाचिया घरीं। संपत्ति जैसी ॥३४१॥
पार्था तेणें पाडें। क्षमा जयातें वाढे। तेही लक्षे तें फुडें। लक्षण सांगों ॥३४२॥
तरी पढियंते लेणें। आंगीं भावें जेणें। धरिजे तेवीं साहणें। सर्वचि जया ॥३४३॥
त्रिविध मुख्य आघवे। उपद्रवांचे मेळावे। वरी पडिलिया नव्हे। वांकुडा जो ॥३४४॥
अपेक्षित पावे। तें जेणें तोषें मानवें। अनपेक्षिताही करवे। तोचि मानु ॥३४५॥
जो मानापमानातें साहे। सुखदुःख जेथ सामाये। निंदास्तुती नोहे। दुखंडु जो ॥३४६॥
उन्हाळेनि जो न तपे। हिमवंती न कांपे। कयसेनिही न वासिपे। पातलेया ॥३४७॥
स्वशिखरांचा भारु। नेणें जैसा मेरु। कीं धरा यज्ञसूकरु। वोझें न म्हणे ॥३४८॥
नाना चराचरीं भूतीं। दाटणी नव्हे क्षिती। तैसा नाना द्वंद्वीं प्राप्तीं। घामेजेना ॥३४९॥
घेऊनी जळाचे लोट। आलिया नदीनदांचे संघाट। करी वाड पोट। समुद्र जेवीं ॥३५०॥

तैसें जयाचिया ठायीं। न साहणें काहींचि नाहीं। आणि साहतु असे ऐसेंही। स्मरण नुरे ॥३५१॥
आंगा जें पातलें। तें करूनि घाली आपुलें। येथ साहतेनि नवलें। घेपिजेना ॥३५२॥
हे अनाक्रोश क्षमा। जयापाशीं प्रियोत्तमा। जाण तेणें महिमा। ज्ञानासि गा ॥३५३॥
तो पुरुषु पांडवा। ज्ञानाचा वोलावा। आतां परिस आर्जवा। रूप करूं ॥३५४॥
तरी आर्जव तें ऐसें। प्राणाचें सौजन्य जैसें। आवडे तयाही दोषें। एकचि गा ॥३५५॥
कां तोंड पाहूनि प्रकाशु। न करी जेवीं चंडांशु। जगा एकचि अवकाशु। आकाश जैसें ॥३५६॥
तैसें जयाचें मन। माणुसाप्रति आन आन। नव्हे आणि वर्तन। ऐसें पैं तें ॥३५७॥
जे जगेंचि सनोळख। जगेंसीं जुनाट सोयरिक। आपपर हें भाख। जाणणें नाहीं ॥३५८॥
भलतेणेंसीं मेळु। पाणिया ऐसा ढाळु। कवणेविखीं आडळु। नेघे चित्त ॥३५९॥
वारियाची धांव। तैसे सरळ भाव। शंका आणि हांव। नाहीं जया ॥३६०॥
मायेपुढें बाळका। रिगतां न पडे शंका। तैसें मन देतां लोकां। नालोची जो ॥३६१॥
फांकलिया इंदीवरा। परिवारु नाहीं धनुर्धरा। तैसा कोनकोंपरा। नेणेचि जो ॥३६२॥
चोखाळपण रत्नाचें। रत्नावरी किरणाचें। तैसें पुढां मन जयाचें। करणें पाठीं ॥३६३॥
आलोचूं जो नेणे। अनुभवचि जोगावणें। धरी मोकळी अंतःकरणें। नव्हेचि जया ॥३६४॥
दिठी नोहे मिणधी। बोलणें नाहीं संदिग्धी। कवणेंसीं हीनबुद्धी। राहाटीजे ना ॥३६५॥
दाही इंद्रियें प्रांजळें। निष्प्रपंचें निर्मळें। पांचही पालव मोकळे। आठही पाहर ॥३६६॥
अमृताची धार। तैसें उजूं अंतर। किंबहुना जो माहेर। या चिन्हांचें ॥३६७॥
तो पुरुष सुभटा। आर्जवाचा आंगवटा। जाण तेथेंचि घरटा। ज्ञानें केला ॥३६८॥
आतां ययावरी। गुरुभक्तीची परी। सांगों गा अवधारीं। चतुरनाथा ॥३६९॥
आघवियाचि दैवां। जन्मभूमि हे सेवा। जे ब्रह्म करी जीवा। शोच्यातेंहि ॥३७०॥
हें आचार्योपास्ती। प्रकटिजैल तुजप्रती। बैसों दे एकपांती। अवधानाची ॥३७१॥
तरी सकळ जळसमृद्धी। घेऊनि गंगा निघाली उदधी। कीं श्रुति हे महापदीं। पैठी जाहाली ॥३७२॥
नाना वेंटाळूनि जीवितें। गुणागुण उखितें। प्राणनाथा उचितें। दिधलें प्रिया ॥३७३॥
तैसें सबाह्य आपुलें। जेणें गुरुकुळीं वोपिलें। आपणपें केलें। भक्तीचें घर ॥३७४॥
गुरुगृह जये देशीं। तो देशुचि वसे मानसीं। विरहिणी कां जैसी। वल्लभातें ॥३७५॥
तियेकडोनि येतसे वारा। देखोनि धांवे सामोरा। आड पडे म्हणे घरा। बीजें कीजो ॥३७६॥
साचा प्रेमाचिया भुली। तया दिशेसीचि आवडे बोली। जीवु थानपती करूनि घाली। गुरुगृहीं जो ॥३७७॥
परी गुरुआज्ञा धरिलें। देह गांवीं असे एकलें। वांसरुवा लाविलें। दावें जैसें ॥३७८॥
म्हणे कैं हें बिरडें फिटेल। कैं तो स्वामी भेटेल। युगाहूनि वडील। निमिष मानी ॥३७९॥
ऐसेया गुरुग्रामींचें आलें। कां स्वयें गुरूंनींचि धाडिलें। तरी गतायुष्या जोडलें। आयुष्य जैसें ॥३८०॥
कां सुकतया अंकुरा-। वरी पडलिया पीयूषधारा। नाना अल्पोदकींचा सागरा। आला मासा ॥३८१॥
नातरी रंकें निधान देखिलें। कां आंधळिया डोळे उघडले। भणंगाचिया आंगा आलें। इंद्रपद ॥३८२॥
तैसें गुरुकुळाचेनि नांवें। महासुखें अति थोरावे। जें कोडेंही पोटाळवें। आकाश कां ॥३८३॥
पैं गुरुकुळीं ऐसी। आवडी जया देखसी। जाण ज्ञान तयापासीं। पाइकी करी ॥३८४॥
आणि अभ्यंतरीलियेकडे। प्रेमाचेनि पवाडे। श्रीगुरूंचें रूपडें। उपासी ध्यानीं ॥३८५॥
हृदयशुद्धीचिया आवारीं। आराध्यु तो निश्चल ध्रुव करी। मग सर्व भावेंसी परिवारीं। आपण होय ॥३८६॥
कां चैतन्यांचिये पोवळी-। माजीं आनंदाचिया राउळीं। श्रीगुरुलिंगा ढाळी। ध्यानामृत ॥३८७॥

उदयिजतां बोधार्का। बुद्धीची डाळ सात्त्विका। भरोनियां त्र्यंबका। लाखोली वाहे ॥३८८॥
काळशुद्धी त्रिकाळीं। जीवदशा धूप जाळीं। न्यानदीपें वोंवाळी। निरंतर ॥३८९॥
सामरस्याची रससोय। अखंड अर्पितु जाय। आपण भराडा होय। गुरु तो लिंग ॥३९०॥
नातरी जीवाचिये सेजे। गुरु कांतु करूनि भुंजे। ऐसीं प्रेमाचेनि भोजें। बुद्धी वाहे ॥३९१॥
कोणेएके अवसरीं। अनुरागु भरे अंतरीं। कीं तया नाम करी। क्षीराब्धी ॥३९२॥
तेथ ध्येयध्यान बहु सुख। तेंचि शेषतुका निर्दोख। वरी जलशयन देख। भावी गुरु ॥३९३॥
मग वोळगती पाय। ते लक्ष्मी आपण होय। गरुड होऊनि उभा राहे। आपणचि ॥३९४॥
नाभीं आपणचि जन्मे। ऐसें गुरुमूर्तिप्रेमें। अनुभवी मनोधर्में। ध्यानसुख ॥३९५॥
एकाधिये वेळें। गुरु माय करी भावबळें। मग स्तन्यसुखें लोळे। अंकावरी ॥३९६॥
नातरी गा किरीटी। चैतन्यतरुतळवटीं। गुरु धेनु आपण पाठीं। वत्स होय ॥३९७॥
गुरुकृपास्नेहसलिलीं। आपण होय मासोळी। कोणे एके वेळीं। हेंचि भावीं ॥३९८॥
गुरुकृपामृताचे वडप। आपण सेवावृत्तीचें होय रोप। ऐसेसे संकल्प। विये मन ॥३९९॥
चक्षुपक्षेवीण। पिलूं होय आपण। कैसें पैं अपारपण। आवडीचें ॥४००॥
गुरूतें पक्षिणी करी। चारा घे चांचूवरी। गुरु तारू धरी। आपण कांस ॥४०१॥
ऐसें प्रेमाचेनि थावें। ध्यानचि ध्यानातें प्रसवे। पूर्णसिंधु हेलावे। फुटती जैसे ॥४०२॥
किंबहुना यापरी। श्रीगुरुमूर्ती अंतरीं। भोगी आतां अवधारीं। बाह्यसेवा ॥४०३॥
तरी जिवीं ऐसे आवांके। म्हणे दास्य करीन निकें। जैसें गुरु कौतुकें। माग म्हणती ॥४०४॥
तैसिया साचा उपास्ती। गोसावी प्रसन्न होती। तेथ मी विनंती। ऐसी करीन ॥४०५॥
म्हणेन तुमचा देवा। परिवारु जो आघवा। तेतुलें रूपें होआवा। मीचि एकु ॥४०६॥
आणि उपकरतीं आपुलीं। उपकरणें आथि जेतुलीं। माझीं रूपें तेतुलीं। होआवीं स्वामी ॥४०७॥
ऐसा मागेन वरु। तेथ हो म्हणती श्रीगुरु। मग तो परिवारु। मीचि होईन ॥४०८॥
उपकरणजात सकळिक। तें मीचि होईन एकैक। तेव्हां उपास्तीचें कवतिक। देखिजैल ॥४०९॥
गुरु बहुतांची माये। परी एकलौती होऊनि ठाये। तैसें करूनि आण वायें। कृपे तिये ॥४१०॥
तया अनुरागा वेधु लावीं। एकपत्नीव्रत घेववीं। क्षेत्रसंन्यासु करवीं। लोभाकरवीं ॥४११॥
चतुर्दिक्षु वारा। न लाहे निघों बाहिरा। तैसा गुरुकृपें पांजिरा। मीचि होईन ॥४१२॥
आपुलिया गुणांचीं लेणीं। करीन गुरुसेवे स्वामिणी। हें असो होईन गंवसणी। मीचि भक्तीसी ॥४१३॥
गुरुस्नेहाचिये वृष्टी। मी पृथ्वी होईन तळवटीं। ऐसिया मनोरथांचिया सृष्टी। अनंता रची ॥४१४॥
म्हणे श्रीगुरूंचें भुवन। आपण मी होईन। आणि दास होऊनि करीन। दास्य तेथिंचें ॥४१५॥
निर्गमागमीं दातारें। जे वोलांडिजती उंबरे। ते मी होईन आणि द्वारें। द्वारपाळु ॥४१६॥
पाउवा मी होईन। तियां मीचि लेववीन। छत्र मी आणि करीन। बारीपण ॥४१७॥
मी तळ उपरु जाणविता। चंवरु धरु हातु देता। स्वामीपुढें खोलता। होईन मी ॥४१८॥
मीचि होईन सागळा। करूं सुईन गुरुळां। सांडिती तो नेपाळा। पडिघा मीचि ॥४१९॥
हडप मी वोळगेन। मीचि उगाळु घेईन। उळिग मी करीन। आंघोळीचें ॥४२०॥
होईन गुरूंचें आसन। अलंकार परिधान। चंदनादि होईन। उपचार ते ॥४२१॥
मीचि होईन सुआरु। वोगरीन उपहारु। आपणपें श्रीगुरु। वोंवाळीन ॥४२२॥
जे वेळीं देवो आरोगिती। तेव्हां पांतीकरु मीचि पांतीं। मीचि होईन पुढती। देईन विडा ॥४२३॥
ताट मी काढीन। सेज मी झाडीन। चरणसंवाहन। मीचि करीन ॥४२४॥

सिंहासन होईन आपण। वरी श्रीगुरु करिती आरोहण। होईन पुरेपण। वोळगेचें ॥४२५॥
श्रीगुरूंचें मन। जया देईल अवधान। तें मी पुढां होईन। चमत्कारु ॥४२६॥
तया श्रवणाचे आंगणीं। होईन शब्दांचिया आक्षौहिणी। स्पर्श होईन घसणी। आंगाचिया ॥४२७॥
श्रीगुरूंचे डोळे। अवलोकनें स्नेहाळें। पाहाती तियें सकळें। होईन रूपें ॥४२८॥
तिये रसने जो जो रुचेल। तो तो रसु म्यां होईजैल। गंधरूपें कीजेल। घ्राणसेवा ॥४२९॥
एवं बाह्यमनोगत। श्रीगुरुसेवा समस्त। वेंटाळीन वस्तुजात। होऊनियां ॥४३०॥
जंव देह हें असेल। तंव वोळगी ऐसी कीजेल। मग देहांतीं नवल। बुद्धि आहे ॥४३१॥
इये शरीरींची माती। मेळवीन तिये क्षिती। जेथ श्रीचरण उभे ठाती। श्रीगुरूंचे ॥४३२॥
माझा स्वामी कवतिकें। स्पर्शीजति जियें उदकें। तेथ लया नेईन निकें। आपीं आप ॥४३३॥
श्रीगुरु वोंवाळिजती। कां भुवनीं जे उजळिजती। तयां दीपांचिया दीप्तीं। ठेवीन तेज ॥४३४॥
चवरी हन विंजणा। तेथ लयो करीन प्राणा। मग आंगाचा वोळंगणा। होईन मी ॥४३५॥
जिये जिये अवकाशीं। श्रीगुरु असती परिवारेंसीं। आकाश लया आकाशीं। नेईन तिये ॥४३६॥
परी जीतु मेला न संडीं। निमेषु लोकां न धाडीं। ऐसेनि गणावया कोडी। कल्पांचिया ॥४३७॥
येतुलेंवरी धिंवसा। जयाचिया मानसा। आणि करूनियांहि तैसा। अपारु जो ॥४३८॥
रात्र दिवस नेणे। थोडें बहु न म्हणें। म्हणियाचेनि दाटपणें। साजा होय ॥४३९॥
तो व्यापारु येणें नांवें। गगनाहूनि थोरावे। एकला करी आघवें। एकेचि काळीं ॥४४०॥
हृदयवृत्ती पुढां। आंगचि घे दवडा। काज करी होडा। मानसेंशीं ॥४४१॥
एकादियां वेळा। श्रीगुरुचिया खेळा। लोण करी सकळा। जीविताचें ॥४४२॥
जो गुरुदास्यें कृशु। जो गुरुप्रेमें सपोषु। गुरुआज्ञे निवासु। आपणचि जो ॥४४३॥
जो गुरु कुळें सुकुलीनु। जो गुरुबंधुसौजन्यें सुजनु। जो गुरुसेवाव्यसनें सव्यसनु। निरंतर ॥४४४॥
गुरुसंप्रदायधर्म। तेचि जयाचे वर्णाश्रम। गुरुपरिचर्या नित्यकर्म। जयाचें गा ॥४४५॥
गुरु क्षेत्र गुरु देवता। गुरु माय गुरु पिता। जो गुरुसेवेपरौता। मार्ग नेणें ॥४४६॥
श्रीगुरूचे द्वार। तें जयाचें सर्वस्व सार। गुरुसेवकां सहोदर। प्रेमें भजे ॥४४७॥
जयाचें वक्त्र। वाहे गुरुनामाचे मंत्र। गुरुवाक्यावांचूनि शास्त्र। हातीं न शिवे ॥४४८॥
शिवतलें गुरुचरणीं। भलतैसें हो पाणी। तया सकळ तीर्थें आणी। त्रैलोक्यींचीं ॥४४९॥
श्रीगुरूचें उशिटें। लाहे जैं अवचटें। तैं तेणें लाभें विटे। समाधीसी ॥४५०॥
कैवल्यसुखासाठीं। परमाणु घे किरीटी। उधळती पायांपाठीं। चालतां जे ॥४५१॥
हें असो सांगावें किती। नाहीं पारु गुरुभक्ती। परी गा उत्क्रांतमती। कारण हें ॥४५२॥
जया इये भक्तीची चाड। जया इये विषयींचें कोड। जो हे सेवेवांचून गोड। न मनी कांहीं ॥४५३॥
तो तत्त्वज्ञाचा ठावो। ज्ञाना तेणेंचि आवो। हें असो तो देवो। ज्ञान भक्तु ॥४५४॥
हें जाण पां साचोकारें। तेथ ज्ञान उघडेनि द्वारें। नांदत असे जगा पुरे। इया रीती ॥४५५॥
जिये गुरुसेवेविखीं। माझा जीव अभिलाखी। म्हणौनि सोयचुकी। बोली केली ॥४५६॥
एऱ्हवीं असतां हातीं खुळा। भजनावधानीं आंधळा। परिचर्येलागीं पांगुळा- । पासूनि मंदु ॥४५७॥
गुरुवर्णनीं मुका। आळशी पोशिजे फुका। परी मनीं आथि निका। सानुरागु ॥४५८॥
तेणेंचि पैं कारणें। हें स्थूळ पोसणें। पडलें मज म्हणे। ज्ञानदेवो ॥४५९॥
परि तो बोलु उपसाहावा। आणि वोळगे अवसरु देयावा। आतां म्हणेन जी बरवा। ग्रंथार्थुचि ॥४६०॥
परिसा परिसा श्रीकृष्णु। जो भूतभारसहिष्णु। तो बोलतसे विष्णु। पार्थु ऐके ॥४६१॥

म्हणे शुचित्व गा ऐसें। जयापाशीं दिसे। आंग मन जैसें। कापुराचें ॥४६२॥
कां रत्नाचें दळवाडें। तैसें सबाह्य चोखडें। आंत बाहेरि एकें पाडें। सूर्यु जैसा ॥४६३॥
बाहेरीं कर्मे क्षाळला। भितरीं ज्ञानें उजळला। इहीं दोहीं परीं आला। पाखाळा एका ॥४६४॥
मृत्तिका आणि जळें। बाह्य येणें मेळें। निर्मळु होय बोलें। वेदाचेनी ॥४६५॥
भलतेथ बुद्धीबळी। रजआरिसा उजळी। सौंदणी फेडी थिगळी। वस्त्रांचिया ॥४६६॥
किंबहुना इयापरी। बाह्य चोख अवधारीं। आणि ज्ञानदीपु अंतरीं। म्हणौनि शुद्ध ॥४६७॥
एऱ्हवीं तरी पंडुसुता। आंत शुद्ध नसतां। बाहेरि कर्म तो तत्त्वतां। विटंबु गा ॥४६८॥
मृत जैसा शृंगारिला। गाढव तीर्थीं न्हाणिला। कडुदुधिया माखिला। गुळें जैसा ॥४६९॥
वोस गृहीं तोरण बांधिलें। कां उपवासी अन्नें लिंपिलें। कुंकुमसेंदुर केलें। कांतहीनेनें ॥४७०॥
कळस ढिमाचे पोकळ। जळो वरील तें झळाळ। काय करूं चित्रींव फळ। आंतु शेण ॥४७१॥
तैसें कर्मवरिचिलेंकडां। न सरे थोर मोलें कुडा। नव्हे मदिरेचा घडा। पवित्र गंगे ॥४७२॥
म्हणौनि अंतरीं ज्ञान व्हावें। मग बाह्य लाभेल स्वभावें। वरी ज्ञान कर्मे संभवे। ऐसें कें जोडे ? ॥४७३॥
यालागी बाह्य विभागु। कर्मे धुतला चांगु। आणि ज्ञानें फिटला वंगु। अंतरींचा ॥४७४॥
तेथ अंतर बाह्य गेले। निर्मळत्व एक जाहलें। किंबहुना उरलें। शुचित्वचि ॥४७५॥
म्हणौनि सद्भाव जीवगत। बाहेरी दिसती फांकत। जे स्फटिकगृहींचे डोलत। दीप जैसे ॥४७६॥
विकल्प जेणें उपजे। नाथिली विकृति निपजे। अप्रवृत्तीचीं बीजें। अंकुर घेती ॥४७७॥
तें आइके देखे अथवा भेटे। परी मनीं कांहींचि नुमटे। मेघरंगें न कांटे। व्योम जैसें ॥४७८॥
एऱ्हवीं इंद्रियांचेनि मेळें। विषयांवरी तरी लोळे। परी विकाराचेनि विटाळें। लिंपिजेना ॥४७९॥
भेटलिया वाटेवरी। चोखी आणि माहारी। तेथ नातळें तियापरी। राहाटों जाणें ॥४८०॥
कां पतिपुत्रांतें आलिंगी। एकचि ते तरुणांगी। तेथ पुत्रभावाच्या आंगीं। न रिगे कामु ॥४८१॥
तैसें हृदय चोख। संकल्पविकल्पीं सनोळख। कृत्याकृत्य विशेख। फुडें जाणें ॥४८२॥
पाणियें हिरा न भिजे। आधणीं हरळु न शिजे। तैसी विकल्पजातें न लिंपिजे। मनोवृत्ती ॥४८३॥
तया नांव शुचिपण। पार्था गा संपूर्ण। हें देखसी तेथ जाण। ज्ञान असे ॥४८४॥
आणि स्थिरता साचें। घर रिगाली जयाचें। तो पुरुष ज्ञानाचें। आयुष्य गा ॥४८५॥
देह तरी वरिचिलीकडे। आपुलिया परी हिंडे। परी बैसका न मोडे। मानसींची ॥४८६॥
वत्सावरूनि धेनूचें। स्नेह राना न वचे। नव्हती भोग सतियेचे। प्रेमभोग ॥४८७॥
कां लोभिया दूर जाये। परी जीव ठेविलाचि ठाये। तैसा देहो चाळितां नव्हे। चळु चित्ता ॥४८८॥
जातया अभ्रासवें। जैसें आकाश न धांवे। भ्रमणचक्रीं न भंवे। ध्रुव जैसा ॥४८९॥
पांथिकाचिया येरझारा। सवें पंथु न वचे धनुर्धरा। कां नाहीं जेवीं तरुवरा। येणें जाणें ॥४९०॥
तैसा चळणवळणात्मकीं। असोनि ये पांचभौतिकीं। भूतोर्मी एकी। चळिजेना ॥४९१॥
वाहुटळीचेनि बळें। पृथ्वी जैसी न ढळे। तैसा उपद्रव उमाळें। न लोटे जो ॥४९२॥
दैन्यदुःखीं न तपे। भवशोकीं न कंपे। देहमृत्यु न वासिपे। पातलेनी ॥४९३॥
आर्ति आशा पडिभरें। वय व्याधी गजरें। उजू असतां पाठिमोरें। नव्हे चित्त ॥४९४॥
निंदा निस्तेज दंडी। कामलोभा वरपडी। परी रोमा नव्हे वांकुडी। मानसाची ॥४९५॥
आकाश हें वोसरो। पृथ्वी वरि विरो। परि नेणे मोहरों। चित्तवृत्ती ॥४९६॥
हाती हाला फुलीं। पासवणा जेवीं न घाली। तैसा न लोटे दुर्वाक्यशेलीं। शेलिला सांता ॥४९७॥
क्षीरार्णवाचिया कल्लोळीं। कंपु नाहीं मंदराचळीं। कां आकाश न जळे जाळीं। वणवियाच्या ॥४९८॥

तैशा आल्या गेल्या ऊर्मी। नव्हे गजबज मनोधर्मीं। किंबहुना धैर्य क्षमी। कल्पांतींही ॥४९९॥
परी स्थैर्य ऐसी भाष। बोलिजे जे सविशेष। ते हे दशा गा देख। देखणया ॥५००॥
हें स्थैर्य निधडें। जेथ आंगें जीवें जोडे। तें ज्ञानाचें उघडें। निधान साचें ॥५०१॥
आणि इसाळु जैसा घरा। कां दंदिया हतियेरा। न विसंबे भांडारा। बद्धकु जैसा ॥५०२॥
कां एकलौतिया बाळका- । वरि पडौनि ठाके अंबिका। मधुविषीं मधुमक्षिका। लोभिणी जैसी ॥५०३॥
अर्जुना जो यापरी। अंतःकरण जतन करी। नेदी उभें ठाकों द्वारीं। इंद्रियांच्या ॥५०४॥
म्हणे काम बागुल ऐकेल। हे आशा सियारी देखैल। तरि जीवा टेंकैल। म्हणौनि बिहे ॥५०५॥
बाहेरी धीट जैसी। दाटुगा पति कळासी। करी टेहणी तैसी। प्रवृत्तीसीं ॥५०६॥
सचेतनीं वाणेपणें। देहासकट आटणें। संयमावरीं करणें। बुझूनि घाली ॥५०७॥
मनाच्या महाद्वारीं। प्रत्याहाराचिया ठाणांतरीं। जो यम दम शरीरीं। जागवी उभे ॥५०८॥
आधारीं नाभीं कंठीं। बंधत्रयाचीं घरटीं। चंद्रसूर्य संपुटीं। सुये चित्त ॥५०९॥
समाधीचे शेजेपासीं। बांधोनि घाली ध्यानासी। चित्त चैतन्य समरसीं। आंतु रते ॥५१०॥
अगा अंतःकरणनिग्रहो जो। तो हा हें जाणिजो। हा आथी तेथ विजयो। ज्ञानाचा पैं ॥५११॥
जयाची आज्ञा आपण। शिरीं वाहे अंतःकरण। मनुष्याकारें जाण। ज्ञानचि तो ॥५१२॥

इंद्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥८॥

आणि विषयांविखीं। वैराग्याची निकी। पुरवणी मानसीं कीं। जिती आथी ॥५१३॥
वमिलेया अन्ना। लाळ न घोंटी जेवीं रसना। कांआंग न सूये आलिंगना। प्रेताचिया ॥५१४॥
विष खाणें नागवे। जळत घरीं न रिगवे। व्याघ्रविवरां न वचवे। वस्ती जेवीं ॥५१५॥
धडाडीत लोहरसीं। उडी न घालवे जैसी। न करवे उशी। अजगराची ॥५१६॥
अर्जुना तेणें पाडें। जयासी विषयवार्ता नावडे। नेदी इंद्रियांचेनि तोंडें। कांहींच जावों ॥५१७॥
जयाचे मनीं आलस्य। देही अतिकार्श्य। शमदमीं सौरस्य। जयासि गा ॥५१८॥
तपोव्रतांचा मेळावा। जयाच्या ठायीं पांडवा। युगांत जया गांवा- । आंतु येतां ॥५१९॥
बहु योगाभ्यासीं हांव। विजनाकडे धांव। न साहे जो नांव। संघाताचें ॥५२०॥
नाराचांचीं आंथुरणें। पूयपंकीं लोळणें। तैसें लेखी भोगणें। ऐहिकींचें ॥५२१॥
आणि स्वर्गातें मानसें। ऐकोनि मानी ऐसें। कुहिलें पिशित जैसें। श्वानाचें कां ॥५२२॥
तें हें विषयवैराग्य। जें आत्मलाभाचें सभाग्य। येणें ब्रह्मानंदा योग्य। जीव होती ॥५२३॥
ऐसा उभयभोगीं त्रासु। देखसी जेथ बहुवसु। तेथ जाण रहिवासु। ज्ञानाचा तूं ॥५२४॥
आणि सचाडाचिये परी। इष्टापूर्तें करी। परी केलेंपण शरीरीं। वसों नेदी ॥५२५॥
वर्णाश्रमपोषकें। कर्मे नित्यनैमित्तिकें। तयामाजीं कांहीं न ठके। आचरतां ॥५२६॥
परि हें मियां केलें। कीं हें माझेनि सिद्धी गेलें। ऐसें नाहीं ठेविलें। वासनेमाजीं ॥५२७॥
जैसें अवचितपणें। वायूसि सर्वत्र विचरणें। कां निरभिमान उदैजणें। सूर्याचें जैसें ॥५२८॥
कां श्रुति स्वभावता बोले। गंगा काजेंविण चाले। तैसें अवष्टंभहीन भलें। वर्तणें जयाचें ॥५२९॥
ऋतुकाळीं तरी फळती। परी फळलों हें नेणती। तयां वृक्षांचिये ऐसी वृत्ती। कर्मीं सदा ॥५३०॥
एवं मनीं कर्मीं बोलीं। जेथ अहंकारा उखी जाहली। एकावळीची काढिली। दोरी जैसी ॥५३१॥
संबंधेंवीण जैसीं। अभ्रें असती आकाशीं। देहीं कर्में तैसीं। जयासि गा ॥५३२॥
मद्यपाआंगींचें वस्त्र। लेपाहातींचें शस्त्र। बैलावरी शास्त्र। बांधलें आहे ॥५३३॥

तया पाडें देहीं। जया मी आहे हे सेचि नाहीं। निरहंकारता पाहीं। तया नांव ॥५३४॥
हें संपूर्ण जेथें दिसे। तेथेंचि ज्ञान असे। इयेविषीं अनारिसें। बोलों नये ॥५३५॥
आणि जन्ममृत्युजरादुःखें। व्याधिवार्धक्यकलुषें। तियें आंगा न येतां देखे। दुरूनि जो ॥५३६॥
साधकु विवसिया। कां उपसर्गु योगिया। पावे उणेयापुरेया। वोथंबा जेवीं ॥५३७॥
वैर जन्मांतरींचें। सर्पा मनौनि न वचे। तेवीं अतीता जन्माचें। उणें जो वाहे ॥५३८॥
डोळां हरळ न विरे। घाईं कोत न जिरे। तैसें काळींचें न विसरे। जन्मदुःख ॥५३९॥
म्हणे पूयगर्ते रिगाला। अहा मूत्ररंध्रें निघाला। कटा रे मियां चाटिला। कुचस्वेदु ॥५४०॥
ऐसाइसिया परी। जन्माचा कांटाळा धरी। म्हणे आतां तें मी न करीं। जेणें ऐसें होय ॥५४१॥
हारी उमचावया। जुंवारी जैसा ये डाया। कीं वैरा बापाचेया। पुत्र जचे ॥५४२॥
मारिलियाचेनि रागें। पाठीचा जेवीं सूड मागें। तेणें आक्षेपें लागे। जन्मापाठीं ॥५४३॥
परी जन्मती ते लाज। न सांडी जयाचें निज। संभाविता निस्तेज। न जिरे जेवीं ॥५४४॥
आणि मृत्यु पुढां आहे। तोचि कल्पांतीं कां पाहे। परी आजीचि होये। सावधु जो ॥५४५॥
माजीं अथांव म्हणता। थडियेचि पंडुसुता। पोहणारा आइता। कासे जेवीं ॥५४६॥
कां न पवतां रणाचा ठावो। सांभाळिजे जैसा आवो। वोडण सुइजे घावो। न लागतांचि ॥५४७॥
पाहेचा पेणा वाटवधा। तंव आजीचि होईजे सावधा। जीवु न वचतां औषधा। धांविजे जेवीं ॥५४८॥
येऱ्हवीं ऐसें घडे। जो जळतां घरीं सांपडे। तो मग न पवाडे। कुहा खणों ॥५४९॥
चोंढिये पाथरु गेला। तैसेनि जो बुडाला। तो बोंबेहिसकट निमाला। कोण सांगे ॥५५०॥
म्हणौनि समर्थेंसीं वैर। जया पडिलें हाडखाइर। तो जैसा आठही पाहर। परजून असे ॥५५१॥
नातरी केळवली नोवरी। का संन्यासी जियापरी। तैसा न मरतां जो करी। मृत्युसूचना ॥५५२॥
पैं गा जो ययापरी। जन्मेंचि जन्म निवारी। मरणें मृत्यु मारी। आपण उरे ॥५५३॥
तया घरीं ज्ञानाचें। सांकडें नाहीं साचें। जया जन्ममृत्युचें। निमालें शल्य ॥५५४॥
आणि तयाचिपरी जरा। न टेंकतां शरीरा। तारुण्याचिया भरा-। माजीं देखे ॥५५५॥
म्हणे आजिच्या अवसरीं। पुष्टि जे शरीरीं। ते पाहे होईल काचरी। वाळली जैसी ॥५५६॥
निदैव्याचे व्यवसाय। तैसे ठाकती हातपाय। अमंत्र्या राजाची परी आहे। बळा यया ॥५५७॥
फुलांचिया भोगा-। लागीं प्रेम टांगा। तें करेयाचा गुडघा। तैसें होईल ॥५५८॥
वोढाळाच्या खुरीं। आखरुआतें बुरी। ते दशा माझ्या शिरीं। पावेल गा ॥५५९॥
पद्मदळेंसी इसाळे। भांडताति हे डोळे। ते होती पडवळें। पिकलीं जैसीं ॥५६०॥
भंवईचीं पडळें। वोमथती सिनसाळे। उरु कुहिजैल जळें। आंसुवाचेनि ॥५६१॥
जैसें बाभुळीचें खोड। गिरबडूनि जाती सरड। तैसें पिचडीं तोंड। सरकटिजैल ॥५६२॥
रांधवणी चुलीपुढें। पऱ्हे उन्मादती खातवडे। तैसींचि यें नाकाडें। बिडबिडती ॥५६३॥
तांबुलें वोंठ रꣳ। हांसतां दांत दꣳ। सनागर मिरऊं। बोल जेणें ॥५६४॥
तयाचि पाहे या तोंडा। येईल जळंबटाचा लोंढा। इया उमळती दाढा। दातांसहित ॥५६५॥
कुळवाडी रिणें दाटली। कां वांकडिया ढोरें बैसलीं। तैसी नुठी कांहीं केली। जीभचि हे ॥५६६॥
कुसळें कोरडीं। वारेनि जाती बरडीं। तैसा आपदा तोंडीं। दाढियेसी ॥५६७॥
आषाढींचेनि जळें। जैसीं झिरपती शैलाचीं मौळें। तैसें खांडीहूनि लाळे। पडती पूर ॥५६८॥
वाचेसि अपवाडु। कानीं अनुघडु। पिंड गरुवा माकडु। होईल हा ॥५६९॥
तृणाचें बुझवणें। आंदोळे वारेनगुणें। तैसें येईल कांपणें। सर्वांगासी ॥५७०॥

पायां पडती वेंगडी। हात वळती मुरकुंडी। बरवपणा बागडी। नाचविजैल ॥५७१॥
मळमूत्रद्वारें। होऊनि ठाती खोंकरें। नवसियें होती इतरें। माझियां निधनीं ॥५७२॥
देखोनि थुंकील जगु। मरणाचा पडैल पांगु। सोइरियां उबगु। येईल माझा ॥५७३॥
स्त्रियां म्हणती विवसी। बाळें जाती मूर्छी। किंबहुना चिळसी। पात्र होईन ॥५७४॥
उभळीचा उजगरा। सेजारियां साइलिया घरा। शिणवील म्हणती म्हातारा। बहुतांतें हा ॥५७५॥
ऐसी वार्धक्याची सूचणी। आपणिया तरुणपणीं। देखे मग मनीं। विटे जो गा ॥५७६॥
म्हणे पाहे हें येईल। आणि आतांचें भोगितां जाईल। मग काय उरेल। हितालागीं ? ॥५७७॥
म्हणौनि नाइकणें पावे। तंव आईकोनि घाली आघवें। पंगु न होता जावें। तेथ जाय ॥५७८॥
दृष्टी जंव आहे। तंव पाहावें तेतुलें पाहे। मूकत्वा आधीं वाचा वाहे। सुभाषितें ॥५७९॥
हात होती खुळे। हें पुढील मोटकें कळे। आणि करूनि घाली सकळें। दानादिकें ॥५८०॥
ऐसी दशा येईल पुढें। तैं मन होईल वेडें। तंव चिंतूनि ठेवी चोखडें। आत्मज्ञान ॥५८१॥
जैं चोर पाहे झोंबती। तंव आजीचि रुसिजे संपत्ती। का झांकाझांकी वाती। न वचतां कीजे ॥५८२॥
तैसें वार्धक्य यावें। मग जें वायां जावें। तें आतांचि आघवें। सवतें करीं ॥५८३॥
आतां मोडूनि ठेलीं दुर्गें। कां वळित धरिलें खगें। तेथ उपेक्षूनि जो निघे। तो नागवला कीं ? ॥५८४॥
तैसें वृद्धाप्य होये। आलेपण तें वायां जाये। जे तो शतवृद्ध आहे। नेणों कैंचा ॥५८५॥
झाडिलींचि कोळें झाडी। तया न फळे जेवीं बोंडीं। जाहला अग्नि तरी राखोंडी। जाळील काई ? ॥५८६॥
म्हणौनि वार्धक्याचेनि आठवें। वार्धक्या जो नागवे। तयाच्या ठायीं जाणावें। ज्ञान आहे ॥५८७॥
तैसेंचि नाना रोग। पडिघाती ना जंव पुढां आंग। तंव आरोग्याचे उपेग। करूनि घाली ॥५८८॥
सापाच्या तोंडी। पडली जे उंडी। ते लाऊनि सांडी। प्रबुद्धु जैसा ॥५८९॥
तैसा वियोगें जेणें दुःखे। विपत्ति शोक पोखे। तें स्नेह सांडूनि सुखें। उदासु होय ॥५९०॥
आणि जेणें जेणें कडे। दोष सूतील तोंडें। तयां कर्मरंध्रीं गुंडे। नियमाचे दाटी ॥५९१॥
ऐसाइसिया आइती। जयाची परी असती। तोचि ज्ञानसंपत्ती- । गोसावी गा ॥५९२॥
आतां आणीकही एक। लक्षण अलौकिक। सांगेन आइक। धनंजया ॥५९३॥

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥९॥

तरि जो या देहावरी। उदासु ऐसिया परी। उखिता जैसा बिढारीं। बैसला आहे ॥५९४॥
कां झाडाची साउली। वाटे जातां मीनली। घरावरी तेतुली। आस्था नाहीं ॥५९५॥
साउली सरिसीच असे। परी असे हें नेणिजे जैसें। स्त्रियेचें तैसें। लोलुप्य नाहीं ॥५९६॥
आणि प्रजा जे जाली। तियें वस्ती कीर आलीं। कां गोरुवें बैसलीं। रुखातळीं ॥५९७॥
जो संपत्तीमाजी असतां। ऐसा गमे पंडुसुता। जैसा कां वाटे जातां। साक्षी ठेविला ॥५९८॥
किंबहुना पुंसा। पांजरियामाजीं जैसा। वेदाज्ञेसी तैसा। बिहूनि असे ॥५९९॥
एऱ्हवीं दारागृहपुत्रीं। नाहीं जया मैत्री। तो जाण पां धात्री। ज्ञानासि गा ॥६००॥
महासिंधू जैसे। ग्रीष्मवर्षीं सरिसे। इष्टानिष्ट तैसें। जयाच्या ठायीं ॥६०१॥
कां तिन्ही काळ होतां। त्रिधा नव्हे सविता। तैसा सुखदुःखीं चित्ता। भेदु नाहीं ॥६०२॥
जेथ नभाचेनि पाडें। समत्वा उणें न पडे। तेथ ज्ञान रोकडें। वोळख तूं ॥६०३॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥१०॥

आणि मीवांचूनि कांहीं। आणिक गोमटें नाहीं। ऐसा निश्चयोचि तिहीं। जयाचा केला ॥६०४॥
शरीर वाचा मानस। पियालीं कृतनिश्चयाचा कोश। एक मीवांचूनि वास। न पाहती आन ॥६०५॥
किंबहुना निकट निज। जयाचें जाहलें मज। तेणें आपणयां आम्हां सेज। एकी केली ॥६०६॥
रिगतां वल्लभापुढें। नाहीं आंगीं जीवीं सांकडें। तिये कांतेचेनि पाडें। एकसरला जो ॥६०७॥
मिळोनि मिळतचि असे। समुद्रीं गंगाजळ जैसें। मी होऊनि मज तैसें। सर्वस्वें भजती ॥६०८॥
सूर्याच्या होण्यां होईजे। कां सूर्यासवेंचि जाइजे। हें विकलेपण साजे। प्रभेसि जेवीं ॥६०९॥
पैं पाणियाचिये भूमिके। पाणी तळपे कौतुकें। ते लहरी म्हणती लौकिकें। एऱ्हवीं तें पाणी ॥६१०॥
जो अनन्यु यापरी। मी जाहलाहि मातें वरी। तोचि तो मूर्तधारी। ज्ञान पैं गा ॥६११॥
आणि तीर्थें धौतें तटें। तपोवनें चोखटें। आवडती कपाटें। वसवूं जया ॥६१२॥
शैलकक्षांचीं कुहरें। जळाशय परिसरें। अधिष्ठी जो आदरें। नगरा न ये ॥६१३॥
बहु एकांतावरी प्रीति। जया जनपदाची खंती। जाण मनुष्याकारें मूर्ती। ज्ञानाची तो ॥६१४॥
आणिकहि पुढती। चिन्हें गा सुमती। ज्ञानाचिये निरुती- । लागीं सांगों ॥६१५॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतद्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोन्यथा ॥११॥
तरी परमात्मा ऐसें। जें एक वस्तु असे। तें जया दिसें। ज्ञानास्तव ॥६१६॥
तें एकवांचूनि आनें। जियें भवस्वर्गादि ज्ञानें। तें अज्ञान ऐसा मनें। निश्चयो केला ॥६१७॥
स्वर्गा जाणें हें सांडी। भवविषयीं कान झाडी। दे अध्यात्मज्ञानीं बुडी। सद्भावाची ॥६१८॥
भंगलिये वाटे। शोधूनिया अव्हांटे। निघिजे जेवीं नीटें। राजपंथें ॥६१९॥
तैसें ज्ञानजातां करी। आघवेंचि एकीकडे सारी। मग मन बुद्धि मोहरी। अध्यात्मज्ञानीं ॥६२०॥
म्हणे एक हेंचि आथी। येर जाणणें ते भ्रांती। ऐसी निकुरेंसी मती। मेरु होय ॥६२१॥
एवं निश्चयो जयाचा। द्वारीं आध्यात्मज्ञानाचा। ध्रुव देवो गगनींचा। तैसा राहिला ॥६२२॥
तयाच्या ठायीं ज्ञान। या बोला नाहीं आन। जे ज्ञानीं बैसलें मन। तेव्हांचि तें तो मी ॥६२३॥
तरी बैसलेपणें जें होये। बैसतांचि बोलें न होये। तरी ज्ञाना तया आहे। सरिसा पाडु ॥६२४॥
आणि तत्त्वज्ञान निर्मळ। फळे जें एक फळ। तें ज्ञेयही वरी सरळ। दिठी जया ॥६२५॥
एऱ्हवीं बोधा आलेनि ज्ञानें। जरी ज्ञेय न दिसेचि मनें। तरी ज्ञानलाभुही न मने। जाहला सांता ॥६२६॥
आंधळेनि हातीं दिवा। घेऊनि काय करावा ? । तैसा ज्ञाननिश्चयो आघवा। वायांचि जाय ॥६२७॥
जरि ज्ञानाचेनि प्रकाशें। परतत्त्वीं दिठी न पैसे। ते स्फूर्तीचि असे। अंध होऊनी ॥६२८॥
म्हणौनि ज्ञान जेतुलें दावीं। तेतुली वस्तुचि आघवी। तें देखे ऐशी व्हावी। बुद्धि चोख ॥६२९॥
यालागीं ज्ञानें निर्दोखें। दाविलें ज्ञेय देखे। तैसेनि उन्मेखें। आथिला जो ॥६३०॥
जेवढी ज्ञानाची वृद्धी। तेवढीच जयाची बुद्धी। तो ज्ञान हे शब्दीं। करणें न लगे ॥६३१॥
पैं ज्ञानाचिये प्रभेसवें। जयाची मती ज्ञेयीं पावे। तो हातधरणिया शिवे। परतत्त्वातें ॥६३२॥
तोचि ज्ञान हें बोलतां। विस्मो कवण पंडुसुता ? । काय सवितयातें सविता। म्हणावें असें ? ॥६३३॥
तंव श्रोतें म्हणती असो। न सांगें तयाचा अतिसो। ग्रंथोक्ती तेथ आडसो। घालितोसी कां ? ॥६३४॥
तुझा हाचि आम्हां थोरु। वक्तृत्वाचा पाहुणेरु। जे ज्ञानविषो फारु। निरोपिला ॥६३५॥
रसु होआवा अतिमात्रु। हा घेतासि कविमंत्रु। तरी अवंतूनि शत्रु। करितोसि कां गा ? ॥६३६॥
ठायीं बैसतिये वेळे। जे रससोय घेऊनि पळे। तियेचा येरु वोडव मिळे। कोणा अर्था ? ॥६३७॥
आघवाचि विषयीं भादी। परी सांजवणीं टेंकों नेदी। ते खुरतोडी नुसधी। पोषी कवण ? ॥६३८॥

तैसी ज्ञानीं मती न फांके। येर जल्पती नेणों केतुकें। परि तें असो निकें। केलें तुवां ॥६३९॥
जया ज्ञानलेशोद्देशें। कीजती योगादि सायासें। तें धणीचें आथी तुझिया ऐसें। निरूपण ॥६४०॥
अमृताची सातवांकुडी। लागो कां अनुघडी। सुखाच्या दिवसकोडी। गणिजतु कां ॥६४१॥
पूर्णचंद्रेंसीं राती। युग एक असोनि पहाती। तरी काय पाहात आहाती। चकोर ते ? ॥६४२॥
तैसें ज्ञानाचें बोलणें। आणि येणें रसाळपणें। आतां पुरे कोण म्हणे ? । आकर्णितां ॥६४३॥
आणि सभाग्यु पाहुणा ये। सुभगाचि वाढती होये। तैं सरों नेणें रससोये। ऐसें आथी ॥६४४॥
तैसा जाहला प्रसंगु। जे ज्ञानीं आम्हांसि लागु। आणि तुजही अनुरागु। आथि तेथ ॥६४५॥
म्हणौनि यया वाखाणा- । पासीं से आली चौगुणा। ना म्हणों नयेसि देखणा ? । होसी ज्ञानी ॥६४६॥
तरी आतां ययावरी। प्रज्ञेच्या माजघरीं। पदें साच करीं। निरूपणीं ॥६४७॥
या संतवाक्यासरिसें। म्हणितलें निवृत्तिदासें। माझेंही जी ऐसें। मनोगत ॥६४८॥
यावरी आतां तुम्हीं। आज्ञापिला स्वामी। तरी वायां वागू मी। वाढों नेदी ॥६४९॥
एवं इयें अवधारा। ज्ञानलक्षणें अठरा। श्रीकृष्णें धनुर्धरा। निरूपिली ॥६५०॥
मग म्हणें या नांवें। ज्ञान एथ जाणावें। हे स्वमत आणि आघवें। ज्ञानियेही म्हणती ॥६५१॥
करतळावरी वाटोळा। डोलतु देखिजे आंवळा। तैसें ज्ञान आम्हीं डोळां। दाविलें तुज ॥६५२॥
आतां धनंजया महामती। अज्ञान ऐसी वदंती। तेंही सांगों व्यक्ती। लक्षणेंसीं ॥६५३॥
एऱ्हवीं ज्ञान फुडें जालिया। अज्ञान जाणवे धनंजया। जें ज्ञान नव्हे तें अपैसया। अज्ञानचि ॥६५४॥
पाहें पां दिवसु आघवा सरे। मग रात्रीची वारी उरे। वांचूनि कांहीं तिसरें। नाहीं जेवीं ॥६५५॥
तैसें ज्ञान जेथ नाहीं। तेंचि अज्ञान पाहीं। तरी सांगों कांहीं कांहीं। चिन्हें तियें ॥६५६॥
तरी संभावने जिये। जो मानाची वाट पाहे। सत्कारें होये। तोषु जया ॥६५७॥
गर्वें पर्वताचीं शिखरें। तैसा महत्त्वावरूनि नुतरे। तयाचिया ठायीं पुरे। अज्ञान आहे ॥६५८॥
आणि स्वधर्माची मांगळी। बांधे वाचेच्या पिंपळीं। उभिला जैसा देउळीं। जाणोनि कुंचा ॥६५९॥
घाली विद्येचा पसारा। सूये सुकृताचा डांगोरा। करी तेतुलें मोहरा। स्फीतीचिया ॥६६०॥
आंग वरिवरी चर्ची। जनातें अभ्यर्चितां वंची। तो जाण पां अज्ञानाची। खाणी एथ ॥६६१॥
आणि वन्ही वनीं विचरे। तेथ जळती जैसीं जंगमें स्थावरें। तैसें जयाचेनि आचारें। जगा दुःख ॥६६२॥
कौतुकें जें जें जल्पे। तें साबळाहूनि तीख रुपे। विषाहूनि संकल्पें। मारकु जो ॥६६३॥
तयातें बहु अज्ञान। तोचि अज्ञानाचें निधान। हिंसेसि आयतन। जयाचें जिणें ॥६६४॥
आणि फुंकें भाता फुगे। रेचिलिया सवेंचि उफगे। तैसा संयोगवियोगें। चढे वोहटे ॥६६५॥
पडली वारयाचिया वळसा। धुळी चढे आकाशा। हरिखा वळघे तैसा। स्तुतीवेळे ॥६६६॥
निंदा मोटकी आइके। आणि कपाळ धरूनि ठाके। थेंबें विरे वारोनि शोखे। चिखलु जैसा ॥६६७॥
तैसा मानापमानीं होये। जो कोण्हीचि उर्मी न साहे। तयाच्या ठायीं आहे। अज्ञान पुरें ॥६६८॥
आणि जयाचिया मनीं गांठी। वरिवरी मोकळी वाचा दिठी। आंगें मिळे जीवें पाठीं। भलतया दे ॥६६९॥
व्याधाचे चारा घालणें। तैसें प्रांजळ जोगावणें। चांगाचीं अंतःकरणें। विरु करी ॥६७०॥
गार शेवाळें गुंडाळली। कां निंबोळी जैसी पिकली। तैसी जयाची भली। बाह्य क्रिया ॥६७१॥
अज्ञान तयाचिया ठायीं। ठेविलें असे पाहीं। याबोला आन नाहीं। सत्य मानीं ॥६७२॥
आणि गुरुकुळीं लाजे। जो गुरुभक्ती उभजे। विद्या घेऊनि माजे। गुरूसींचि जो ॥६७३॥
तयाचें नाम घेणें। तें वाचे शूद्रान्न होणें। परी घडलें लक्षणें। बोलतां इयें ॥६७४॥
आता गुरुभक्तांचें नांव घेवों। तेणें वाचेसि प्रायश्चित देवों। गुरुसेवका नांव पावों। सूर्यु जैसा ॥६७५॥

येतुलेनि पांगु पापाचा। निस्तरेल हे वाचा। जो गुरुतल्पगाचा। नामीं आला ॥६७६॥
हा ठायवरी। तया नामाचें भय हरी। मग म्हणे अवधारीं। आणिकें चिन्हें ॥६७७॥
तरि आंगें कर्में ढिला। जो मनें विकल्पें भरला। अडवींचा अवगळला। कुहा जैसा ॥६७८॥
तया तोंडीं कांटिवडे। आंतु नुसधीं हाडें। अशुचि तेणें पाडें। सबाह्य जो ॥६७९॥
जैसें पोटालागीं सुणें। उघडें झांकलें न म्हणे। तैसें आपलें परावें नेणे। द्रव्यालागीं ॥६८०॥
इया ग्रामसिंहाचिया ठायीं। जैसा मिळणी ठावो अठावो नाहीं। तैसा स्त्रीविषयीं कांहीं। विचारीना ॥६८१॥
कर्माचा वेळु चुके। कां नित्य नैमित्तिक ठाके। तें जया न दुखे। जीवामाजीं ॥६८२॥
पापी जो निसुगु। पुण्याविषयीं अतिनिलागु। जयाचिया मनीं वेगु। विकल्पाचा ॥६८३॥
तो जाण निखिळा। अज्ञानाचा पुतळा। जो बांधोनि असे डोळां। वित्ताशेतें ॥६८४॥
आणि स्वार्थें अळुमाळें। जो धैर्यापासोनि चळे। जैसें तृणबीज ढळे। मुंगियेचेनी ॥६८५॥
पावो सूदलिया सवें। जैसें थिल्लर कालवे। तैसा भयाचेनि नांवें। गजबजे जो ॥६८६॥
मनोरथांचिया धारसा। वाहणें जयाचिया मानसा। पूरीं पडिला जैसा। दुधिया पाहीं ॥६८७॥
वायूचेनि सावायें। धू दिगंतरा जाये। दुःखवार्ता होये। तसें जया ॥६८८॥
वाउधणाचिया परी। जो आश्रो कहींचि न धरी। क्षेत्रीं तीर्थीं पुरीं। थारों नेणे ॥६८९॥
कां मातलिया सरडा। पुढती बुडुख पुढती शेंडा। हिंडणवारा कोरडा। तैसा जया ॥६९०॥
जैसा रोविल्याविणें। रांजणु थारों नेणे। तैसा पडे तैं राहणें। एऱ्हवीं हिंडे ॥६९१॥
तयाच्या ठायीं उदंड। अज्ञान असे वितंड। जो चांचल्यें भावंड। मर्कटाचें ॥६९२॥
आणि पैं गा धनुर्धरा। जयाचिया अंतरा। नाहीं वोढावारा। संयमाचा ॥६९३॥
लेंडिये आला लोंढा। न मनी वाळुवेचा वरवंडा। तैसा निषेधाचिया तोंडा। बिहेना जो ॥६९४॥
व्रतातें आड मोडी। स्वधर्मु पायें वोलांडी। नियमाची आस तोडी। जयाची क्रिया ॥६९५॥
नाहीं पापाचा कंटाळा। नेणें पुण्याचा जिव्हाळा। लाजेचा पेंडवळा। खाणोनि घाली ॥६९६॥
कुळेंसीं जो पाठमोरा। वेदाज्ञेसीं दुऱ्हा। कृत्याकृत्यव्यापारा। निवाडु नेणे ॥६९७॥
वसू जैसा मोकाटु। वारा जैसा अफाटु। फुटला जैसा पाटु। निर्जनीं ॥६९८॥
आंधळें हातिरूं मातलें। कां डोंगरीं जैसें पेटलें। तैसें विषयीं सुटलें। चित्त जयाचें ॥६९९॥
पैं उबधडां काय न पडे। मोकाटु कोणां नातुडे। ग्रामद्वारींचे आडें। नोलांडी कोण ॥७००॥
जैसें सत्रीं अन्न जालें। कीं सामान्या बीक आलें। वाणसियेचें उभलें। कोण न रिगे ? ॥७०१॥
तैसें जयाचें अंतःकरण। तयाच्या ठायीं संपूर्ण। अज्ञानाची जाण। ऋद्धि आहे ॥७०२॥
आणि विषयांची गोडी। जो जीतु मेला न संडी। स्वर्गींही खावया जोडी। येथूनिची ॥७०३॥
जो अखंड भोगा जचे। जया व्यसन काम्यक्रियेचें। मुख देखोनि विरक्ताचें। सचैल करी ॥७०४॥
विषो शिणोनि जाये। परि न शिणे सावधु नोहे। कुहीला हातीं खाये। कोढी जैसा ॥७०५॥
खरी टेंकों नेदी उडे। लातौनि फोडी नाकाडें। तऱ्ही जेवीं न काढे। माघौता खरु ॥७०६॥
तैसा जो विषयांलागीं। उडी घाली जळतिये आगीं। व्यसनाची आंगीं। लेणीं मिरवी ॥७०७॥
फुटोनि पडे तंव। मृग वाढवी हांव। परी न म्हणे ते माव। रोहिणीची ॥७०८॥
तैसा जन्मोनि मृत्यूवरी। विषयीं त्रासितां बहुतीं परीं। तऱ्ही त्रासु नेघे धरी। अधिक प्रेम ॥७०९॥
पहिलिये बाळदशे। आई बा हेंचि पिसें। तें सरे मग स्त्रीमांसें। भुलोनि ठाके ॥७१०॥
मग स्त्री भोगितां थावों। वृद्धाप्य लागे येवों। तेव्हां तोचि प्रेमभावो। बाळकांसि आणी ॥७११॥
आंधळें व्यालें जैसें। तैसा बाळें परिवसे। परि जीवें मरे तों न त्रासे। विषयांसि जो ॥७१२॥

जाण तयाच्या ठायीं। अज्ञानासि पारु नाहीं। आतां आणीक कांहीं। चिन्हें सांगों ॥७१३॥
तरि देह हाचि आत्मा। ऐसेया जो मनोधर्मा। वळघोनियां कर्मा। आरंभु करी ॥७१४॥
आणि उणें कां पुरें। जें जें कांहीं आचरे। तयाचेनि आविष्करें। कुंथों लागे ॥७१५॥
डोईये ठेविलेनि भोजें। देवलविसें जेवीं फुंजे। तैसा विद्यावयसा माजे। उताणा चाले ॥७१६॥
म्हणे मीचि एकु आथी। माझ्यांचि घरीं संपत्ती। माझी आचरती रीती। कोणा आहे ॥७१७॥
नाहीं माझेनि पाडें वाडु। मी सर्वज्ञ एकचि रूढु। ऐसा गर्वतुष्टीगंडु। घेऊनि ठाके ॥७१८॥
व्याधि लागलिया माणुसा। नयेचि भोग दॐ जैसा। निकें न साहे जो तैसा। पुढिलांचें ॥७१९॥
पैं गुण तेतुला खाय। स्नेह कीं जाळितु जाय। जेथ ठेविजे तेथ होय। मसीऐसें ॥७२०॥
जीवनें शिंपिला तिडपिडी। विजिला प्राण सांडीं। लागला तरी काडी। उरों नेदी ॥७२१॥
आळुमाळ प्रकाशु करी। तेतुलेनीच उबारा धरी। तैसिया दीपाचि परी। सुविद्यु जो ॥७२२॥
औषधाचेनि नांवें अमृतें। जैसा नवज्वरु आंबुथे। कां विषचि होऊनि परतें। सर्पा दूध ॥७२३॥
तैसा सद्गुणीं मत्सरु। व्युत्पत्ती अहंकारु। तपोज्ञानें अपारु। ताठा चढे ॥७२४॥
अंत्यु राणिवे बैसविला। आरें धारणु गिळिला। तैसा गर्वें फुगला। देखसी जो ॥७२५॥
जो लाटणें ऐसा न लवे। पाथरु तेवीं न द्रवे। गुणियासि नागवे। फोडसें जैसें ॥७२६॥
किंबहुना तयापाशी। अज्ञान आहे वाढीसीं। हें निकरें गा तुजसीं। बोलत असों ॥७२७॥
आणीकही धनंजया। जो गृहदेह सामग्रिया। न देखे कालचेया। जन्मातें गा ॥७२८॥
कृतघ्ना उपकारु केला। कां चोरा व्यवहारु दिधला। निसुगु स्तविला। विसरे जैसा ॥७२९॥
वोढाळितां लाविलें। तें तैसेंच कान पूंस वोलें। कीं पुढती वोढाळुं आलें। सुणें जैसें ॥७३०॥
बेडूक सापाचिया तोंडीं। जातसे सबुडबुडीं। तो मक्षिकांचिया कोडीं। स्मरेना कांहीं ? ॥७३१॥
तैसीं नवही द्वारें स्रवती। आंगीं देहाची लुती जिती। जेणें जाली तें चित्तीं। सलेना जया ॥७३२॥
मातेच्या उदरकुहरीं। पचूनि विष्ठेच्या दाथरीं। जठरीं नवमासवरी। उकडला जो ॥७३३॥
तें गर्भींची जे व्यथा। कां जें जालें उपजतां। तें कांहींचि सर्वथा। नाठवी जो ॥७३४॥
मलमूत्रपंकीं। जे लोळतें बाळ अंकीं। तें देखोनि जो न थुंकीं। त्रासु नेघे ॥७३५॥
कालचि ना जन्म गेलें। पाहेचि पुढती आलें। ऐसें हें कांहीं वाटलें। नाहीं जया ॥७३६॥
आणि पैं तयाची परी। जीविताची फरारी। देखोनि जो न करी। मृत्युचिंता ॥७३७॥
जिणेयाचेनि विश्वासें। मृत्यु एक एथ असे। हें जयाचेनि मानसें। मानिजेना ॥७३८॥
अल्पोदकींचा मासा। हें नाटे ऐसिया आशा। न वचेचि कां जैसा। अगाध डोहां ॥७३९॥
कां गोरीचिया भुली। मृग व्याधा दृष्टी न घाली। गळु न पाहतां गिळिली। उंडी मीनें ॥७४०॥
दीपाचिया झगमगा। जाळील हें पतंगा। नेणवेचि पैं गा। जयापरी ॥७४१॥
गव्हारु निद्रासुखें। घर जळत असे तें न देखे। नेणतां जेंवी विखें। रांधिलें अन्न ॥७४२॥
तैसा जीविताचेनि मिषें। हा मृत्युचि आला असे। हें नेणेचि राजसें। सुखें जो गा ॥७४३॥
शरीरींचीं वाढी। अहोरात्रांची जोडी। विषयसुखप्रौढी। साचचि मानी ॥७४४॥
परी बापुडा ऐसें नेणे। जें वेश्येचें सर्वस्व देणें। तेंचि तें नागवणें। रूप एथ ॥७४५॥
संवचोराचें साजणें। तेंचि तें प्राण घेणें। लेपा स्नपन करणें। तोचि नाशु ॥७४६॥
पांडुरोगें आंग सुटलें। तें तयाचि नांवे खुंटलें। तैसें नेणें भुललें। आहारनिद्रा ॥७४७॥
सन्मुख शूला। धांवतया पायें चपळा। प्रतिपदीं ये जवळा। मृत्यु जेवीं ॥७४८॥
तेवीं देहा जंव जंव वाढु। जंव जंव दिवसांचा पवाडु। जंव जंव सुरवाडु। भोगांचा या ॥७४९॥

तंव तंव अधिकाधिकें। मरण आयुष्यातें जिंके। मीठ जेवीं उदकें। घांसिजत असे ॥७५०॥
तैसें जीवित्व जाये। तयास्तव काळु पाहे। हें हातोहातींचें नव्हे। ठाउकें जया ॥७५१॥
किंबहुना पांडवा। हा आंगींचा मृत्यु नीच नवा। न देखे जो मावा। विषयांचिया ॥७५२॥
तो अज्ञानदेशींचा रावो। या बोला महाबाहो। न पडे गा ठावो। आणिकांचा ॥७५३॥
पैं जीविताचेनि तोखें। जैसा कां मृत्यु न देखे। तैसाचि तारुण्ये पोखें। जरा न गणी ॥७५४॥
कडाडीं लोटला गाडा। कां शिखरौनि सुटला धोंडा। तैसा न देखे जो पुढां। वार्धक्य आहे ॥७५५॥
कां आडवोहळा पाणी आलें। कां जैसे म्हैसयाचें झुंज मातलें। तैसें तारुण्याचे चढलें। भुररें जया ॥७५६॥
पुष्टि लागे विघरों। कांति पाहे निसरों। मस्तक आदरीं शिरों- । भागीं कंप ॥७५७॥
दाढी साउळ धरी। मान हालौनि वारी। तरी जो करी। मायेचा पैसु ॥७५८॥
पुढील उरीं आदळे। तंव न देखे जेवीं आंधळें। कां डोळयावरलें निगळे। आळशी तोषें ॥७५९॥
तैसें तारुण्य आजिचें। भोगितां वृद्धाप्य पाहेचें। न देखे तोचि साचें। अज्ञानु गा ॥७६०॥
देखे अक्षमें कुब्जें। कीं विटावूं लागे फुंजें। परी न म्हणे पाहे माझें। ऐसेंचि भवे ॥७६१॥
आणि आंगीं वृद्धाप्यतेची। संज्ञा ये मरणाची। परी जया तारुण्याची। भुली न फिटे ॥७६२॥
तो अज्ञानाचें घर। हें साचचि घे उत्तर। तेवींचि परियेसीं थोर। चिन्हें आणिक ॥७६३॥
तरि वाघाचिये अडवे। एक वेळ आला चरोनि दैवें। तेणें विश्वासें पुढती धांवे। वसू जैसा ॥७६४॥
कां सर्पघराआंतु। अवचटें ठेवा आणिला स्वस्थु। येतुलियासाठीं निश्चितु। नास्तिकु होय ॥७६५॥
तैसेनि अवचटें हें। एकदोनी वेळां लाहे। एथ रोग एक आहे। हें मानीना जो ॥७६६॥
वैरिया नीद आली। आतां द्वंद्वें माझीं सरलीं। हें मानी तो सपिली। मुकला जेवीं ॥७६७॥
तैसी आहारनिद्रेची उजरी। रोग निवांतु जोंवरी। तंव जो न करी। व्याधी चिंता ॥७६८॥
आणि स्त्रीपुत्रादिमेळें। संपत्ति जंव जंव फळे। तेणें रजें डोळे। जाती जयाचे ॥७६९॥
सवेंचि वियोगु पडैल। विळौनी विपत्ति येईल। हें दुःख पुढील। देखेना जो ॥७७०॥
तो अज्ञान गा पांडवा। आणि तोही तोचि जाणावा। जो इंद्रियें अव्हासवा। चारी एथ ॥७७१॥
वयसेचेनि उवायें। संपत्तीचेनि सावायें। सेव्यासेव्य जाये। सरकटितु ॥७७२॥
न करावें तें करी। असंभाव्य मनीं धरी। चिंतू नये तें विचारी। जयाची मती ॥७७३॥
रिघे जेथ न रिघावें। मागे जें न घ्यावें। स्पर्शे जेथ न लागावें। आंग मन ॥७७४॥
न जावें तेथ जाये। न पाहावें तें जो पाहे। न खावें तें खाये। तेवींचि तोषे ॥७७५॥
न धरावा तो संगु। न लागावें तेथ लागु। नाचरावा तो मार्गु। आचरे जो ॥७७६॥
नायकावें तें आइके। न बोलावें तें बके। परी दोष होतील हें न देखे। प्रवर्ततां ॥७७७॥
आंगा मनासि रुचावें। येतुलेनि कृत्याकृत्य नाठवें। जो करणेयाचेनि नांवें। भलतेंचि करी ॥७७८॥
परि पाप मज होईल। कां नरकयातना येईल। हें कांहींचि पुढील। देखेना जो ॥७७९॥
तयाचेनि आंगलगें। अज्ञान जगीं दाटुगें। जें सज्ञानाही संगें। झोंबों सके ॥७८०॥
परी असो हें आइक। अज्ञान चिन्हें आणिक। जेणें तुज सम्यक। जाणवे तें ॥७८१॥
तरी जयाची प्रीति पुरी। गुंतली देखसी घरीं। नवगंधकेसरीं। भ्रमरी जैशी ॥७८२॥
साकरेचिया राशी। बैसली नुठे माशी। तैसेनि स्त्रीचित्त आवेशीं। जयाचें मन ॥७८३॥
ठेला बेडूक कुंडीं। मशक गुंतला शेंबुडीं। जैसा ढोरु सबुडबुडीं। रुतला पंकीं ॥७८४॥
तैसें घरींहूनि निघणें। नाहीं जीवें मनें प्राणें। जया साप होऊनि असणें। भाटीं तियें ॥७८५॥
प्रियोत्तमाचिया कंठीं। प्रमदा घे आटी। तैशी जीवेंसी कोंपटी। धरूनि ठाके ॥७८६॥

मधुरसोद्देशें। मधुकर जचे जैसें। गृहसंगोपन तैसें। करी जो गा ॥७८७॥
म्हातारपणीं जालें। मा आणिक एक विपाईलें। तयाचें कां जेतुलें। मातापितरां ॥७८८॥
तेतुलेनि पाडें पार्था। घरीं जया प्रेम आस्था। आणि स्त्रीवांचूनि सर्वथा। जाणेना जो ॥७८९॥
तैसा स्त्रीदेहीं जो जीवें। पडोनिया सर्वभावें। कोण मी काय करावें। कांहीं नेणे ॥७९०॥
महापुरुषाचें चित्त। जालिया वस्तुगत। ठाके व्यवहारजात। जयापरी ॥७९१॥
हानि लाज न देखे। परापवादु नाइके। जयाचीं इंद्रियें एकमुखें। स्त्रिया केलीं ॥७९२॥
चित्त आराधी स्त्रीयेचें। आणि तियेचेनि छंदें नाचे। माकड गारुडियाचें। जैसें होय ॥७९३॥
आपणपेंही शिणवी। इष्टमित्र दुखवी। मग कवडाचि वाढवी। लोभी जैसा ॥७९४॥
तैसा दानपुण्यें खांची। गोत्रकुटुंबा वंची। परी गारी भरी स्त्रियेची। उणी हों नेदी ॥७९५॥
पूजिती दैवतें जोगावी। गुरूतें बोलें झकवी। मायबापां दावी। निदारपण ॥७९६॥
स्त्रियेच्या तरी विखीं। भोगुसंपत्ती अनेकीं। आणी वस्तु निकी। जे जे देखे ॥७९७॥
प्रेमाथिलेनि भक्तें। जैसेनि भजिजे कुळदैवतें। तैसा एकाग्रचित्तें। स्त्री जो उपासी ॥७९८॥
साच आणि चोख। तें स्त्रियेसीचि अशेख। येरांविषयीं जोगावणूक। तेही नाहीं ॥७९९॥
इयेतें हन कोणी देखैल। इयेसी वेखासें जाईल। तरी युगचि बुडैल। ऐसें जया ॥८००॥
नायट्यांभेण। न मोडिजे नागांची आण। तैसी पाळी उणखुण। स्त्रीयेची जो ॥८०१॥
किंबहुना धनंजया। स्त्रीचि सर्वस्व जया। आणि तियेचिया जालिया- । लागीं प्रेम ॥८०२॥
आणिकही जें समस्त। तियेचें संपत्तिजात। तें जीवाहूनि आप्त। मानी जो कां ॥८०३॥
तो अज्ञानासी मूळ। अज्ञाना त्याचेनि बळ। हें असो केवळ। तेंचि रूप ॥८०४॥
आणि मातलिया सागरीं। मोकललिया तरी। लाटांच्या येरझारीं। आंदोळे जेवीं ॥८०५॥
तेवीं प्रिय वस्तु पावे। आणि सुखें जो उंचावे। तैसाचि अप्रियासवें। तळवटु घे ॥८०६॥
ऐसेनि जयाचे चित्तीं। वैषम्यसाम्याची वोखती। वाहे तो महामती। अज्ञान गा ॥८०७॥
आणि माझ्या ठायीं भक्ती। फळालागीं जया आर्ती। धनोद्देशें विरक्ती। नटणें जेवीं ॥८०८॥
नातरी कांताच्या मानसी। रिगोनि स्वैरिणी जैसी। राहाटे जारेंसीं। जावयालागीं ॥८०९॥
तैसा मातें किरीटी। भजती गा पाउटी। करूनि जो दिठी। विषो सूये ॥८१०॥
आणि भजिन्नलियासवें। तो विषो जरी न पावे। तरी सांडी म्हणे आघवें। टवाळ हें ॥८११॥
कुणबट कुळवाडी। तैसा आन आन देव मांडी। आदिलाची परवडी। करी तया ॥८१२॥
तया गुरुमार्गा टेंकें। जयाचा सुगरवा देखे। तरी तयाचा मंत्र शिके। येरु नेघे ॥८१३॥
प्राणिजातेंसीं निष्ठुरु। स्थावरीं बहु भरु। तेवींचि नाहीं एकसरु। निर्वाहो जया ॥८१४॥
माझी मूर्ति निफजवी। ते घराचे कोनीं बैसवी। आपण देवो देवी। यात्रे जाय ॥८१५॥
नित्य आराधन माझें। काजीं कुळदैवता भजे। पर्वविशेषें कीजे। पूजा आना ॥८१६॥
माझें अधिष्ठान घरीं। आणि वोवसे आनाचे करी। पितृकार्यावसरीं। पितरांचा होय ॥८१७॥
एकादशीच्या दिवशीं। जेतुला पाडु आम्हांसी। तेतुलाचि नागांसी। पंचमीच्या दिवशीं ॥८१८॥
चौथ मोटकी पाहे। आणि गणेशाचाचि होये। चावदसी म्हणे माये। तुझाचि वो दुर्गे ॥८१९॥
नित्य नैमित्तिकें कर्में सांडी। मग बैसे नवचंडी। आदित्यवारीं वाढी। बहिरवां पात्रीं ॥८२०॥
पाठीं सोमवार पावे। आणि बेलेंसी लिंगा धांवे। ऐसा एकलाचि आघवे। जोगावी जो ॥८२१॥
ऐसा अखंड भजन करी। उगा नोहे क्षणभरी। अवघेन गांवद्वारीं। अहेव जैसी ॥८२२॥
ऐसेनि जो भक्तु। देखसी सैरा धांवतु। जाण अज्ञानाचा मूर्तु। अवतार तो ॥८२३॥

आणि एकांतें चोखटें। तपोवनें तीर्थे तटें। देखोनि जो गा विटे। तोहि तोचि ॥८२४॥
जया जनपदीं सुख। गजबजेचें कवतिक। वानूं आवडे लौकिक। तोहि तोची ॥८२५॥
आणि आत्मा गोचरु होये। ऐसी जे विद्या आहे। ते आइकोनि डौर वाहे। विद्वांसु जो ॥८२६॥
उपनिषदांकडे न वचे। योगशास्त्र न रुचे। अध्यात्मज्ञानीं जयाचें। मनचि नाहीं ॥८२७॥
आत्मचर्चा एकी आथी। ऐसिये बुद्धीची भिंती। पाडूनि जयाची मती। वोढाळ जाहली ॥८२८॥
कर्मकांड तरी जाणे। मुखोद्गत पुराणें। ज्योतिषीं तो म्हणे। तैसेंचि होय ॥८२९॥
शिल्पीं अति निपुण। सूपकर्मीही प्रवीण। विधि आथर्वण। हातीं आथी ॥८३०॥
कोकीं नाहीं ठेलें। भारत करी म्हणितलें। आगम आफाविले। मूर्त होतीं ॥८८३१॥
नीतिजात सुझे। वैद्यकही बुझे। काव्यनाटकीं दुजें। चतुर नाहीं ॥८३२॥
स्मृतींची चर्चा। दंशु जाणे गारुडियाचा। निघंटु प्रज्ञेचा। पाइकी करी ॥८३३॥
पैं व्याकरणीं चोखडा। तर्कीं अतिगाढा। परी एक आत्मज्ञानीं फुडा। जात्यंधु जो ॥८३४॥
तें एकवांचूनि आघवां शास्त्रीं। सिद्धांत निर्माणधात्री। परी जळों तें मूळनक्षत्रीं। न पाहें गा ॥८३५॥
मोराआंगीं अशेषें। पिसें असतीं डोळसें। परी एकली दृष्टि नसे। तैसें तें गा ॥८३६॥
जरी परमाणूएवढें। संजीवनीमूळ जोडे। तरी बहु काय गाडे। भरणें येरें ? ॥८३७॥
आयुष्येंवीण लक्षणें। सिसेंवीण अळंकरणें। वोहरेंवीण वाधावणें। तो विटंबु गा ॥८३८॥
तैसें शास्त्रजात जाण। आघवेंचि अप्रमाण। अध्यात्मज्ञानेंविण। एकलेनी ॥८३९॥
यालागीं अर्जुना पाहीं। अध्यात्मज्ञानाच्या ठायीं। जया नित्यबोधु नाहीं। शास्त्रमूढा ॥८४०॥
तया शरीर जें जालें। तें अज्ञानाचें बीं विरुढलें। तयाचें व्युत्पन्नत्व गेलें। अज्ञानवेलीं ॥८४१॥
तो जें जें बोले। तें अज्ञानचि फुललें। तयाचें पुण्य जें फळलें। तें अज्ञान गा ॥८४२॥
आणि अध्यात्मज्ञान कांहीं। जेणें मानिलेंचि नाहीं। तो ज्ञानार्थु न देखे काई। हें बोलावें असें ? ॥८४३॥
ऐलीचि थडी न पवतां। पळे जो माघौता। तया पैलद्वीपींची वार्ता। काय होय ? ॥८४४॥
कां दारवंठाचि जयाचें। शीर रोंविलें खांचे। तो केवीं परिवरींचें। ठेविलें देखे ? ॥८४५॥
तेवीं अध्यात्मज्ञानीं जया। अनोळख धनंजया। तया ज्ञानार्थु देखावया। विषो काई ? ॥८४६॥
म्हणौनि आतां विशेषें। तो ज्ञानाचें तत्त्व न देखे। हें सांगावें आंखेंलेखें। न लगे तुज ॥८४७॥
जेव्हां सगर्भे वाढिलें। तेव्हांचि पोटींचें धालें। तैसें मागिलें पदें बोलिलें। तेंचि होय ॥८४८॥
वांचूनियां वेगळें। रूप करणें हें न मिळे। जेवीं अवंतिलें आंधळें। तें दुजेनसीं ये ॥८४९॥
एवं इये उपरतीं। अज्ञानचिन्हें मागुतीं। अमानित्वादि प्रभृती। वाखाणिलीं ॥८५०॥
जे ज्ञानपदें अठरा। केलियां येरी मोहरां। अज्ञान या आकारा। सहजें येती ॥८५१॥
मागां श्लोकाचेनि अर्धार्धें। ऐसें सांगितलें श्रीमुकुंदें। ना उफराटीं इयें ज्ञानपदें। तेंचि अज्ञान ॥८५२॥
म्हणौनि इया वाहणीं। केली म्यां उपलवणी। वांचूनि दुधा मेळऊनि पाणी। फार कीजे ? ॥८५३॥
तैसें जी न बडबडीं। पदाची कोर न सांडी। परी मूळध्वनींचिये वाढी। निमित्त जाहलों ॥८५४॥
तंव श्रोते म्हणती राहें। कें परिहारा ठावो आहे ? । बिहिसी कां वायें। कविपोषका ? ॥८५५॥
तूतें श्रीमुरारी। म्हणितलें आम्ही प्रकट करीं। जें अभिप्राय गव्हरीं। झांकिले आम्हीं ॥८५६॥
तें देवाचें मनोगत। दावित आहासी तूं मूर्त। हेंही म्हणतां चित्त। दाटैल तुझें ॥८५७॥
म्हणौनि असो हें न बोलों। परि साविया गा तोषलों। जे ज्ञानतरिये मेळविलों। श्रवण सुखाचिये ॥८५८॥
आतां इयावरी। जे तो श्रीहरी। बोलिला तें करीं। कथन वेगां ॥८५९॥
इया संतवाक्यासरिसें। म्हणितलें निवृत्तिदासें। जी अवधारा तरी ऐसें। बोलिलें देवें ॥८६०॥

म्हणती तुवां पांडवा। हा चिन्हसमुच्चयो आघवा। आयकिला तो जाणावा। अज्ञानभागु ॥८६१॥
इया अज्ञानविभागा। पाठी देऊनि पैं गा। ज्ञानविखीं चांगा। दृढा होईजे ॥८६२॥
मग निर्वाळिलेनि ज्ञानें। ज्ञेय भेटेल मनें। तें जाणावया अर्जुनें। आस केली ॥८६३॥
तंव सर्वज्ञांचा रावो। म्हणे जाणौनि तयाचा भावो। परिसें ज्ञेयाचा अभिप्रावो। सांगों आतां ॥८६४॥
ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा~मृतमश्नुते ॥अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥१२॥
तरि ज्ञेय ऐसें म्हणणें। वस्तूतें येणेंचि कारणें। जें ज्ञानेंवांचूनि कवणें। उपायें नये ॥८६५॥
आणि जाणितलेयावरौतें। कांहींच करणें नाहीं जेथें। जाणणेंचि तन्मयातें। आणी जयाचें ॥८६६॥
जें जाणितलेयासाठीं। संसार काढूनियां कांठीं। जिरोनि जाइजे पोटीं। नित्यानंदाच्या ॥८६७॥
तें ज्ञेय गा ऐसें। आदि जया नसे। परब्रह्म आपैसें। नाम जया ॥८६८॥
जें नाहीं म्हणों जाइजे। तंव विश्वाकारें देखिजे। आणि विश्वचि ऐसें म्हणिजे। तरि हे माया ॥८६९॥
रूप वर्ण व्यक्ती। नाहीं दृश्य दृष्टा स्थिती। तरी कोणें कैसें आथी। म्हणावें पां ॥८७०॥
आणि साचचि जरी नाहीं। तरी महदादि कोणें ठाईं। स्फुरत कैचें काई। तेणेंवीण असे ? ॥८७१॥
म्हणौनि आथी नाथी हे बोली। जें देखोनि मुकी जाहली। विचारेंसीं मोडली। वाट जेथें ॥८७२॥
जैसी भांडघटशरावीं। तदाकारें असे पृथ्वी। तैसें सर्व होऊनियां सर्वीं। असे जे वस्तु ॥८७३॥
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतो~क्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१३॥
आघवांचि देशीं काळीं। नव्हतां देशकाळांवेगळी। जे क्रिया स्थूलास्थूळीं। तेचि हात जयाचे ॥८७४॥
तयातें याकारणें। विश्वबाहू ऐसें म्हणणें। जें सर्वचि सर्वपणें। सर्वदा करी ॥८७५॥
आणि समस्तांही ठाया। एके काळीं धनंजया। आलें असे म्हणौनि जया। विश्वांघ्रीनाम ॥८७६॥
पैं सवितया आंग डोळे। नाहींत वेगळे वेगळे। तैसें सर्वद्रष्टे सकळें। स्वरूपें जें ॥८७७॥
म्हणौनि विश्वतश्चक्षु। हा अचक्षूच्या ठायीं पक्षु। बोलावया दक्षु। जाहला वेदु ॥८७८॥
जें सर्वांचे शिरावरी। नित्य नांदे सर्वांपरी। ऐसिये स्थितीवरी। विश्वमूर्धा म्हणिपे ॥८७९॥
पैं गा मूर्ति तेंचि मुख। हुताशना जैसें देख। तैसें सर्वपणें अशेख। भोक्ते जे ॥८८०॥
यालागीं तया पार्था। विश्वतोमुख हे व्यवस्था। आली वाक्पथा। श्रुतीचिया ॥८८१॥
आणि वस्तुमात्रीं गगन। जैसें असे संलग्न। तैसें शब्दजातीं कान। सर्वत्र जया ॥८८२॥
म्हणौनि आम्हीं तयातें। म्हणों सर्वत्र आइकतें। एवं जें सर्वांतें। आवरूनि असे ॥८८३॥
एऱ्हवीं तरी महामती। विश्वतश्चक्षु इया श्रुती। तयाचिया व्याप्ती। रूप केलें ॥८८४॥
वांचूनि हस्त नेत्र पाये। हें भाष तेथ कें आहे ? । सर्व शून्याचा न साहे। निष्कर्षु जें ॥८८५॥
पैं कल्लोळातें कल्लोळें। ग्रसिजत असे ऐसें कळे। परी ग्रसितें ग्रासावेगळें। असे काई ? ॥८८६॥
तैसें साचचि जें एक। तेथ कें व्याप्यव्यापक ? । परी बोलावया नावेक। करावें लागे ॥८८७॥
पैं शून्य जैं दावावें जाहलें। तैं बिंदुलें एक पाहिजे केलें। तैसें अद्वैत सांगावें बोलें। तैं द्वैत कीजे ॥८८८॥
एऱ्हवीं तरी पार्था। गुरुशिष्यसत्पथा। आडळु पडे सर्वथा। बोल खुंटे ॥८८९॥
म्हणौनि गा श्रुती। द्वैतभावें अद्वैतीं। निरूपणाची वाहती। वाट केली ॥८९०॥
तेंचि आतां अवधारीं। इये नेत्रगोचरें आकारीं। तें ज्ञेय जयापरी। व्यापक असे ॥८९१॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥१४॥
तरी तें गा किरीटी ऐसें। अवकाशीं आकाश जैसें। पटीं पटु होऊनि असे। तंतु जेवीं ॥८९२॥

उदक होऊनि उदकीं। रसु जैसा अवलोकीं। दीपपणें दीपकीं। तेज जैसें ॥८९३॥
कर्पूरत्वें कापुरीं। सौरभ्य असे जयापरी। शरीर होऊनि शरीरीं। कर्म जेवीं ॥८९४॥
किंबहुना पांडवा। सोनेंचि सोनयाचा रवा। तैसें जें या सर्वां। सर्वांगीं असे ॥८९५॥
परी रवेपणामाजिवडे। तंव रवा ऐसें आवडे। वांचूनि सोनें सांगडें। सोनया जेवीं ॥८९६॥
पैं गा वोघुचि वांकुडा। परि पाणी उजू सुहाडा। वन्हि आला लोखंडा। लोह नव्हे कीं ॥८९७॥
घटाकारें वेंटाळें। तेथ नभ गमे वाटोळें। मठीं तरी चौफळें। आये दिसे ॥८९८॥
तरि ते अवकाश जैसें। नोहिजतीचि कां आकाशें। जें विकार होऊनि तैसें। विकारी नोहे ॥८९९॥
मन मुख्य इंद्रियां। सत्त्वादि गुणां ययां- । सारिखें ऐसें धनंजया। आवडे कीर ॥९००॥
पैं गुळाची गोडी। नोहे बांधया सांगडी। तैसीं गुण इंद्रियें फुडीं। नाहीं तेथ ॥९०१॥
अगा क्षीराचिये दशे। घृत क्षीराकारें असे। परी क्षीरचि नोहे जैसें। कपिध्वजा ॥९०२॥
तैसें जें इये विकारीं। विकार नोहे अवधारीं। पैं आकारा नाम भोंवरी। येर सोने तें सोनें ॥९०३॥
इया उघड मऱ्हाटिया। तें वेगळेपण धनंजया। जाण गुण इंद्रियां- । पासोनियां ॥९०४॥
नामरूपसंबंधु। जातिक्रियाभेदु। हा आकारासीच प्रवादु। वस्तूसि नाहीं ॥९०५॥
तें गुण नव्हे कहीं। गुणा तया संबंधु नाहीं। परी तयाच्याचि ठायीं। आभासती ॥९०६॥
येतुलेयासाठीं। संभ्रांताच्या पोटीं। ऐसें जाय किरीटी। जे हेंचि धरी ॥९०७॥
तरी तें गा धरणें ऐसें। अभ्रातें जेवीं आकाशें। कां प्रतिवदन जैसें। आरसेनी ॥९०८॥
नातरी सूर्य प्रतिमंडल। जैसेनि धरी सलिल। कां रश्मिकरीं मृगजळ। धरिजे जेवीं ॥९०९॥
तैसें गा संबंधेंवीण। यया सर्वांतें धरी निर्गुण। परी तें वायां जाण। मिथ्यादृष्टी ॥९१०॥
आणि यापरी निर्गुणें। गुणातें भोगणें। रंका राज्य करणें। स्वप्नीं जैसें ॥९११॥
म्हणौनि गुणाचा संगु। अथवा गुणभोगु। हा निर्गुणीं लागु। बोलों नये ॥९१२॥
बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥१५॥
जें चराचर भूतां- । माजीं असे पंडुसुता। नाना वन्हीं उष्णता। अभेदें जैसी ॥९१३॥
तैसेनि अविनाशभावें। जें सूक्ष्मदशे आघवें। व्यापूनि असे तें जाणावें। ज्ञेय एथ ॥९१४॥
जें एक आंतुबाहेरी। जें एक जवळ दुरी। जें एकवांचूनि परी। दुजीं नाहीं ॥९१५॥
क्षीरसागरींची गोडी। माजीं बहु थडिये थोडी। हें नाहीं तया परवडी। पूर्ण जें गा ॥९१६॥
स्वेदजादिप्रभृती। वेगळाल्यां भूतीं। जयाचिये अनुस्यूतीं। खोमणें नाहीं ॥९१७॥
पैं श्रोते मुखटिळका। घटसहस्रा अनेकां- । माजीं बिंबोनि चंद्रिका। न भेदे जेवीं ॥९१८॥
नाना लवणकणाचिये राशी। क्षारता एकचि जैसी। कां कोडी एकीं ऊसीं। एकचि गोडी ॥९१९॥
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितं ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥१६॥
तैसें अनेकीं भूतजातीं। जें आहे एकी व्याप्ती। विश्वकार्या सुमती। कारण जें गा ॥९२०॥
म्हणौनि हा भूताकारु। जेथोनि तेंचि तया आधारु। कल्लोळा सागरु। जियापरी ॥९२१॥
बाल्यादि तिन्हीं वयसीं। काया एकचि जैसी। तैसें आदिस्थितिग्रासीं। अखंड जें ॥९२२॥
सायंप्रातर्मध्यान। होतां जातां दिनमान। जैसें कां गगन। पालटेना ॥९२३॥
अगा सृष्टिवेळे प्रियोत्तमा। जया नांव म्हणती ब्रह्मा। व्याप्ति जें विष्णुनामा। पात्र जाहलें ॥९२४॥
मग आकारु हा हारपे। तेव्हां रुद्र जें म्हणिपे। तेंही गुणत्रय जेव्हां लोपे। तैं जें शून्य ॥९२५॥

नभाचें शून्यत्व गिळून। गुणत्रयातें नुरऊन। तें शून्य तें महाशून्य। श्रुतिवचनसंमत ॥९२६॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विस्ठितम् ॥१७॥

जें अग्नीचें दीपन। जें चंद्राचें जीवन। सूर्याचे नयन। देखती जेणें ॥९२७॥

जयाचेनि उजियेडें। तारांगण उभडें। महातेज सुरवाडें। राहाटे जेणें ॥९२८॥

जें आदीची आदी। जें वृद्धीची वृद्धी। बुद्धीची जे बुद्धी। जीवाचा जीवु ॥९२९॥

जें मनाचें मन। जें नेत्राचे नयन। कानाचे कान। वाचेची वाचा ॥९३०॥

जें प्राणाचा प्राण। जें गतीचे चरण। क्रियेचें कर्तेपण। जयाचेनि ॥९३१॥

आकारु जेणें आकारे। विस्तारु जेणें विस्तारे। संहारु जेणें संहारे। पंडुकुमरा ॥९३२॥

जें मेदिनीची मेदिनी। जें पाणी पिऊनि असे पाणी। तेजा दिवेलावणी। जेणें तेजें ॥९३३॥

जें वायूचा श्वासोश्वासु। जें गगनाचा अवकाशु। हें असो आघवाची आभासु। आभासे जेणें ॥९३४॥

किंबहुना पांडवा। जें आघवेंचि असे आघवा। जेथ नाहीं रिगावा। द्वैतभावासी ॥९३५॥

जें देखिलियाचिसवें। दृश्य द्रष्टा हें आघवें। एकवाट कालवे। सामरस्यें ॥९३६॥

मग तेंचि होय ज्ञान। ज्ञाता ज्ञेय हन। ज्ञानें गमिजे स्थान। तेंहि तेंची ॥९३७॥

जैसें सरलियां लेख। आंख होती एक। तैसें साध्यसाधनादिक। ऐक्यासि ये ॥९३८॥

अर्जुना जिये ठायीं। न सरे द्वैताची वही। हें असो जें हृदयीं। सर्वांच्या असे ॥९३९॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।

मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥१८॥

एवं तुजपुढां। आदीं क्षेत्र सुहाडा। दाविलें फाडोवाडां। विवंचुनी ॥९४०॥

तैसेंचि क्षेत्रापाठीं। जैसेनि देखसी दिठी। तें ज्ञानही किरीटी। सांगितलें ॥९४१॥

अज्ञानाही कौतुकें। रूप केलें निकें। जंव आयणी तुझी टेंके। पुरे म्हणे ॥९४२॥

आणि आतां हें रोकडें। उपपत्तीचेनि पवाडें। निरूपिलें उघडें। ज्ञेय पैं गा ॥९४३॥

हे आघवीच विवंचना। बुद्धी भरोनि अर्जुना। मत्सिद्धिभावना। माझिया येती ॥९४४॥

देहादि परिग्रहीं। संन्यासु करूनियां जिहीं। जीवु माझ्या ठाईं। वृत्तिकु केला ॥९४५॥

ते मातें किरीटी। हेंचि जाणौनियां शेवटीं। आपणपयां साटोवाटीं। मीचि होती ॥९४६॥

मीचि होती परी। हे मुख्य गा अवधारीं। सोहोपी सर्वांपरी। रचिलीं आम्हीं ॥९४७॥

कडां पायरी कीजे। निराळीं माचु बांधिजे। अथावीं सुइजे। तरी जैसी ॥९४८॥

एऱ्हवीं अवघेंचि आत्मा। हें सांगों जरी वीरोत्तमा। परी तुझिया मनोधर्मा। मिळेल ना ॥९४९॥

म्हणौनि एकचि संचलें। चतुर्धा आम्हीं केलें। जें अदळपण देखिलें। तुझिये प्रज्ञे ॥९५०॥

पैं बाळ जैं जेवविजे। तैं घांसु विसा ठायीं कीजे। तैसें एकचि हेंचतुर्व्याजें। कथिलें आम्हीं ॥९५१॥

एक क्षेत्र एक ज्ञान। एक ज्ञेय एक अज्ञान। हे भाग केले अवधान। जाणौनि तुझें ॥९५२॥

आणि ऐसेनही पार्था। जरी हा अभिप्रावो तुज हाता। नये तरी हे व्यवस्था। एक वेळ सांगों ॥९५३॥

आतां चौठायीं न करूं। एकही म्हणौनि न सरूं। आत्मानात्मया धरूं। सरिसा पाडु ॥९५४॥

परि तुवां येतुलें करावें। मागों तें आम्हां देआवें। जे कानचि नांव ठेवावें। आपण पैं गा ॥९५५॥

या श्रीकृष्णाचिया बोला। पार्थु रोमांचितु जाहला। तेथ देवो म्हणती भला। उचंबळेना ॥९५६॥

ऐसेनि तो येतां वेगु। धरूनि म्हणे श्रीरंगु। प्रकृतिपुरुषविभागु। परिसें सांगों ॥९५७॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।

विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान ॥१९॥
जया मार्गातें जगीं। सांख्य म्हणती योगी। जयाचिये भाटिवेलागीं। मी कपिल जाहलों ॥९५८॥
तो आइक निर्दोखु। प्रकृतिपुरुषविवेकु। म्हणे आदिपुरुखु। अर्जुनातें ॥९५९॥
तरी पुरुष अनादि आथी। आणि तैंचि लागोनि प्रकृति। संसरिसी दिवोराती। दोनी जैसी ॥९६०॥
कां रूप नोहे वायां। परी रूपा लागली छाया। निकणु वाढे धनंजया। कणेंसीं कोंडा ॥९६१॥
तैसीं जाण जवटें। दोन्हीं इयें एकवटे। प्रकृतिपुरुष प्रगटें। अनादिसिद्धें ॥९६२॥
पैं क्षेत्र येणें नांवें। जें सांगितलें आघवें। तेंचि एथ जाणावें। प्रकृति हे गा ॥९६३॥
आणि क्षेत्रज्ञ ऐसें। जयातें म्हणितलें असे। तो पुरुष हें अनारिसे। न बोलों घेईं ॥९६४॥
इयें आनानें नांवें। परी निरूप्य आन नोहे। हें लक्षण न चुकावें। पुढतपुढती ॥९६५॥
तरी केवळ जे सत्ता। तो पुरुष गा पंडुसुता। प्रकृतीतें समस्तां। क्रिया नाम ॥९६६॥
बुद्धि इंद्रियें अंतःकरण। इत्यादि विकारभरण। आणि ते तिन्ही गुण। सत्त्वादिक ॥९६७॥
हा आघवाचि मेळावा। प्रकृती जाहला जाणावा। हेचि हेतु संभवा। कर्माचिया ॥९६८॥
कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥२०॥
तेथ इच्छा आणि बुद्धि। घडवी अहंकारेंसीं आधीं। मग तिया लाविती वेधीं। कारणाच्या ॥९६९॥
तेंचि कारण ठाकावया। जें सूत्र धरणें उपाया। तया नांव धनंजया। कार्य पैं गा ॥९७०॥
आणि इच्छा मदाच्या थावीं। लागली मनातें उठवी। तें इंद्रियें राहाटवी। हें कर्तृत्व पैं गा ॥९७१॥
म्हणौनि तीन्ही या जाणा। कार्यकर्तृत्वकारणा। प्रकृति मूळ हे राणा। सिद्धांचा म्हणे ॥९७२॥
एवं तिहींचेनि समवायें। प्रकृति कर्मरूप होये। परी जया गुणा वाढे त्राये। त्याचि सारिखी ॥९७३॥
जें सत्त्वगुणें अधिष्ठिजे। तें सत्कर्म म्हणिजे। रजोगुणें निफजे। मध्यम तें ॥९७४॥
जें कां केवळ तमें। होती जियें कर्मे। निषिद्धें अधमें। जाण तियें ॥९७५॥
ऐसेनि संतासंतें। कर्मे प्रकृतीस्तव होतें। तयापासोनि निर्वाळतें। सुखदुःख गा ॥९७६॥
असंतीं दुःख उपजे। सत्कर्मीं सुख निफजे। तया दोहींचा बोलिजे। भोगु पुरुषा ॥९७७॥
सुखदुःखें जंववरी। निफजती साचोकारीं। तंव प्रकृति उद्यमु करी। पुरुषु भोगी ॥९७८॥
प्रकृतिपुरुषांची कुळवाडी। सांगतां असंगडी। जे आंबुली जोडी। आंबुला खाय ॥९७९॥
आंबुला आंबुलिये। संगती ना सोये। कीं आंबुली जग विये। चोज ऐका ॥९८०॥
पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान ।
कारणं गुण संगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥२१॥
जे अनंगु तो पेंधा। निकवडा नुसधा। जीर्णु अतिवृद्धा- । पासोनि वृद्धु ॥९८१॥
तया आडनांव पुरुषु। एऱ्हवीं स्त्री ना नपुंसकु। किंबहुना एकु। निश्चयो नाहीं ॥९८२॥
तो अचक्षु अश्रवणु। अहस्तु अचरणु। रूप ना वर्णु। नाम आथी ॥९८३॥
अर्जुना कांहींचि जेथ नाहीं। तो प्रकृतीचा भर्ता पाहीं। कीं भोगणें ऐसयाही। सुखदुःखांचें ॥९८४॥
तो तरी अकर्ता। उदासु अभोक्ता। परी इया पतिव्रता। भोगविजे ॥९८५॥
जियेतें अळुमाळु। रूपागुणाचा चाळढाळु। ते भलतैसाही खेळु। लेखा आणी ॥९८६॥
मा इये प्रकृती तंव। गुणमयी हेंचि नांव। किंबहुना सावेव। गुण तेचि हे ॥९८७॥
हे प्रतिक्षणीं नीत्य नवी। रूपा गुणाचीच आघवी। जडातेंही माजवी। इयेचा माजु ॥९८८॥
नामें इयें प्रसिद्धें। स्नेहो इया स्निग्धें। इंद्रियें प्रबुद्धें। इयेचेनि ॥९८९॥

कायि मन हें नपुंसक। कीं ते भोगवी तिन्ही लोक। ऐसें ऐसें अलौकिक। करणें इयेचें ॥९९०॥
हे भ्रमाचे महाद्वीप। व्याप्तीचें रूप। विकार उमप। इया केले ॥९९१॥
हे कामाची मांडवी। हे मोहवनींची माधवी। इये प्रसिद्धचि दैवी। माया हे नाम ॥९९२॥
हे वाङ्मयाची वाढी। हे साकारपणाची जोडी। प्रपंचाची धाडी। अभंग हे ॥९९३॥
कळा एथुनि जालिया। विद्या इयेच्या केलिया। इच्छा ज्ञान क्रिया। वियाली हे ॥९९४॥
हे नादाची टांकसाळ। हे चमत्काराचें वेळाउळ। किंबहुना सकळ। खेळु इयेचा ॥९९५॥
जे उत्पत्ति प्रलयो होत। ते इयेचे सायंप्रात। हें असो अद्‌भुत। मोहन हे ॥९९६॥
हे अद्वयाचें दुसरें। हे निःसंगाचें सोयरे। निराळेंसि घरें। नांदत असे ॥९९७॥
इयेतें येतुलावरी। सौभाग्यव्याप्तीची थोरी। म्हणौनि तया आवरी। अनावरातें ॥९९८॥
तयाच्या तंव ठायीं। निपटूनि कांहींचि नाहीं। कीं तया आघवेहीं। आपणचि होय ॥९९९॥
तया स्वयंभाची संभूती। तया अमूर्ताची मूर्ती। आपण होय स्थिती। ठावो तया ॥१०००॥
तया अनार्ताची आर्ती। तया पूर्णाची तृप्ती। तया अकुळाची जाती- । गोत होय ॥१००१॥
तया अचर्चाचें चिन्ह। तया अपाराचें मान। तया अमनस्काचें मन। बुद्धीही होय ॥१००२॥
तया निराकाराचा आकारु। तया निर्व्यापाराचा व्यापारु। निरहंकाराचा अहंकारु। होऊनि ठाके ॥१००३॥
तया अनामाचें नाम। तया अजाचें जन्म। आपण होय कर्म- । क्रिया तया ॥१००४॥
तया निर्गुणाचे गुण। तया अचरणाचे चरण। तया अश्रवणाचे श्रवण। अचक्षूचे चक्षु ॥१००५॥
तया भावातीताचे भाव। तया निरवयवाचे अवयव। किंबहुना होय सर्व। पुरुषाचें हे ॥१००६॥
ऐसेनि इया प्रकृती। आपुलिया सर्व व्याप्ती। तया अविकारातें विकृती- । माजीं कीजे ॥१००७॥
तेथ पुरुषत्व जें असे। तें ये इये प्रकृतिदशे। चंद्रमा अंवसे। पडिला जैसा ॥१००८॥
विदळ बहु चोखा। मीनलिया वाला एका। कसु होय पांचका। जयापरी ॥१००९॥
कां साधूतें गोंधळी। संचारोनि सुये मैळी। नाना सुदिनाचा आभाळीं। दुर्दिनु कीजे ॥१०१०॥
जेवीं पय पशूच्या पोटीं। कां वन्हि जैसा काष्ठीं। गुंडूनि घेतला पटीं। रत्नदीपु ॥१०११॥
राजा पराधीनु जाहला। कां सिंहु रोगें रुंधला। तैसा पुरुष प्रकृती आला। स्वतेजा मुके ॥१०१२॥
जागता नरु सहसा। निद्रा पाडूनि जैसा। स्वप्नींचिया सोसा। वश्यु कीजे ॥१०१३॥
तैसें प्रकृति जालेपणें। पुरुषा गुण भोगणें। उदास अंतुरीगुणें। आतुडे जेवीं ॥१०१४॥
तैसें अजा नित्या होये। आंगीं जन्ममृत्यूचे घाये। वाजती जैं लाहे। गुणसंगातें ॥१०१५॥
परि तें ऐसें पंडुसुता। तातलें लोह पिटितां। जेवीं वन्हीसीचि घाता। बोलती तया ॥१०१६॥
कां आंदोळलिया उदक। प्रतिभा होय अनेक। तें नानात्व म्हणती लोक। चंद्रीं जेवीं ॥१०१७॥
दर्पणाचिया जवळिका। दुजेपण जैसें ये मुखा। कां कुंकुमें स्फटिका। लोहितत्व ये ॥१०१८॥
तैसा गुणसंगमें। अजन्मा हा जन्मे। पावतु ऐसा गमे। एऱ्हवीं नाहीं ॥१०१९॥
अधमोत्तमा योनी। यासि ऐसिया मानी। जैसा संन्यासी होय स्वप्नीं। अंत्यजादि जाती ॥१०२०॥
म्हणौनि केवळा पुरुषा। नाहीं होणें भोगणें देखा। येथ गुणसंगुचि अशेखा- । लागीं मूळ ॥१०२१॥
उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन पुरुषः परः ॥२२॥
हा प्रकृतिमाजीं उभा। परी जुई जैसा वोथंबा। इया प्रकृति पृथ्वी नभा। तेतुला पाडु ॥१०२२॥
प्रकृतिसरितेच्या तटीं। मेरु होय हा किरीटी। माजीं बिंबे परी लोटीं। लोटों नेणे ॥१०२३॥
प्रकृति होय जाये। हा तो असतुचि आहे। म्हणौनि आब्रह्माचें होये। शासन हा ॥१०२४॥

प्रकृति येणें जिये। याचिया सत्ता जग विये। इयालागीं इये। वरयेतु हा ॥१०२५॥
अनंतें काळें किरीटी। जिया मिळती इया सृष्टी। तिया रिगती ययाच्या पोटीं। कल्पांतसमयीं ॥१०२६॥
हा महद्ब्रह्मगोसावी। ब्रह्मगोळ लाघवी। अपारपणें मवी। प्रपंचातें ॥१०२७॥
पैं या देहामाझारीं। परमात्मा ऐसी जे परी। बोलिजे तें अवधारीं। ययातेंचि ॥१०२८॥
अगा प्रकृतिपरौता। एकु आथी पंडुसुता। ऐसा प्रवादु तो तत्त्वता। पुरुषु हा पैं ॥१०२९॥
य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥२३॥
जो निखळपणें येणें। पुरुषा यया जाणे। आणि गुणांचें करणें। प्रकृतीचें तें ॥१०३०॥
हें रूप हे छाया। पैल जळ हे माया। ऐसा निवाडु धनंजया। जेवीं कीजे ॥१०३१॥
तेणें पाडें अर्जुना। प्रकृतिपुरुषविवंचना। जयाचिया मना। गोचर जाहली ॥१०३२॥
तो शरीराचेनि मेळें। करूं कां कर्में सकळें। परी आकाश धुई न मैळे। तैसा असे ॥१०३३॥
आथिलेनि देहें। जो न घेपे देहमोहें। देह गेलिया नोहे। पुनरपि तो ॥१०३४॥
ऐसा तया एकु। प्रकृतिपुरुषविवेकु। उपकारु अलौकिकु। करी पैं गा ॥१०३५॥
परी हाचि अंतरीं। विवेक भानूचिया परी। उदैजे तें अवधारीं। उपाय बहुत ॥१०३६॥
ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥२४॥
कोणी एकु सुभटा। विचाराचा आगिटां। आत्मानात्मकिटा। पुटें देउनी ॥१०३७॥
छत्तीसही वानी भेद। तोडोनियां निर्विवाद। निवडिती शुद्ध। आपणपें ॥१०३८॥
तया आपणपयाच्या पोटीं। आत्मध्यानाचिया दिठी। देखती गा किरीटी। आपणपेंचि ॥१०३९॥
आणिक पैं दैवबगें। चित्त देती सांख्ययोगें। एक ते अंगलगें। कर्माचेनी ॥१०४०॥
अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरंत्येव मृत्युं श्रुतिपरायणः ॥२५॥
येणें येणें प्रकारें। निस्तरती साचोकारें। हें भवा भेउरें। आघवेंचि ॥१०४१॥
परी ते करिती ऐसें। अभिमानु दवडूनि देशें। एकाचिया विश्वासें। टेंकती बोला ॥१०४२॥
जे हिताहित देखती। हानि कणवा घेपती। पुसोनि शिणु हरिती। देती सुख ॥१०४३॥
तयांचेनि मुखें जें निघे। तेतुलें आदरें चांगें। ऐकोनियां आंगें। मनें होती ॥१०४४॥
तया ऐकणेयाचि नांवें। ठेविती गा आघवें। तया अक्षरांसीं जीवें। लोण करिती ॥१०४५॥
तेही अंतीं कपिध्वजा। इया मरणार्णवसमाजा- । पासूनि निघती वोजा। गोमटिया ॥१०४६॥
ऐसेसे हे उपाये। बहुवस एथें पाहें। जाणावया होये। एकी वस्तु ॥१०४७॥
आतां पुरे हे बहुत। पैं सर्वार्थाचें मथित। सिद्धांतनवनीत। देऊं तुज ॥१०४८॥
येतुलेनि पंडुसुता। अनुभव लाहाणा आयिता। येर तंव तुज होतां। सायास नाहीं ॥१०४९॥
म्हणौनि ते बुद्धि रचूं। मतवाद हे खांचूं। सोलीव निर्वचूं। फलितार्थुची ॥१०५०॥
यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥२६॥
तरी क्षेत्रज्ञ येणें बोलें। तुज आपणपें जें दाविलें। आणि क्षेत्रही सांगितलें। आघवें जें ॥१०५१॥
तया येरयेरांच्या मेळीं। होईजे भूतीं सकळीं। अनिलसंगें सलिलीं। कल्लोळ जैसे ॥१०५२॥
कां तेजा आणि उखरा। भेटी जालिया वीरा। मृगजळाचिया पूरा। रूप होय ॥१०५३॥

नाना धाराधरधारीं। झळंबलिया वसुंधरी। उठिजे जेवीं अंकुरीं। नानाविधीं ॥१०५४॥
तैसें चराचर आघवें। जें कांहीं जीवु नावें। तें तों उभययोगें संभवे। ऐसें जाण ॥१०५५॥
इयालागीं अर्जुना। क्षेत्रज्ञा प्रधाना- । पासूनि न होती भिन्ना। भूतव्यक्ती ॥१०५६॥
समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥२७॥
पैं पटत्व तंतु नव्हे। तरी तंतूसीचि तें आहे। ऐसां खोलीं डोळां पाहें। ऐक्य हें गा ॥१०५७॥
भूतें आघवींचि होती। एकाचीं एक आहाती। परी तूं प्रतीती। यांची घे पां ॥१०५८॥
यांचीं नामेंही आनानें। अनारिसीं वर्तनें। वेषही सिनाने। आघवेयांचे ॥१०५९॥
ऐसें देखोनि किरीटी। भेद सूसी हन पोटीं। तरी जन्माचिया कोटी। न लाहसी निघों ॥१०६०॥
पैं नानाप्रयोजनशीळें। दीर्घें वक्रें वर्तुळें। होती एकाचींच फळें। तुंबिणीयेचीं ॥१०६१॥
होतु कां उजू वांकुडें। परी बोरीचे हें न मोडे। तैसी भूतें अवघडें। परी वस्तु उजू ॥१०६२॥
अंगारकणीं बहुवसीं। उष्णता समान जैशी। तैसा नाना जीवराशीं। परेशु असे ॥१०६३॥
गगनभरी धारा। परी पाणी एकचि वीरा। तैसा या भूताकारा। सर्वांगीं तो ॥१०६४॥
हें भूतग्राम विषम। परी वस्तू ते एथ सम। घटमठीं व्योम। जियापरी ॥१०६५॥
हा नाशतां भूताभासु। एथ आत्मा तो अविनाशु। जैसा केयूरादिकीं कसु। सुवर्णाचा ॥१०६६॥
एवं जीवधर्महीनु। जो जीवेंसीं अभिन्नु। देख तो सुनयनु। ज्ञानियांमाजीं ॥१०६७॥
ज्ञानाचा डोळा डोळसां- । माजीं डोळसु तो वीरेशा। हे स्तुति नोहे बहुवसा। भाग्याचा तो ॥१०६८॥
समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥२८॥
जे गुणेंद्रिय धोकोटी। देह धातूंची त्रिकुटी। पांचमेळावा वोखटी। दारुण हे ॥१०६९॥
हें उघड पांचवेउली। पंचधां आगी लागली। जीवपंचानना सांपडली। हरिणकुटी हे ॥१०७०॥
ऐसा असोनि इये शरीरीं। कोण नित्यबुद्धीची सुरी। अनित्यभावाच्या उदरीं। दाटीचिना ॥१०७१॥
परी इये देहीं असतां। जो नयेचि आपणया घाता। आणि शेखीं पंडुसुता। तेथेंचि मिळे ॥१०७२॥
जेथ योगज्ञानाचिया प्रौढी। वोलांडूनियां जन्मकोडी। न निगों इया भाषा बुडी। देती योगी ॥१०७३॥
जें आकाराचें पैल तीर। जें नादाची पैल मेर। तुर्येचें माजघर। परब्रह्म जें ॥१०७४॥
मोक्षासकट गती। जेथें येती विश्रांती। गंगादि आपांपती। सरिता जेवीं ॥१०७५॥
तें सुख येणेंचि देहें। पाय पाखाळणिया लाहे। जो भूतवैषम्यें नोहे। विषमबुद्धी ॥१०७६॥
दीपांचिया कोडी जैसें। एकचि तेज सरिसें। तैसा जो असतुचि असे। सर्वत्र ईशु ॥१०७७॥
ऐसेनि समत्वें पंडुसुता। जिये जो देखत साता। तो मरण आणि जीविता। नागवे फुडा ॥१०७८॥
म्हणौनि तो दैवागळा। वानीत असों वेळोवेळां। जे साम्यसेजे डोळां। लागला तया ॥१०७९॥
प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथाऽऽत्मानंअकर्तारं स पश्यति ॥२९॥
आणि मनोबुद्धिप्रमुखें। कर्मेंद्रियें अशेखें। करी प्रकृतीचि हें देखे। साच जो गा ॥१०८०॥
घरींचीं राहटती घरीं। घर कांहीं न करी। अभ्र धांवे अंबरीं। अंबर तें उगें ॥१०८१॥
तैसी प्रकृति आत्मप्रभा। खेळे गुणीं विविधारंभा। येथ आत्मा तो वोथंबा। नेणे कोण ॥१०८२॥
ऐसेनि येणें निवाडें। जयाच्या जीवीं उजिवडें। अकर्तयातें फुडें। देखिलें तेणें ॥१०८३॥
यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।

तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥३०॥

एऱ्हवीं तैंचि अर्जुना। होईजे ब्रह्मसंपन्ना। जैं या भूताकृती भिन्ना। दिसती एकी ॥१०८४॥

लहरी जैसिया जळीं। परमाणुकणिका स्थळीं। रश्मीकरमंडळीं। सूर्याच्या जेवीं ? ॥१०८५॥

नातरी देहीं अवेव। मनीं आघवेचि भाव। विस्फुलिंग सावेव। वन्हीं एकीं ॥१०८६॥

तैसे भूताकार एकाचे। हें दिठी रिगे जैं साचें। तैंचि ब्रह्मसंपत्तीचें। तारूं लागे ॥१०८७॥

मग जया तयाकडे। ब्रह्मेचि दिठी उघडे। किंबहुना जोडे। अपार सुख ॥१०८८॥

येतुलेनि तुज पार्था। प्रकृतिपुरुषव्यवस्था। ठायें ठावो प्रतीतिपथा- । माजीं जाहली ? ॥१०८९॥

अमृत जैसें ये चुळा। कां निधान देखिजे डोळां। तेतुला जिव्हाळा। मानावा हा ॥१०९०॥

जी जाहलिये प्रतीती। घर बांधणें जें चित्तीं। तें आतां ना सुभद्रापती। इयावरी ॥१०९१॥

तरी एक दोन्ही ते बोल। बोलिजती सखोल। देईं मनातें वोल। मग ते घेईं ॥१०९२॥

ऐसें देवें म्हणितलें। मग बोलों आदरिलें। तेथें अवधानाचेचि केलें। सर्वांग येरें ॥१०९३॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात् परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥३१॥

तरी परमात्मा म्हणिपे। तो ऐसा जाण स्वरूपें। जळीं जळें न लिंपे। सूर्यु जैसा ॥१०९४॥

कां जे जळा आदीं पाठीं। तो असतुचि असे किरीटी। माजीं बिंबे तें दृष्टी। आणिकांचिये ॥१०९५॥

तैसा आत्मा देहीं। आथि म्हणिपे हें कांहीं। साचें तरी नाहीं। तो जेथिंचा तेथें ॥१०९६॥

आरिसां मुख जैसें। बिंबलिया नाम असे। देहीं वसणें तैसें। आत्मतत्त्वा ॥१०९७॥

तया देहा म्हणती भेटी। हे सपायी निर्जीव गोठी। वारिया वाळुवे गांठी। केंही आहे ? ॥१०९८॥

आगी आणि कापुसा। दोरा सुवावा कैसा। केउता सांदा आकाशा। पाषाणेंसी ? ॥१०९९॥

एक निघे पूर्वेकडे। एक तें पश्चिमेकडे। तिये भेटीचेनि पाडें। संबंधु हा ॥११००॥

उजियेडा आणि अंधारेया। जो पाडु मृता उभेयां। तोचि गा आत्मया। देहा जाण ॥११०१॥

रात्री आणि दिवसा। कनका आणि कापुसा। अपाडु कां जैसा। तैसाचि यासी ॥११०२॥

देह तंव पांचांचें जालें। हें कर्माचें गुणीं गुंथले। भंवतसे चाकीं सूदलें। जन्ममृत्यूच्या ॥११०३॥

हें काळानळाच्या तोंडीं। घातली लोणियाची उंडी। माशी पांखु पाखडी। तंव हें सरे ॥११०४॥

हें विपायें आगींत पडे। तरी भस्म होऊनि उडे। जाहलें श्वाना वरपडें। तरी ते विष्ठा ॥११०५॥

या चुके दोहीं काजा। तरी होय कृमींचा पुंजा। हा परिणामु कपिध्वजा। कश्मलु गा ॥११०६॥

या देहाची हे दशा। आणि आत्मा तो एथ ऐसा। पैं नित्य सिद्ध आपैसा। अनादिपणें ॥११०७॥

सकळु ना निष्कळु। अक्रियु ना क्रियाशीळु। कृश ना स्थुळु। निर्गुणपणें ॥११०८॥

आभासु ना निराभासु। प्रकाशु ना अप्रकाशु। अल्प ना बहुवसु। अरूपपणें ॥११०९॥

रिता ना भरितु। रहितु ना सहितु। मूर्तु ना अमूर्तु। शून्यपणें ॥१११०॥

आनंदु ना निरानंदु। एक ना विविधु। मुक्त ना बद्धु। आत्मपणें ॥११११॥

येतुला ना तेतुला। आइता ना रचिला। बोलता ना उगला। अलक्षपणें ॥१११२॥

सृष्टीच्या होणा न रचे। सर्वसंहारें न वेंचे। आथी नाथी या दोहींचें। पंचत्व तो ॥१११३॥

मवे ना चर्चे। वाढे ना खांचे। विटे ना वेंचे। अव्ययपणें ॥१११४॥

एवं रूप पैं आत्मा। देहीं जें म्हणती प्रियोत्तमा। तें मठाकारें व्योमा। नाम जैसें ॥१११५॥

तैसें तयाचिये अनुस्यूती। होती जाती देहाकृती। तो घे ना सांडी सुमती। जैसा तैसा ॥१११६॥

अहोरात्रें जैशी। येती जाती आकाशीं। आत्मसत्तें तैसीं। देहें जाण ॥१११७॥

म्हणौनि इयें शरीरीं। कांहीं करवीं ना करी। आयताही व्यापारीं। सज्ज न होय ॥११११८॥
यालागीं स्वरूपें। उणा पुरा न घेपे। हें असो तो न लिंपे। देहीं देहा ॥११११९॥
यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथाऽऽत्मा नोपलिप्यते ॥३२॥
अगा आकाश कें नाहीं ? । हें न रिघेचि कवणे ठायीं ? । परी कायिसेनि कहीं। गादिजेना ॥११२०॥
तैसा सर्वत्र सर्व देहीं। आत्मा असतुचि असे पाहीं। संगदोषें एकेंही। लिप्त नोहे ॥११२१॥
पुढतपुढती एथें। हेंचि लक्षण निरुतें। जे जाणावें क्षेत्रज्ञातें। क्षेत्रविहीना ॥११२२॥
संसर्गें चेष्टिजे लोहें। परी लोह भ्रामकु नोहे। क्षेत्रक्षेत्रज्ञां आहे। तेतुला पाडु ॥११२३॥
दीपकाची अर्ची। राहाटी वाहे घरींची। परी वेगळीक कोडीची। दीपा आणि घरा ॥११२४॥
पैं काष्ठाच्या पोटीं। वन्हि असे किरीटी। परी काष्ठ नोहे या दृष्टी। पाहिजे हा ॥११२५॥
अपाडु नभा आभाळा। रवि आणि मृगजळा। तैसाचि हाही डोळां। देखसी जरी ॥११२६॥
यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥३३॥
हें आघवेंचि असो एकु। गगनौनि जैसा अर्कु। प्रगटवी लोकु। नांवें नांवें ॥११२७॥
एथ क्षेत्रज्ञु तो ऐसा। प्रकाशकु क्षेत्राभासा। यावरुतें हें न पुसा। शंका नेघा ॥११२८॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च विदुर्यान्ति ते परम् ॥३४॥
ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोगोनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३अ ॥
शब्दतत्त्वसारज्ञा। पैं देखणें तेचि प्रज्ञा। जे क्षेत्रा क्षेत्रज्ञा। अपाडु देखे ॥११२९॥
इया दोहींचें अंतर। देखावया चतुर। ज्ञानियांचे द्वार। आराधिती ॥११३०॥
याचिलागीं सुमती। जोडिती शांतिसंपत्ती। शास्त्रांचीं दुभतीं। पोसिती घरीं ॥११३१॥
योगाचिया आकाशा। वळघिजे येवढाचि धिंवसा। याचियाचि आशा। पुरुषासि गा ॥११३२॥
शरीरादि समस्त। मानिताति तृणवत। जीवें संतांचे होत। वाहणधरु ॥११३३॥
ऐसैसियापरी। ज्ञानाचिया भरोवरी। करूनियां अंतरीं। निरुतें होती ॥११३४॥
मग क्षेत्रक्षेत्रज्ञांचें। जें अंतर देखती साचें। ज्ञानें उन्मेख तयांचें। वोवाळूं आम्ही ॥११३५॥
आणि महाभूतादिकीं। प्रभेदलीं अनेकीं। पसरलीसे लटिकी। प्रकृति जे हे ॥११३६॥
जे शुकनळिकान्यायें। न लगती लागली आहे। हें जैसें तैसें होये। ठाउवें जयां ॥११३७॥
जैसी माळा ते माळा। ऐसीचि देखिजे डोळां। सर्पबुद्धि टवाळा। उखी होउनी ॥११३८॥
कां शुक्ति ते शुक्ती। हे साच होय प्रतीती। रुपेयाची भ्रांती। जाऊनियां ॥११३९॥
तैसी वेगळी वेगळेपणें। प्रकृति जे अंतःकरणें। देखती ते मी म्हणें। ब्रह्म होती ॥११४०॥
जें आकाशाहूनि वाड। जें अव्यक्ताची पैल कड। जें भेटलिया अपाडा पाड। पडों नेदी ॥११४१॥
आकारु जेथ सरे। जीवत्व जेथ विरे। द्वैत जेथ नुरे। अद्वय जें ॥११४२॥
तें परम तत्त्व पार्था। होती ते सर्वथा। जे आत्मानात्मव्यवस्था- । राजहंसु ॥११४३॥
ऐसा हा जी आघवा। श्रीकृष्णें तया पांडवा। उगाणा दिधला जीवा। जीवाचिया ॥११४४॥
येर कलशींचें येरीं। रिचविजे जयापरी। आपणपें तया श्रीहरी। दिधलें तैसें ॥११४५॥
आणि कोणा देता कोण। तो नर तैसा नारायण। वरी अर्जुनातें श्रीकृष्ण। हा मी म्हणे ॥११४६॥

परी असो तें नाथिलें। न पुसतां कां मी बोलें। किंबहुना दिधलें। सर्वस्व देवें ॥११४७॥
कीं तो पार्थु जी मनीं। अझुनी तृप्ती न मनी। अधिकाधिक उतान्ही। वाढवीतु असे ॥११४८॥
स्नेहाचिया भरोवरी। आंबुथिला दीपु घे थोरी। चाड अर्जुना अंतरीं। परिसतां तैसी ॥११४९॥
तेथ सुगरिणी आणि उदारे। रसज्ञ आणि जेवणारे। मिळती मग अवतरे। हातु जैसा ॥११५०॥
तैसें जी होतसे देवा। तया अवधानाचिया लवलवा। पाहतां व्याख्यान चढलें थांवा। चौगुणें वरी ॥११५१॥
सुवायें मेघु सांवरे। जैसा चंद्रें सिंधु भरे। तैसा मातुला रसु आदरें। श्रोतयांचेनि ॥११५२॥
आतां आनंदमय आघवें। विश्व कीजेल देवें। तें रायें परिसावें। संजयो म्हणे ॥११५३॥
एवं जे महाभारतीं। श्रीव्यासें आप्रांतमती। भीष्मपर्वसंगतीं। म्हणितली कथा ॥११५४॥
तो कृष्णार्जुनसंवादु। नागरीं बोलीं विशदु। सांगोनि दॐ प्रबंधु। वोवियेचा ॥११५५॥
नुसधीचि शांतिकथा। आणिजेल कीर वाक्पथा। जे शृंगाराच्या माथां। पाय ठेवी ॥११५६॥
दॐ वेल्हाळे देशी नवी। जे साहित्यातें वोजावी। अमृतातें चुकी ठेवी। गोडिसेंपणें ॥११५७॥
बोल वोल्हावतेनि गुणें। चंद्रासि घे उमाणे। रसरंगीं भुलवणें। नादु लोपी ॥११५८॥
खेचरांचियाही मना। आणीन सात्त्विकाचा पान्हा। श्रवणासवें सुमना। समाधि जोडे ॥११५९॥
तैसा वाग्विलास विस्तारूं। गीतार्थेंसी विश्व भरूं। आनंदाचें आवारूं। मांडूं जगा ॥११६०॥
फिटो विवेकाची वाणी। हो कानामनाची जिणी। देखो आवडे तो खाणी। ब्रह्मविद्येची ॥११६१॥
दिसो परतत्त्व डोळां। पाहो सुखाचा सोहळा। रिघो महाबोध सुकाळा- । माजीं विश्व ॥११६२॥
हें निफजेल आतां आघवें। ऐसें बोलिजेल बरवें। जें अधिष्ठिला असें परमदेवें। श्रीनिवृत्तीं मी ॥११६३॥
म्हणौनि अक्षरीं सुभेदीं। उपमा श्लोक कोंदाकोंदी। झाडा देईन प्रतिपदीं। ग्रंथार्थासी ॥११६४॥
हा ठावोवरी मातें। पुरतया सारस्वतें। केलें असे श्रीमंतें। श्रीगुरुरायें ॥११६५॥
तेणें जी कृपासावायें। मी बोलें तेतुलें सामाये। आणि तुमचिये सभे लाहें। गीता म्हणों ॥११६६॥
वरी तुम्हा संतांचे पाये। आजि मी लाधलों आहें। म्हणौनि जी नोहे। अटकु काहीं ॥११६७॥
प्रभु काश्मिरीं मुकें। नुपजे हें काय कौतुकें। नाहीं उणीं सामुद्रिकें। लक्ष्मीयेसी ॥११६८॥
तैसी तुम्हां संतांपासीं। अज्ञानाची गोठी कायसी। यालागीं नवरसीं। वरुषेन मी ॥११६९॥
किंबहुना आतां देवा। अवसरु मज देयावा। ज्ञानदेव म्हणे बरवा। सांगेन ग्रंथु ॥११७०॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय चौदावा ।

गुणत्रयविभागयोगः ।

जय जय आचार्या। समस्तसुरवर्या। प्रज्ञाप्रभातसूर्या। सुखोदया ॥१॥

जय जय सर्व विसांवया। सो~हंभावसुहावया। नाना लोक हेलावया। समुद्रा तूं ॥२॥

आइकें गा आर्तबंधू। निरंतरकारुण्यसिंधू। विशदविद्यावधू- । वल्लभा जी ॥३॥

तू जयांप्रति लपसी। तया विश्व हें दाविसी। प्रकट तैं करिसी। आघवेंचि तूं ॥४॥

कीं पुढिलाची दृष्टि चोरिजे। हा दृष्टिबंधु निफजे। परी नवल लाघव तुझें। जें आपणपें चोरें ॥५॥

जी तूंचि तूं सर्वां यया। मा कोणा बोधु कोणा माया। ऐसिया आपेंआप लाघविया। नमो तुज ॥६॥

जाणों जगीं आप वोलें। तें तुझिया बोला सुरस जालें। तुझेनि क्षमत्व आलें। पृथ्वियेसी ॥७॥

रविचंद्रादि शुक्ती। उदो करिती त्रिजगतीं। तें तुझिया दीप्ती। तेज तेजां ॥८॥

चळवळिजे अनिळें। तें दैविकेनि जी निजबळें। नभ तुजमाजीं खेळे। लपीथपी ॥९॥

किंबहुना माया असोस। ज्ञान जी तुझेनि डोळस। असो वानणें सायास। श्रुतीसि हे ॥१०॥

वेद वानूनि तंवचि चांग। जंव न दिसे तुझें आंग। मग आम्हां तया मूग। एके पांती ॥११॥

जी एकार्णवाचे ठाईं। पाहतां थेंबाचा पाडु नाहीं। मा महानदी काई। जाणिजती ॥१२॥

कां उअदयलिया भास्वतु। चंद्र जैसा खद्योतु। आम्हां श्रुति तुज आंतु। तो पाडु असे ॥१३॥

आणि दुजया थांवो मोडे। जेथ परेशीं वैखरी बुडे। तो तूं मा कोणें तोंडें। वानावासी ॥१४॥

यालागीं आतां। स्तुति सांडूनि निवांता। चरणीं ठेविजे माथा। हेंचि भलें ॥१५॥

तरी तू जैसा आहासि तैसिया। नमो जी श्रीगुरुराया। मज ग्रंथोद्यमु फळावया। वेव्हारा होईं ॥१६॥

आतां कृपाभांडवल सोडीं। भरीं मति माझी पोतडी। करीं ज्ञानपद्य जोडी। थोरा मातें ॥१७॥

मग मी संसरेन तेणें। करीन संतांसी कर्णभूषणें। लेववीन सुलक्षणें। विवेकाचीं ॥१८॥

जी गीतार्थनिधान। काढू माझें मन। सुयीं स्नेहांजन। आपलें तूं ॥१९॥

हे वाक्सृष्टि एके वेळे। देखतु माझे बुद्धीचे डोळे। तैसा उदैजो जो निर्मळें। कारुण्यबिंबें ॥२०॥

माझी प्रज्ञावेली वेल्हाळ। काव्यें होय सफळ। तो वसंतु होय स्नेहाळ- । शिरोमणी ॥२१॥

प्रमेय महापूरें। हे मतिगंगा ये थोरें। तैसा वरिष उदारें। दिठीवेनी ॥२२॥

अगा विश्वैकधामा। तुझा प्रसाद चंद्रमा। करूं मज पूर्णिमा। स्फूर्तीची जी ॥२३॥

जी अवलोकिलिया मातें। उन्मेषसागरीं भरितें। वोसंडेल स्फूर्तीतें। रसवृत्तीचें ॥२४॥

तंव संतोषोनि श्रीगुरुराजें। म्हणितलें विनतिव्याजें। मांडिलें देखोनि दुजें। स्तवनमिषें ॥२५॥

हें असो आतां वांजटा। तो ज्ञानार्थ करूनि गोमटा। ग्रंथु दावीं उत्कंठा। भंगो नेदीं ॥२६॥

हो कां जी स्वामी। हेंचि पाहत होतों मी। जे श्रीमुखें म्हणा तुम्ही। ग्रंथु सांग ॥२७॥

सहजें दुर्वेचा डिरु। आंगेंचि तंव अमरु। वरी आला पूरु। पीयूषाचा ॥२८॥

तरी आतां येणें प्रसादें। विन्यासें विदग्धें। मूळशास्त्रपदें। वाखाणीन ॥२९॥

परी जीवा आंतुलीकडे। जैसी संदेहाची डोणी बुडे। ना श्रवणीं तरी चाडे। वाढी दिसे ॥३०॥

तैसी बोली साचारी। अवतरो माझी माधुरी। माले मागूनि घरीं। गुरुकृपेच्या ॥३१॥

तरी मागां त्रयोदशीं। अध्यायीं गोठी ऐसी। श्रीकृष्ण अर्जुनेंसी। चावळले ॥३२॥

जे क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोगें। होईजे येणें जगें। आत्मा गुणसंगें। संसारिया ॥३३॥
आणि हाचि प्रकृतिगतु। सुखदुःख भोगीं हेतु। अथवा गुणातीतु। केवळु हा ॥३४॥
तरी कैसा पां असंगा संगु। कोण तो क्षेत्रक्षेत्रज्ञायोगु। सुखदुःखादि भोगु। केवीं तया ? ॥३५॥
गुण ते कैसे किती। बांधती कवणे रीती। नातरी गुणातीतीं। चिन्हें काई ? ॥३६॥
एवं इया आघवेया। अर्था रूप करावया। विषो एथ चौदाविया। अध्यायासी ॥३७॥
तरी तो आतां ऐसा। प्रस्तुत परियेसा। अभिप्रायो विश्वेशा। वैकुंठाचा ॥३८॥
तो म्हणे गा अर्जुना। अवधानाची सर्व सेना। मेळऊनि इया ज्ञाना। झोंबावें हो ! ॥३९॥
आम्हीं मागां तुज बहुतीं। दाविलें हें उपपत्ती। तरी आझुनी प्रतीती- । कुशीं न निघे ॥४०॥
श्रीभगवानुवाच ।
परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानाना.म् ज्ञानमुत्तमम् ।
यद्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥१॥
म्हणौनि गा पुढती। सांगिजैल तुजप्रती। पर म्हण म्हणौनि श्रुतीं। डाहारिलें जें ॥४१॥
एऱ्हवीं ज्ञान हें आपुलें। परी पर ऐसेनि जालें। जे आवडोनि घेतलें। भवस्वर्गादिक ॥४२॥
अगा याचि कारणें। हें उत्तम सर्वांपरी मी म्हणें। जे वन्हि हें तृणें। येरें ज्ञानें ॥४३॥
जियें भवस्वर्गातें जाणती। यागचि चांग म्हणती। पारखी फुडी आथी। भेदीं जया ॥४४॥
तियें आघवींचि ज्ञानें। केलीं येणें स्वप्नें। जैशा वातोर्मी गगनें। गिळिजती अंतीं ॥४५॥
कां उदितें रश्मिराजें। लोपिलीं चंद्रादि तेजें। नाना प्रळयांबुमाजें। नदी नद ॥४६॥
तैसें येणें पाहलेया। ज्ञानजात जाय लया। म्हणौनियां धनंजया। उत्तम हें ॥४७॥
अनादि जे मुक्तता। आपुली असे पंडुसुता। तो मोक्षु हातां येता। होय जेणें ॥४८॥
जयाचिया प्रतीती। विचारवीरीं समस्तीं। नेदिजेचि संसृती। माथां उधऊं ॥४९॥
मनें मन घालूनि मागें। विश्रांति जालिया आंगें। ते देहीं देहाजोगे। होतीचि ना ॥५०॥
मग तें देहाचें बेळें। वोलांडूनि एकेचि वेळे। संवतुकी कांटाळें। माझें जालें ॥५१॥
इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥२॥
जे माझिया नित्यता। तेणें नित्य ते पंडुसुता। परिपूर्ण पूर्णता। माझियाची ॥५२॥
मी जैसा अनंतानंदु। जैसाचि सत्यसिंधु। तैसेचि ते भेदु। उरेचि ना ॥५३॥
जें मी जेवढें जैसें। तेंचि ते जाले तैसें। घटभंगीं घटाकाशें। आकाश जेवीं ॥५४॥
नातरीं दीपमूळकीं। दीपशिखा अनेकीं। मीनलिया अवलोकीं। होय जैसें ॥५५॥
अर्जुना तयापरी। सरली द्वैताची वारी। नांदे नामार्थ एकाहारीं। मीतूंविण ॥५६॥
येणेंचि पैं कारणें। जैं पहिलें सृष्टीचें जुंपणें। तेंही तया होणें। पडेचिना ॥५७॥
सृष्टीचिये सर्वादी। जयां देहाची नाहीं बांधी। ते कैचें प्रळयावधी। निमतील पां ? ॥५८॥
म्हणौनि जन्मक्षयां- । अतीत ते धनंजया। मी जालें ज्ञाना इया। अनुसरोनी ॥५९॥
ऐसी ज्ञानाची वाढी। वानिली देवें आवडी। तेवींचि पार्थाही गोडी। लावावया ॥६०॥
तंव तया जालें आन। सर्वांगीं निघाले कान। सणई अवधान। आतला पां ॥६१॥
आतां देवाचिया ऐसें। जाकळीजत असे वोरसें। जें निरूपण आकाशें। वेंटाळेना ॥६२॥
मग म्हणे गा प्रज्ञाकांता। उजवली आजि वक्तृत्वता। जे बोलायेवढा श्रोता। जोडलासी ॥६३॥
तरि एकु मी अनेकीं। गोंविजे देहपाशकीं। त्रिगुणीं लुब्धकीं। कवणेपरी ॥६४॥

कैसा क्षेत्रयोगें। वियें इयें जगें। तें परिस सांगें। कवणेपरी ॥६५॥
पैं क्षेत्र येणें व्याजें। यालागीं हें बोलिजे। जे मत्संगबीजें। भूतीं पिके ॥६६॥
मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधामहम्यम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥३॥
एऱ्हवीं तरी महद्ब्रह्म। यालागीं हें ऐसें नाम। जे महदादिविश्राम। शालिका हें ॥६७॥
विकारां बहुवस थोरी। अर्जुना हेंचि करी। म्हणौनि अवधारीं। महद्ब्रह्म ॥६८॥
अव्यक्तवादमतीं। अव्यक्त ऐसी वदंती। सांख्याचिया प्रतीती। प्रकृति हेचि ॥६९॥
वेदांतीं इयेतें माया। ऐसें म्हणिजे प्राज्ञराया। असो किती बोलों वायां। अज्ञान हें ॥७०॥
आपला आपणपेयां। विसरु जो धनंजया। तेंचि रूप यया। अज्ञानासी ॥७१॥
आणिकही एक असे। जें विचारावेळे न दिसे। वातीं पाहतां जैसें। अंधारें कां ॥७२॥
हालविलिया जाय। निश्चळीं तरी होय। दुधीं जैसी साय। दुधाची ते ॥७३॥
पैं जागरु ना स्वप्न। ना स्वरूप अवस्थान। ते सुषुप्ति कां घन। जैसी होय ॥७४॥
कां न वियतां वायूतें। वांझें आकाश रितें। तया ऐसें निरुतें। अज्ञान गा ॥७५॥
पैल खांबु कां पुरुखु। ऐसा निश्चयो नाहीं एकु। परी काय नेणों आलोकु। दिसत असे ॥७६॥
तेवीं वस्तु जैसी असे। तैसी कीर न दिसे। परी कांहीं अनारिसें। देखिजेना ॥७७॥
ना राती ना तेज। ते संधि जेवीं सांज। तेवीं विरुद्ध ना निज। ज्ञान आथी ॥७८॥
ऐसी कोण्ही एकी दिशा। तिये वादु अज्ञान ऐसा। तया गुंडलिया प्रकाशा। क्षेत्रज्ञु नाम ॥७९॥
अज्ञान थोरिये आणिजे। आपणपें तरी नेणिजे। तें रूप जाणिजे। क्षेत्रज्ञाचें ॥८०॥
हाचि उभय योगु। बुझें बापा चांगु। सत्तेचा नैसर्गु। स्वभावो हा ॥८१॥
आतां अज्ञानासारिखें। वस्तु आपणपांचि देखे। परी रूपें अनेकें। नेणों कोणें ॥८२॥
जैसा रंकु भ्रमला। म्हणे जा रे मी रावो आला। कां मूर्च्छितु गेला। स्वर्गलोकां ॥८३॥
तेवीं लचकलिया दिठी। मग देखणें जें जें उठी। तया नाम सृष्टी। मीचि वियें पैं गा ॥८४॥
जैसें कां स्वप्नमोहा। तो एकाकी देखे बहुवा। तोचि पाडु आत्मया। स्मरणेंवीण असे ॥८५॥
हेंचि आनीभ्रांती। प्रमेय उपलवूं पुढती। परी तूं प्रतीती। याचि घे पां ॥८६॥
तरी माझी हे गृहिणी। अनादि तरुणी। अनिर्वाच्यगुणी। अविद्या हे ॥८७॥
इये नाहीं हेंचि रूप। ठाणें हें अति उमप। हें निद्रितां समीप। चेतां दुरी ॥८८॥
पैं माझेनिचि आंगें। पहुडल्या हे जागे। आणि सत्तासंभोगें। गुर्विणी होय ॥८९॥
महद्ब्रह्मउदरीं। प्रकृतीं आठै विकारीं। गर्भाची करी। पेलोवेली ॥९०॥
उभयसंगु पहिलें। बुद्धितत्त्वें प्रसवलें। बुद्धितत्त्व भारैलें। होय मन ॥९१॥
तरुणी ममता मनाची। ते अहंकार तत्त्व रची। तेणें महाभूतांची। अभिव्यक्ति होय ॥९२॥
आणि विषयेंद्रियां गौसी। स्वभावें तंव भूतांसी। म्हणौनि येती सरिसीं। तियेंही रूपा ॥९३॥
जालेनि विकारक्षोभें। पाठीं त्रिगुणाचें उभें। तेव्हां ये वासनागर्भें। ठायेंठावों ॥९४॥
रुखाचा आवांका। जैसी बीजकणिका। जीवीं बांधें उदका। भेटतखेंवो ॥९५॥
तैसी माझेनि संगें। अविद्या नाना जगें। आर घेवों लागे। आणियाची ॥९६॥
मग गर्भगोळा तया। कैसें रूप तैं ये आया। तें परियेसें राया। सुजनांचिया ॥९७॥
पैं मणिज स्वेदज। उद्भिज जारज। उमटती सहज। अवयव हें ॥९८॥
व्योमवायुवशें। वाढलेनि गर्भरसें। मणिजु उससे। अवयव तो ॥९९॥

पोटीं सूनि तमरजें। आगळिकां तोय तेजें। उठितां निफजे। स्वेदजु गा ॥१००॥
आपपृथ्वी उत्कटें। आणि तमोमात्रें निकृष्टें। स्थावरु उमटे। उद्भिजु हा ॥१०१॥
पांचां पांचही विरजीं। होती मनबुद्ध्यादि साजीं। हीं हेतु जारजीं। ऐसें जाण ॥१०२॥
ऐसे चारी हे सरळ। करचरणतळ। महाप्रकृति स्थूळ। तेंचि शिर ॥१०३॥
प्रवृत्ति पेललें पोट। निवृत्ति ते पाठी नीट। सुर योनी आंगें आठ। ऊर्ध्वाचीं ॥१०४॥
कंठु उल्हासता स्वर्गु। मृत्युलोकु मध्यभागु। अधोदेशु चांगु। नितंबु तो ॥१०५॥
ऐसें लेकरूं एक। प्रसवली हें देख। जयाचें तिन्ही लोक। बाळसें गा ॥१०६॥
चौऱ्यांयशीं लक्ष योनी। तियें कांडां पेरां सांदणी। वाढे प्रतिदिनीं। बाळक हें ॥१०७॥
नाना देह अवयवीं। नामाचीं लेणीं लेववी। मोहस्तन्यें वाढवी। नित्य नवें ॥१०८॥
सृष्टी वेगवेगळीया। तिया करांग्रीं आंगोळियां। भिन्नाभिमान सूदलिया। मुदिया तेथें ॥१०९॥
हें एकलौतें चराचर। अविचारित सुंदर। प्रसवोनि थोर। थोरावली ॥११०॥
पै ब्रह्मा प्रातःकाळु। विष्णु तो माध्यान्ह वेळु। सदाशिव सायंकाळु। बाळा यया ॥१११॥
महाप्रळयसेजे। खिळोनि निवांत निजे। विषमज्ञानें उमजें। कल्पोदयीं ॥११२॥
अर्जुना इयापरी। मिथ्यादृष्टीच्या घरीं। युगानुवृत्तीचीं करी। चोज पाउलें ॥११३॥
संकल्पु जयाचा इष्टु। अहंकारु तो विनटु। ऐसिया होय शेवटु। ज्ञानें यया ॥११४॥
आतां असो हे बहु बोली। ऐसें विश्व माया व्याली। तेथ साह्य जाली। माझी सत्ता ॥११५॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥४॥
याकारणें मी पिता। महद्ब्रह्म हे माता। अपत्य पंडुसुता। जगडंबरु ॥११६॥
आतां शरीरें बहुतें। देखोनि न भेदें हो चित्तें। जे मनबुद्ध्यादि भूतें। एकेंचि येथें ॥११७॥
हां गा एकाचि देहीं। काय अनारिसें अवयव नाहीं ? । तेवीं विचित्र विश्व पाहीं। एकचि हें ॥११८॥
पैं उंचा नीचा डाहाळिया। विषमा वेगळालिया। येकाचि जेवीं जालिया। बीजाचिया ॥११९॥
आणि संबंधु तोही ऐसा। मृत्तिके घटु लेंकु जैसा। कां पटत्व कापुसा। नातू होय ॥१२०॥
नाना कल्लोळपरंपरा। संतती जैसी सागरा। आम्हां आणि चराचरा। संबंधु तैसा ॥१२१॥
म्हणौनि वन्हि आणि ज्वाळ। दोन्ही वन्हीचि केवळ। तेवीं मी गा सकळ। संबंधु वावो ॥१२२॥
जालेनि जगें मी झांकें। तरी जगत्वें कोण फांके ? । किळेवरी माणिकें। लोपिजे काई ? ॥१२३॥
अळंकारातें आलें। तरी सोनेपण काइ गेलें ? । कीं कमळ फांकलें। कमळत्वा मुके ? ॥१२४॥
सांग पां धनंजया। अवयवीं अवयविया। आच्छादिजे कीं तया। तेंचि रूप ? ॥१२५॥
कीं विरूढलिया जोंधळा। कणिसाचा निर्वाळा। वेंचला कीं आगळा। दिसतसे ॥१२६॥
म्हणौनि जग परौतें। सारूनि पाहिजे मातें। तैसा नोव्हें उखितें। आघवें मीचि ॥१२७॥
हा तूं साचोकारा। निश्चयाचा खरा। गांठीं बांध वीरा। जीवाचिये ॥१२८॥
आतां मियां मज दाविला। शरीरीं वेगळाला। गुणीं मीचि बांधला। ऐसा आवडें ॥१२९॥
जैसें स्वप्नीं आपण। उठूनियां आत्ममरण। भोगिजे गा जाण। कपिध्वजा ॥१३०॥
कां कवळातें डोळे। प्रकाशूनि पिवळें। देखती तेंही कळे। तयांसीचि ॥१३१॥
नाना सूर्यप्रकाशें। प्रकटी तैं अभ्र भासे। तो लोपला हेंही दिसे। सूर्येंचि कीं ॥१३२॥
पैं आपणपेनि जालिया। छाया गा आपुलिया। बिहोनि बिहालिया। आन आहे ? ॥१३३॥
तैसीं इयें नाना देहें। दाऊनि मी नाना होयें। तेथ ऐसा जो बंधु आहे। तेंही देखें ॥१३४॥

बंधु कां न बंधिजे। हें जाणणें मज माझें। नेणणेनि उपजे। आपलेनि ॥१३५॥
तरी कोणें गुणें कैसा। मजचि मी बंधु ऐसा। आवडे तें परियेसा। अर्जुनदेवा ॥१३६॥
गुण ते किती किंधर्म। कायि ययां रूपनाम। कें जालें हें वर्म। अवधारीं पां ॥१३७॥
सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥५॥
तरी सत्त्वरजतम। तिघांसि हें नाम। आणि प्रकृति जन्म- । भूमिका ययां ॥१३८॥
येथ सत्त्व तें उत्तम। रज तें मध्यम। तिहींमाजीं तम। सावियाधारें ॥१३९॥
हें एकेचि वृत्तीच्या ठायीं। त्रिगुणत्व आवडे पाहीं। वयसात्रय देहीं। येकीं जेवीं ॥१४०॥
कां मीनलेनि कीडें। जंव जंव तूक वाढे। तंव तंव सोनें हीन पडे। पांचिका कसीं ॥१४१॥
पैं सावधपण जैसें। वाहविलें आळसें। सुषुप्ति बैसे। घणावोनि ॥१४२॥
तैसी अज्ञानांगीकारें। निगाली वृत्ति विखुरे। ते सत्त्वरजद्वारें। तमही होय ॥१४३॥
अर्जुना गा जाण। ययां नाम गुण। आतां दाखऊं खूण। बांधिती ते ॥१४४॥
तरी क्षेत्रज्ञदशे। आत्मा मोटका पैसे। हें देह मी ऐसें। मुहूर्त करी ॥१४५॥
आजन्ममरणांतीं। देहधर्मीं समस्तीं। ममत्वाची सूती। घे ना जंव ॥१४६॥
जैसी मीनाच्या तोंडीं। पडेना जंव उंडी। तंव गळ आसुडी। जळपारधी ॥१४७॥
तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥६॥
तेवीं सत्त्वें लुब्धकें। सुखज्ञानाचीं पाशकें। वोढिजती मग खुडके। मृगु जैसा ॥१४८॥
मग ज्ञानें चडफडी। जाणिवेचे खुरखोडी। स्वयं सुख हें धाडी। हातींचें गा ॥१४९॥
तेव्हां विद्यामानें तोखे। लाभमात्रें हरिखे। मी संतुष्ट हेंही देखे। श्लाघों लागे ॥१५०॥
म्हणे भाग्य ना माझें ? । आजि सुखियें नाहीं दुजें। विकाराष्टकें फुंजे। सात्त्विकाचेनि ॥१५१॥
आणि येणेंही न सरे। लांकण लागे दुसरें। जें विद्वत्तेचें भरे। भूत आंगीं ॥१५२॥
आपणचि ज्ञानस्वरूप आहे। तें गेलें हें दुःख न वाहे। कीं विषयज्ञानें होये। गगनायेवढा ॥१५३॥
रावो जैसा स्वप्नीं। रंकपणें रिघे धानीं। तो दों दाणां मानी। इंद्रु ना मी ॥१५४॥
तैसें गा देहातीता। जालेया देहवंता। हों लागे पंडुसुता। बाह्यज्ञानें ॥१५५॥
प्रवृत्तिशास्त्र बुझे। यज्ञविद्या उमजे। किंबहुना सुझे। स्वर्गवरी ॥१५६॥
आणि म्हणे आजि आन। मीवांचूनि नाहीं सज्ञान। चातुर्यचंद्रा गगन। चित्त माझें ॥१५७॥
ऐसें सत्त्व सुखज्ञानीं। जीवासि लावूनि कानी। बैलाची करी वानी। पांगुळाचिया ॥१५८॥
आतां हाचि शरीरीं। रजें जियापरी। बांधिजे तें अवधारीं। सांगिजैल ॥१५९॥
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥७॥
हें रज याचि कारणें। जीवातें रंजऊं जाणे। हें अभिलाखाचें तरुणें। सदाचि गा ॥१६०॥
हें जीवीं मोटकें रिगे। आणि कामाच्या मदीं लागे। मग वारया वळघे। तृष्णेचिया ॥१६१॥
घृतें आंबुखूनि आगियाळें। वज्राग्नीचें सादुकलें। आतां बहु थेंकुलें। आहे तेथ ? ॥१६२॥
तैसी खवळें चाड। होय दुःखासकट गोड। इंद्रश्रीहि सांकड। गमों लागे ॥१६३॥
तैसी तृष्णा वाढिनलिया। मेरुही हाता आलिया। तऱ्ही म्हणे एखादिया। दारुणा वळघो ॥१६४॥
जीविताचि कुरोंडी। वोवाळूं लागे कवडी। मानी तृणाचिये जोडी। कृतकृत्यता ॥१६५॥

आजि असतें वेंचिजेल। परी पाहे काय कीजेल। ऐसा पांगीं वडील। व्यवसाय मांडी ॥१६६॥
म्हणे स्वर्गा हन जावें। तरी काय तेथें खावें। इयालागीं धांवें। याग करूं ॥१६७॥
व्रतापाठीं व्रतें। आचरें इष्टापूर्तें। काम्यावांचूनि हातें। शिवणें नाहीं ॥१६८॥
पैं ग्रीष्मांतींचा वारा। विसांवो नेणें बीरा। तैसा न म्हणे व्यापारा। रात्रदिवस ॥१६९॥
काय चंचळु मासा ?। कामिनीकटाक्षु जैसा। लवलाहो तैसा। विजूही नाहीं ॥१७०॥
तेतुलेनि गा वेगें। स्वर्गसंसारपांगें। आगीमाजीं रिगे। क्रियांचिये ॥१७१॥
ऐसा देहीं देहावेगळा। ले तृष्णेचिया सांखळा। खटाटोपु वाहे गळां। व्यापाराचा ॥१७२॥
हें रजोगुणाचें दारुण। देहीं देहियासी बंधन। परिस आतां विंदाण। तमाचें तें ॥१७३॥
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥८॥
व्यवहाराचेहि डोळे। मंद जेणें पडळें। मोहरात्रीचें काळें। मेहुडें जें ॥१७४॥
अज्ञानाचें जियालें। जया एका लागलें। जेणें विश्व भुललें। नाचत असे ॥१७५॥
अविवेकमहामंत्र। जें मौढ्यमद्याचें पात्र। हें असो मोहनास्त्र। जीवांसि जें ॥१७६॥
पार्था तें गा तम। रचूनि ऐसें वर्म। चौखुरी देहात्म- । मानियातें ॥१७७॥
हें एकचि कीर शरीरीं। माजों लागे चराचरीं। आणि तेथ दुसरी। गोठी नाहीं ॥१७८॥
सर्वेंद्रिया जाड्य। मनामाजीं मौढ्य। माल्हाती जे दार्ढ्य। आलस्याचें ॥१७९॥
आंगें आंग मोडामोडी। कार्यजाती अनावडी। नुसती परवडी। जांभयांची ॥१८०॥
उघडियाची दिठी। देखणें नाहीं किरीटी। नाळवितांचि उठी। वो म्हणौनि ॥१८१॥
पडलिये धोंडी। नेणे कानी मुरडी। तयाचि परी मुरकुंडी। उकलूं नेणें ॥१८२॥
पृथ्वी पाताळीं जांवो। कां आकाशही वरी येवो। परी उठणें हा भावो। उपजों नेणें ॥१८३॥
उचितानुचित आघवें। झांसुरता नाठवे जीवें। जेथींचा तेथ लोळावें। ऐसी मेधा ॥१८४॥
उभऊनि करतळें। पडिघाये कपोळें। पायाचें शिरियाळें। मांडूं लागे ॥१८५॥
आणि निद्रेविषयीं चांगु। जीवीं आथि लागु। झोंपीं जातां स्वर्गु। वावो म्हणे ॥१८६॥
ब्रह्मायु होईजे। मा निजलेयाचि असिजे। हें वांचूनि दुजें। व्यसन नाहीं ॥१८७॥
कां वाटें जातां वोघें। कल्हातांही डोळा लागे। अमृतही परी नेघे। जरी नीद आली ॥१८८॥
तेवींचि आक्रोशबळें। व्यापारे कोणे एके वेळे। निगालें तरी आंधळें। रोषें जैसें ॥१८९॥
केधवां कैसे राहाटावें। कोणेसीं काय बोलावें। हें ठाकतें कीं नागवें। हेंही नेणें ॥१९०॥
वणवा मियां आघवा। पांखें पुसोनि घेयावा। पतंगु पां हांवा। घाली जेवीं ॥१९१॥
तैसा वळघे साहसा। अकरणींच धिंवसा। किंबहुना ऐसा। प्रमादु रुचे ॥१९२॥
एवं निद्रालस्यप्रमादीं। तम इया त्रिबंधीं। बांधे निरुपाधी। चोखटातें ॥१९३॥
जैसा वन्ही काष्ठीं भरे। तैं दिसे काष्ठाकारें। व्योम घटें आवरे। तें घटाकाश ॥१९४॥
नाना सरोवर भरलें। तैं चंद्रत्व तेथें बिंबलें। तैसें गुणाभासीं बांधलें। आत्मत्व गमे ॥१९५॥
सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥९॥
रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥१०॥
पैं हरूनि कफवात। जैं देही आटोपे पित्त। तैं करी संतप्त। देह जेवीं ॥१९६॥

कां वरिष आतप जैसें। जिणौनि शीतचि दिसे। तेव्हां होय हिंव ऐसें। आकाश हें ॥१९७॥
नाना स्वप्न जागृती। लोपूनि ये सुषुप्ती। तैं क्षणु एक चित्तवृत्ती। तेचि होय ॥१९८॥
तैसीं रजतमें हारवी। जैं सत्त्व माजु मिरवी। तैं जीवाकरवीं म्हणवी। सुखिया ना मी ? ॥१९९॥
तैसेंचि सत्त्व रज। लोपूनि तमाचें भोज। वळघे तैं सहज। प्रमादीं होय ॥२००॥
तयाचि गा परिपाठीं। सत्त्व तमातें पोटीं। घालूनि जेव्हां उठी। रजोगुण ॥२०१॥
तेव्हां कर्मावांचूनि कांहीं। आन गोमटें नाहीं। ऐसें मानी देहीं। देहराजु ॥२०२॥
त्रिगुण वृद्धि निरूपण। तीं श्लोकीं सांगितलें जाण। आतां सत्त्वादि वृद्धिलक्षण। सादर परियेसीं ॥२०३॥
सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥११॥
लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥१२॥
अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥१३॥
यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान प्रतिपद्यते ॥१४॥
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥१५॥
पैं रजतमविजयें। सत्त्व गा देहीं इयें। वाढतां चिन्हें तियें। ऐसीं होती ॥२०२०४॥
जे प्रज्ञा आंतुलीकडे। न समाती बाहेरी वोसंडें। वसंतीं पद्मखंडें। दृती जैसी ॥२०५॥
सर्वेंद्रियांच्या आंगणीं। विवेक करी राबणी। साचचि करचरणीं। होती डोळे ॥२०६॥
राजहंसापुढें। चांचूचें आगरडें। तोडी जेवीं झगडे। क्षीरनीराचे ॥२०७॥
तेवीं दोषादोषविवेकीं। इंद्रियेंचि होती पारखीं। नियमु बा रे पायिकी। वोळगे तैं ॥२०८॥
नाइकणें तें कानचि वाळी। न पहाणें तें दिठीचि गाळी। अवाच्य तें टाळी। जीभचि गा ॥२०९॥
वाती पुढां जैसें। पळों लागे काळवसें। निषिद्ध इंद्रियां तैसें। समोर नोहे ॥२१०॥
धाराधरकाळें। महानदी उचंबळे। तैसी बुद्धि पघळे। शास्त्रजातीं ॥२११॥
अगा पुनवेच्या दिवशीं। चंद्रप्रभा धांवें आकाशीं। ज्ञानीं वृत्ति तैसी। फांके सैंघ ॥२१२॥
वासना एकवटे। प्रवृत्ति वोहटे। मानस विटे। विषयांवरी ॥२१३॥
एवं सत्त्व वाढे। तैं हें चिन्ह फुडें। आणि निधनही घडे। तेव्हांचि जरी ॥२१४॥
कां पाहालेनि सुयाणें। जालया परगुणें। पडियंतें पाहुणें। स्वर्गौनियां ॥२१५॥
तरी जैसीचि घरींची संपत्ती। आणि तैसीचि औदार्यधैर्यवृत्ती। मा परत्रा आणि कीर्ती। कां नोहावें ? ॥२१६॥
मग गोमटेया तया। जावळी असे धनंजया। तेवीं सत्त्वीं जाणे देहा। कें आथि गा ? ॥२१७॥
जे स्वगुणीं उद्ब्हट। घेऊनि सत्त्व चोखट। निगे सांडूनि कोपट। भोगक्षम हें ॥२१८॥
अवचटें ऐसा जो जाये। तो सत्त्वाचाचि नवा होये। किंबहुना जन्म लाहे। ज्ञानियांमाजीं ॥२१९॥
सांग पां धनुर्धरा। रावो रायपणें डोंगरा। गेलिया अपुरा। होय काई ? ॥२२०॥
नातरी येथिंचा दिवा। नेलिया सेजिया गांवा। तो तेथें तरी पांडवा। दीपचि कीं ॥२२१॥
तैसी ते सत्त्वशुद्धी। आगळी ज्ञानेंसी वृद्धी। तरंगावों लागें बुद्धी। विवेकावरी ॥२२२॥
पैं महदादि परिपाठीं। विचारूनि शेवटीं। विचारासकट पोटीं। जिरोनि जाय ॥२२३॥

छत्तिसां सदतिसावें। चोविसां पंचविसावें। तिन्ही नुरोनि स्वभावें। चतुर्थ जें ॥२२४॥
ऐसें सर्व जें सर्वोत्तम। जालें असे जया सुगम। तयासवें निरुपम। लाहे देह ॥२२५॥
इयाचि परी देख। तमसत्त्व अधोमुख। बैसोनि जैं आगळीक। धरी रज ॥२२६॥
आपलिया कार्याचा। धुमाड गांवीं देहाचा। माजवी तैं चिन्हांचा। उदयो ऐसा ॥२२७॥
पांजरली वाहुटळी। करी वेगळ वेंटाळी। तैसी विषयीं सरळी। इंद्रियां होय ॥२२८॥
परदारादि पडे। परी विरुद्ध ऐसें नावडे। मग शेळियेचेनि तोंडें। सैंघ चारी ॥२२९॥
हा ठायवरी लोभु। करी स्वैरत्वाचा राबु। वेंटाळितां अलाभु। तें तें उरे ॥२३०॥
आणि आड पडलिया। उद्यमजाती भलतिया। प्रवृत्ती धनंजया। हातु न काढी ॥२३१॥
तेवींचि एखादा प्रासादु। कां करावा अश्वमेधु। ऐसा अचाट छंदु। घेऊनि उठी ॥२३२॥
नगरेंचि रचावीं। जळाशयें निर्मावीं। महावनें लावावीं। नानाविधें ॥२३३॥
ऐसैसां अफाटीं कर्मीं। समारंभु उपक्रमीं। आणि दृष्टादृष्ट कामीं। पुरे न म्हणे ॥२३४॥
सागरुही सांडीं पडे। आगी न लाहे तीन कवडे। ऐसें अभिलषीं जोडे। दुर्भरत्व ॥२३५॥
स्पृहा मना पुढां पुढां। आशेचा घे दवडा। विश्व घापे चाडा। पायांतळीं ॥२३६॥
इत्यादि वाढतां रजीं। इयें चिन्हें होतीं साजीं। आणि ऐशा समाजीं। वेंचे जरी देह ॥२३७॥
तरी आघवाचि इहीं। परिवारला आनी देहीं। रिगे परी योनिही। मानुषीचि ॥२३८॥
सुरवाडेंसिं भिकारी। वसो पां राजमंदिरीं। तरी काय अवधारीं। रावो होईल ? ॥२३९॥
बैल तेथें करबाडें। हें न चुके गा फुडें। नेईजो कां वऱ्हाडें। समर्थाचेनी ॥२४०॥
म्हणौनि व्यापारा हातीं। उसंतु दिहा ना राती। तैसयाचिये पांती। जुंपिजे तो ॥२४१॥
कर्मजडाच्या ठायीं। किंबहुना होय देहीं। जो रजोवृत्तीच्या डोहीं। बुडोनि निमे ॥२४२॥
मग तैसाचि पुढती। रजसत्त्ववृत्ती। गिळूनि ये उन्नती। तमोगुण ॥२४३॥
तैंचि जियें लिंगें। देहींचीं सबाह्य सांगें। तियें परिस चांगें। श्रोत्रबळें ॥२४४॥
तरी होय ऐसें मन। जैसें रविचंद्रहीन। रात्रींचें कां गगन। अंवसेचिये ॥२४५॥
तैसें अंतर असोस। होय स्फूर्तिहीन उद्वस। विचाराची भाष। हारपे तैं ॥२४६॥
बुद्धि मेचवेना धोंडीं। हा ठायवरी मवाळें सांडी। आठवो देशधडी। जाला दिसे ॥२४७॥
अविवेकाचेनि माजें। सबाह्य शरीर गाजे। एकलेनि घेपे दीजे। मौढ्य तेथ ॥२४८॥
आचारभंगाचीं हाडें। रुपतीं इंद्रियांपुढें। मरे जरी तेणेंकडे। क्रिया जाय ॥२४९॥
पैं आणिकही एक दिसे। जे दुष्कृतीं चित्त उल्हासे। आंधारी देखणें जैसें। डुडुळाचें ॥२५०॥
तैसें निषिद्धाचेनि नांवें। भलतेंही भरे हावे। तियेविषयीं धांवे। घेती करणें ॥२५१॥
मदिरा न घेतां डुले। सन्निपातेंवीण बरळे। निष्प्रेमेंचि भुले। पिसें जैसें ॥२५२॥
चित्त तरी गेलें आहे। परी उन्मनी ते नोहे। ऐसें माल्हातिजे मोहें। माजिरेनि ॥२५३॥
किंबहुना ऐसैसीं। इयें चिन्हें तम पोषीं। जैं वाढे आयितीसी। आपुलिया ॥२५४॥
आणि हेंचि होय प्रसंगें। मरणाचें जरी पडे खागें। तरी तेतुलेनि निगे। तमेंसीं तो ॥२५५॥
राई राईपण बीजीं। सांठवूनियां अंग त्यजी। मग विरूढे तैं दुजी। गोठी आहे ? ॥२५६॥
पैं होऊनि दीपकलिका। येरु आगी विझो कां। कां जेथ लागे तेथ असका। तोचि आहे ॥२५७॥
म्हणौनि तमाचिये लोथें। बांधोनियां संकल्पातें। देह जाय तैं मागौतें। तमाचेचि होय ॥२५८॥
आतां काय येणें बहुवे। जो तमोवृद्धि मृत्यु लाहे। तो पशु कां पक्षी होये। झाड कां कृमी ॥२५९॥
कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।

रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥१६॥
येणेंचि पैं कारणें। जें निपजे सत्त्वगुणें। तें सुकृत ऐसें म्हणे। श्रौत समो ॥२६०॥
म्हणौनि तया निर्मळा। सुखज्ञानी सरळा। अपूर्व ये फळा। सात्त्विक तें ॥२६१॥
मग राजसा जिया क्रिया। तया इंद्रावणी फळलिया। जें सुखें चितारूनियां। फळती दुःखें ॥२६२॥
कां निंबोळियेचें पिक। वरि गोड आंत विख। तैसें तें राजस देख। क्रियाफळ ॥२६३॥
तामस कर्म जितुकें। अज्ञानफळेंचि पिके। विषांकुर विखें। जियापरी ॥२६४॥
सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥१७॥
म्हणौनि बा रे अर्जुना। येथ सत्त्वचि हेतु ज्ञाना। जैसा कां दिनमाना। सूर्य हा पैं ॥२६५॥
आणि तैसेंचि हें जाण। लोभासि रज कारण। आपुलें विस्मरण। अद्वैता जेवीं ॥२६६॥
मोह अज्ञान प्रमादा। ययां मैळेया दोषवृंदा। पुढती पुढती प्रबुद्धा। तमचि मूळ ॥२६७॥
ऐसें विचाराच्या डोळां। तिन्ही गुण हे वेगळवेगळां। दाविले जैसा आंवळा। तळहातींचा ॥२६८॥
तंव रजतमें दोन्हीं। देखिलीं प्रौढ पतनीं। सत्त्वावांचूनि नाणीं। ज्ञानाकडे ॥२६९॥
म्हणौनि सात्त्विक वृत्ती। एक जाले गा जन्मव्रती। सर्वत्यागें चतुर्थी। भक्ति जैसी ॥२७०॥
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥१८॥
तैसें सत्त्वाचेनि नटनाचें। असणें जाणें जयांचें। ते तनुत्यागीं स्वर्गींचे। राय होती ॥२७१॥
इयाचि परी रजें। जिहीं कां जीजे मरिजे। तिहीं मनुष्य होईजे। मृत्युलोकीं ॥२७२॥
तेथ सुखदुःखाचें खिचटें। जेविजें एकेचि ताटें। जेथ इये मरणवाटे। पडिलें नुठी ॥२७३॥
आणि तयाचि स्थिति तमीं। जे वाढोनि निमती भोगक्षमीं। ते घेती नरकभूमी। मूळपत्र ॥२७४॥
एवं वस्तूचिया सत्ता। त्रिगुणासी पंडुसुता। दाविली सकारणता। आघवीचि ॥२७५॥
पैं वस्तु वस्तुत्वें असिकें। तें आपणपें गुणासारिखें। देखोनि कार्यविशेखें। अनुकरे गा ॥२७६॥
जैसें कां स्वप्नींचेनि राजें। जैं परचक्र देखिजे। तैं हारी जैत होईजे। आपणपांचि ॥२७७॥
तैसे मध्योर्ध्व अध। हे जे गुणवृत्तिभेद। ते दृष्टीवांचूनि शुद्ध। वस्तुचि असे ॥२७८॥
नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥१९॥
परी हे वाहणी असो। तरी तुज आन न दिसो। परिसें तें सांगतसों। मागील गोठी ॥२७९॥
तरी ऐसें जाणिजे। सामर्थ्यें तिन्ही सहजें। होती देहव्याजें। गुणचि हे ॥२८०॥
इंधनाचेनि आकारें। अग्नि जैसा अवतरे। कां आंगवे तरुवरें। भूमिरसु ॥२८१॥
नाना दहिंयाचेनि मिसें। परिणमे दूधचि जैसें। कां मूर्त होय ऊंसें। गोडी जेवीं ॥२८२॥
तैसें हे स्वांतःकरण। देहचि होती त्रिगुण। म्हणौनि बंधासि कारण। घडे कीर ॥२८३॥
परी चोज हें धनुर्धरा। जे एवढा हा गुंफिरा। मोक्षाचा संसारा। उणा नोहे ॥२८४॥
त्रिगुण आपुलालेनि धर्में। देहींचे माघुत साउमें। चाळितांही न खोमें। गुणातीतता ॥२८५॥
ऐसी मुक्ति असे सहज। ते आतां परिसऊं तुज। जे तूं ज्ञानांबुज- । द्विरेफु कीं ॥२८६॥
आणि गुणीं गुणाजोगें। चैतन्य नोहे मागें। बोलिलों तें खागें। तेवींचि हें ॥२८७॥
तरी पार्था जैं ऐसें। बोधलेनि जीवें दिसे। स्वप्न कां जैसें। चेइलेनी ॥२८८॥
नातरी आपण जळीं। बिंबलों तीरोनी न्याहळी। चळण होतां कल्लोळीं। अनेकधा ॥२८९॥

कां नटलेनि लाघवें। नटु जैसा न झकवे। तैसें गुणजात देखावें। न होनियां ॥२९०॥
पैं ऋतुत्रय आकाशें। धरूनियांही जैसें। नेदिजेचि येवों वोसें। वेगळेपणा ॥२९१॥
तैसें गुणीं गुणापरौतें। जें आपणपें असे आयितें। तिये अहं बैसे अहंतें। मूळकेचिये ॥२९२॥
तैं तेथूनि मग पाहतां। म्हणे साक्षी मी अकर्ता। हे गुणचि क्रियाजातां। नियोजित ॥२९३॥
सत्त्वरजतमांचा। भेदीं पसरु कर्माचा। होत असे तो गुणांचा। विकारु हा ॥२९४॥
ययामाजीं मी ऐसा। वनीं कां वसंतु जैसा। वनलक्ष्मीविलासा। हेतुभूत ॥२९५॥
कां तारांगणीं लोपावें। सूर्यकांतीं उद्दीपावें। कमळीं विकासावें। जावें तमें ॥२९६॥
ये कोणाचीं काजें कहीं। सवितिया जैसी नाहीं। तैसा अकर्ता मी देहीं। सत्तारूप ॥२९७॥
मी दाऊनि गुण देखे। गुणता हे मियां पोखे। ययाचेनि निःशेखें। उरे तें मी ॥२९८॥
ऐसेनि विवेकें जया। उदो होय धनंजया। ये गुणातीतत्व तया। अर्थपंथें ॥२९९॥

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥२०॥

आतां निर्गुण असे आणिक। तें तो जाणें अचुक। जे ज्ञानें केलें टीक। तयाचिवरी ॥३००॥
किंबहुना पंडुसुता। ऐसी तो माझी सत्ता। पावे जैसी सरिता। सिंधुत्व गा ॥३०१॥
नळिकेवरूनि उठिला। जैसा शुक शाखे बैसला। तैसा मूळ अहंतें वेढिला। तो मी म्हणौनि ॥३०२॥
अगा अज्ञानाचिया निदा। जो घोरत होता बदबदा। तो स्वस्वरूपीं प्रबुद्धा। चेइला कीं ॥३०३॥
पैं बुद्धिभेदाचा आरिसा। तया हातोनि पडिला वीरेशा। म्हणौनि प्रतिमुखाभासा। मुकला तो ॥३०४॥
देहाभिमानाचा वारा। आतां वाजो ठेला वीरा। तैं ऐक्य वीचिसागरां। जीवेशां हें ॥३०५॥
म्हणौनि मद्भावेंसी। प्राप्ति पाविजे तेणेंसरिसी। वर्षांतीं आकाशीं। घनजात जेवीं ॥३०६॥
तेवीं मी होऊनि निरुता। मग देहींचि ये असतां। नागवे देहसंभूतां। गुणांसि तो ॥३०७॥
जैसा भिंगाचेनि घरें। दीपप्रकाशु नावरे। कां न विझेचि सागरें। वडवानळु ॥३०८॥
तैसा आला गेला गुणांचा। बोधु न मैळे तयाचा। तो देहीं जैसा व्योमींचा। चंद्र जळीं ॥३०९॥
तिन्ही गुण आपुलालिये प्रौढी। देहीं नाचविती बागडीं। तो पाहोंही न धाडी। अहंतेतें ॥३१०॥
हा ठायवरी। नेहटोनि ठेला अंतरीं। आतां काय वर्ते शरीरीं। हेंहीं नेणे ॥३११॥
सांडुनि आंगींची खोळी। सर्प रिगालिया पाताळीं। ते त्वचा कोण सांभाळी। तैसें जालें ॥३१२॥
कां सौरभ्य जीर्णु जैसा। आमोदु मिळोनि जाय आकाशा। माघारा कमळकोशा। नयेचि तो ॥३१३॥
पैं स्वरूपसमरसें। ऐक्य गा जालें तैसें। तेथ किं धर्म हें कैसें। नेणें देह ॥३१४॥
म्हणौनि जन्मजरामरण। इत्यादि जे साही गुण। ते देहींचि ठेले कारण। नाहीं तया ॥३१५॥
घटाचिया खापरिया। घटभंगीं फेडिलिया। महदाकाश अपैसया। जालेंचि असे ॥३१६॥
तैसी देहबुद्धी जाये। जैं आपणपां आठौ होय। तैं आन कांहीं आहे। तेंवांचुनी ? ॥३१७॥
येणें थोर बोधलेपणें। तयासि गा देहीं असणें। म्हणूनि तो मी म्हणें। गुणातीत ॥३१८॥
यया देवाचिया बोला। पार्थु अति सुखावला। मेघें संबोखिला। मोरु जैसा ॥३१९॥

अर्जुन उवाच ।
कैर्लिंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथंचैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥२१॥

तेणें तोषें वीर पुसे। जी कोण्ही चिन्हीं तो दिसे। जयामाजीं वसे। ऐसा बोधु ॥३२०॥
तो निर्गुण काय आचरे। कैसेनि गुण निस्तरे। हें सांगिजो माहेरें। कृपेचेनि ॥३२१॥

यया अर्जुनाचिया प्रश्ना। तो षड्गुणांचा राणा। परिहारु आकर्णा। बोलतु असे ॥३२२॥
म्हणे पार्था तुझी नवाई। हें येतुलेंचि पुससी काई। तें नामचि तया पाहीं। सत्य लटिकें ॥३२३॥
गुणातीत जया नांवें। तो गुणाधीन तरी नव्हे। ना होय तरी नांगवे। गुणां यया ॥३२४॥
परी अधीन कां नांगवें। हेंचि कैसेनि जाणावें। गुणांचिये रवरवे- । माजीं असतां ॥३२५॥
हा संदेह जरी वाहसी। तरी सुखें पुसों लाहसी। परिस आतां तयासी। रूप करूं ॥३२६॥
श्रीभगवानुवाच ।
प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥२२॥
तरी रजाचेनि माजें। देहीं कर्माचें आणोजें। प्रवृत्ति जैं घेईजे। वेंटाळुनि ॥३२७॥
तैं मीचि कां कर्मठ। ऐसा न ये श्रीमाठ। दरिद्रलिये बुद्धी वीट। तोही नाहीं ॥३२८॥
अथवा सत्त्वेंचि अधिकें। जैं सर्वेंद्रियीं ज्ञान फांके। तैं सुविद्यता तोखें। उभजेही ना ॥३२९॥
कां वाढिन्नलेनि तमें। न गिळिजेचि मोहभ्रमें। तैं अज्ञानत्वें न श्रमे। घेणेंही नाहीं ॥३३०॥
पैं मोहाच्या अवसरीं। ज्ञानाची चाड न धरी। ज्ञानें कर्मैं नादरी। होतां न दुःखी ॥३३१॥
सायंप्रतर्मध्यान्हा। या तिन्ही काळांची गणना। नाहीं जेवीं तपना। तैसा असे ॥३३२॥
तया वेगळाचि काय प्रकाशें। ज्ञानित्व यावें असें। कायि जळार्णव पाउसें। साजा होय ? ॥३३३॥
ना प्रवर्तलेनि कर्में। कर्मठत्व तयां कां गमे। सांगें हिमवंतु हिमें। कांपे कायी ? ॥३३४॥
नातरी मोह आलिया। काई पां ज्ञाना मुकिजैल तया। हो मा आगीतें उन्हाळेया। जाळवत असे ? ॥३३५॥
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव यो~वतिष्ठति नेङ्गते ॥२३॥
तैसे गुणागुणकार्य हें। आघवेंचि आपण आहे। म्हणौनि एकेका नोहे। तडातोडी ॥३३६॥
येवढे गा प्रतीती। तो देहा आलासे वस्ती। वाटे जातां गुंती- । माजीं जैसा ॥३३७॥
तो जिणता ना हरवी। तैसा गुण नव्हे ना करवी। जैसी कां श्रोणवी। संग्रामींची ॥३३८॥
कां शरीराआंतील प्राणु। घरीं आतिथ्याचा ब्राह्मणु। नाना चोहटांचा स्थाणु। उदासु जैसा ॥३३९॥
आणि गुणाचा यावाजावा। ढळे चळे ना पांडवा। मृगजळाचा हेलावा। मेरु जैसा ॥३४०॥
हें बहुत कायि बोलिजे। व्योम वारेनि न वचिजे। कां सूर्य ना गिळिजे। अंधकारें ? ॥३४१॥
स्वप्न कां गा जियापरी। जगतयातें न सिंतरी। गुणीं तैसा अवधारीं। न बंधिजे तो ॥३४२॥
गुणांसि कीर नातुडे। परी दुरूनि जैं पाहे कोडें। तैं गुणदोष सायिखडें। सभ्यु जैसा ॥३४३॥
सत्कर्मैं सात्त्विकीं। रज तें रजोविषयकीं। तम मोहादिकीं। वर्तत असे ॥३४४॥
परिस तयाचिया गा सत्ता। होती गुणक्रिया समस्ता। हें फुडें जाणे सविता। लौकिका जेवीं ॥३४५॥
समुद्रचि भरती। सोमकांतचि द्रवती। कुमुदें विकासती। चंद्रु तो उगा ॥३४६॥
कां वाराचि वाजे विझे। गगनें निश्चळ असिजे। तैसा गुणाचिये गजबजे। डोलेना जो ॥३४७॥
अर्जुना येणें लक्षणें। तो गुणातीतु जाणणें। परिस आतां आचरणें। तयाचीं जीं ॥३४८॥
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियोधीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥२४॥
तरी वस्त्रासि पाठीं पोटीं। नाहीं सुतावांचूनि किरीटी। ऐसें सुये दिठी। चराचर मद्रूपें ॥३४९॥
म्हणौनि सुखदुःखासरिसें। कांटाळें आचरे ऐसें। रिपुभक्तां जैसें। हरीचें देणें ॥३५०॥
एऱ्हवीं तरी सहजें। सुखदुःख तैंचि सेविजे। देहजळीं होईजे। मासोळी जैं ॥३५१॥

आतां तें तंव तेणें सांडिलें। आहे स्वस्वरूपेंसीचि मांडिलें। सस्यांतीं निवडिलें। बीज जैसें ॥३५२॥
कां वोघ सांडूनि गांग। रिघोनि समुद्राचें आंग। निस्तरली लगबग। खळाळाची ॥३५३॥
तेवीं आपणपांचि जया। वस्ती जाली गा धनंजया। तया देहीं अपैसया। सुख तैसें दुःख ॥३५४॥
रात्रि तैसें पाहलें। हें धारणा जेवीं एक जालें। आत्माराम देहीं आतलें। द्वंद्व तैसें ॥३५५॥
पैं निद्रिताचेनि आंगेंशीं। सापु तैशी उर्वशी। तेवीं स्वरूपस्था सरिशीं। देहीं द्वंद्वें ॥३५६॥
म्हणौनि तयाच्या ठायीं। शेणा सोनया विशेष नाहीं। रत्ना गुंडेया कांहीं। नेणिजे भेदु ॥३५७॥
घरा येवों पां स्वर्ग। कां वरिपडो वाघ। परी आत्मबुद्धीसि भंग। कदा नव्हे ॥३५८॥
निवटलें न उपवडे। जळीनलें न विरूढे। साम्यबुद्धी न मोडे। तयापरी ॥३५९॥
हा ब्रह्मा ऐसेनि स्तविजो। कां नीच म्हणौनि निंदिजो। परी नेणें जळों विझों। राखोंडी जैसी ॥३६०॥
तैसी निंदा आणि स्तुती। नये कोण्हेचि व्यक्ती। नाहीं अंधारें कां वाती। सूर्या घरीं ॥३६१॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥२५॥
ईश्वर म्हणौनि पूजिला। कां चोरु म्हणौनि गांजिला। वृषगजीं वेढिला। केला रावो ॥३६२॥
कां सुहृद पासीं आले। अथवा वैरी वरपडे जाले। परी नेणें राती पाहालें। तेज जेवीं ॥३६३॥
साहीं ऋतु येतां आकाशें। लिंपिजेचि ना जैसें। तेवीं वैशम्य मानसें। जाणिजेना ॥३६४॥
आणीकही एकु पाहीं। आचारु तयाच्या ठायीं। तरी व्यापारासि नाहीं। जालें दिसे ॥३६५॥
सर्वारंभा उटकलें। प्रवृत्तीचें तेथ मावळले। जळती गा कर्मफळें। ते तो आगी ॥३६६॥
दृष्टादृष्टाचेनि नांवें। भावोचि जीवीं नुगवें। सेवी जें कां स्वभावें। पैठें होये ॥३६७॥
सुखे ना शिणे। पाषाणु कां जेणें मानें। तैसी सांडीमांडी मनें। वर्जिली असे ॥३६८॥
आतां किती हा विस्तारु। जाणें ऐसा आचारु। जयातें तोचि साचारु। गुणातीतु ॥३६९॥
गुणांतें अतिक्रमणें। घडे उपायें जेणें। तो आतां आईक म्हणे। श्रीकृष्णनाथु ॥३७०॥
मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२६॥
तरी व्यभिचाररहित चित्तें। भक्तियोगें मातें। सेवी तो गुणातें। जाकळूं शके ॥३७१॥
तरी कोण मी कैसी भक्ती। अव्यभिचारा काय व्यक्ती। हे आघवीचि निरुती। होआवी लागे ॥३७२॥
तरी पार्था परियेसा। मी तंव येथ ऐसा। रत्नीं किळावो जैसा। रत्नचि कीं तो ॥३७३॥
कां द्रवपणचि नीर। अवकाशचि अंबर। गोडी तेचि साखर। आन नाहीं ॥३७४॥
वन्हि तेचि ज्वाळ। दळाचि नांव कमळ। रूख तेंचि डाळ- । फळादिक ॥३७५॥
अगा हिम जें आकर्षलें। तेंचि हिमवंत जेवीं जालें। नाना दूध मुरालें। तेंचि दहीं ॥३७६॥
तैसें विश्व येणें नांवें। हें मीचि पैं आघवें। घेईं चंद्रबिंब सोलावें। न लगे जेवीं ॥३७७॥
घृताचें थिजलेंपण। न मोडितां घृतचि जाण। कां नाटितां कांकण। सोनेंचि तें ॥३७८॥
न उकलितां पटु। तंतुचि असे स्पष्टु। न विरवितां घटु। मृत्तिका जेवीं ॥३७९॥
म्हणौनि विश्वपण जावें। मग तैं मातें घेयावें। तैसा नव्हे आघवें। सकटचि मी ॥३८०॥
ऐसेनि मातें जाणिजे। ते अव्यभिचारी भक्ति म्हणिजे। येथ भेदु कांहीं देखिजे। तरी व्यभिचारु तो ॥३८१॥
याकारणें भेदातें। सांडूनि अभेदें चित्तें। आपण सकट मातें। जाणावें गा ॥३८२॥
पार्था सोनयाची टिका। सोनयासी लागली देखा। तैसें आपणपें आणिका। मानावें ना ॥३८३॥
तेजाचा तेजौनि निघाला। परी तेजींचि असे लागला। तया रश्मी ऐसा भला। बोधु होआवा ॥३८४॥

पैं परमाणु भूतळीं। हिमकणु हिमाचळीं। मजमाजीं न्याहाळीं। अहं तैसें ॥३८५॥
हो कां तरंगु लहानु। परी सिंधूसी नाहीं भिन्नु। तैसा ईश्वरीं मी आनु। नोहेचि गा ॥३८६॥
ऐसेनि बा समरसें। दृष्टि जे उल्हासे। ते भक्ति पैं ऐसे। आम्ही म्हणों ॥३८७॥
आणि ज्ञानाचें चांगावें। इयेचि दृष्टि नांवें। योगाचेंही आघवें। सर्वस्व हें ॥३८८॥
सिंधू आणि जळधरा- । माजीं लागली अखंड धारा। तैसी वृत्ति वीरा। प्रवर्ते ते ॥३८९॥
कां कुहेसीं आकाशा। तोंडीं सांदा नाहीं तैसा। तो परमपुरुषीं तैसा। एकवटे गा ॥३९०॥
प्रतिबिंबौनि बिंबवरी। प्रभेची जैसी उजरी। ते सोऽहंवृत्ती अवधारीं। तैसी होय ॥३९१॥
ऐसेनि मग परस्परें। ते सोऽहंवृत्ति जैं अवतरे। तैं तियेहि सकट सरे। अपैसया ॥३९२॥
जैसा सैंधवाचा रवा। सिंधूमाजीं पांडवा। विरालेया विरवावा। हेंही ठाके ॥३९३॥
नातरी जाळूनि तृण। वन्हिही विझे आपण। तैसें भेदु नाशूनि जाण। ज्ञानही नुरे ॥३९४॥
माझें पैलपण जाये। भक्त हें ऐलपण ठाये। अनादि ऐक्य जें आहे। तेंचि निवडे ॥३९५॥
आतां गुणातें तो किरीटी। जिणे या नव्हती गोष्टी। जे एकपणाही मिठी। पडों सरली ॥३९६॥
किंबहुना ऐसी दशा। तें ब्रह्मत्व गा सुदंशा। हें तो पावें जो ऐसा। मातें भजे ॥३९७॥
पुढतीं इहीं लिंगीं। भक्तु जो माझा जगीं। हे ब्रह्मता तयालागीं। पतिव्रता ॥३९८॥
जैसें गंगेचेनि वोघें। डळमळित जळ जें निघे। सिंधुपद तयाजोगें। आन नाहीं ॥३९९॥
तैसा ज्ञानाचिया दिठी। जो मातें सेवी किरीटी। तो होय ब्रह्मतेच्या मुकुटीं। चूडारत्न ॥४००॥
यया ब्रह्मत्वासीचि पार्था। सायुज्य ऐसी व्यवस्था। याचि नांवें चौथा। पुरुषार्थ गा ॥४०१॥
परी माझें आराधन। ब्रह्मत्वीं होय सोपान। एथ मी हन साधन। गमेन हो ॥४०२॥
तरी झणीं ऐसें। तुझ्या चित्तीं पैसें। पैं ब्रह्म आन नसे। मीवांचूनि ॥४०३॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥२७॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगोनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४अ ॥

अगा ब्रह्म या नांवा। अभिप्रायो मी पांडवा। मीचि बोलिजे आघवा। शब्दीं इहीं ॥४०४॥
पैं मंडळ आणि चंद्रमा। दोन्ही नव्हती सुवर्मा। तैसा मज आणि ब्रह्मा। भेदु नाहीं ॥४०५॥
अगा नित्य जें निष्कंप। अनावृत धर्मरूप। सुख जें उमप। अद्वितीय ॥४०६॥
विवेकु आपलें काम। सारूनि ठाकी जें धाम। निष्कर्षाचें निःसीम। किंबहुना मी ॥४०७॥
ऐसेसें हो अवधारा। तो अनन्याचा सोयरा। सांगतसे वीरा। पार्थासी ॥४०८॥
येथ धृतराष्ट्र म्हणे। संजया हें तूतें कोणें। पुसलेनिविण वायाणें। कां बोलसी ? ॥४०९॥
माझी अवसरी ते फेडी। विजयाची सांगें गुढी। येरु जीवीं म्हणे सांडीं। गोठी यिया ॥४१०॥
संजयो विस्मयो मानसीं। आहा करूनि रसरसी। म्हणे कैसें पां देवेंसी। द्वंद्व यया ? ॥४११॥
तरी तो कृपाळु तुष्टो। यया विवेकु हा घोंटो। मोहाचा फिटो। महारोगु ॥४१२॥
संजयो ऐसें चिंतितां। संवादु तो सांभाळितां। हरिखाचा येतु चित्ता। महापूरु ॥४१३॥
म्हणौनि आतां येणें। उत्साहाचेनि अवतरणें। श्रीकृष्णाचें बोलणें। सांगिजैल ॥४१४॥
तया अक्षराआंतील भावो। पाववीन मी तुमचा ठावो। आइका म्हणे ज्ञानदेवो। निवृत्तीचा ॥४१५॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां गुणत्रयविभागयोगोनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय पंधरावा ।

पुरुषोत्तमयोगः ।

आतां हृदय हें आपुलें। चौफाळुनियां भलें। वरी बैसऊं पाउलें। श्रीगुरूंचीं ॥१॥
ऐक्यभावाची अंजुळी। सर्वेंद्रिय कुड्मुळी। भरूनियां पुष्पांजुळी। अर्घ्यु देवों ॥२॥
अनन्योदकें धुवट। वासना जे तन्निष्ठ। ते लागलेसे अबोट। चंदनाचें ॥३॥
प्रेमाचेनि भांगारें। निर्वाळूनि नूपरें। लेवऊं सुकुमारें। पदें तियें ॥४॥
घणावली आवडी। अव्यभिचारें चोखडी। तिये घालूं जोडी। आंगोळिया ॥५॥
आनंदामोदबहळ। सात्त्विकाचें मुकुळ। तें उमललें अष्टदळ। ठेऊं वरी ॥६॥
तेथे अहं हा धूप जाळूं। नाहं तेजें वोवाळूं। सामरस्यें पोटाळूं। निरंतर ॥७॥
माझी तनु आणि प्राण। इया दोनी पाउवा लेऊं श्रीगुरुचरण। करूं भोगमोक्ष निंबलोण। पायां तयां ॥८॥
इया श्रीगुरुचरणसेवा। हों पात्र तया दैवा। जे सकळार्थमेळावा। पाटु बांधे ॥९॥
ब्रह्मींचें विसवणेंवरी। उन्मेख लाहे उजरी। जें वाचेतें इयें करी। सुधासिंधु ॥१०॥
पूर्णचंद्राचिया कोडी। वक्तृत्वा घापें कुरोंडी। तैसी आणी गोडी। अक्षरांतें ॥११॥
सूर्यें अधिष्ठिली प्राची। जगा राणीव दे प्रकाशाची। तैशी वाचा श्रोतयां ज्ञानाची। दिवाळी करी ॥१२॥
नादब्रह्म खुजें। कैवल्यही तैसें न सजे। ऐसा बोलु देखिजे। जेणें दैवें ॥१३॥
श्रवणसुखाच्या मांडवीं। विश्व भोगी माधवीं। तैसी सासिन्नली बरवी। वाचावल्ली ॥१४॥
ठावो न पवता जयाचा। मनेंसी मुरडली वाचा। तो देवो होय शब्दाचा। चमत्कारु ॥१५॥
जें ज्ञानासि न चोजवे। ध्यानासिही जें नागवे। तें अगोचर फावे। गोठीमाजीं ॥१६॥
येवढें एक सौभग। वळघे वाचेचें आंग। श्रीगुरुपादपद्मपराग। लाहे जैं कां ॥१७॥
तरी बहु बोलूं काई। आजि तें आनीं ठाईं। मातेंवाचूनि नाहीं। ज्ञानदेवो म्हणे ॥१८॥
जे तान्हेनि मियां अपत्यें। आणि माझे गुरु एकलौतें। म्हणौनि कृपेंसि एकहातें। जालें तिये ॥१९॥
पाहा पां भरोवरी आघवी। मेघ चातकांसी रिचवी। मजलागीं गोसावी। तैसें केलें ॥२०॥
म्हणौनि रिकामें तोंड। करूं गेलें बडबड। कीं गीता ऐसें गोड। आतुडलें ॥२१॥
होय अदृष्ट आपैतें। तैं वाळूचि रत्नें परते। उजू आयुष्य तैं मारितें। लोभु करी ॥२२॥
आधणीं घातलिया हरळ। होती अमृताचे तांदुळ। जरी भुकेची राखे वेळ। श्रीजगन्नाथु ॥२३॥
तयापरी श्रीगुरु। करिती जैं अंगीकारु। तैं होऊनि ठाके संसारु। मोक्षमय आघवा ॥२४॥
पाहा पां श्रीनारायणें। तया पांडवांचें उणें। कीजेचि ना पुराणें। विश्ववंद्यें ? ॥२५॥
तैसें श्रीनिवृत्तिराजें। अज्ञानपण हें माझें। आणिलें वोजें। ज्ञानाचिया ॥२६॥
परी हें असो आतां। प्रेम रुळतसे बोलतां। कें गुरुगौरव वर्णितां। उन्मेष असे ? ॥२७॥
आतां तेणेंचि पसायें। तुम्हां संताचे मी पायें। वोळगेन अभिप्रायें। गीतेचेनि ॥२८॥
तरी तोचि प्रस्तुतीं। चौदाविया अध्यायाच्या अंतीं। निर्णयो कैवल्यपती। ऐसा केला ॥२९॥
जें ज्ञान जयाच्या हातीं। तोचि समर्थु मुक्ति। जैसा शतमख संपत्ती। स्वर्गींचिये ॥३०॥
कां शत एक जन्मां। जो जन्मोनि ब्रह्मकर्मा। करी तोचि ब्रह्मा। आनु नोहे ॥३१॥
नाना सूर्याचा प्रकाशु। लाहे जेवीं डोळसु। तेवीं ज्ञानेंचि सौरसु। मोक्षाचा तो ॥३२॥

तरी तया ज्ञानालागीं। कवणा पां योग्यता आंगीं। हें पाहतां जगीं। देखिला एकु ॥३३॥
जें पाताळींचेंही निधान। दावील कीर अंजन। परी होआवे लोचन। पायाळाचे ॥३४॥
तैसें मोक्ष देईल ज्ञान। येथें कीर नाहीं आन। परी तेंचि थारे ऐसें मन। शुद्ध होआवें ॥३५॥
तरी विरक्तीवांचूनि कहीं। ज्ञानासि तगणेंचि नाहीं। हें विचारूनि ठाईं। ठेविलें देवें ॥३६॥
आतां विरक्तीची कवण परी। जे येऊनि मनातें वरी। हेंही सर्वज्ञें श्रीहरी। देखिलें असे ॥३७॥
जे विषें रांधिली रससोये। जैं जेवणारा ठाउवी होये। तैं तो ताटचि सांडूनि जाये। जयापरी ॥३८॥
तैसी संसारा या समस्ता। जाणिजे जैं अनित्यता। तैं वैराग्य दवडितां। पाठी लागे ॥३९॥
आतां अनित्यत्व या कैसें। तेंचि वृक्षाकारमिषें। सांगिजत असे विश्वेशें। पंचदशीं ॥४०॥
उपडिलें कवतिकें। झाड येरिमोहरा ठाके। तें वेगें जैसें सुके। तैसें हें नोहे ॥४१॥
यातें एकेपरी। रूपकाचिया कुसरी। सारीतसे वारी। संसाराची ॥४२॥
करूनि संसार वावो। स्वरूपीं अहंते ठावो। होआवया अध्यावो। पंधरावा हा ॥४३॥
आतां हेंचि आघवें। ग्रंथगर्भींचें चांगावें। उपलविजेल जीवें। आकर्णिजे ॥४४॥
तरी महानंद समुद्र। जो पूर्ण पूर्णीमा चंद्र। तो द्वारकेचा नरेंद्र। ऐसें म्हणे ॥४५॥
अगा पैं पंडुकुमरा। येतां स्वरूपाचिया घरा। करीतसे आडवारा। विश्वाभासु जो ॥४६॥
तो हा जगडंबरु। नोहे येथ संसारु। हा जाणिजे महातरु। थांवला असे ॥४७॥
परी येरां रुखांसारिखा। हा तळीं मूळें वरी शाखा। तैसा नोहे म्हणौनि लेखा। नयेचि कवणा ॥४८॥
आगी कां कुऱ्हाडी। होय रिगावा जरी बुडीं। तरी हो कां भलतेवढी। वरिचील वाढी ॥४९॥
जे तुटलिया मूळापाशीं। उलंडेल कां शाखांशीं। परी तैशी गोठी कायशी। हा सोपा नव्हे ॥५०॥
अर्जुना हें कवतिक। सांगतां असे अलौकिक। जे वाढी अधोमुख। रुखा यया ॥५१॥
जैसा भानू उंची नेणों कें। रश्मिजाळ तळीं फांके। संसार हें कावरुखें। झाड तैसें ॥५२॥
आणि आथी नाथी तितुकें। रुंधलें असे येणेंचि एकें। कल्पांतींचेनि उदकें। व्योम जैसें ॥५३॥
कां रवीच्या अस्तमानीं। आंधारेनि कोंदे रजनी। तैसा हाचि गगनीं। मांडला असे ॥५४॥
यया फळ ना चुंबितां। फूल ना तुरंबितां। जें कांहीं पंडुसुता। तें रुखुचि हा ॥५५॥
हा ऊर्ध्वमूळ आहे। परी उन्मूळिला नोहे। येणेंचि हा होये। शाड्वळु गा ॥५६॥
आणि ऊर्ध्वमूळ ऐसें। निगदिलें कीर असे। परी अधींही असोसें। मूळें यया ॥५७॥
प्रबळला चौमेरी। पिंपळा कां वडाचिया परी। जे पारंबियांमाझारीं। डहाळिया असती ॥५८॥
तेवींचि गा धनंजया। संसारतरु यया। अधींचि आथी खांदिया। हेंही नाहीं ॥५९॥
तरी ऊर्ध्वाहीकडे। शाखांचे मांदोडे। दिसताति अपाडें। सासिन्नलें ॥६०॥
जालें गगनचि पां वेलिये। कां वारा मांडला रुखाचेनि आयें। नाना अवस्थात्रयें। उदयला असे ॥६१॥
ऐसा हा एकु। विश्वाकार विटंकु। उदयला जाण रुखु। ऊर्ध्वमूळु ॥६२॥
आतां ऊर्ध्व या कवण। येथें मूळ तें किं लक्षण। कां अधोमुखपण। शाखा कैसिया ॥६३॥
अथवा द्रुमा यया। अधीं जिया मूळिया। तिया कोण कैसिया। ऊर्ध्व शाखा ॥६४॥
आणि अश्वत्थु हा ऐसी। प्रसिद्धी कायसी। आत्मविदविलासीं। निर्णयो केला ॥६५॥
हें आघवेंचि बरवें। तुझिये प्रतीतीसि फावे। तैसेनि सांगों सोलिंवें। विन्यासें गा ॥६६॥
परी ऐकें गा सुभगा। हा प्रसंगु असे तुजचि जोगा। कानचि करीं हो सर्वांगा। हियें आथिलिया ॥६७॥
ऐसें प्रेमरसें सुरफुरें। बोलिलें जंव यादववीरें। तंव अवधान अर्जुनाकारें। मूर्त जालें ॥६८॥
देव निरूपिती तें थेंकुलें। येवढें श्रोतेपण फांकलें। जैसे आकाशा खेंव पसरिलें। दाही दिशीं ॥६९॥

श्रीकृष्णोक्तिसागरा। हा अगस्तीचि दुसरा। म्हनौनि घोंटु भरों पाहे एकसरा। अवघेयाचा ॥७०॥
ऐसी सोय सांडूनि खवळिली। आवडी अर्जुनीं देवें देखिली। तेथ जालेनि सुखें केली। कुरवंडी तया ॥७१॥

श्रीभगवानुवाच ।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥१॥

मग म्हणे धनंजया। तें ऊर्ध्व गा तरू यया। येणें रुखेंचि कां जया। ऊर्ध्वता गमे ॥७२॥
एऱ्हवीं मध्योर्ध्व अध। हे नाहीं जेथ भेद। अद्वयासीं एकवद। जया ठायीं ॥७३॥
जो नाइकिजतां नादु। जो असौरभ्य मकरंदु। जो आंगाथिला आनंदु। सुरतेविण ॥७४॥
जया जें आऱ्हां परौतें। जया जें पुढें मागौतें। दिसतेविण दिसतें। अदृश्य जें ॥७५॥
उपाधीचा दुसरा। घालितां वोपसरा। नामरूपाचा संसारा। होय जयातें ॥७६॥
ज्ञातृज्ञेयाविहीन। तुसधेंचि जें ज्ञान। सुखा भरलें गगन। गाळींव जें ॥७७॥
जें कार्य ना कारण। जया दुजें ना एकपण। आपणयां जें जाण। आपणचि ॥७८॥
ऐसें वस्तु जें साचें। तें ऊर्ध्व गा यया तरूचें। तेथ आर घेणें मूळाचें। तें ऐसें असे ॥७९॥
तरी माया ऐसी ख्याती। नसतीच यया आथी। कां वांझेची संतती। वानणें जैशी ॥८०॥
तैशी सत ना असत होये। जे विचाराचें नाम न साहे। ऐसेया परीची आहे। अनादि म्हणती ॥८१॥
जे नानातत्त्वांंची मांदुस। जे जगदभ्राचें आकाश। जे आकारजाताचें दुस। घडी केलें ॥८२॥
जे भवद्रुमबीजिका। जे प्रपंचचित्र भूमिका। विपरीत ज्ञानदीपिका। सांचली जे ॥८३॥
ते माया वस्तूच्या ठायीं। असे जैसेनि नाहीं। मग वस्तुप्रभाचि पाही। प्रगट होये ॥८४॥
जेव्हां आपणया आली निद। करी आपणपें जेवीं मुग्ध। कां काजळी आणी मंद। प्रभा दीपीं ॥८५॥
स्वप्नीं प्रियापुढें तरुणांगी। निदेली चेववूनि वेगीं। आलिंगिलेनिवीण आलिंगी। सकामु करी ॥८६॥
तैसी स्वरूपीं जाली माया। आणी स्वरूप नेणे धनंजया। तेंचि रुखा यया। मूळ पहिलें ॥८७॥
वस्तूसी आपुला जो अबोधु। तो ऊर्ध्वीं आठुळैजे कंदु। वेदांतीं हाचि प्रसिद्धु। बीजभावो ॥८८॥
घन अज्ञान सुषुप्ती। तो बीजांकुरभावो म्हणती। येर स्वप्न हन जागृती। हा फळभावो तियेचा ॥८९॥
ऐसी यया वेदांतीं। निरूपणभाषाप्रतीती। परी तें असो प्रस्तुतीं। अज्ञान मूळ ॥९०॥
तें ऊर्ध्व आत्मा निर्मळें। अधोर्ध्व सूचिती मूळें। बळिया बांधोनि आळें। मायायोगाचें ॥९१॥
मग आधिलीं सदेहांतरें। उठती जियें अपारें। ते चौपासि घेऊनि आगारें। खोलावती ॥९२॥
ऐसें भवद्रुमाचें मूळ। हें ऊर्ध्वीं करी बळ। मग आणियांचें बेंचळ। अधीं दावी ॥९३॥
तेथ चिद्वृत्ति पहिलें। महत्तत्त्व उमललें। तें पान वाल्हेंदुल्हें। एक निघे ॥९४॥
मग सत्त्वरजतमात्मकु। त्रिविध अहंकारु जो एकु। तो तिवणा अधोमुखु। डिरु फुटे ॥९५॥
तो बुद्धीची घेऊनि आगारी। भेदाची वृद्धि करी। तेथे मनाचे डाळ धरी। साजेपणें ॥९६॥
ऐसा मूळाचिया गाढिका। विकल्परस कोंवळिका। चित्तचतुष्टय डाहाळिका। कोंभैजे तो ॥९७॥
मग आकाश वायु द्योतक। आप पृथ्वी हें पांच फोंक। महाभूतांचें सरोख। सरळे होती ॥९८॥
तैसीं श्रोत्रादि तन्मात्रें। तियें अंगवसां गर्भपत्रें। लुळलुळितें विचित्रें। उमळती गा ॥९९॥
तेथ शब्दांकुर वरिपडी। श्रोत्रा वाढी देव्हडी। होता करित कांडीं। आकांक्षेचीं ॥१००॥
अंगत्वचेचे वेलपल्लव। स्पर्शांकुरीं घेती धांव। तेथ बांबळ पडे अभिनव। विकारांचें ॥१०१॥
पाठीं रूपपत्र पालोवेलीं। चक्षु लांब तें कांडें घाली। ते वेळीं व्यामोहता भली। पाहाळीं जाय ॥१०२॥
आणि रसाचें आंगवसें। वाढतां वेगें बहुवसें। जिव्हे आर्तीची असोसें। निघती बेंचें ॥१०३॥

तैसेंचि कोंभैलेनि गंधें। घ्राणाची डिरी थांबुं बांधे। तेथ तळु घे स्वानंदें। प्रलोभाचा ॥१०४॥
एवं महदहंबुद्धि। मनें महाभूतसमृद्धी। इया संसाराचिया अवधी। सासनिजे ॥१०५॥
किंबहुना इहीं आठें। आंगीं हा अधिक फांटे। परी शिंपीचियेवढें उमटे। रुपें जेवीं ॥१०६॥
कां समुद्राचेनि पैसारें। वरी तरंगता आसारे। तैसें ब्रह्मचि होय वृक्षाकारें। अज्ञानमूळ ॥१०७॥
आतां याचा हाचि विस्तारु। हाचि यया पैसारु। जैसा आपणपें स्वप्नीं परिवारु। येकाकिया ॥१०८॥
परी तें असो हें ऐसें। कावरें झाड उससे। यया महदादि आरवसें। अधोशाखा ॥१०९॥
आणि अश्वत्थु ऐसें ययातें। म्हणती जे जाणते। तेंही परिस हो येथें। सांगिजैल ॥११०॥
तरी श्वः म्हणिजे उखा। तोंवरी एकसारिखा। नाहीं निर्वाहो यया रुखा। प्रपंचरूपा ॥१११॥
जैसा न लोटतां क्षणु। मेघु होय नानावर्णु। कां विजु नसे संपूर्णु। निमेषभरी ॥११२॥
ना कांपतया पद्मदळा। वरीलिया बैसका नाहीं जळा। कां चित्त जैसें व्याकुळा। माणुसाचें ॥११३॥
तैसीचि ययाची स्थिती। नासत जाय क्षणक्षणाप्रती। म्हणौनि ययातें म्हणती। अश्वत्थु हा ॥११४॥
आणि अश्वत्थु येणें नांवें। पिंपळु म्हणती स्वभावें। परी तो अभिप्राय नव्हे। श्रीहरीचा ॥११५॥
एऱ्हवीं पिंपळु म्हणतां विखीं। मियां गति देखिली असे निकी। परी तें असो काय लौकिकीं। हेतु काज ॥११६॥
म्हणौनि हा प्रस्तुतु। अलौकिकु परियेसा ग्रंथु। तरी क्षणिकत्वेंचि अश्वत्थु। बोलिजे हा ॥११७॥
आणीकुही येकु थोरु। यया अव्ययत्वाचा डगरु। आथी परी तो भीतरु। ऐसा आहे ॥११८॥
जैसा मेघांचेनि तोंडें। सिंधु एके आंगें काढे। आणि नदी येरीकडे। भरितीच असती ॥११९॥
तेथ वोहटे ना चढे। ऐसा परिपूर्णुचि आवडे। परी ते फुली जंव नुघडे। मेघानदींची ॥१२०॥
ऐसें या रुखाचें होणें जाणें। न तर्के होतेनि वहिलेपणें। म्हणौनि ययातें लोकु म्हणे। अव्ययु हा ॥१२१॥
एऱ्हवीं दानशीळु पुरुषु। वेंचकपणेंचि संचकु। तैसा व्ययेंचि हा रुखु। अव्ययो गमे ॥१२२॥
जातां वेगें बहुवसें। न वचे कां भूमीं रुतलें असे। रथाचें चक्र दिसे। जियापरी ॥१२३॥
तैसें काळातिक्रमें जे वाळे। ते भूतशाखा जेथ गळे। तेथ कोडीवरी उमाळे। उठती आणिक ॥१२४॥
परी येकी केधवां गेली। शाखाकोडी केधवां जाली। हें नेणवे जेवीं उमललीं। आषाढाभ्रें ॥१२५॥
महाकल्पाच्या शेवटीं। उदेलिया उमळती सृष्टी। तैसेंचि आणिखीचें दांग उठी। सासिन्नलें ॥१२६॥
संहारवातें प्रचंडें। पडती प्रळयांतींचीं सालडें। तंव कल्पादीचीं जुंबाडें। पाल्हेजती ॥१२७॥
रिगे मन्वंतर मनूपुढें। वंशावरी वंशांचे मांडे। जैसी इक्षुवृद्धी कांडेंनकांडें। जिंके जेवीं ॥१२८॥
कलियुगांतीं कोरडीं। चहुं युगांची सालें सांडी। तंव कृतयुगाची पेली देव्हडी। पडे पुढती ॥१२९॥
वर्ततें वर्ष जाये। तें पुढिला मुळहारी होये। जैसा दिवसु जात कीं येत आहे। हें चोजवेना ॥१३०॥
जैशा वारियाच्या झुळकां। सांदा ठाउवा नव्हे देखा। तैसिया उठती पडती शाखा। नेणों किती ॥१३१॥
एकी देहाची डिरी तुटे। तंव देहांकुरीं बहुवी फुटे। ऐसेनि भवतरु हा वाटे। अव्ययो ऐसा ॥१३२॥
जैसें वाहतें पाणी जाय वेगें। तैसेंचि आणिक मिळे मागें। येथ असंतचि असिजे जगें। मानिजे संत ॥१३३॥
कां लागोनि डोळां उघडे। तंव कोडीवरी घडे मोडे। नेणतया तरंगु आवडे। नित्यु ऐसा ॥१३४॥
वायसा एकें बुबुळें दोहींकडे। डोळा चाळीतां अपाडें। दोन्ही आथी ऐसा पडे। भ्रमु जेवीं जगा ॥१३५॥
पैं भिंगोरी निधिये पडली। ते गमे भूमीसी जैसी जडली। ऐसा वेगातिशयो भुली। हेतु होय ॥१३६॥
हें बहु असो झडती। आंधारें भोवंडितां कोलती। ते दिसे जैसी आयती। चक्राकार ॥१३७॥
हा संसारवृक्षु तैसा। मोडतु मांडतु सहसा। न देखोनि लोकु पिसा। अव्ययो मानी ॥१३८॥
परि ययाचा वेगु देखे। जो हा क्षणिक ऐसा वोळखे। जाणे कोडिवेळां निमिखें। होत जात ॥१३९॥
नाहीं अज्ञानावांचूनि मूळ। ययाचें असिलेंपण टवाळ। ऐसें झाड सिनसाळ। देखिलें जेणें ॥१४०॥

तयातें गा पंडुसुता। मी सर्वज्ञुही म्हणें जाणता। पैं वाग्ब्रह्म सिद्धांता। वंद्यु तोची ॥१४१॥
योगजाताचें जोडलें। तया एकासीचि उपेगा गेलें। किंबहुना जियालें। ज्ञानही त्याचेनी ॥१४२॥
हें असो बहु बोलणें। वानिजैल तो कवणें। जो भवरुखु जाणें। उखि ऐसा ॥१४३॥
अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥२॥
मग ययाचि प्रपंचरूपा। अधोशाखिया पादपा। डाहाळिया जाती उमपा। ऊर्ध्वाही उजू ॥१४४॥
आणि अधीं फांकली डाळें। तिये होती मूळें। तयाही तळीं पघळे। वेल पालवु ॥१४५॥
ऐसें जें आम्हीं। म्हणितलें उपक्रमीं। तेंही परिसें सुगमीं। बोलीं सांगों ॥१४६॥
तरी बद्धमूळ अज्ञानें। महदादिकीं सासिनें। वेदांचीं थोरवनें। घेऊनियां ॥१४७॥
परी आधीं तंव स्वेदज। जारज उद्भिज अंडज। हे बुडौनि महाभुज। उठती चारी ॥१४८॥
यया एकैकाचेनि आंगवटें। चौऱ्यांशीं लक्षधा फुटे। ते वेळीं जीवशाखीं फांटे। सैंधचि होती ॥१४९॥
प्रसवती शाखा सरळिया। नानासृष्टि डाहाळिया। आड फुटती माळिया। जातिचिया ॥१५०॥
स्त्री पुरुष नपुंसकें। हे व्यक्तिभेदांचे टके। आंदोळती आंगिकें। विकारभारें ॥१५१॥
जैसा वर्षाकाळु गगनीं। पाल्हेजे नवघनीं। तैसें आकारजात अज्ञानीं। वेलीं जाय ॥१५२॥
मग शाखांचेनि आंगभारें। लवोनि गुंफिती परस्परें। गुणक्षोभाचे वारे। उदयजती ॥१५३॥
तेथ तेणें अचाटें। गुणांचेनि झडझडाटें। तिहीं ठायीं हा फांटे। ऊर्ध्वमूळ ॥१५४॥
ऐसा रजाचिया झुळुका। झडाडितां आगळिका। मनुष्यजाती शाखा। थोरावती ॥१५५॥
तिया ऊर्ध्वीं ना अधीं। माझारींचि कोंदाकोंदी। आड फुटती खांदी। चतुर्वर्णांच्या ॥१५६॥
तेथ विधिनिषेध सपल्लव। वेदवाक्यांचें अभिनव। पालव डोलती बरव। नीच नवे ॥१५७॥
अर्थु कामु पसरे। अग्रवनें घेती थारे। तेथ क्षणिकें पदांतरें। इहभोगाचीं ॥१५८॥
तेथ प्रवृत्तीचेनि वृद्धिलोभें। खांकरेजती शुभाशुभें। नानाकर्मांचे खांबे। नेणों किती ॥१५९॥
तेवींचि भोगक्षीणें मागिलें। पडती देहांतींचीं बुडसळें। तंव पुढां वाढी पेले। नवेया देहांची ॥१६०॥
आणि शब्दादिक सुहावे। सहज रंगें हवावे। विषयपल्लव नवे। नीत्य होती ॥१६१॥
ऐसे रजोवातें प्रचंडें। मनुष्यशाखांचे मांदोडे। वाढती तो एथ रुढे। मनुष्यलोकु ॥१६२॥
तैसाचि तो रजाचा वारा। नावेक धरी वोसरा। मग वाजों लागे घोरा। तमाचा तो ॥१६३॥
तेधवां याचिया मनुष्यशाखा। नीच वासना अधीं देखा। पल्हेजती डाहाळिका। कुकर्माचिया ॥१६४॥
अप्रवृत्तींचे खणुवाळे। कोंभ निघती सरळे। घेत पान पालव डाळे। प्रमादाचीं ॥१६५॥
बोलती निषेधनियमें। जिया ऋचा यजुःसामें। तो पाला तया घुमें। टकेयावरी ॥१६६॥
प्रतिपादिती अभिचार। आगम जे परमार। तिहीं पानीं घेती प्रसर। वासना वेली ॥१६७॥
तंव तंव होतीं थोराडें। अकर्मांचीं तळबुडें। आणि जन्मशाखा पुढें पुढें। घेती धांव ॥१६८॥
तेथ चांडाळादि निकृष्टा। दोषजातीचा थोर फांटा। जाळ पडे कर्मभ्रष्टां। भुलोनियां ॥१६९॥
पशु पक्षी सूकर। व्याघ्र वृश्चिक विखार। हे आडशाखा प्रकार। पैसु घेती ॥१७०॥
परी ऐशा शाखा पांडवा। सर्वांगींहि नित्य नवा। निरयभोग यावा। फळाचा तो ॥१७१॥
आणि हिंसाविषयपुढारी। कुकर्मसंगें धुर धुरी। जन्मवरी आगारी। वाढतीचि असे ॥१७२॥
ऐसे होती तरु तृण। लोह लोष्ट पाषाण। इया खांदिया तेवीं जाण। फळेंही हेंची ॥१७३॥
अर्जुना गा अवधारीं। मनुष्यालागोनि इया परी। वृद्धि स्थावरांतवरी। अधोशाखांची ॥१७४॥
म्हणौनि जीं मनुष्यडाळें। तियें जाणावीं अधींचि मूळें। जे एथूनि हा पघळे। संसारतरु ॥१७५॥

एऱ्हवीं ऊर्ध्वींचें पार्था। मुद्दल मूळ पाहतां। अधींचिया मध्यस्था। शाखा इया ॥१७६॥
परी तामसी सात्त्विकी। सुकृतदुष्कृतात्मकी। विरुढती या शाखीं। अधोर्ध्वींचिया ॥१७७॥
आणि वेदत्रयाचिया पाना। नये अन्यत्र लागों अर्जुना। जे मनुष्यावांचूनि विधाना। विषय नाहीं ॥१७८॥
म्हणौनि तनु मानुषा। इया ऊर्ध्वमूळौनि जरी शाखा। तरी कर्मवृद्धीसि देखा। इयेंचि मूळें ॥१७९॥
आणि आनीं तरी झाडीं। शाखा वाढतां मुळें गाढीं। मूळ गाढें तंव वाढी। पैस आथी ॥१८०॥
तैसेंचि इया शरीरा। कर्म तंव देहा संसारा। आणि देह तंव व्यापारा। ना म्हणोंचि नये ॥१८१॥
म्हणौनि देहें मानुषें। इयें मुळें होती न चुके। ऐसें जगज्जनकें। बोलिलें तेणें ॥१८२॥
मग तमाचें तें दारुण। स्थिरावलेया वाउधाण। सत्त्वाची सुटे सत्राण। वाहुटळी ॥१८३॥
तैं याचि मनुष्याकारा। मुळीं सुवासना निघती आरा। घेऊनि फुटती कोंबारा। सुकृतांकुरीं ॥१८४॥
उकलतेनि उन्मेखें। प्रज्ञाकुशलतेंची तिखें। डिरिया निघती निमिखें। बाबळैजुनी ॥१८५॥
मतीचे सोट वांवे। घालिती स्फूर्तींचेनि थांवें। बुद्धि प्रकाश घे धांवे। विवेकावरी ॥१८६॥
तेथ मेधारसें सगर्भ। अस्थापत्रीं सबोंब। सरळ निघती कोंभ। सद्वृत्तीचे ॥१८७॥
सदाचाराचिया सहसा। टका उठती बहुवसा। घुमघुमिति घोषा। वेदपद्याच्या ॥१८८॥
शिष्टागमविधानें। विविधयागवितानें। इये पानावरी पानें। पालेजती ॥१८९॥
ऐशा यमदमीं घोंसाळिया। उठती तपाचिया डाहाळिया। देती वैराग्यशाखा कोंवळिया। वेल्हाळपणें ॥१९०॥
विशिष्टां व्रतांचे फोक। धीराच्या अणगटी तिख। जन्मवेगें ऊर्ध्वमुख। उंचावती ॥१९१॥
माजीं वेदांचा पाला दाट। तो करी सुविद्येचा झडझडाट। जंव वाजे अचाट। सत्त्वानिळु तो ॥१९२॥
तेथ धर्मडाळ बाहाळी। दिसती जन्मशाखा सरळी। तिया आड फुटती फळीं। स्वर्गादिकीं ॥१९३॥
पुढां उपरति रागें लोहिवी। धर्ममोक्षाची शाखा पालवी। पाल्हाजत नित्य नवी। वाढतीचि असे ॥१९४॥
पैं रविचंद्रादि ग्रहवर। पितृ ऋषी विद्याधर। हे आडशाखा प्रकार। पैसु घेती ॥१९५॥
याहीपासून उंचवडें। गुढले फळाचेनि बुडें। इंद्रादिक ते मांदोडे। थोर शाखांचे ॥१९६॥
मग तयांही उपरी डाहाळिया। तपोज्ञानीं उंचावलिया। मरीचि कश्यपादि इया। उपरी शाखा ॥१९७॥
एवं माळोवाळी उत्तरोत्तरु। ऊर्ध्वशाखांचा पैसारु। बुडीं साना अग्रीं थोरु। फळाढ्यपणें ॥१९८॥
वरी उपरिशाखाही पाठीं। येती फळभार जे किरीटी। ते ब्रह्मेशांत अणगटीं। कोंभ निघती ॥१९९॥
फळाचेनि वोझेपणें। ऊर्ध्वीं वोवांडें दुणें। जंव माघौतें बैसणें। मूळींचि होय ॥२००॥
प्राकृताही तरी रुखा। जें फळें दाटलीं होय शाखा। ते वोवांडली देखा। बुडासि ये ॥२०१॥
तैसें जेथूनि हा आघवा। संसारतरूचा उठावा। तियें मूळीं टेंकती पांडवा। वाढतेनि ज्ञानें ॥२०२॥
म्हणौनि ब्रह्मेशानापरौतें। वाढणें नाहीं जीवातें। तेथूनि मग वरौतें। ब्रह्मचि कीं ॥२०३॥
परी हें असो ऐसें। ब्रह्मादिक ते आंगवसें। ऊर्ध्वमुळासरिसें। न तुकती गा ॥२०४॥
आणीकही शाखा उपरता। जिया सनकादिक नामें विख्याता। तिया फळीं मूळीं नाडळता। भरलिया ब्रह्मीं ॥२०५॥
ऐसी मनुष्यापासूनि जाणावी। ऊर्ध्वीं ब्रह्मादिशेष पालवी। शाखांची वाढी बरवी। उंचावे पैं ॥२०६॥
पार्था ऊर्ध्वींचिया ब्रह्मादि। मनुष्यत्वचि होय आदि। म्हणौनि इयें अधीं। म्हणितलीं मूळें ॥२०७॥
एवं तुज अलौकिकु। हा अधोर्ध्वशाखु। सांगितला भवरुखु। ऊर्ध्वमूळु ॥२०८॥
आणि अधींचीं हीं मूळें। उपपत्ती परिसविली सविवळें। आतां परिस उन्मूळें। कैसेनि हा ॥२०९॥
न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥३॥
परी तुझ्या हन पोटीं। ऐसें गमेल किरीटी। जे एवढें झाड उत्पाटी। ऐसें कायि असे ? ॥२१०॥

कें ब्रह्मयाच्या शेवटवरी। ऊर्ध्व शाखांची थोरी। आणि मूळ तंव निराकारीं। ऊर्ध्वीं असे ॥२११॥
हा स्थावराही तळीं। फांकत असे अधींच्या डाळीं। माजीं धांवतसे दुजा मूळीं। मनुष्यरूपीं ॥२१२॥
ऐसा गाढा आणि अफाटु। आतां कोण करी यया शेवटु। तरी झणीं हा हळुवटु। धरिसी भावो ॥२१३॥
परी हा उन्मूळावया दोषें। येथ सायासचि कायिसे। काय बाळा बागुल देशें। दवडावा आहे ? ॥२१४॥
गंधर्वदुर्ग कायी पाडावे। काय शशविषाण मोडावें। होआवें मग तोडावें। खपुष्प कीं ? ॥२१५॥
तैसा संसारु हा वीरा। रुख नाहीं साचोकारा। मा उन्मूळणीं दरारा। कायिसा तरी ? ॥२१६॥
आम्हीं सांगितली जे परी। मूळडाळांची उजरी। ते वांझेचीं घरभरी। लेकुरें जैशीं ॥२१७॥
कय कीजती चेइलेपणीं। स्वप्नींचीं तिये बोलणीं। तैशी जाण ते काहाणी। दुगळींचि ते ॥२१८॥
वांचूनि आम्हीं निरूपिलें जैसें। ययाचे अचळ मूळ असे तैसें। आणि तैसाचि जरी हा असे। साचोकारा ॥२१९॥
तरी कोणाचेनि संतानें। निपजती तया उन्मूळणें। काय फुंकिलिया गगनें। जाइजेल गा ॥२२०॥
म्हणौनि पैं धनंजया। आम्हीं वानिलें रूप तें माया। कासवीचेनि तुपें राया। वोगरिलें जैसें ॥२२१॥
मृगजळाचीं गा तळीं। तिये दिठी दुरूनि न्याहाळीं। वांचूनि तेणें पाणियें साळी केळी। लाविसी काई ? ॥२२२॥
मूळ अज्ञानचि तंव लटिकें। मा तयाचें कार्य हें केतुकें। म्हणौनि संसाररुख सतुकें। वावोचि गा ॥२२३॥
आणि अंतु यया नाहीं। ऐसें बोलिजे जें कांहीं। तेंही साचचि पाहीं। येकें परी ॥२२४॥
तरी प्रबोधु जंव नोहे। तंव निद्रे काय अंतु आहे ? । कीं रात्री न सरे तंव न पाहे। तया आरौतें ? ॥२२५॥
तैसा जंव पार्था। विवेकु नुधवी माथा। तंव अंतु नाहीं अश्वत्था। भवरूपा या ॥२२६॥
वाजतें वारें निवांत। जंव न राहे जेथिंचें तेथ। तंव तरंगतां अनंत। म्हणावीचि कीं ॥२२७॥
म्हणौनि सूर्यु जैं हारपे। तैं मृगजळाभासु लोपे। कां प्रभा जाय दीपें। मालवलेनि ॥२२८॥
तैसें मूळ अविद्या खाये। तें ज्ञान जैं उभें होये। तैंचि यया अंतु आहे। एऱ्हवीं नाहीं ॥२२९॥
तेवींचि हा अनादी। ऐसी ही आथी शाब्दी। तो आळु नोहे अनुरोधी। बोलातें या ॥२३०॥
जें संसारवृक्षाच्या ठायीं। साचोकार तंव नाहीं। मा नाहीं तया आदि काई। कोण होईल ? ॥२३१॥
जो साच जेथूनि उपजे। तयातें आदि हें साजे। आतां नाहींचि तो म्हणिजे। कोठूनियां ? ॥२३२॥
म्हणौनि जन्मे ना आहे। ऐसिया सांगों कवण माये। यालागीं नाहींपणेंचि होये। अनादि हा ॥२३३॥
वांझेचिया लेंका। कैंची जन्मपत्रिका। नभीं निळी भूमिका। कें कल्पूं पां ॥२३४॥
व्योमकुसुमांचा पांडवा। कवणें देंठु तोडावा। म्हणौनि नाहीं ऐसिया भवा। आदि कैंची ? ॥२३५॥
जैसें घटाचें नाहींपण। असतचि असे केलेनिवीण। तैसा समूळ वृक्षु जाण। अनादि हा ॥२३६॥
अर्जुना ऐसेनि पाहीं। आद्यंतु ययासि नाहीं। माजीं स्थिती आभासे कांहीं। परी टवाळ ते ॥२३७॥
ब्रह्मगिरीहूनि न निगे। आणि समुद्रींही कीर न रिगे। माजीं दिसे वाउगें। मृगांबु जैसें ॥२३८॥
तेसा आद्यंती कीर नाहीं। आणि साचही नोहे कहीं। परी लटिकेपणाची नवाई। पडिभासे गा ॥२३९॥
नाना रंगीं गजबजे। जैसें इंद्रधनुष्य देखिजे। तैसा नेणतया आपजे। आहे ऐसा ॥२४०॥
ऐसेनि स्थितीचिये वेळे। भुलवी अज्ञानाचे डोळे। लाघवी हरी मेखळे। लोकु जैसा ॥२४१॥
आणि नसतीचि श्यामिका। व्योमीं दिसे तैसी दिसो कां। तरी दिसणेंही क्षणा एका। होय जाय ॥२४२॥
स्वप्नींही मानिलें लटिकें। तरी निर्वाहो कां एकसारिखें। तेवीं आभासु हा क्षणिकें। रिताचि गा ॥२४३॥
देखतां आहे आवडें। घेऊं जाइजे तरी नातुडे। जैसा टिकु कीजे माकडें। जळामाजीं ॥२४४॥
तरंगभंगु सांडीं पडे। विजूही न पुरे होडे। आभासासि तेणें पाडें। होणें जाणें गा ॥२४५॥
जैसा ग्रीष्मशेषींचा वारा। नेणिजे समोर कीं पाठीमोरा। तैसी स्थिती नाहीं तरुवरा। भवरूपा यया ॥२४६॥
एवं आदि ना अंतु स्थिती। ना रूप ययासि आथी। आतां कायसी कुंथाकुंथी। उन्मूळणी गा ॥२४७॥

आपुलिया अज्ञानासाठीं। नव्हता थांवला किरीटी। तरी आतां आत्माज्ञानाच्या लोटीं। खांडेनि गा ॥२४८॥
वांचूणि ज्ञानेवीण ऐकें। उपाय करिसी जितुके। तिहीं गुंफसि अधिकें। रुखीं इये ॥२४९॥
मग किती खांदोखांदीं। यया हिंडावें ऊर्ध्वीं अधीं। म्हणौनि मूळचि अज्ञान छेदीं। सम्यक ज्ञानें ॥२५०॥
एऱ्हवीं दोरीचिया उरगा। डांगा मेळवितां पैं गा। तो शिणुचि वाउगा। केला होय ॥२५१॥
तरावया मृगजळाची गंगा। डोणीलागीं धांवतां दांगा- । माजीं वोहळें बुडिजे पैं गा। साच जेवीं ॥२५२॥
तेवीं नाथिलिया संसारा। उपाईं जाचतया वीरा। आपणपें लोपे वारा। विकोपीं जाय ॥२५३॥
म्हणौनि स्वप्नींचिया घाया। ओखद चेवोचि धनंजया। तेवीं अज्ञानमूळा यया। ज्ञानचि खड्ग ॥२५४॥
परी तेचि लीला परजवे। तैसें वैराग्याचें नवें। अभंगबळ होआवें। बुद्धीसी गा ॥२५५॥
उठलेनि वैराग्यें जेणें। हा त्रिवर्गु ऐसा सांडणें। जैसें वमुनियां सुणें। आतांचि गेलें ॥२५६॥
हा ठायवरी पांडवा। पदार्थजातीं आघवा। विटवी तो होआवा। वैराग्य लाठु ॥२५७॥
मग देहाहंतेचें दळें। सांडूनि एकेचि वेळे। प्रत्यक्बुद्धी करतळें। हातवसावें ॥२५८॥
निसळें विवेकसाहणें। जें ब्रह्माहमस्मिबोधें सणाणें। मग पुरतेनि बोधें उटणें। एकलेचि ॥२५९॥
परी निश्चयाचें मुष्टिबळ। पाहावें एकदोनी वेळ। मग तुळावें अति चोखाळ। मननवरी ॥२६०॥
पाठीं हतियेरां आपणयां। निदिध्यासें एक जालिया। पुढें दुजें नुरेल घाया- । पुरतें गा ॥२६१॥
तें आत्मज्ञानाचें खांडें। अद्वैतप्रभेचेनि वाडें। नेदील उरों कवणेकडे। भववृक्षासी ॥२६२॥
शरदागमींचा वारा। जैसा केरु फेडी अंबरा। का उदयला रवी आंधारा। घोंटु भरी ॥२६३॥
नाना उपवढ होतां खेंवो। नुरे स्वप्नसंभ्रमाचा ठावो। स्वप्नप्रतीतिधारेचा वाहो। करील तैसें ॥२६४॥
तेव्हां ऊर्ध्वींचें मूळ। कां अधींचें हन शाखाजाळ। तें कांहींचि न दिसे मृगजळ। चादिणां जेवीं ॥२६५॥
ऐसेनि गा वीरनाथा। आत्मज्ञानाचिया खड्गलता। छेदुनिया भवाश्वत्था। ऊर्ध्वमूळातें ॥२६६॥
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥४॥
मग इदंतेसि वाळलें। जें मीपणेंवीण डाहारलें। तें रूप पाहिजे आपलें। आपणचि ॥२६७॥
परी दर्पणाचेनि आधारें। एकचि करून दुसरें। मुख पाहाती गव्हारें। तैसें नको हो ॥२६८॥
हें पाहाणें ऐसें असे वीरा। जैसा न बोडलिया विहिरा। मग आपलिया उगमीं झरा। भरोनि ठाके ॥२६९॥
नातरी आटलिया अंभ। निजबिंबीं प्रतिबिंब। निहटे कां नभीं नभ। घटाभावीं ॥२७०॥
नाना इंधनांशु सरलेया। वन्हि परते जेवीं आपणपयां। तैसें आपेंआप धनंजया। न्याहाळणें जें गा ॥२७१॥
जिव्हे आपली चवी चाखणें। चक्षू निज बुबुळ देखणें। आहे तया ऐसें निरीक्षणें। आपुलें पैं ॥२७२॥
कां प्रभेसि प्रभा मिळे। गगन गगनावरी लोळे। नाना पाणी भरलें खोळे। पाणियाचिये ॥२७३॥
आपणचि आपणयातें। पाहिजे जें अद्वैतें। तें ऐसें होय निरुतें। बोलिजतु असे ॥२७४॥
जें पाहिजतेनवीण पाहिजे। कांहीं नेणणाचि जाणिजे। आद्यपुरुष कां म्हणिजे। जया ठायातें ॥२७५॥
तेथही उपाधीचा वोथंबा। घेऊनि श्रुति उभविती जिभा। मग नामरूपाचा वडंबा। करिती वायां ॥२७६॥
पैं भवस्वर्गा उबगले। मुमुक्षु योगज्ञाना वळघले। पुढती न यों इया निगाले। पैजा जेथ ॥२७७॥
संसाराचिया पायां पुढां। पळती वीतराग होडा। ओलांडोनि ब्रह्मपदाचा कर्मकडा। घालिती मागां ॥२७८॥
अहंतादिभावां आपुलियां। झाडा देऊनि आघवेया। पत्र घेती ज्ञानिये जया। मूळघरासी ॥२७९॥
पैं जेथुनी हे एवढी। विश्वपरंपरेची वेलांडी। वाढती आशा जैशी कोरडी। निदैवाची ॥२८०॥
जिये कां वस्तूचें नेणणें। आणिलें थोर जगा जाणणें। नाहीं तें नांदविलें जेणें। मी तूं जगीं ॥२८१॥
पार्था तें वस्तु पहिलें। आपणपें आपुलें। पाहिजे जैसें हिंवलें। हिंव हिंवें ॥२८२॥

आणीकह्री एक तया। वोळखण असे धनंजया। तरी जया कां भेटलिया। येणेंचि नाहीं ॥२८३॥
परी तया भेटती ऐसें। जे ज्ञानें सर्वत्र सरिसे। महाप्रळयांबूचे जैसें। भरलेपण ॥२८४॥
निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥५॥
जया पुरुषांचें कां मन। सांडोनि गेलें मोह मान। वर्षांतीं जैसें घन। आकाशातें ॥२८५॥
निकवड्या निष्ठुरा। उबगिजे जेवीं सोयरा। तैसें नागवती विकारां। वेटाळूं जे ॥२८६॥
फळली केळी उन्मूळे। तैसी आत्मलाभें प्रबळे। तयाची क्रिया ढाळेंढाळें। गळती आहे ॥२८७॥
आगी लगलिया रुखीं। देखोनि सैरा पळती पक्षी। तैसें सांडिलें अशेखीं। विकल्पीं जे ॥२८८॥
आइकें सकळ दोषतृणीं। अंकुरिजती जिये मेदिनी। तिये भेदबुद्धीची काहाणी। नाहीं जयातें ॥२८९॥
सूर्योदयासरिसी। रात्री पळोनि जाय अपैसी। गेली देहअहंता तैसी। अविद्येसवें ॥२९०॥
पैं आयुष्यहीना जीवातें। शरीर सांडी जेवीं अवचितें। तेवीं निदसुरें द्वैतें। सांडिले जे ॥२९१॥
लोहाचें साम्कडें परिसा। न जोडे अंधारु रवि जैसा। द्वैतबुद्धीचा तैसा। सदा दुकाळ जया ॥२९२॥
अगा सुखदुःखाकारें। द्वंद्वें देहीं जियें गोचरें। तियें जयां कां समोरें। होतीचिना ॥२९३॥
स्वप्नींचें राज्य कां मरण। नोहे हर्षशोकांसि कारण। उपवढलिया जाण। जियापरी ॥२९४॥
तैसेम सुखदुःखरूपीं। द्वंद्वीं जे पुण्यपापीं। न घेपिजती सर्पीं। गरुड जैसें ॥२९५॥
आणि अनात्मवर्गनीर। सांडूनि आत्मरसाचें क्षीर। चरताति जे सविचार। राजहंसु ॥२९६॥
जैसा वर्षोनि भूतळीं। आपला रसु अंशुमाळी। मागौता आणी रश्मिजाळीं। बिंबासीचि ॥२९७॥
तैसें आत्मभ्रांतीसाठीं। वस्तु विखुरली बारावाटीं। ते एकवटिती ज्ञानदृष्टी। अखंड जे ॥२९८॥
किंबहुना आत्मयाचा। निर्धारीं विवेकु जयांचा। बुडाला वोघु गंगेचा। सिंधूमाजीं जैसा ॥२९९॥
पैं आघवेंचि आपुलेंपणें। नुरेचि जया अभिलाषणें। जैसें येथूनि पऱ्हां जाणें। आकाशा नाहीं ॥३००॥
जैसा अग्नीचा डोंगरु। नेघे कोणी बीज अंकुरु। तैसा मनीं जयां विकारु। उदैजेना ॥३०१॥
जैसा काढिलिया मंदराचळु। राहे क्षीराब्धि निश्चळु। तैसा नुठी जयां सळु। कामोर्मीचा ॥३०२॥
चंद्रमा कळीं धाला। न दिसे कोणें आंगी वोसावला। तेवीं अपेक्षेचा अवखळा। न पडे जयां ॥३०३॥
हें किती बोलूं असांगडें। जेवीं परमाणु नुरे वायूपुढें। तैसें विषयांचें नावडे। नांवचि जयां ॥३०४॥
एवं जे जे कोणी ऐसे। केले ज्ञानाग्नि हुताशें। ते तेथ मिळती जैसें। हेमीं हेम ॥३०५॥
तेथ म्हणिजे कवणें ठाईं। ऐसेंही पुससी कांहीं। तरी तें पद गा नाहीं। वेंचु जया ॥३०६॥
दृश्यपणें देखिजे। कां ज्ञेयत्वें जाणिजे। अमुकें ऐसें म्हणिजे। तें जें नव्हे ॥३०७॥
न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पवकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥६॥
पैं दीपाचिया बंबाळीं। कां चंद्र हन जें उजळी। हें काय बोलों अंशुमाळी। प्रकाशी जें ॥३०८॥
तें आघवेंचि दिसणें। जयाचें कां न देखणें। विश्व भासतसे जेणें। लपालेनी ॥३०९॥
जैसें शिंपीपण हारपे। तंव तंव खरें होय रुपें। कां दोरी लोपतां सापें। फार होइजे ॥३१०॥
तैसीं चंद्रसूर्यादि थोरें। इयें तेजें जियें फारें। तियें जयाचेनि आधारें। प्रकाशती ॥३११॥
ते वस्तु कीं तेजोराशी। सर्वभूतात्मक सरिसी। चंद्रसूर्याच्या मानसीं। प्रकाशे जे ॥३१२॥
म्हणौनि चंद्रसूर्य कडवसां। पडती वस्तूच्या प्रकाशा। यालागीं तेज जें तेजसा। तें वस्तूचें आंग ॥३१३॥
आणि जयाच्या प्रकाशीं। जग हारपे चंद्रार्केसीं। सचंद्र नक्षत्रें जैसीं। दिनोदयीं ॥३१४॥
नातरी प्रबोधलिये वेळे। ते स्वप्नींची डिंडीमा मावळे। कां नुरेचि सांजवेळे। मृगतृष्णिका ॥३१५॥

तैसा जिये वस्तूच्या ठायीं। कोण्हीच कां आभासु नाहीं। तें माझें निजधाम पाहीं। पाटाचें गा ॥३१६॥
पुढती जे तेथ गेले। ते न घेती माघौतीं पाउलें। महोदधीं कां मिनले। स्रोत जैसे ॥३१७॥
कां लवणाची कुंजरी। सूदलिया लवणसागरीं। होयचि ना माघारी। परती जैसी ॥३१८॥
नाना गेलिया अंतराळा। न येतीचि वन्हिज्वाळा। नाहीं तप्तलोहौनि जळा। निघणें जेवीं ॥३१९॥
तेवीं मजसीं एकवट। जे जाले ज्ञानें चोखट। तयां पुनरावृत्तीची वाट। मोडली गा ॥३२०॥
तेथ प्रज्ञापृथ्वीचा रावो। पार्थु म्हणे जी जी पसावो। परी विनंती एकी देवो। चित्त देतु ॥३२१॥
तरी देवेंसि स्वयें एक होती। मग माघौते जे न येती। ते देवेंसि भिन्न आथी। कीं अभिन्न जी ॥३२२॥
जरी भिन्नचि अनादिसिद्ध। तरी न येती हें असंबद्ध। जे फुलां गेलें षट्पद। ते फुलेंचि होती पां ॥३२३॥
पैं लक्ष्याहूनि अनारिसे। बाण लक्ष्यीं शिवोनि जैसें। मागुते पडती तैसे। येतीचि ते ॥३२४॥
नातरी तूंचि ते स्वभावें। तरी कोणें कोणासि मिळावें। आपणयासी आपण रुपावें। शस्त्रें केवीं ? ॥३२५॥
म्हणौनि तुजसी अभिन्नां जीवां। तुझा संयोगवियोगु देवा। नये बोलों अवयवां। शरीरेंसीं ॥३२६॥
आणि जे सदां वेगळें तुजसीं। तयां मिळणीं नाहीं कोणे दिवशीं। मा येती न येती हे कायसी। वायबुद्धि ? ॥३२७॥
तरी कोण गा ते तूंतें। पावोनि न येती माघौते। हें विश्वतोमुखा मातें। बुझावीं जी ॥३२८॥
इये आक्षेपीं अर्जुनाच्या। तो शिरोमणि सर्वज्ञांचा। तोषला बोध शिष्याचा। देखोनियां ॥३२९॥
मग म्हणे गा महामती। मातें पावोनि न येती पुढती। ते भिन्नाभिन्न रिती। आहाती दोनी ॥३३०॥
जैं विवेकें खोलें पाहिजे। तरी मी तेचि ते सहजें। ना आहाचवाहाच तरी दुजे। ऐसेही गमती ॥३३१॥
जैसे पाणियावरी वेगळ। तळपतां दिसती कल्लोळ। एऱ्हवीं तरी निखिळ। पाणीचि तें ॥३३२॥
कां सुवर्णाहुनि आनें। लेणीं गमती भिन्नें। मग पाहिजे तंव सोनें। आघवेंचि तें ॥३३३॥
तैसें ज्ञानाचिये दिठी। मजसीं अभिन्नचि ते किरीटी। येर भिन्नपण तें उठी। अज्ञानास्तव ॥३३४॥
आणि साचोकारेनि वस्तुविचारें। कैचें मज एकासि दुसरें। भिन्नाभिन्नव्यवहारें। उमसिजेल ॥३३५॥
आघवेंचि आकाश सूनि पोटीं। बिंबचि जैं आते खोटी। तैं प्रतिबिंब कें उठी। कें रश्मि शिरे ? ॥३३६॥
कां कल्पांतींचिया पाणिया। काय वोत भरिती धनंजया ? । म्हणौनि कैंचें अंश अविक्रिया। एका मज ॥३३७॥
परी ओघाचेनि मेळें। पाणी उजू परी वांकुडें जालें। रवी दुजेपण आलें। तोयबगें ॥३३८॥
व्योम चौफळें कीं वाटोळें। हें ऐसें कायिसयाही मिळे। परी घटमठीं वेंटाळें। तैसेंही आथी ॥३३९॥
हां गा निद्रेचेनि आधारें। काय एकलेनि जग न भरे ? । स्वप्नींचेनि जैं अवतरे। रायपणें ॥३४०॥
कां मिनलेनि किडाळें। वानिभेदासि ये सोळें। तैसा स्वमाये वेंटाळें। शुद्ध जैं मी ॥३४१॥
तैं अज्ञान एक रूढे। तेणें कोऽहंविकल्पाचें मांडे। मग विवरूनि कीजे फुडें। देहो मी ऐसें ॥३४२॥

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥७॥

ऐसें शरीराचि येवढें। जै आत्मज्ञान वेगळें पडे। तैं माझा अंशु आवडे। थोडेपणें ॥३४३॥
समुद्र कां वायुवशें। तरंगाकार उल्लसें। तो समुद्रांशु ऐसा दिसे। सानिवा जेवीं ॥३४४॥
तेवीं जडातें जीवविता। देहाहंता उपजविता। मी जीव गमें पंडुसुता। जीवलोकीं ॥३४५॥
पैं जीवाचिया बोधा। गोचरु जो हा धांदा। तो जीवलोकशब्दा। अभिप्रावो ॥३४६॥
अगा उपजणें निमणें। हें साचचि जे कां मानणें। तो जीवलोकु मी म्हणे। संसारु हन ॥३४७॥
एवंविध जीवलोकीं। तूं मातें ऐसा अवलोकीं। जैसा चंद्रु कां उदकीं। उदकातीत ॥३४८॥
पैं काश्मीराचा रवा। कुंकुमावरी पांडवा। आणिका गमे लोहिवा। तो तरी नव्हे ॥३४९॥
तैसें अनादिपण न मोडे। माझें अक्रियत्व न खंडे। परी कर्ता भोक्ता ऐसें आवडे। ते जाण गा भ्रांती ॥३५०॥

किंबहुना आत्मा चोखटु। होऊनि प्रकृतीसी एकवटु। बांधे प्रकृतिधर्माचा पाटु। आपणपयां ॥३५१॥
पैं मनादि साही इंद्रियें। श्रोत्रादि प्रकृतिकार्यें। तियें माझीं म्हणौनि होये। व्यापारारूढ ॥३५२॥
जैसें स्वप्नीं परिव्राजें। आपणपयां आपण कुटुंब होईजे। मग तयाचेनि धांविजे। मोहें सैरा ॥३५३॥
तैसा आपलिया विस्मृती। आत्मा आपणचि प्रकृती- । सारिखा गमोनि पुढती। तियेसीचि भजे ॥३५४॥
मनाच्या रथीं वळघे। श्रवणाचिया द्वारें निघे। मग शब्दाचिया रिघे। रानामाजीं ॥३५५॥
तोचि प्रकृतीचा वागोरा। त्वचेचिया मोहरा। आणि स्पर्शाचिया घोरा। वना जाय ॥३५६॥
कोणे एके अवसरीं। रिघोनि नेत्राच्या द्वारीं। मग रूपाच्या डोंगरीं। सैरा हिंडे ॥३५७॥
कां रसनेचिया वाटा। निघोनि गा सुभटा। रसाचा दरकुटा। भरोंचि लागे ॥३५८॥
नातरी येणेंचि घ्राणें। जैं देहांशु करी निघणें। मग गंधाची दारुणें। आडवें लंघी ॥३५९॥
ऐसेनि देहेंद्रियनायकें। धरूनि मन जवळिकें। भोगिजती शब्दादिकें। विषयभरणें ॥३६०॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥८॥

परी कर्ता भोक्ता ऐसें। हें जीवाचे तैंचि दिसे। जैं शरीरीं कां पैसे। एकाधिये ॥३६१॥
जैसा आथिला आणि विलासिया। तैंचि वोळखों ये धनंजया। जैं राजसेव्या ठाया। वस्तीसि ये ॥३६२॥
तैसा अहंकर्तृत्वाचा वादु। कां विषयेंद्रियांचा धुमाडु। हा जाणिजे तैं निवाडु। जैं देह पाविजे ॥३६३॥
अथवा शरीरातें सांडी। तऱ्ही इंद्रियांची तांडी। हे आपणयांसवें काढी। घेऊनि जाय ॥३६४॥
जैसा अपमानिला अतिथी। ने सुकृताची संपत्ति। कां साइखडेयाची गती। सूत्रतंतू ॥३६५॥
नाना मावळतेनि तपनें। नेइजेती लोकांचीं दर्शनें। हें असो द्रुती पवनें। नेईजे जैसी ॥३६६॥
तेवीं मनःषष्ठां ययां। इंद्रियांतें धनंजया। देहराजु ने देहा- । पासूनि गेला ॥३६७॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥९॥

मग येथ अथवा स्वर्गीं। जेथ जें देह आपंगी। तेथ तैसेंचि पुढती पांगी। मनादिक ॥३६८॥
जैसा मालवलिया दिवा। प्रभेसी जाय पांडवा। मग उजळिजे तेथ तेधवां। तैसाचि फांके ॥३६९॥
तरी ऐसैसिया राहाटी। अविवेकियांचे दिठी। येतुलें हें किरीटी। गमेचि गा ॥३७०॥
जे आत्मा देहासि आला। आणि विषयो येणेंचि भोगिला। अथवा देहोनि गेला। हें साचचि मानिती ॥३७१॥
एऱ्हवीं येणें आणि जाणें। कां करणें हा भोगणें। हें प्रकृतीचें तेणें। मानियेलें ॥३७२॥

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितं ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥१०॥
यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितं ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥११॥

परी देहाचे मोटकें उभें। आणि चेतना तेथ उपलभे। तिये चळवळेचेनि लोभें। आला म्हणती ॥३७३॥
तैसेंचि तयां संगती। इंद्रियें आपुलाल्या अर्थीं वर्तती। तया नांव सुभद्रापती। भोगणें जया ॥३७४॥
पाठीं भोगक्षीण आपैसे। देह गेलिया ते न दिसे। तेथें गेला गेला ऐसें। बोभाती गा ॥३७५॥
पैं रुखु डोलतु देखावा। तरी वारा वाजतु मानावा। रुखु नसे तेथें पांडवा। नाहीं तो गा ? ॥३७६॥
कां आरिसा समोर ठेविजे। आणि आपणपें तेथ देखिजे। तरी तेधवांचि जालें मानिजे। काय आधीं नाहीं ? ॥३७७॥
कां परता केलिया आरिसा। लोपु जाला तया आभासा। तरी आपणपें नाहीं ऐसा। निश्चयो करावा ? ॥३७८॥
शब्द तरी आकाशाचा। परी कपाळीं पिटे मेघाचा। कां चंद्रीं वेगु अभ्राचा। अरोपिजे ॥३७९॥

तैसें होइजे जाइजे देहें। तें आत्मसत्ते अविक्रिये। निष्टंकिती गा मोहें। आंधळे ते ॥३८०॥
येथ आत्मा आत्मयाच्या ठायीं। देखिजे देहींचा धर्मु देहीं। ऐसें देखणें तें पाहीं। आन आहाती ॥३८१॥
ज्ञानें कां जयाचे डोळे। देखोनि न राहती देहींचे खोळे। सूर्यरश्मी आणियाळे। ग्रीष्मीं जैसें ॥३८२॥
तैसे विवेकाचेनि पैसें। जयांची स्फूर्ती स्वरूपीं बैसे। ते ज्ञानिये देखती ऐसें। आत्मयातें ॥३८३॥
जैसें तारांगणीं भरलें। गगन समुद्रीं बिंबलें। परी तें तुटोनि नाहीं पडिलें। ऐसें निवडे ॥३८४॥
गगन गगनींचि आहे। हें आभासे तें वाये। तैसा आत्मा देखती देहें। गंवसिलाही ॥३८५॥
खळाळाच्या लगबगीं। फेडूनि खळाळाच्या भागीं। देखिजे चंद्रिका कां उगी। चंद्रीं जेवीं ॥३८६॥
कां नाडरचि भरे शोषें। सूर्यु तो जैसा तैसाचि असे। देह होतां जातां तैसें। देखती मातें ॥३८७॥
घटु मठु घडले। तेचि पाठीं मोडले। परी आकाश तें संचलें। असतचि असे ॥३८८॥
तैसें अखंडे आत्मसत्ते। अज्ञानदृष्टि कल्पितें। हें देहचि होतें जातें। जाणती फुडें ॥३८९॥
चैतन्य चढे ना वोहटे। चेष्टवी ना चेष्टे। ऐसें आत्मज्ञानें चोखटें। जाणती ते ॥३९०॥
आणि ज्ञानही आपैतें होईल। प्रज्ञा परमाणुही उगाणा घेईल। सकळ शास्त्रांचें येईल। सर्वस्व हातां ॥३९१॥
परी ते व्युत्पत्ति ऐसी। जरी विरक्ति न रिगे मानसीं। तरी सर्वात्मका मजसीं। नव्हेचि भेटी ॥३९२॥
पैं तोंड भरो कां विचारा। आणि अंतःकरणीं विषयांसि थारा। तरी नातुडें धनुर्धरा। त्रिशुद्धी मी ॥३९३॥
हां गा वोसणतयाच्या ग्रंथीं। काई तुटती संसारगुंती ? । कीं परिवसिलिया पोथी। वाचिली होय ? ॥३९४॥
नाना बांधोनियां डोळे। घ्राणीं लाविजती मुक्ताफळें। तरी तयांचें काय कळे। मोल मान ? ॥३९५॥
तैसा चित्तीं अहंते ठावो। आणि जिभे सकळशास्त्रांचा सरावो। ऐसेनि कोडी एक जन्म जावो। परी न पविजे मातें ॥३९६॥
जो एक मी कां समस्तीं। व्यापकु असें भूतजातीं। ऐक तिये व्याप्ती। रूप करूं ॥३९७॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥१२॥

तरी सूर्यासकट आघवी। हे विश्वरचना जे दावी। ते दीप्ति माझी जाणावी। आद्यंतीं आहे ॥३९८॥
जल शोषूनि गेलिया सविता। ओलांश पुरवीतसे जे माघौता। ते चंद्रीं पंडुसुता। ज्योत्स्ना माझी ॥३९९॥
आणि दहन- पाचनसिद्धी। करीतसे जें निरवधी। ते हुताशीं तेजोवृद्धी। माझीचि गा ॥४००॥

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥१३॥

मी रिगालों असें भूतळीं। म्हणौनि समुद्र महाजळीं। हे पांसूचि ढेंपुळी। विरेचिना ॥४०१॥
आणी भूतेंही चराचरें। हे धरितसे जियें अपारें। तियें मीचि धरी धरे। रिगोनियां ॥४०२॥
गगनीं मी पंडुसुता। चंद्राचेनि मिसें अमृता। भरला जालों चालता। सरोवरु ॥४०३॥
तेथूनि फांकती रश्मिकर। ते पाट पेलूनि अपार। सर्वौषधींचे आगर। भरित असें मी ॥४०४॥
ऐसेनि सस्यादिकां सकळां। करी धान्यजाती सुकाळा। दें अन्नद्वारां जिव्हाळा। भूतजातां ॥४०५॥
आणि निपजविलें अन्न। तरी तैसें कैचें दीपन। जेणें जिरूनि समाधान। भोगिती जीव ॥४०६॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥१४॥

म्हणौनि प्राणिजातांच्या घटीं। करूनि कंदावरी आगिठी। दीप्ति जठरींही किरीटी। मीचि जालों ॥४०७॥
प्राणापानाच्या जोडभातीं। फुंकफुंकोनियां अहोरातीं। आटीतसें नेणों किती। उदरामाजीं ॥४०८॥
शुष्कें अथवा स्निग्धें। सुपक्वें कां विदग्धें। परी मीचि गा चतुर्विधें। अन्नें पचीं ॥४०९॥

एवं मीचि आघवें जन। जना निरवितें मीचि जीवन। जीवनीं मुख्य साधन। वन्हिही मीचि ॥४१०॥
आतां ऐसियाहीवरी काई। सांगों व्याप्तीची नवाई। येथ दुजें नाहींचि घेईं। सर्वत्र मी गा ॥४११॥
तरी कैसेनि पां वेखें। सदा सुखियें एकें। एकें तियें बहुदुःखें। क्रांत भूतें ॥४१२॥
जैसी सगळिये पाटणीं। एकेंचि दीपें दिवेलावणी। जालिया कां न देखणी। उरलीं एकें ॥४१३॥
ऐसी हन उखिविखी। करित आहासि मानसीं कीं। तरी परिस तेही निकी। शंका फेडुं ॥४१४॥
पैं आघवा मीचि असें। येथ नाहीं कीर अनारिसें। परी प्राणियांचिया उल्लासें। बुद्धि ऐसा ॥४१५॥
जैसें एकचि आकाशध्वनी। वाद्यविशेषीं आनानीं। वाजावें पडे भिन्नीं। नादांतरीं ॥४१६॥
कां लोकचेष्टीं वेगळालां। जो हा एकचि भानु उदैला। तो आनानी परी गेला। उपयोगासी ॥४१७॥
नाना बीजधर्मानुरूप। झाडीं उपजविलें आप। तैसें परिणमलें स्वरूप। माझें जीवां ॥४१८॥
अगा नेणा आणि चतुरा। पुढां निळयांचा दुसरा। नेणा सर्पत्वें जाला येरा। सुखालागीं ॥४१९॥
हें असो स्वातीचें उदक। शुक्तीं मोतीं व्याळीं विख। तैसा सज्ञानांसी मी सुख। दुःख तों अज्ञानांसी ॥४२०॥

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेवचाहम् ॥१५॥

एऱ्हवीं सर्वांच्या हृदयदेशीं। मी अमुका आहें ऐसी। जे बुद्धि स्फुरे अहर्निशीं। ते वस्तु गा मी ॥४२१॥
परी संतासवें वसतां। योगज्ञानीं पैसतां। गुरुचरण उपासितां। वैराग्येंसीं ॥४२२॥
येणेंचि सत्कर्मैं। अशेषही अज्ञान विरमे। जयांचें अहं विश्रामे। आत्मरूपीं ॥४२३॥
ते आपेआप देखोनि देखीं। मियां आत्मेनि सदा सुखी। येथें मीवांचून अवलोकीं। आन हेतु असे ? ॥४२४॥
अगा सूर्योदयो जालिया। सूर्यें सूर्यचि पहावा धनंजया। तेवीं मातें मियां जाणावया। मीचि हेतु ॥४२५॥
ना शरीरपरातें सेवितां। संसारगौरवचि ऐकतां। देहीं जयांची अहंता। बुडोनि ठेली ॥४२६॥
ते स्वर्गसंसारालागीं। धांवतां कर्ममार्गीं। दुःखाच्या सेलभागीं। विभागी होती ॥४२७॥
परी हेंही होणें अर्जुना। मजचिस्तव तया अज्ञाना। जैसा जागताचि हेतु स्वप्ना। निद्रेतें होय ॥४२८॥
पैं अभ्रें दिवसु हरपला। तोहि दिवसेंचि जाणों आला। तेवीं मी नेणोनि विषयो देखिला। मजचिस्तव भूतीं ॥४२९॥
एवं निद्रा कां जागणिया। प्रबोधुचि हेतु धनंजया। तेवीं ज्ञाना अज्ञाना जीवां यां। मीचि मूळ ॥४३०॥
जैसें सर्पत्वा कां दोरा। दोरुचि मूळ धनुर्धरा। तैसा ज्ञाना अज्ञानाचिया संसारा। मियांचि सिद्धु ॥४३१॥
म्हणौनि जैसा असें तैसया। मातें नेणोनि धनंजया। वेदु जाणों गेला तंव तया। जालिया शाखा ॥४३२॥
तरी तिहीं शाखाभेदीं। मीचि जाणिजे त्रिशुद्धी। जैसा पूर्वापरा नदी। समुद्रचि ठी ॥४३३॥
आणि महासिद्धांतापासीं। श्रुति हारपतीं शब्देंसीं। जैसिया सगंधा आकाशीं। वातलहरी ॥४३४॥
तैसें समस्तही श्रुतिजात। ठाके लाजिले ऐसें निवांत। तें मीचि करीं यथावत। प्रकटोनियां ॥४३५॥
पाठीं श्रुतिसकट अशेष। जग हारपे जेथ निःशेष। तें निजज्ञानही चोख। जाणता मीचि ॥४३६॥
जैसें निदेलिया जागिजे। तेव्हां स्वप्नींचे कीर नाहीं दुजें। परी एकत्वही देखों पाविजे। आपलेंचि ॥४३७॥
तैसें आपलें अद्वयपण। मी जाणतसें दुजेनवीण। तयाही बोधाकारण। जाणता मीचि ॥४३८॥
मग आगी लागलिया कापुरा। ना काजळी ना वैश्वानरा। उरणें नाहीं वीरा। जयापरी ॥४३९॥
तेवीं समूळ अविद्या खाये। तें ज्ञानही जैं बुडोनि जाये। तऱ्ही नाहीं कीर नोहे। आणि न साहे असणेंही ॥४४०॥
पैं विश्व घेऊनि गेला मागेंसीं। तया चोरातें कवण कें गिंवसी ? । जे कोणी एकी दशा ऐसी। शुद्ध ते मी ॥४४१॥
ऐसी जडाजडव्याप्ती। रूप करितां कैवल्यपती। ठी केली निरुपहितीं। आपुल्या रूपीं ॥४४२॥
तो आघवाचि बोधु सहसा। अर्जुनीं उमटला कैसा। व्योमींचा चंद्रोदयो जैसा। क्षीरार्णवीं ॥४४३॥
कां प्रतिभिंती चोखटे। समोरील चित्र उमटे। तैसा अर्जुनें आणि वैकुंठें। नांदतसे बोधु ॥४४४॥

तरी बाप वस्तुस्वभावो। फावे तंव तंव गोडिये थांवो। म्हणौनि अनुभवियांचा रावो। अर्जुन म्हणे ॥४४५॥
जी व्यापकपण बोलतां। निरुपाधिक जें आतां। स्वरूप प्रसंगता। बोलिले देवो ॥४४६॥
ते एक वेळ अव्यंगवाणें। कीजो कां मजकारणें। तेथ द्वारकेचा नाथु म्हणे। भलें केलें ॥४४७॥
पैं अर्जुना आम्हांहि वाडेंकोडें। अखंडा बोलों आवडे। परी काय कीजे न जोडे। पुसतें ऐसें ॥४४८॥
आजि मनोरथांसि फळ। जोडलासि तूं केवळ। जे तोंड भरूनि निखळ। आलासि पुसों ॥४४९॥
जें अद्वैताहीवरी भोगिजे। तें अनुभवींच तूं विरजे। पुसोनि मज माझें। देतासि सुख ॥४५०॥
जैसा आरिसा आलिया जवळां। दिसे आपणपें आपला डोळा। तैसा संवादिया तूं निर्मळा। शिरोमणी ॥४५१॥
तुवां नेणोनि पुसावें। मग आम्ही परिसऊं बैसावें। तो गा हा पाडु नव्हे। सोयरेया ॥४५२॥
ऐसें म्हणौनि आलिंगिलें। कृपादृष्टी अवलोकिलें। मग देवो काय बोलिले। अर्जुनेंसीं ॥४५३॥
पैं दोहीं वोठीं एक बोलणें। दोहीं चरणीं एक चालणें। तैसें पुसणें सांगणें। तुझें माझें ॥४५४॥
एवं आम्ही तुम्ही येथें। देखावें एका अर्थातें। सांगतें पुसतें येथें। दोन्ही एक ॥४५५॥
ऐसा बोलत देवो भुलला मोहें। अर्जुनातें आलिंगूनि ठाये। मग बिहाला म्हणे नोहें। आवडी हे ॥४५६॥
जाले इक्षुरसाचें ढाळ। तरी लवण देणें किडाळ। जे संवादसुखाचें रसाळ। नासेल थितें ॥४५७॥
आधींच आम्हां यया कांहीं। नरनारायणासी भिन्न नाहीं। परी आतां जिरो माझ्या ठाईं। वेगु हा माझा ॥४५८॥
इया बुद्धी सहसा। श्रीकृष्ण म्हणे वीरेशा। पैं गा तो तुवां कैसा। प्रश्नु केला ? ॥४५९॥
जो अर्जुन श्रीकृष्णीं विरत होता। तो परतोनि मागुता। प्रश्नावळीची कथा। ऐकों आला ॥४६०॥
तेथ सद्गदें बोलें। अर्जुनें जी जी म्हणितलें। निरुपाधिक आपुलें। रूप सांगा ॥४६१॥
यया बोला तो शारङ्गी। तेंचि सांगावयालागीं। उपाधी दोहीं भागीं। निरूपीत असे ॥४६२॥
पुसिलिया निरुपहित। उपाधि कां सांगे येथ। हें कोण्हाही प्रस्तुत। गमे जरी ॥४६३॥
तरी ताकाचें अंश फेडणें। याचि नांव लोणी काढणें। चोखाचिये शुद्धी तोडणें। कीडचि जेवीं ॥४६४॥
बाबुळीचि सारावी हातें। परी पाणी तंव असे आइतें। अभ्रचि जावें गगन तें। सिद्धचि कीं ॥४६५॥
वरील कोंडियाचा गुंडाळा। झाडूनि केलिया वेगळा। कणु घेतां विरंगोळा। असे काई ? ॥४६६॥
तैसा उपाधि उपहितां। शेवटु जेथ विचारितां। तें कोणातेंही न पुसतां। निरुपाधिक ॥४६७॥
जैसें न सांगणेंवरी। बाळा पतीसी रूप करी। बोल निमालेपणें विवरी। अचर्चातें ॥४६८॥
पैं सांगणेया जोगें नव्हे। तेथींचें सांगणें ऐसें आहे। म्हणौनि उपाधि लक्ष्मीनाहे। बोलिजे आदीं ॥४६९॥
पाडिव्याची चंद्ररेखा। निरुती दावावया शाखा। दाविजे तेवीं औपाधिका। बोली इया ॥४७०॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥

मग तो म्हणे गा सव्यसाची। पैं इये संसारपाटणींची। वस्ती साविया टांची। दुपुरुषीं ॥४७१॥
जैसी आघवांचि गगनीं। नांदत दिवोरात्री दोन्ही। तैसे संसार राजधानीं। दोन्हीचि हे ॥४७२॥
आणिकही तिजा पुरुष आहे। परी तो या दोहींचें नांव न साहे। जो उदेला गांवेंसीं खाये। दोहींतें ययां ॥४७३॥
परी ते तंव गोठी असो। आधीं दोन्हींची हे परियेसों। जें संसारग्रामा वसों। आले असती ॥४७४॥
एक आंधळा वेडा पंगु। येर सर्वांगें पुरता चांगु। परी ग्रामगुणें संगु। घडला दोघां ॥४७५॥
तया एका नाम क्षरु। येरातें म्हणती अक्षरु। इहीं दोहींचि परी संसारु। कोंदला असे ॥४७६॥
आतां क्षरु तो कवणु। अक्षरु तो किं लक्षणु। हा अभिप्रायो संपूर्णु। विवंचूं गा ॥४७७॥
तरी महदहंकारा- । लागुनियां धनुर्धरा। तृणांतींचा पांगोरा- । वरी पैं गा ॥४७८॥
जें कांहीं सानें थोर। चालतें अथवा स्थिर। किंबहुना गोचर। मनबुद्धींसि जें ॥४७९॥

जेतुलें पांचभौतिक घडतें। जें नामरूपा सांपडतें। गुणत्रयाच्या पडतें। कामठां जें ॥४८०॥
भूताकृतीचें नाणें। घडत भांगारें जेणें। काळासि जूं खेळणें। जिहीं कवडां ॥४८१॥
जाणणेंचि विपरीतें। जें जें कांहीं जाणिजेतें। जें प्रतिक्षणीं निमतें। होऊनियां ॥४८२॥
अगा काढूनि भ्रांतीचे दांग। उभवी सृष्टीचें आंग। हें असो बहु जग। जया नाम ॥४८३॥
पैं अष्टधा भिन्न ऐसें। जें दाविलें प्रकृतिमिसें। जें क्षेत्रद्वारां छत्तिसें। भागी केलें ॥४८४॥
हें मागील सांगों किती। अगा आतांचि जें प्रस्तुतीं। वृक्षाकार रूपाकृती। निरूपिलें ॥४८५॥
तें आघवेंचि साकारें। कल्पुनी आपणपयां पुरे। जालें असें तदनुसारें। चैतन्यचि ॥४८६॥
जैसा कुहां आपणचि बिंबें। सिंह प्रतिबिंब पाहतां क्षोभे। मग क्षोभला समारंभें। घाली तेथ ॥४८७॥
कां सलिलीं असतचि असे। व्योमावरी व्योम बिंबे जैसें। अद्वैत होऊनि तैसें। द्वैत घेपे ॥४८८॥
अर्जुना गा यापरी। साकार कल्पूनि पुरीं। आत्मा विस्मृतीचि करी। निद्रा तेथ ॥४८९॥
पैं स्वप्नीं सेजार देखिजे। मग पहुडणें जैसें तेथ कीजे। तैसें पुरीं शयन देखिजे। आत्मयासी ॥४९०॥
पाठीं तिये निद्रेचेनि भरें। मी सुखी दुःखी म्हणत घोरें। अहंममतेचेनि थोरें। वोसणायें सादें ॥४९१॥
हा जनकु हे माता। हा मी गौर हीन पुरता। पुत्र वित्त कांता। माझें हें ना ॥४९२॥
ऐसिया वेंघोनि स्वप्ना। धांवत भवस्वर्गाचिया राना। तया चैतन्या नाम अर्जुना। क्षर पुरुषु गा ॥४९३॥
आतां ऐक क्षेत्रज्ञु येणें। नामें जयातें बोलणें। जग जीवु कां म्हणे। जिये दशेतें ॥४९४॥
जो आपुलेनि विसरें। सर्व भूतत्वें अनुकरें। तो आत्मा बोलिजे क्षरें। पुरुष नामें ॥४९५॥
जे तो वस्तुस्थिती पुरता। म्हणौनि आली पुरुषता। वरी देहपुरीं निदैजतां। पुरुषनामें ॥४९६॥
आणि क्षरपणाचा नाथिला। आळु यया ऐसेनि आला। जे उपाधींचि आतला। म्हणौनियां ॥४९७॥
जैसी खळाळीचिया उदका- । सरसीं आंदोळे चंद्रिका। तैसा विकारां औपाधिका। ऐसाचि गमे ॥४९८॥
कां खळाळु मोटका शोषे। आणि चंद्रिका तैं सरिसींच भ्रंशे। तैसा उपाधिनाशीं न दिसे। उपाधिकु ॥४९९॥
ऐसें उपाधीचेनि पाडें। क्षणिकत्व यातें जोडे। तेणें खोंकरपणें घडे। क्षर हें नाम ॥५००॥
एवं जीवचैतन्य आघवें। हें क्षर पुरुष जाणावें। आतां रूप करूं बरवें। अक्षरासी ॥५०१॥
तरी अक्षरु जो दुसरा। पुरुष पैं धनुर्धरा। तो मध्यस्थु गा गिरिवरां। मेरु जैसा ॥५०२॥
जे तो पृथ्वी पाताळ स्वर्गीं। इहीं न भेदे तिहीं भागीं। तैसा दोहीं ज्ञानाज्ञानांगीं। पडेना जो ॥५०३॥
ना यथार्थज्ञानें एक होणें। ना अन्यथात्वें दुजें घेणें। ऐसें निखिळ जें नेणणें। तेंचि तें रूप ॥५०४॥
पांसुता निःशेष जाये। ना घटभांडादि होये। तया मृत्पिंडा ऐसें आहे। मध्यस्थ जें ॥५०५॥
पैं आटोनि गेलिया सागरु। मग तरंगु ना नीरु। तया ऐशी अनाकारु। जे दशा गा ॥५०६॥
पार्था जागणें तरी बुडे। परी स्वप्नाचें कांहीं न मांडे। तैसिये निद्रे सांगडें। न्याहाळणें जें ॥५०७॥
विश्व आघवेंचि मावळे। आणि आत्मबोधु तरी नुजळे। तिये अज्ञानदशे केवळे। अक्षरु नाम ॥५०८॥
सर्वा कळीं सांडिलें जैसें। चंद्रपण उरे अंवसे। रूप जाणावें तैसें। अक्षराचें ॥५०९॥
पैं सर्वोपाधिविनाशें। हे जीवदशा जेथ पैसे। फळपाकांत जैसें। झाड बीजीं ॥५१०॥
तैसें उपाधी उपहित। थोकोनि ठाके जेथ। तयातें अव्यक्त। बोलती गा ॥५११॥
घन अज्ञान सुषुप्ती। तो बीजभावो म्हणती। येर स्वप्न हन जागृती। फळभावो तयाचा ॥५१२॥
जयासी कां बीजभावो। वेदांतीं केला ऐसा आवो। तो तया पुरुषा ठावो। अक्षराचा ॥५१३॥
जेथूनि अन्यथाज्ञान। फांकोनि जागृति स्वप्न। नानाबुद्धीचें रान। रिगालें असे ॥५१४॥
जीवत्व जेथुनी किरीटी। विश्व उठतचि उठी। ते उभय भेदांची मिठी। अक्षरु पुरुषु ॥५१५॥
येरु क्षर पुरुषु कां जनीं। जिहीं खेळे जागृतीं स्वप्नीं। तिया अवस्था जो दोन्ही। वियाला गा ॥५१६॥

पैं अज्ञानघनसुषुप्ती। ऐसैसी जे कां ख्याती। या उणी एकी प्राप्ती। ब्रह्माची जे ॥५१७॥
साचचि पुढती वीरा। जरी न येतां स्वप्न जागरा। तरी ब्रह्मभावो साचोकारा। म्हणों येता ॥५१८॥
परी प्रकृतिपुरुषें दोनी। अभ्रें जालीं जियें गगनीं। क्षेत्रक्षेत्रज्ञु स्वप्नीं। देखिला जियें ॥५१९॥
हें असो अधोशाखा। या संसाररूपा रुखा। मूळ तें रूप पुरुषा। अक्षराचें ॥५२०॥
हा पुरुषु कां म्हणिजे। जे पूर्णपणेंचि निजें। पैं मायापुरीं पहुडिजे। तेणेंही बोलें ॥५२१॥
आणि विकारांची जे वारी। ते विपरीत ज्ञानाची परी। नेणिजे जिये माझारीं। ते सुषुप्ती गा हा ॥५२२॥
म्हणौनि यया आपैसें। क्षरणें या नसे। आणिकेंही हा न नाशे। ज्ञानाउणें ॥५२३॥
यालागीं हा अक्षरु। ऐसा वेदांतीं डगरु। केला देशी थोरु। सिद्धांताच्या ॥५२४॥
ऐसें जीवकार्य कारण। जया मायासंगुचि लक्षण। अक्षर पुरुषु जाण। चैतन्य तें ॥५२५॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥
आतां अन्यथाज्ञानीं। या दोनी अवस्था जया जनीं। तया हरपती घनीं। अज्ञानतत्त्वीं ॥५२६॥
तें अज्ञान ज्ञानीं बुडालिया। ज्ञानें कीर्तिमुखत्व केलिया। जैसा वन्हि काष्ठ जाळूनियां। स्वयें जळे ॥५२७॥
तैसें अज्ञान ज्ञानें नेलें। आपण वस्तु देऊनि गेलें। ऐसें जाणणेंनिवीण उरलें। जाणतें जें ॥५२८॥
तें तो गा उत्तम पुरुषु। जो तृतीय कां निष्कर्षु। दोहींहून आणिकु। मागिला जो ॥५२९॥
सुषुप्तीं आणि स्वप्ना- । पासूनि बहुवें अर्जुना। जागणें जैसें आना। बोधाचेंचि ॥५३०॥
कां रश्मी हन मृगजळा- । पासूनि अर्कमंडळा। अफाटु तेवीं वेगळा। उत्तमु गा ॥५३१॥
हें ना काष्ठींचा काष्ठाहुनी। अनारिसा जैसा वन्ही। तैसा क्षराक्षरापासुनी। आनचि तो ॥५३२॥
पैं ग्रासूनि आपली मर्यादा। एक करीत नदीनदां। उठी कल्पांतीं उदावादा। एकार्णवाचा ॥५३३॥
तैसें स्वप्न ना सुषुप्ती। ना जागराची गोठी आथी। जैसी गिळिली दिवोराती। प्रळयतेजें ॥५३४॥
मग एकपण ना दुजें। असें नाहीं हें नेणिजे। अनुभव निर्बुजे। बुडाला जेथें ॥५३५॥
ऐसें आथि जें कांहीं। तें तो उत्तम पुरुषु पाहीं। जें परमात्मा इहीं। बोलिजे नामीं ॥५३६॥
तेंही एथ न मिसळतां। बोलणें जीवत्वें पंडुसुता। जैसी बुडणेयाची वार्ता। थडियेचा कीजे ॥५३७॥
तैसें विवेकाचिये कांठीं। उभें ठाकलिया किरीटी। परावराचिया गोठी। करणें वेदां ॥५३८॥
म्हणौनि पुरुषु क्षराक्षरु। दोन्ही देखोनि अवरु। यातें म्हणती परु। आत्मरूप ॥५३९॥
अर्जुना ऐसिया परी। परमात्मा शब्दवरी। सूचिजे गा अवधारीं। पुरुषोत्तमु ॥५४०॥
एऱ्हवीं न बोलणेंचि बोलणें। जेथिंचें सर्व नेणिवा जाणणें। कांहींच न होनि होणें। जे वस्तु गा ॥५४१॥
सोऽहं तेंही अस्तवलें। जेथ सांगतेंचि सांगणें जालें। द्रष्टत्वेंसी गेलें। दृश्य जेथ ॥५४२॥
आतां बिंबा आणि प्रतिबिंबा- । माजीं कैंची हें म्हणों नये प्रभा ? । जऱ्ही कैसेनि हे लाभा। जायेचि ना ॥५४३॥
कां घ्राणा फुला दोहीं। द्रुती असे जे माझारिलां ठायीं। ते न दिसे तरी नाहीं। ऐसें बोलों नये ॥५४४॥
तैसें द्रष्टा दृश्य हें जाये। मग कोण म्हणे काय आहे। हेंचि अनुभवें तेंचि पाहें। रूप तया ॥५४५॥
जो प्रकाश्येंवीण प्रकाशु। ईशितव्येंवीण ईशु। आपणेंनीचि अवकाशु। वसवीत असे जो ॥५४६॥
जो नादें ऐकिजता नादु। स्वादें चाखिजता स्वादु। जो भोगिजतसे आनंदु। आनंदेंचि ॥५४७॥
जो पूर्णतेचा परिणामु। पुरुषु गा पुरुषोत्तमु। विश्रांतीचाही विश्रामु। विराला जेथें ॥५४८॥
सुखासि सुख जोडिलें। जें तेज तेजासि सांपडलें। शून्यही बुडालें। महाशून्यीं जिये ॥५४९॥
जो विकासाहीवरी उरता। ग्रासातेंही ग्रासूनि पुरता। जो बहुतें पाडें बहुतां- । पासूनि बहु ॥५५०॥
पैं नेणतयाप्रती। रुपेपणाची प्रतीती। रुपें न होनि शुक्ती। दावी जेवीं ॥५५१॥
कां नाना अलंकारदशे। सोनें न लपत लपालें असे। विश्व न होनियां तैसें। विश्व जो धरी ॥५५२॥

हें असो जलतरंगा। नाहीं सिनानेपण जेवीं गा। तेवीं दिसता प्रकाशु जगा। आपणचि जो ॥५५३॥
आपुलिया संकोचविकाशा। आपणचि रूप वीरेशा। हा जळीं चंद्र हन जैसा। समग्र गा ॥५५४॥
तैसा विश्वपणें कांहीं होये। विश्वलोपीं कहीं न जाये। जैसा रात्रीं दिवसें नोहे। द्विधा रवि ॥५५५॥
तैसा कांहींचि कोणीकडे। कायिसेनिहि वेंचीं न पडे। जयाचें सांगडें। जयासीचि ॥५५६॥
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥१८॥
जो आपणपेंचि आपणया। प्रकाशीतसे धनंजया। काय बहु बोलों जया। नाहीं दुजें ॥५५७॥
तो गा मी निरुपाधिकु। क्षराक्षरोत्तमु एकु। म्हणौनि म्हणे वेद लोकु। पुरुषोत्तमु ॥५५८॥
यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥१९॥
परी हें असो ऐसिया। मज पुरुषोत्तमातें धनंजया। जाणे जो पाहलेया। ज्ञानमित्रें ॥५५९॥
चेइलिया आपुलें ज्ञान। जैसें नाहींचि होय स्वप्न। तैसें स्फुरतें त्रिभुवन। वावों जालें ॥५६०॥
कां हातीं घेतलिया माळा। फिटे सर्पाभासाचा कांटाळा। तैसा माझेनि बोधें टवाळा। नागवे तो ॥५६१॥
लेणें सोनेंचि जो जाणें। तो लेणेंपण तें वावो म्हणे। तेवीं मी जाणोनि जेणें। वाळिला भेदु ॥५६२॥
मग म्हणे सर्वत्र सच्चिदानंदु। मीचि एकु स्वतःसिद्धु। जो आपणेनसीं भेदु। नेणोनियां जाणे ॥५६३॥
तेणेंचि सर्व जाणितलें। हेंही म्हणणें थेंकुलें। जे तया सर्व उरलें। द्वैत नाहीं ॥५६४॥
म्हणौनि माझिया भजना। उचितु तोचि अर्जुना। गगन जैसें आलिंगना। गगनाचिया ॥५६५॥
क्षीरसागरा परगुणें। कीजे क्षीरसागरचिपणें। अमृतचि होऊनि मिळणें। अमृतीं जेवीं ॥५६६॥
साडेपंधरा मिसळावें। तैं साडेपंधरेंचि होआवें। तेवीं मी जालिया संभवे। भक्ति माझी ॥५६७॥
हां गा सिंधूसि आनी होती। तरी गंगा कैसेनि मिळती ? । म्हणौनि मी न होतां भक्ती। अन्वयो आहे ? ॥५६८॥
ऐसियालागीं सर्व प्रकारीं। जैसा कल्लोळु अनन्यु सागरीं। तैसा मातें अवधारीं। भजिन्नला जो ॥५६९॥
सूर्या आणि प्रभे। एकवंकी जेणें लोभें। तो पाडु मानूं लाभे। भजना तया ॥५७०॥
इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ ॥एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात् कृतकृत्यश्च भारत ॥२०॥
ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तम योगोनाम पंचदशोऽध्यायः ॥१५अ ॥
एवं कथिलयादारभ्य। हें जें सर्व शास्त्रैकलभ्य। उपनिषदां सौरभ्य। कमळदळां जेवीं ॥५७१॥
हें शब्दब्रह्माचें मथितें। श्रीव्यासप्रज्ञेचेंनि हातें। मथुनि काढिलें आयितें। सार आम्हीं ॥५७२॥
जे ज्ञानामृताची जाह्नवी। जे आनंदचंद्रींची सतरावी। विचारक्षीरार्णवींची नवी। लक्ष्मी जे हे ॥५७३॥
म्हणौनि आपुलेनि पदें वर्णें। अर्थाचेनि जीवेंप्राणें। मीवांचोनि हों नेणें। आन कांहीं ॥५७४॥
क्षराक्षरत्वें समोर जालें। तयांचें पुरुषत्व वाळिलें। मग सर्वस्व मज दिधलें। पुरुषोत्तमीं ॥५७५॥
म्हणौनि जगीं गीता। मियां आत्मेनि पतिव्रता। जे हे प्रस्तुत तुवां आतां। आकर्णिली ॥५७६॥
साचचि बोलाचें नव्हे हें शास्त्र। पैं संसारु जिणतें हें शस्त्र। आत्मा अवतरविते मंत्र। अक्षरें इयें ॥५७७॥
परी तुजपुढां सांगितलें। तें अर्जुना ऐसें जालें। जें गौप्यधन काढिलें। माझें आजि ॥५७८॥
मज चैतन्यशंभूचा माथां। जो निक्षेपु होता पार्था। तया गौतमु जालासि आस्था- । निधी तूं गा ॥५७९॥
चोखटिवा आपुलिया। पुढिला उगाणा घेयावया। तया दर्पणाचीचि परी धनंजया। केली आम्हां ॥५८०॥
कां भरलें चंद्रतारांगणीं। नभ सिंधू आपणयामाजीं आणी। तैसा गीतेसीं मी अंतःकरणीं। सूदला तुवां ॥५८१॥
जे त्रिविधमळिकटा। तूं सांडिलासि सुभटा। म्हणौनि गीतेसीं मज वसौटा। जालासि गा ॥५८२॥

परी हें बोलों काय गीता। जे हे माझी उन्मेषलता। जाणे तो समस्ता। मोहा मुके ॥५८३॥
सेविली अमृतसरिता। रोगु दवडूनि पंडुसुता। अमरपण उचितां। देऊनि घाली ॥५८४॥
तैसी गीता हे जाणितलिया। काय विस्मयो मोह जावया। परी आत्मज्ञानें आपणापयां। मिळिजे येथ ॥५८५॥
जया आत्मज्ञानाच्या ठायीं। कर्म आपुलेया जीविता पाहीं। होऊनियां उतराई। लया जाय ॥५८६॥
हरपलें दाऊनि जैसा। मागु सरे वीरविलासा। ज्ञानचि कळस वळघे तैसा। कर्मप्रासादाचा ॥५८७॥
म्हणौनि ज्ञानिया पुरुषा। कृत्य करूं सरलें देखा। ऐसा अनाथांचा सखा। बोलिला तो ॥५८८॥
तें श्रीकृष्णवचनामृत। पार्थीं भरोनि असे वोसंडत। मग व्यासकृपा प्राप्त। संजयासी ॥५८९॥
तो धृतराष्ट्र राया। सूतसे पान करावया। म्हणौनि जीवितांतु तया। नोहेचि भारी ॥५९०॥
एऱ्हवीं गीताश्रवण अवसरीं। आवडों लागतां अनधिकारी। परि सेखीं तेचि उजरी। पातला भली ॥५९१॥
जेव्हां द्राक्षीं दूध घातलें। तेव्हां वायां गेलें गमलें। परी फळपाकीं दुणावलें। देखिजे जेवीं ॥५९२॥
तैसी श्रीहरीवक्त्रींचीं अक्षरें। संजयें सांगितलीं आदरें। तिहीं अंधु तोही अवसरें। सुखिया जाला ॥५९३॥
तेंचि मऱ्हाटेनि विन्यासें। मियां उन्मेषें ठसेंठोंबसें। जी जाणें नेणें तैसें। निरोपिलें ॥५९४॥
सेवंतीये अरिसि कांहीं। आंग पाहतां विशेषु नाहीं। परी सौरभ्य नेलें तिहीं। भ्रमरीं जाणिजे ॥५९५॥
तैसें घडतें प्रमेय घेइजे। उणें तें मज देइजे। जें नेणणें हेंचि सहजें। रूप कीं बाळा ॥५९६॥
तरी नेणतें जऱ्ही होये। तऱ्ही देखोनि बाप कीं माये। हर्ष केंहि न समाये। चोज करिती ॥५९७॥
तैसें संत माहेर माझें। तुम्ही मिनलिया मी लाडैजें। तेंचि ग्रंथाचेनि व्याजें। जाणिजो जी ॥५९८॥
आतां विश्वात्मकु हा माझा। स्वामी श्रीनिवृत्तिराजा। तो अवधारू वाक पूजा। ज्ञानदेवो म्हणे ॥५९९॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां पंचदशोऽध्यायः ॥

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय सोळावा ।

दैवासुरसम्पद्विभागयोगः ।

मावळवीत विश्वाभासु। नवल उदयला चंडांशु। अद्वयाब्जिनीविकाशु। वंदूं आतां ॥१॥
जो अविद्याराती रुसोनियां। गिळी ज्ञानाज्ञानचांदणिया। जो सुदिनु करी ज्ञानियां। स्वबोधाचा ॥२॥
जेणें विवळतिये सवळे। लाहोनि आत्मज्ञानाचे डोळे। सांडिती देहाहंतेचीं अविसाळें। जीवपक्षी ॥३॥
लिंगदेहकमळाचा। पोटीं वेंचु तया चिद्भ्रमराचा। बंदिमोक्षु जयाचा। उदैला होय ॥४॥
शब्दाचिया आसकडीं। भेद नदीच्या दोहीं थडीं। आरडाते विरहवेडीं। बुद्धिबोधु ॥५॥
तया चक्रवाकांचें मिथुन। सामरस्याचें समाधान। भोगवी जो चिद्गगन। भुवनदिवा ॥६॥
जेणें पाहालिये पाहांटे। भेदाची चोरवेळ फिटे। रिघती आत्मानुभववाटे। पांथिक योगी ॥७॥
जयाचेनि विवेककिरणसंगें। उन्मेखसूर्यकांतु फुणगे। दीपले जाळिती दांगें। संसाराचीं ॥८॥
जयाचा रश्मिपुंजु निबरु। होता स्वरूप उखरीं स्थिरु। ये महासिद्धीचा पूरु। मृगजळ तें ॥९॥
जो प्रत्यग्बोधाचिया माथया। सोऽहंतेचा मध्यान्हीं आलिया। लपे आत्मभ्रांतिछाया। आपणपां तळीं ॥१०॥
ते वेळीं विश्वस्वप्नासहितें। कोण अन्यथामती निद्रेतें। सांभाळी नुरेचि जेथें। मायाराती ॥११॥
म्हणौनि अद्वयबोधपाटणीं। तेथ महानंदाची दाटणी। मग सुखानुभूतीचीं घेणीं देणीं। मंदावो लागती ॥१२॥
किंबहुना ऐसैसें। मुक्तकैवल्य सुदिवसें। सदा लाहिजे कां प्रकाशें। जयाचेनि ॥१३॥
जो निजधामव्योमींचा रावो। उदैलाचि उदैजतखेंवो। फेडी पूर्वादि दिशांसि ठावो। उदोअस्तूचा ॥१४॥
न दिसणें दिसणेंनसीं मावळवी। दोहीं झांकिलें ते सैंघ पालवी। काय बहु बोलों ते आघवी। उखाचि आनी ॥१५॥
तो अहोरात्रांचा पैलकडु। कोणें देखावा ज्ञानमार्तंडु। जो प्रकाश्येंवीण सुरवाडु। प्रकाशाचा ॥१६॥
तया चित्सूर्या श्रीनिवृत्ती। आतां नमों म्हणों पुढतपुढती। जे बाधका येइजतसे स्तुती। बोलाचिया ॥१७॥
देवाचें महिमान पाहोनियां। स्तुति तरी येइजे चांगावया। जरी स्तव्यबुद्धीसीं लया। जाईजे कां ॥१८॥
जो सर्वनेणिवां जाणिजे। मौनाचिया मिठीया वानिजे। कांहींच न होनि आणिजे। आपणपयां जो ॥१९॥
तया तुझिया उद्देशासाठीं। पश्यंती मध्यमा पोटीं। सूनि परेसींही पाठीं। वैखरी विरे ॥२०॥
तया तूतें मी सेवकपणें। लेववीं बोलकेया स्तोत्राचें लेणें। हें उपसाहावेंही म्हणतां उणें। अद्वयानंदा ॥२१॥
परी रंकें अमृताचा सागरु। देखिलिया पडे उचिताचा विसरु। मग करूं धांवे पाहुणेरु। शाकांचा तया ॥२२॥
तेथ शाकुही कीर बहुत म्हणावा। तयाचा हर्षवेगुचि तो घ्यावा। उजळोनि दिव्यतेजा हातिवा। ते भक्तीचि पाहावी ॥२३॥
बाळा उचित जाणणें होये। तरी बाळपणचि कें आहे ? । परी साचचि येरी माये। म्हणौनि तोषे ॥२४॥
हां गा गांवरसें भरलें। पाणी पाठीं पाय देत आलें। तें गंगा काय म्हणितलें। परतें सर ? ॥२५॥
जी भृगूचा कैसा अपकारु। कीं तो मानूनि प्रियोपचारु। तोषेचिना शारङ्गधरु। गुरुत्वासीं ? ॥२६॥
कीं आंधारें खतेलें अंबर। झालेया दिवसनाथासमोर। तेणें तयातें पऱ्हा सर। म्हणितलें काई ? ॥२७॥
तेवीं भेदबुद्धीचिये तुळे। घालूनि सूर्यक्षेषाचें कांटाळे। तुकिलासि तें येकी वेळे। उपसाहिजो जी ॥२८॥
जिहीं ध्यानाचा डोळां पाहिलासी। वेदादि वाचां वानिलासी। जें उपसाहिलें तयासी। तें आम्हांही करीं ॥२९॥
परी मी आजि तुझ्या गुणीं। लांचावलों अपराधु न गणीं। भलतें करीं परी अर्धधणीं। नुठी कदा ॥३०॥
मियां गीता येणें नांवें। तुझें पसायामृत सुहावें। वानूं लाधलों तें दुणेन थावें। दैवलों दैवें ॥३१॥
माझिया सत्यवादाचें तप। वाचा केलें बहुत कल्प। तया फळाचें हें महाद्वीप। पातली प्रभु ॥३२॥

पुण्यें पोशिलीं असाधरणें। तियें तुझें गुण वानणें। देऊनि मज उत्तीर्णें। जालीं आजी ॥३३॥
जी जीवित्वाच्या आडवीं। आतुडलों होतों मरणगांवीं। ते अवदसाची आघवी। फेडिली आजी ॥३४॥
जे गीता येणें नांवें नावाणिगी। जे अविद्या जिणोनि दाटुगी। ते कीर्ती तुझी आम्हांजोगी। वानावया जाली ॥३५॥
पैं निर्धना घरीं वानिवसें। महालक्ष्मी येऊनि बैसे। तयातें निर्धन ऐसें। म्हणों ये काई ? ॥३६॥
कां अंधकाराचिया ठाया। दैवें सुर्यु आलिया। तो अंधारुचि जगा यया। प्रकाशु नोहे ? ॥३७॥
जया देवाची पाहतां थोरी। विश्व परमाणुही दशा न धरी। तो भावाचिये सरोभरी। नव्हेचि काई ? ॥३८॥
तैसा मी गीता वाखाणी। हे खपुष्पाची तुरंबणी। परी समर्थें तुवां शिरयाणी। फेडिली ते ॥३९॥
म्हणौनि तुझेनि प्रसादें। मी गीतापद्यें अगाधें। निरूपीन जी विशदें। ज्ञानदेवो म्हणे ॥४०॥
तरी अध्यायीं पंधरावा। श्रीकृष्णें तया पांडवा। शास्त्रसिद्धांतु आघवा। उगाणिला ॥४१॥
जे वृक्षरूपक परीभाषा। केलें उपाधि रूप अशेषा। सद्वैद्यें जैसें दोषा। अंगलीना ॥४२॥
आणि कूटस्थु जो अक्षरु। दाविला पुरुषप्रकारु। तेणें उपहिताही आकारु। चैतन्या केला ॥४३॥
पाठीं उत्तम पुरुष। शब्दाचें करूनि मिष। दाविलें चोख। आत्मतत्त्व ॥४४॥
आत्मविषयीं आंतुवट। साधन जें आंगदट। ज्ञान हेंही स्पष्ट। चावळला ॥४५॥
म्हणौनि इये अध्यायीं। निरूप्य नुरेचि कांहीं। आतां गुरुशिष्यां दोहीं। स्नेहो लाहणा ॥४६॥
एवं इयेविषयीं कीर। जाणते बुझावले अपार। परी मुमुक्षु इतर। साकांक्ष जाले ॥४७॥
त्या मज पुरुषोत्तमा। ज्ञानें भेटे जो सुवर्मा। तो सर्वज्ञु तोचि सीमा। भक्तीचीही ॥४८॥
ऐसें हें त्रैलोक्यनायकें। बोलिलें अध्यायांत श्लोकें। तेथें ज्ञानचि बहुतेकें। वानिलें तोषें ॥४९॥
भरूनि प्रपंचाचा घोंटु। कीजे देखतांचि देखतया द्रष्टु। आनंदसाम्राज्यीं पाटु। बांधिजे जीवा ॥५०॥
येवढेया लाठेपणाचा उपावो। आनु नाहींचि म्हणे देवो। हा सम्यक्ज्ञानाचा रावो। उपायांमाजीं ॥५१॥
ऐसे आत्मजिज्ञासु जे होते। तिहीं तोषलेनि चित्तें। आदरें तया ज्ञानातें। वोंवाळिलें जीवें ॥५२॥
आतां आवडी जेथ पडे। तयाचि अवसरीं पुढें पुढें। रिगों लागें हें घडे। प्रेम ऐसें ॥५३॥
म्हणौनि जिज्ञासूंच्या पैकीं। ज्ञानी प्रतीती होय ना जंव निकी। तंव योग क्षेमु ज्ञानविखीं। स्फुरेलचि कीं ॥५४॥
म्हणौनि तेंचि सम्यक ज्ञान। कैसेनि होय स्वाधीन। जालिया वृद्धियत्न। घडेल केवीं ॥५५॥
कां उपजोंचि जें न लाहे। जें उपजलेंही अव्हांटा सूये। तें ज्ञानीं विरुद्ध काय आहे। हें जाणावें कीं ॥५६॥
मग जाणतयां जें विरू। तयाचीं वाट वाहती करूं। ज्ञाना हित तेंचि विचारूं। सर्वभावें ॥५७॥
ऐसा ज्ञानजिज्ञासु तुम्हीं समस्तीं। भावो जो धरिला असे चित्तीं। तो पुरवावया लक्ष्मीपती। बोलिजेल ॥५८॥
ज्ञानासि सुजन्म जोडे। आपली विश्रांतिही वरी वाढे। ते संपत्तीचे पवाडे। सांगिजेल दैवी ॥५९॥
आणि ज्ञानाचेनि कामाकारें। जे रागद्वेषांसि दे थारे। तिये आसुरियेहि घोरे। करील रूप ॥६०॥
सहज इष्टानिष्टकरणी। दोघीचि इया कवतुकिणी। हे नवमाध्यायीं उभारणी। केली होती ॥६१॥
तेथ साउमा घेयावया उवावो। तंव वोडवला आन प्रस्तावो। तरी तयां प्रसंगें आतां देवो। निरूपीत असे ॥६२॥
तया निरूपणाचेनि नांवें। अध्याय पद सोळावें। लावणी पाहतां जाणावें। मागिलावरी ॥६३॥
परी हें असो आतां प्रस्तुतीं। ज्ञानाच्या हिताहितीं। समर्था संपत्ती। इयाचि दोन्ही ॥६४॥
जे मुमुक्षुमार्गींची बोळावी। जे मोहरात्रीची धर्मदिवी। ते आधीं तंव दैवी। संपत्ती ऐका ॥६५॥
जेथ एक एकातें पोखी। ऐसे बहुत पदार्थ येकीं। संपादिजती ते लोकीं। संपत्ति म्हणिजे ॥६६॥
ते दैवी सुखसंभवी। तेथ दैवगुणें येकोपजीवीं। जाली म्हणौनि दैवी। संपत्ति हे ॥६७॥

श्री भगवानुवाच ।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितः ।

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवं ॥१॥

आतां तयाचि दैवगुणां- । माजीं धुरेचा बैसणा। बैसे तया आकर्णा। अभय ऐसें ॥६८॥

तरी न घालूनि महापुरीं। न घेपे बुडणयाची शियारी। कां रोगु न गणिजे घरीं। पथ्याचिया ॥६९॥

तैसा कर्माकर्माचिया मोहरा। उठूं नेदूनि अहंकारा। संसाराचा दरारा। सांडणें येणें ॥७०॥

अथवा ऐक्यभावाचेनि पैसें। दुजे मानूनि आत्मा ऐसें। भयवार्ता देशें। दवडणें जें ॥७१॥

पाणी बुडऊं ये मिठातें। तंव मीठचि पाणी आतें। तेवीं आपण जालेनि अद्वैतें। नाशे भय ॥७२॥

अगा अभय येणें नांवें। बोलिजे तें हें जाणावें। सम्यक्ज्ञानाचें आघवें। धांवणें हें ॥७३॥

आतां सत्त्वशुद्धी जे म्हणिजे। ते ऐशा चिन्हीं जाणिजे। तरी जळे ना विझे। राखोंडी जैसी ॥७४॥

कां पाडिवा वाढी न मगे। अंवसे तुटी सांडूनि मागे। माजीं अतिसूक्ष्म अंगें। चंद्रु जैसा राहे ॥७५॥

नातरी वार्षिया नाहीं मांडिली। ग्रीष्में नाहीं सांडिली। माजीं निजरूपें निवडली। गंगा जैसी ॥७६॥

तैसी संकल्पविकल्पाची वोढी। सांडूनि रजतमाची कावडी। भोगितां निजधर्माची आवडी। बुद्धि उरे ॥७७॥

इंद्रियवर्गीं दाखविलिया। विरुद्धा अथवा भलीया। विस्मयो कांहीं केलिया। नुठी चित्तीं ॥७८॥

गांवा गेलिया वल्लभु। पतिव्रतेचा विरहक्षोभु। भलतेसणी हानिलाभु। न मनीं जेवीं ॥७९॥

तेवीं सत्स्वरूप रुचलेपणें। बुद्धी जें ऐसें अनन्य होणें। ते सत्त्वशुद्धी म्हणे। केशिहंता ॥८०॥

आतां आत्मलाभाविखीं। ज्ञानयोगामाजीं एकीं। जे आपुलिया ठाकी। हांवें भरे ॥८१॥

तेथ सगळिये चित्तवृत्ती। त्यागु करणें या रीती। निष्कामें पूर्णाहुती। हुताशीं जैसी ॥८२॥

कां सुकुळीनें आपुली। आत्मजा सत्कुळींचि दिधली। हें असो लक्ष्मी स्थिरावली। मुकुंदीं जैसी ॥८३॥

तैसे निर्विकल्पपणें। जें योगज्ञानींच या वृत्तिक होणें। तो तिजा गुण म्हणे। श्रीकृष्णनाथु ॥८४॥

आतां देहवाचाचित्तें। यथासंपन्नें वित्तें। वैरी जालियाही आर्तातें। न वंचणे जें कां ॥८५॥

पत्र पुष्प छाया। फळें मूळ धनंजया। वाटेचा न चुके आलिया। वृक्षु जैसा ॥८६॥

तैसें मनौनि धनधान्यवरी। विद्यमानें आल्या अवसरीं। श्रांताचिये मनोहारीं। उपयोगा जाणें ॥८७॥

तयां नांव जाण दान। जें मोक्षनिधानाचें अंजन। हें असो आइक चिन्ह। दमाचें तें ॥८८॥

तरी विषयेंद्रियां मिळणी। करूनि घापे वितुटणी। जैसें तोडिजे खड्गपाणी। पारकेया ॥८९॥

तैसा विषयजातांचा वारा। वाजों नेदिजे इंद्रियद्वारां। इये बांधोनि प्रत्याहारा। हातीं वोपी ॥९०॥

आंतुला चित्ताचें अंगवरीं। प्रवृत्ति पळे पर बाहेरी। आगी सुयिजे दाहींहि द्वारीं। वैराग्याची ॥९१॥

श्वासोश्वासाहुनी बहुवसें। व्रतें आचरे खरपुसें। वोसंतिता रात्रिदिवसें। नाराणुक जया ॥९२॥

पैं दमु ऐसा म्हणिपे। तो हा जाण स्वरूपें। यागार्थुही संक्षेपें। सांगों ऐक ॥९३॥

तरी ब्राह्मण करूनि धुरे। स्त्रियादिक पैल मेरे। माझारीं अधिकारें। आपुलालेनि ॥९४॥

जया जे सर्वोत्तम। भजनीय देवताधर्म। ते तेणें यथागम। विधी यजिजे ॥९५॥

जैसा द्विज षट्कर्में करी। शूद्र तयातें नमस्कारी। कीं दोहींसही सरोभरी। निपजे यागु ॥९६॥

तैसें अधिकारपर्यालोचें। हें यज्ञ करणें सर्वांचें। परी विषय विष फळाशेचें। न घापे माजीं ॥९७॥

आणि मी कर्ता ऐसा भावो। नेदिजे देहाचेनि द्वारें जावों। ना वेदाज्ञेसि तरी ठावो। होइजे स्वयें ॥९८॥

अर्जुना एवं यज्ञु। सर्वत्र जाण साज्ञु। कैवल्यमार्गींचा अभिज्ञु। सांगाती हा ॥९९॥

आतां चेंडुवें भूमी हाणिजे। नव्हे तो हाता आणिजे। कीं शेतीं बीं विखुरिजे। परी पिकीं लक्ष ॥१००॥

नातरी ठेविलें देखावया। आदर कीजे दिविया। कां शाखा फळें यावया। सिंपिजे मूळ ॥१०१॥

हें बहु असो आरिसा। आपणपें देखावया जैसा। पुढतपुढती बहुवसा। उटिजे प्रीती ॥१०२॥

तैसा वेदप्रतिपाद्यु जो ईश्वरु। तो होआवयालागीं गोचरु। श्रुतीचा निरंतरु। अभ्यासु करणें ॥१०३॥

तेंचि द्विजांसीच ब्रह्मसूत्र। येरा स्तोत्र कां नाममंत्र। आवर्तवणें पवित्र। पावावया तत्त्व ॥१०४॥
पार्था गा स्वाध्यावो। बोलिजे तो हा म्हणे देवो। आतां तप शब्दाभिप्रावो। आईक सांगों ॥१०५॥
तरी दानें सर्वस्व देणें। वेंचणें तें व्यर्थ करणें। जैसे फळोनि स्वयें सुकणें। इंद्रावणी जेवीं ॥१०६॥
नाना धूपाचा अग्निप्रवेशु। कनकीं तुकाचा नाशु। पितृपक्षु पोषिता ऱ्हासु। चंद्राचा जैसा ॥१०७॥
तैसा स्वरूपाचिया प्रसरा - । लागीं प्राणेंद्रियशरीरां। आटणी करणें जें वीरा। तेंचि तप ॥१०८॥
अथवा अनारिसें। तपाचें रूप जरी असे। तरी जाण जेवीं दुधीं हंसें। सूदली चांचू ॥१०९॥
तैसें देहजीवाचिये मिळणीं। जो उदयजत सूये पाणी। तो विवेक अंतःकरणीं। जागवीजे ॥११०॥
पाहतां आत्मयाकडे। बुद्धीचा पैसु सांकडें। सनिद्र स्वप्न बुडे। जागणीं जैसें ॥१११॥
तैसा आत्मपर्यालोचु। प्रवर्ते जो साचु। तपाचा हा निर्वेचु। धनुर्धरा ॥११२॥
आतां बाळाच्या हितीं स्तन्य। जैसें नानाभूतीं चैतन्य। तैसें प्राणिमात्रीं सौजन्य। आर्जव तें ॥११३॥

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥२॥

आणि जगाचिया सुखोद्देशें। शरीरवाचामानसें। राहाटणें तें अहिंसे। रूप जाण ॥११४॥
आतां तीख होऊनि मवाळ। जैसें जातीचें मुकुळ। कां तेज परी शीतळ। शशांकाचें ॥११५॥
शके दावितांचि रोग फेडूं। आणि जिभे तरी नव्हे कडु। ते वोखदु नाहीं मा घडू। उपमा कैंची ॥११६॥
तरी मऊपणें बुबुळे। झगडतांही परी नाडळे। एऱ्हवीं फोडी कोंराळें। पाणी जैसें ॥११७॥
तैसें तोडावया संदेह। तीख जैसें कां लोह। श्राव्यत्वें तरी माधुर्य। पायीं घालीं ॥११८॥
ऐकों ठातां कौतुकें। कानातें निघती मुखें। जें साचारिवेचेनि बिकें। ब्रह्महीं भेदी ॥११९॥
किंबहुना प्रियपणें। कोणातेंही झकऊं नेणे। यथार्थ तरी खुपणें। नाहीं कवणा ॥१२०॥
एऱ्हवीं गोरी कीर काना गोड। परी साचाचा पाखाळीं कीड। आगीचें करणें उघड। परी जळों तें साच ॥१२१॥
कानीं लागतां महूर। अर्थें विभांडी जिव्हार। तें वाचा नव्हे सुंदर। लांवचि पां ॥१२२॥
परी अहितीं कोपोनि सोप। लालनीं मऊ जैसें पुष्प। तिये मातेचें स्वरूप। जैसें कां होय ॥१२३॥
तैसें श्रवणसुख चतुर। परीणमोनि साचार। बोलणें जें अविकार। तें सत्य येथें ॥१२४॥
आतां घालितांही पाणी। पाषाणीं न निघे आणी। कां मथिलिया लोणी। कांजी नेदी ॥१२५॥
त्वचा पायें शिरीं। हालेयाही फडे न करी। वसंतींही अंबरीं। न होती फुलें ॥१२६॥
नाना रंभेचेनिही रूपें। शुकीं नुठिजेचि कंदर्पें। कां भस्मीं वन्हि न उद्दीपे। घृतेंही जेवीं ॥१२७॥
तेवींचि कुमारु क्रोधें भरे। तैसिया मंत्राचीं बीजाक्षरें। तियें निमित्तेंही अपारें। मीनलिया ॥१२८॥
परी धातयाही पायां पडतां। नुठी गतायु पंडुसुता। तैसी नुपजे उपजवितां। क्रोधोर्मी गा ॥१२९॥
अक्रोधत्व ऐसें। नांव तें ये दशे। जाण ऐसें श्रीनिवासें। म्हणितलें तया ॥१३०॥
आतां मृत्तिकात्यागें घटु। तंतुत्यागें पटु। त्यजिजे जेवीं वटु। बीजत्यागें ॥१३१॥
कां त्यजुनि भिंतिमात्र। त्यजिजे आघवेंचि चित्र। कां निद्रात्यागें विचित्र। स्वप्नजाळ ॥१३२॥
नाना जळत्यागें तरंग। वर्षात्यागें मेघ। त्यजिजती जैसे भोग। धनत्यागें ॥१३३॥
तेवीं बुद्धिमंतीं देहीं। अहंता सांडूनि पाहीं। सांडिजे अशेषही। संसारजात ॥१३४॥
तया नांव त्यागु। म्हणे तो यज्ञांगु। हे मानूनि सुभगु। पार्थु पुसे ॥१३५॥
आतां शांतीचें लिंग। तें व्यक्त मज सांग। देवो म्हणती चांग। अवधान देईं ॥१३६॥
तरी गिळोनि ज्ञेयातें। ज्ञाता ज्ञानही माघौतें। हारपें निरुतें। ते शांति पैं गा ॥१३७॥
जैसा प्रळयांबूचा उभडु। बुडवूनि विश्वाचा पवाडु। होय आपणपें निबिडु। आपणचि ॥१३८॥

मग उगम ओघ सिंधु। हा तुरेचि व्यवहारभेदु। परी जलैक्याचा बोधु। तोही कवणा ? ॥१३९॥
तैसी ज्ञेया देतां मिठी। ज्ञातृत्वही पडे पोटीं। मग उरे तेंचि किरीटी। शांतीचें रूप ॥१४०॥
आतां कदर्थवीत व्याधी। बळीकरणाचिया आधीं। आपपरु न शोधी। सद्वैद्यु जैसा ॥१४१॥
का चिखलीं रुतली गाये। धडभाकड न पाहे। जो तियेचिया ग्लानी होये। कालाभुला ॥१४२॥
नाना बुडतयातें सकरुणु। न पुसे अंत्यजु कां ब्राह्मणु। काढूनि राखे प्राणु। हेंचि जाणे ॥१४३॥
कीं माय वनीं पापियें। उघडी केली विपायें। ते नेसविल्यावीण न पाहे। शिष्टु जैसा ॥१४४॥
तैसे अज्ञानप्रमादादिकीं। कां प्राक्तनहीन सदोखीं। निंदत्वाच्या सर्वविखीं। खिळिले जे ॥१४५॥
तयां आंगीक आपुलें। देऊनियां भलें। विसरविजती सलें। सलतीं तियें ॥१४६॥
अगा पुढिलाचा दोखु। करूनि आपुलिये दिठी चोखु। मग घापे अवलोकु। तयावरी ॥१४७॥
जैसा पुजूनि देवो पाहिजे। पेरूनि शेता जाइजे। तोषौनि प्रसादु घेइजे। अतिथीचा ॥१४८॥
तैसें आपुलेनि गुणें। पुढिलाचें उणें। फेडुनियां पाहणें। तयाकडे ॥१४९॥
वांचूनि न विंधिजें वर्मीं। नातुडविजे अकर्मीं। न बोलविजे नामीं। सदोषीं तिहीं ॥१५०॥
वरी कोणे एकें उपायें। पडिलें तें उभें होये। तेंच कीजे परी घाये। नेदावे वर्मीं ॥१५१॥
पैं उत्तमाचियासाठीं। नीच मानिजे किरीटी। हें वांचोनि दिठी। दोषु न घेपे ॥१५२॥
अगा अपैशून्याचें लक्षण। अर्जुना हें फुडें जाण। मोक्षमार्गींचें सुखासन। मुख्य हें गा ॥१५३॥
आतां दया ते ऐसी। पूर्णचंद्रिका जैसी। निववितां न कडसी। सानें थोर ॥१५४॥
तैसें दुःखिताचें शिणणें। हिरतां सकणवपणें। उत्तमाधम नेणें। विवंचूं गा ॥१५५॥
पैं जगीं जीवनासारिखें। वस्तु अंगवरी उपखें। परी जातें जीवित राखे। तृणाचेंहि ॥१५६॥
तैसें पुढिलाचेनि तापें। कळवळलिये कृपें। सर्वस्वेंसीं दिधलेंहि आपणपें। थोडेंचि गमे ॥१५७॥
निम्न भरलियाविणें। पाणी ढळोंचि नेणे। तेवीं श्रांता तोषौनि जाणें। सामोरें पां ॥१५८॥
पैं पायीं कांटा नेहटे। तंव व्यथा जीवीं उमटे। तैसा पोळे संकटें। पुढिलांचेनि ॥१५९॥
कां पावो शीतळता लाहे। कीं ते डोळयाचिलागीं होये। तैसा परसुखें जाये। सुखावतु ॥१६०॥
किंबहुना तृषितालागीं। पाणी आरायिलें असे जगीं। तैसें दुःखितांचे सेलभागीं। जिणें जयाचें ॥१६१॥
तो पुरुषु वीरराया। मूर्तिमंत जाण दया। मी उदयजतांचि तया। ऋणिया लाभें ॥१६२॥
आतां सूर्यासि जीवें। अनुसरलिया राजीवें। परी तें तो न शिवे। सौरभ्य जैसें ॥१६३॥
कां वसंताचिया वाहाणीं। आलिया वनश्रीच्या अक्षौहिणी। ते न करीतुचि घेणी। निगाला तो ॥१६४॥
हें असो महासिद्धीसी। लक्ष्मीही आलिया पाशीं। परी महाविष्णु जैसी। न गणीच ते ॥१६५॥
तैसे ऐहिकींचे कां स्वर्गींचे। भोग पाईक जालिया इच्छेचे। परी भोगावे हें न रुचे। मनामाजीं ॥१६६॥
बहुवें काय कौतुकीं। जीव नोहे विषयाभिलाखी। अलोलुस्त्वदशा ठाउकी। जाण ते हे ॥१६७॥
आतां माशियां जैसें मोहळ। जळचरां जेवीं जळ। कां पक्षियां अंतराळ। मोकळें हें ॥१६८॥
नातरी बाळकोद्देशें। मातेचें स्नेह जैसें। कां वसंतीच्या स्पर्शें। मऊ मलयानिळु ॥१६९॥
डोळयां प्रियाची भेटी। कां पिलियां कूर्मीची दिठी। तैसीं भूतमात्रीं राहटी। मवाळ ते ॥१७०॥
स्पर्शें अतिमृदु। मुखीं घेतां सुस्वादु। घ्राणासि सुगंधु। उजाळु आंगें ॥१७१॥
तो आवडे तेवढा घेतां। विरुद्ध जरी न होतां। तरी उपमे येता। कापूर कीं ॥१७२॥
परी महाभूतें पोटीं वाहे। तेवींचि परमाणूमाजीं सामाये। या विश्वानुसार होये। गगन जैसें ॥१७३॥
काय सांगों ऐसें जिणें। जें जगाचेनि जीवें प्राणें। तया नांव म्हणें। मार्दव मी ॥१७४॥
आतां पराजयें राजा। जैसा कदर्थिजे लाजा। कां मानिया निस्तेजा। निकृष्टास्तव ॥१७५॥

नाना चांडाळ मंदिराशीं। अवचटें आलिया संन्याशी। मग लाज होय जैसी। उत्तमा तया ॥१७६॥
क्षत्रिया रणीं पळोनि जाणें। तें कोण साहे लाजिरवाणें। कां वैधव्यें पाचारणें। महासतियेतें ॥१७७॥
रूपसा उदयलें कुष्ट। संभावितां कुटीचें बोट। तया लाजा प्राणसंकट। होय जैसें ॥१७८॥
तैसें औटहातपणें। जें शव होऊनि जिणें। उपजों उपजों मरणें। नावानावा ॥१७९॥
तियें गर्भमेदमुसें। रक्तमूत्ररसें। वोंतीव होऊनि असे। तें लाजिरवाणें ॥१८०॥
हें बहु असो देहपणें। नामरूपासि येणें। नाहीं गा लाजिरवाणें। तयाहूनी ॥१८१॥
ऐसैसिया अवकळा। घेपे शरीराचा कंटाळा। ते लाज पैं निर्मळा। निसुगा गोड ॥१८२॥
आतां सूत्रतंतु तुटलिया। चेष्टाचि ठाके सायखडिया। तैसें प्राणजयें कर्मेंद्रियां। खुंटे गती ॥१८३॥
कीं मावळलिया दिनकरु। सरे किरणांचा प्रसरु। तैसा मनोजयें प्रकारु। ज्ञानेंद्रियांचा ॥१८४॥
एवं मनपवननियमें। होती दाही इंद्रियें अक्षमें। तें अचापल्य वर्में। येणें होय ॥१८५॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥३॥
आतां ईश्वरप्राप्तीलागीं। प्रवर्ततां ज्ञानमार्गीं। धिंवसेयाचि आंगी। उणीव नोहे ॥१८६॥
वोखटें मरणाऐसें। तेंही आलें अग्निप्रवेशें। परी प्राणेश्वरोद्देशें। न गणीचि सती ॥१८७॥
तैसें आत्मनाथाचिया आधी। लाऊनि विषयविषाची बाधी। धांवों आवडे पाणधी। शून्याचिये ॥१८८॥
न ठाके निषेधु आड। न पडे विधीची भीड। नुपजेचि जीवीं कोड। महासिद्धीचें ॥१८९॥
ऐसें ईश्वराकडे निज। धांवे आपसया सहज। तया नांव तेज। आध्यात्मिक तें ॥१९०॥
आतां सर्वही साहातिया गरिमा। गर्वा न ये तेचि क्षमा। जैसें देह वाहोनि रोमा। वाहणें नेणें ॥१९१॥
आणि मातलिया इंद्रियांचे वेग। कां प्राचीनें खवळले रोग। अथवा योगवियोग। प्रियाप्रियांचे ॥१९२॥
यया आघवियांचाचि थोरु। एके वेळे आलिया पूरु। तरी अगस्त्य कां होऊनि धीरु। उभा ठाके ॥१९३॥
आकाशीं धूमाची रेखा। उठिली बहुवा आगळिका। ते गिळी येकी झुळुका। वारा जेवीं ॥१९४॥
तैसें अधिभूताधिदैवां। अध्यात्मादि उपद्रवां। पातलेयां पांडवा। गिळुनि घाली ॥१९५॥
ऐसें चित्तक्षोभाच्या अवसरीं। उचलूनि धैर्या जें चांगावें करी। धृति म्हणिपे अवधारीं। तियेतें गा ॥१९६॥
आतां निर्वाळूनि कनकें। भरिला गांगें पीयूखें। तया कलशाचियासारिखें। शौच असें ॥१९७॥
जे आंगीं निष्काम आचारु। जीवीं विवेकु साचारु। तो सबाह्य घडला आकारु। शुचित्वाचाचि ॥१९८॥
कां फेडित पाप ताप। पोखीत तीरींचे पादप। समुद्रा जाय आप। गंगेचें जैसें ॥१९९॥
कां जगाचें आंध्य फेडितु। श्रियेचीं राउळें उघडितु। निघे जैसा भास्वतु। प्रदक्षिणे ॥२००॥
तैसीं बांधिलीं सोडिता। बुडालीं काढिता। सांकडी फेडिता। आर्तांचिया ॥२०१॥
किंबहुना दिवसराती। पुढिलांचें सुख उन्नति। आणित आणित स्वार्थीं। प्रवेशिजे ॥२०२॥
वांचूनि आपुलिया काजालागीं। प्राणिजाताच्या अहितभागीं। संकल्पाचीही आडवंगी। न करणें जें ॥२०३॥
पैं अद्रोहत्व ऐशिया गोष्टी। ऐकसी जिया किरीटी। तें सांगितलें हें दिठी। पाहों ये तैसें ॥२०४॥
आणि गंगा शंभूचा माथां। पावोनि संकोचे जेवीं पार्था। तेवीं मान्यपणें सर्वथा। लाजणें जें ॥२०५॥
तें हें पुढत पुढती। अमानित्व जाण सुमती। मागां सांगितलेंसे किती। तेंचि तें बोलों ॥२०६॥
एवं इहीं सव्विसें। ब्रह्मसंपदा हे वसत असे। मोक्षचक्रवर्तीचें जैसें। अग्रहार होय ॥२०७॥
नाना हे संपत्ति दैवी। या गुणतीर्थांची नीच नवी। निर्विण्णसगरांची दैवी। गंगाचि आली ॥२०८॥
कीं गणकुसुमांची माळा। हे घेऊनि मुक्तिबाळा। वैराग्यनिरपेक्षाचा गळा। गिंवसीत असे ॥२०९॥
कीं सव्विसें गुणज्योती। इहीं उजळूनि आरती। गीता आत्मया निजपती। नीरांजना आली ॥२१०॥

उगळितें निर्मळें। गुण इयेंचि मुक्ताफळें। दैवी शुक्तिकळें। गीतार्णवींची ॥२११॥
काय बहु वानूं ऐसी। अभिव्यक्ती ये अपैसी। केलें दैवी गुणराशी। संपत्तिरूप ॥२१२॥
आतां दुःखाची आंतुवट वेली। दोषकाट्यांची जरी भरली। तरी निजाभिधानी घाली। आसुरी ते ॥२१३॥
पैं त्याज्य त्यजावयालागीं। जाणावी जरी अनुपयोगी। तरी ऐका ते चांगी। श्रोत्रशक्ती ॥२१४॥
तरी नरकव्यथा थोरी। आणावया दोषींघोरीं। मेळु केला ते आसुरी। संपत्ति हे ॥२१५॥
नाना विषवर्गु एकवटु। तया नांव जैसा बासटु। आसुरी संपत्ती हा खोटु। दोषांचा तैसा ॥२१६॥
दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥४॥
तरी तयाचि असुरां। दोषांमाजीं जया वीरा। वाडपणाचा डांगोरा। तो दंभु ऐसा ॥२१७॥
जैसी आपुली जननी। नग्न दाविलिया जनीं। ते तीर्थचि परी पतनीं। कारण होय ॥२१८॥
कां विद्या गुरूपदिष्टा। बोभाइलिया चोहटां। तरी इष्टदा परी अनिष्टा। हेतु होती ॥२१९॥
पैं आंगें बुडतां महापूरीं। जे वेगें काढी पैलतीरीं। ते नांवचि बांधिलिया शिरीं। बुडवी जैसी ॥२२०॥
कारण जें जीविता। तें वानिलें जरी सेवितां। तरी अन्नचि पंडुसुता। होय विष ॥२२१॥
तैसा दृष्टादृष्टाचा सखा। धर्मु जाला तो फोकारिजे देखा। तरी तारिता तोचि दोखा- । लागीं होय ॥२२२॥
म्हणौनि वाचेचा चौबारा। घातलिया धर्माचा पसारा। धर्मुचि तो अधर्मु होय वीरा। तो दंभु जाणे ॥२२३॥
आतां मूर्खाचिये जिभे। अक्षरांचा आंबुखा सुभे। आणि तो ब्रह्मसभे। न रिझे जैसा ॥२२४॥
कां मादुरी लोकांचा घोडा। गजपतिही मानी थोडा। कां कांटियेवरिल्या सरडा। स्वर्गुही नीच ॥२२५॥
तृणाचेनि इंधनें। आगी धांवे गगनें। थिल्लरबळें मीनें। न गणिजे सिंधु ॥२२६॥
तैसा माजे स्त्रिया धनें। विद्या स्तुती बहुतें मानें। एके दिवसींचेनि परान्नें। अल्पकु जैसा ॥२२७॥
अभ्रच्छायेचिया जोडी। निदैवु घर मोडी। मृगांबु देखोनि फोडी। पणियाडें मूर्ख ॥२२८॥
किंबहुना ऐसैसें। उतणें जें संपत्तिमिसें। तो दर्पु गा अनारिसें। न बोलें घेईं ॥२२९॥
आणि जगा वेदीं विश्वासु। आणि विश्वासीं पूज्य ईशु। जगीं एक तेजसु। सूर्युचि हा ॥२३०॥
जगस्पृहे आस्पद। एक सार्वभौमपद। न मरणें निर्विवाद। जगा पढियें ॥२३१॥
म्हणौनि जग उत्साहें। यातें वानूं जाये। कीं तें आइकोनि मत्सरु वाहे। फुगों लागे ॥२३२॥
म्हणे ईश्वरातें खायें। तया वेदा विष सूयें। गौरवामाजीं त्राये। भंगीत असे ॥२३३॥
पतंगा नावडे ज्योती। खद्योता भानूची खंती। टिटिभेनें आपांपती। वैरी केला ॥२३४॥
तैसा अभिमानाचेनि मोहें। ईश्वराचेंही नाम न साहे। बापातें म्हणे मज हे। सवती जाली ॥२३५॥
ऐसा मान्यतेचा पुष्टगंडु। तो अभिमानी परमलंडु। रौरवाचा रूढु। मार्गुचि पै ॥२३६॥
आणि पुढिलांचें सुख। देखणियाचें होय मिख। चढे क्रोधाग्नीचें विख। मनोवृत्ती ॥२३७॥
शीतळाचिये भेटी। तातला तेलीं आगी उठी। चंद्रु देखोनि जळे पोटीं। कोल्हा जैसा ॥२३८॥
विश्वाचें आयुष्य जेणें उजळे। तो सूर्यु उदैला देखोनि सवळे। पापिया फुटती डोळे। डुडुळाचे ॥२३९॥
जगाची सुखपहांट। चोरां मरणाहूनि निकृष्ट। दुधाचें काळकूट। होय व्याळीं ॥२४०॥
अगाधें समुद्रजळें। प्राशितां अधिक जळे। वडवाग्नी न मिळे। शांति कहीं ॥२४१॥
तैसा विद्याविनोदविभवें। देखे पुढिलांचीं दैवें। तंव तंव रोषु दुणावे। क्रोधु तो जाण ॥२४२॥
आणि मन सर्पाची कुटी। डोळे नाराचांची सुटी। बोलणें ते वृष्टी। इंगळांची ॥२४३॥
येर जें क्रियाजात। तें तिखयाचें कर्वत। ऐसें सबाह्य खसासित। जयाचें गा ॥२४४॥
तो मनुष्यांत अधमु जाण। पारुष्याचें अवतरण। आतां आइक खूण। अज्ञानाची ॥२४५॥

तरी शीतोष्णस्पर्शा। निवाडु नेणें पाषाणु जैसा। कां रात्री आणि दिवसा। जात्यंधु तो ॥२४६॥
आगी उठिला आरोगणें। जैसा खाद्याखाद्य न म्हणे। कां परिसा पाडु नेणें। सोनया लोहा ॥२४७॥
नातरी नानारसीं। रिघोनि दर्वी जैसी। परी रसस्वादासी। चाखों नेणें ॥२४८॥
कां वारा जैसा पारखी। नव्हेचि गा मार्गामार्गविखीं। तैसे कृत्याकृत्यविवेकीं। अंधपण जें ॥२४९॥
हें चोख हें मैळ। ऐसें नेणोनियां बाळ। देखे तें केवळ। मुखींचि घाली ॥२५०॥
तैसें पापपुण्याचें खिचटें। करोनि खातां बुद्धिचेष्टे। कडु मधुर न वाटे। ऐसी जे दशा ॥२५१॥
तिये नाम अज्ञान। या बोला नाहीं आन। एवं साही दोषांचें चिन्ह। सांगितलें ॥२५२॥
इहींच साही दोषांगीं। हे आसुरी संपत्ति दाटुगी। जैसें थोर विषय सुभगे अंगीं। अंग सानें ॥२५३॥
कां तिघा वन्हींच्या पांती। पाहतां थोडे ठाय गमती। परी विश्वही प्राणाहुती। करूं न पुरे ॥२५४॥
धातयाही गेलिया शरण। त्रिदोषीं न चुके मरण। तया तिहींची दुणी जाण। साही दोष हे ॥२५५॥
इहीं साही दोषीं संपूर्णीं। जाली इयेचि उभारणी। म्हणौनि आसुरी उणी। संपदा नव्हे ॥२५६॥
परी क्रूरग्रहांची जैसी। मांदी मिळे एकेचि राशी। कां येती निंदकापासीं। अशेष पापें ॥२५७॥
मरणाराचें आंग। पडिघाती अवघेचि रोग। कां कुमुहूर्तीं दुर्योग। एकवटती ॥२५८॥
विश्वासला आतुडवीजे चोरा। शिणला सुइजे महापुरा। तैसें दोषीं इहीं नरा। अनिष्ट कीजे ॥२५९॥
कां आयुष्य जातिये वेळे। शेळिये सातवेउळी मिळे। तैसे साही दोष सगळे। जोडती तया ॥२६०॥
मोक्षमार्गाकडे। जैं यांचा आंबुखा पडे। तैं न निघे म्हणौनि बुडे। संसारीं तो ॥२६१॥
अधमां योनींच्या पाउटीं। उतरत जो किरीटी। स्थावरांही तळवटीं। बैसणें घे ॥२६२॥
हें असो तयाच्या ठायीं। मिळोनि साही दोषीं इहीं। आसुरी संपत्ति पाहीं। वाढविजे ॥२६३॥
ऐसिया या दोनी। संपदा प्रसिद्धा जनीं। सांगितलिया चिन्हीं। वेगळाल्या ॥२६४॥

दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥५॥

इया दोन्हींमाजीं पहिली। दैवी जे म्हणितली। ते मोक्षसूर्ये पाहली। उखाचि जाण ॥२६५॥
येरी जे दुसरी। संपत्ति कां आसुरी। ते मोहलोहाची खरी। सांखळी जीवां ॥२६६॥
परी हें आइकोनि झणें। भय घेसी हो मनें। काय रात्रीचा दिनें। धाकु धरिजे ॥२६७॥
हे आसुरी संपत्ति तया। बंधालागीं धनंजया। जो साही दोषां ययां। आश्रयो होय ॥२६८॥
तूं तंव पांडवा। सांगितलेया दैवा। गुणनिधी बरवा। जन्मलासी ॥२६९॥
म्हणौनि पार्था तूं या। दैवी संपत्ती स्वामिया। होऊनि यावें उवाया। कैवल्याचिया ॥२७०॥

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे श्रुणु ॥६॥

आणि दैवां आसुरां। संपत्तिवंतां नरां। अनादिसिद्ध उजगरा। राहाटीचा आहे ॥२७१॥
जैसें रात्रीच्या अवसरीं। व्यापारिजे निशाचरीं। दिवसा सुव्यवहारीं। मनुष्यादिकीं ॥२७२॥
तैसिया आपुलालिया राहाटीं। वर्तती दोन्ही सृष्टी। दैवी आणि किरीटी। आसुरी येथ ॥२७३॥
तेवींचि विस्तारूनि दैवी। ज्ञानकथनादि प्रस्तावीं। मागील ग्रंथीं बरवी। सांगितली ॥२७४॥
आतां आसुरी जे सृष्टी। तेथिंची उपलऊं गोठी। अवधानाची दिठी। दे पां निकी ॥२७५॥
तरी वाद्येंवीण नादु। नेदी कवणाही सादु। कां अपुष्पीं मकरंदु। न लभे जैसा ॥२७६॥
तैसी प्रकृति हे आसुर। एकली नोहे गोचर। जंव एकाधें शरीर। माल्हातीना ॥२७७॥
मग आविष्कारला लांकुडें। पावकु जैसा जोडे। तैसी प्राणिदेहीं सांपडे। आटोपली हे ॥२७८॥

ते वेळीं जे वाढी ऊंसा। तेचि आंतुला रसा। देहाकारु होय तैसा। प्राणियांचा ॥२७९॥
आतां तयाचि प्राणियां। रूप करूं धनंजया। घडले जे आसुरीया। दोषवृंदीं ॥२८०॥
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥७॥
तरी पुण्यालागीं प्रवृत्ती। कां पापाविषयीं निवृत्ती। या जाणणेयाची राती। तयांचें मन ॥२८१॥
निगणेया आणि प्रवेशा। चित्त नेदीतु आवेशा। कोशकिटु जैसा। जाचिन्नला पैं ॥२८२॥
कां दिधलें मागुती येईल। कीं न ये हें पुढील। न पाहातां दे भांडवल। मूर्ख चोरां ॥२८३॥
तैसिया प्रवृत्ति निवृत्ति दोनी। नेणिजती आसुरीं जनीं। आणि शौच ते स्वप्नीं। देखती ना ते ॥२८४॥
काळिमा सांडील कोळसा। वरी चोखी होईल वायसा। राक्षसही मांसा। विटों शके ॥२८५॥
परी आसुरां प्राणियां। शौच नाहीं धनंजया। पवित्रत्व जेवीं भांडिया। मद्याचिया ॥२८६॥
वाढविती विधीची आस। कां पाहाती वडिलांची वास। आचाराची भाष। नेणतीचि ते ॥२८७॥
जैसें चरणें शेळियेचें। कां धावणें वारियाचें। जाळणें आगीचें। भलतेउतें ॥२८८॥
तैसें पुढां सूनि स्वैर। आचरती ते गा आसुर। सत्येंसि कीर वैर। सदाचि तयां ॥२८९॥
जरी नांगिया आपुलिया। विंचू करी गुदगुलिया। तरी साचा बोली बोलिया। बोलती ते ॥२९०॥
आपानाचेनि तोंडें। जरी सुगंधा येणें घडे। तरी सत्य तयां जोडे। आसुरांतें ॥२९१॥
ऐसें ते न करितां कांहीं। आंगेंचि वोखटे पाहीं। आतां बोलती ते नवाई। सांगिजैल ॥२९२॥
ए़्हवीं करेयाच्या ठायीं चांग। तें तयासि कैचें नीट आंग। तैसा आसुरांचा प्रसंग। प्रसंगें परीस ॥२९३॥
उधवणीचें जेवीं तोंड। उभळी धुंवाचे उभड। हें जाणिजे तेवीं उघड। सांगों ते बोल ॥२९४॥
असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत् कामहैतुकम् ॥८॥
तरी विश्व हा अनादि ठावो। येथ नियंता ईश्वररावो। चावडिये न्यावो अन्यावो। निवडी वेदु ॥२९५॥
वेदीं अन्यायीं पडे। तो निरयभोगें दंडे। सन्यायी तो सुरवाडें। स्वर्गीं जिये ॥२९६॥
ऐसी हे विश्वव्यवस्था। अनादि जे पार्था। इयेतें म्हणती ते वृथा। अवघेंचि हें ॥२९७॥
यज्ञमूढ ठकिले यागीं। देवपिसें प्रतिमालिंगीं। नागविले भगवे योगी। समाधिभ्रमें ॥२९८॥
येथ आपुलेनि बळें। भोगिजे जें जें वेंटाळें। हें वांचोनि वेगळें। पुण्य आहे ? ॥२९९॥
ना अशक्तपणें आंगिकें। वेगळवेंटाळीं न टकें। ऐसा गादिजेवीण विषयसुखें। तेंचि पाप ॥३००॥
प्राण घेपती संपन्नांचे। ते पाप जरी साचें। तरी सर्वस्व हाता ये तयांचें। हें पुण्यफळ कीं ? ॥३०१॥
बळी अबळातें खाय। हेंचि बाधित जरी होय। तरी मासयां कां न होय। निसंतान ? ॥३०२॥
आणि कुळें शोधूनि दोन्ही। कुमारेंचि शुभलग्नीं। मेळवीजती प्रजासाधनीं। हेतु जरी ॥३०३॥
तरी पशुपक्षादि जाती। जया मिती नाहीं संतती। तयां कोणें प्रतिपत्तीं। विवाह केले ? ॥३०४॥
चोरियेचें धन आलें। तरी तें कोणासि विष जालें ? । वालभें परद्वार केलें। कोढी कोणी होय ? ॥३०५॥
म्हणौनि देवो गोसांवी। तो धर्माधर्मु भोगवी। आणि परत्राच्या गांवीं। करी तो भोगी ॥३०६॥
परी परत्र ना देवो। न दिसे म्हणौनि तें वावो। आणि कर्ता निमे मा ठावो। भोग्यासि कवणु ? ॥३०७॥
येथ उर्वशिया इंद्र सुखी। जैसा कां स्वर्गलोकीं। तैसाचि कृमिही नरकीं। लोळतु श्लाघे ॥३०८॥
म्हणौनि नरक स्वर्गु। नव्हे पापपुण्यभागु। जे दोहीं ठायीं सुखभोगु। कामाचाचि तो ॥३०९॥
याकारणें कामें। स्त्रीपुरुषयुग्में। मिळती तेथ जन्मे। आघवें जग ॥३१०॥
आणि जें जें अभिलाषें। स्वार्थालागीं हें पोषे। पाठीं परस्परद्वेषें। कामचि नाशी ॥३११॥

एवं कामावांचूनि कांहीं। जगा मूळचि आन नाहीं। ऐसें बोलती पाहीं। आसुर गा ते ॥३१२॥
आतां असो हें किडाळ। बोली न करूं पघळ। सांगतांचि सफोल। होतसे वाचा ॥३१३॥
एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥९॥
आणि ईश्वराचिया खंती। नुसधियाचि करिती चांथी। हेंही नाहीं चित्तीं। निश्चयो एकु ॥३१४॥
किंबहुना उघड। आंगी लाऊनियां पाखांड। नास्तिकपणाचें हाड। रोंविलें जीवीं ॥३१५॥
ते वेळीं स्वर्गालागीं आदरु। कां नरकाचा अडदरु। या वासनांचा अंकुरु। जळोनि गेला ॥३१६॥
मग केवळ ये देहखोडां। अमेध्योदकाचा बुडबुडा। विषयपंकीं सुहाडा। बुडाले गा ॥३१७॥
जैं आटावें होती जळचर। तैं डोहीं मिळतीं ढीवर। कां पडावें होय शरीर। तैं रोगा उदयो ॥३१८॥
उदैजणें केतूचें जैसें। विश्वा अनिष्टोद्देशें। जन्मती ते तैसे। लोकां आटूं ॥३१९॥
विरूढलिया अशुभ। फुटती तैं ते कोंभ। पापाचे कीर्तिस्तंभ। चालते ते ॥३२०॥
आणि मागांपुढां जाळणें। वांचूनि आगी कांहीं नेणें। तैसें विरुद्धचि एक करणें। भलतेयां ॥३२१॥
परी तेंचि गा करणें। आदरिती संभ्रमें जेणें। तो आइक पार्था म्हणे। श्रीनिवासु ॥३२२॥
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद् गृहीत्वाऽसद्ग्रहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥१०॥
तरी जाळ पाणियें न भरे। आगी इंधन न पुरे। तयां दुर्भरांचिये धुरे। भुकाळु जो ॥३२३॥
तया कामाचा वोलावा। जीवीं धरुनिया पांडवा। दंभमानाचा मेळावा। मेळविती ॥३२४॥
मातलिया कुंजरा। आगळी जाली मदिरा। तैसा मदाचा ताठा तंव जरा। चढतां आंगीं ॥३२५॥
आणि आग्रहा तोचि ठावो। वरी मौढ्याऐसा सावावो। मग काय वानूं निर्वाहो। निश्चयाचा ॥३२६॥
जिहीं परोपतापु घडे। परावा जीवु रगडे। तिहीं कर्मीं होऊनि गाढे। जन्मवृत्ती ॥३२७॥
मग आपुलें केलें फोकारिती। आणि जगातें धिक्कारिती। दाहीं दिशीं पसरिती। स्पृहाजाळ ॥३२८॥
ऐसेनि गा आटोपें। थोरियें आणती पापें। धर्मधेनु खुरपें। सुटलें जैसें ॥३२९॥
चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥११॥
याचि एका आयती। तयाचिया कर्मप्रवृत्ती। आणि जिणियाही परौती। वाहती चिंता ॥३३०॥
पाताळाहूनि निम्न। जियेचिये उंचीये सानें गगन। जें पाहातां त्रिभुवन। अणुही नोहे ॥३३१॥
ते योगपटाची मवणी। जीवीं अनियम चिंतवणी। जे सांडूं नेणें मरणीं। वल्लभा जैसी ॥३३२॥
तैसी चिंता अपार। वाढविती निरंतर। जीवीं सूनि असार। विषयादिक ॥३३३॥
स्त्रिया गाइलें आइकावें। स्त्रीरूप डोळां देखावें। सर्वेंद्रियें आलिंगावें। स्त्रियेतेंचि ॥३३४॥
कुरवंडी कीजे अमृतें। ऐसें सुख स्त्रियेपरौतें। नाहींचि म्हणौनि चित्तें। निश्चयो केला ॥३३५॥
मग तयाचि स्त्रीभोगा- । लागीं पाताळ स्वर्गा। धांवती दिग्विभागा। परौतेही ॥३३६॥
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरयाणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान ॥१२॥
आमिषकवळु थोरी आशा। न विचारितां गिळी मासा। तैसें कीजे विषयाशा। तयांसि गा ॥३३७॥
वांछित तंव न पवती। मग कोरडियेचि आशेची संतती। वाढऊं वाढऊं होती। कोशकिडे ॥३३८॥
आणि पसरिला अभिलाषु। अपूर्णु होय तोचि द्वेषु। एवं कामक्रोधांहूनि अधिकु। पुरुषार्थु नाहीं ॥३३९॥
दिहा खोलणें रात्रीं जागोवा। ठाणांतरीयां जैसा पांडवा। अहोरात्रींही विसांवा। भेटेचिना ॥३४०॥

तैसें उंचौनि लोटिलें कामें। नेहटती क्रोधाचिये ढेमे। तरी रागद्वेष प्रेमें। न माती केंही ॥३४१॥
तेवींचि जीवींचिया हांवा। विषयवासनांचा मेळावा। केला तरी भोगावा। अर्थें कीं ना ? ॥३४२॥
म्हणौनि भोगावयाजोगा। पुरता अर्थु पैं गा। आणावया जगा। झोंबती सैरा ॥३४३॥
एकातें साधूनि मारिती। एकाचि सर्वस्वें हरिती। एकालागीं उभारिती। अपाययंत्रें ॥३४४॥
पाशिकें पोतीं वागुरा। सुणीं ससाणें चिकाटी खोंचारा। घेऊनि निघती डोंगरा। पारधी जैसें ॥३४५॥
ते पोसावया पोट। मारूनि प्राणियांचे संघाट। आणिती ऐसें निकृष्ट। तेंही करिती ॥३४६॥
परप्राणघातें। मेळविती वित्तें। मिळाल्या चित्तें। तोषणें कैसें ॥३४७॥

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥१३॥

म्हणे आजि मियां। संपत्ति बहुतेकांचिया। आपुल्या हातीं केलिया। धन्यु ना मी ? ॥३४८॥
ऐसा श्लाघों जंव जाये। तंव मन आणीकही वाहे। सवेंचि म्हणे पाहे। आणिकांचेंही आणूं ॥३४९॥
हें जेतुलें असे जोडिलें। तयाचेनि भांडवलें। लाभा घेईन उरलें। चराचर हें ॥३५०॥
ऐसेनि धना विश्वाचिया। मीचि होईन स्वामिया। मग दिठी पडे तया। उरों नेदी ॥३५१॥

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान सुखी ॥१४॥

हे मारिले वैरी थोडे। आणीकही साधीन गाढे। मग नांदेन पवाडें। येकलाचि मी ॥३५२॥
मग माझी होतील कामारीं। तियेंवांचूनि येरें मारीं। किंबहुना चराचरीं। ईश्वरु तो मी ॥३५३॥
मी भोगभूमीचा रावो। आजि सर्वसुखासी ठावो। म्हणौनि इंद्रुही वावो। मातें पाहुनि ॥३५४॥
मी मनें वाचा देहें। करीं ते कैसें नोहे। कें मजवांचूनि आहे। आज्ञासिद्ध आन ? ॥३५५॥
तंवचि बळिया काळु। जंव न दिसें मी अतुर्बळु। सुखाचा कीर निखिळु। रासिवा मीचि ॥३५६॥

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥१५॥

कुबेरु आथिला होये। परी तो नेणें माझी सोये। संपत्ती मजसम नव्हे। श्रीनाथाही ॥३५७॥
माझिया कुळाचा उजाळू। कां जातिगोतांचा मेळू। पाहतां ब्रह्माही हळू। उणाचि दिसे ॥३५८॥
म्हणौनि मिरविती नांवें। वायां ईश्वरादि आघवे। नाहीं मजसीं सरी पावे। ऐसें कोण्ही ॥३५९॥
आतां लोपला अभिचारु। तया करीन मी जीर्णोद्धारु। प्रतिष्ठीन परमारु। यागवरी ॥३६०॥
मातें गाती वानिती। नटनाचें रिझविती। तयां देईन मागती। ते ते वस्तु ॥३६१॥
माजिरा अन्नपानीं। प्रमदांच्या आलिंगनीं। मी होईन त्रिभुवनीं। आनंदाकारु ॥३६२॥
काय बहु सांगों ऐसें। ते आसुरीप्रकृती पिसें। तुरंबिती असोसें। गगनौळें तियें ॥३६३॥

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥१६॥

ज्वराचेनि आटोपें। रोगी भलतैसें जल्पे। चावळती संकल्पें। जाण ते तैसें ॥३६४॥
अज्ञान आतुले धुळी। म्हणौनि आशा वाहटुळी। भोवंडीजती अंतराळीं। मनोरथांच्या ॥३६५॥
अनियम आषाढ मेघ। कां समुद्रोर्मी अभंग। तैसे कामिती अनेग। अखंड काम ॥३६६॥
मग पैं कामनाचि तया। जीवीं जाल्या वेलरिया। वोरपिली कांटिया। कमळें जैसीं ॥३६७॥
कां पाषाणाचिया माथां। हांडी फुटली पार्था। जीवीं तैसें सर्वथा। कुटके जाले ॥३६८॥
तेव्हां चढतिये रजनी। तमाची होय पुरवणी। तैसा मोहो अंतःकरणीं। वाढोंचि लागे ॥३६९॥

आणि वाढे जंव जंव मोहो। तंव तंव विषयीं रोहो। विषय तेथ ठावो। पातकासी ॥३७०॥
पापें आपलेनि थांवें। जंव करिती मेळावे। तंव जितांचि आघवे। येती नरकां ॥३७१॥
म्हणौनि गा सुमती। जे कुमनोरथां पाळिती। ते आसुर येती वस्ती। तया ठाया ॥३७२॥
जेथ असिपत्रतरुवर। खदिरांगाराचे डोंगर। तातला तेलीं सागर। उतताती ॥३७३॥
जेथ यातनांची श्रेणी। हे नित्य नवी यमजाचणी। पडती तिये दारुणीं। नरकलोकीं ॥३७४॥
ऐसे नरकाचिये शेले। भागीं जे जे जन्मले। तेही देखों भुलले। यजिती यागीं ॥३७५॥
एऱ्हवीं यागादिक क्रिया। आहाण तेचि धनंजया। परी विफळती आचरोनियां। नाटकी जैसी ॥३७६॥
वल्लभाचिया उजरिया। आपणयाप्रति कुस्त्रिया। जोडोनि तोषिती जैसियां। अहेवपणें ॥३७७॥

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥१७॥

तैसें आपणयां आपण। मानितां महंतपण। फुगती असाधारण। गर्वें तेणें ॥३७८॥
मग लवों नेणती कैसे। आटिवा लोहाचे खांब जैसे। कां उधवले आकाशें। शिळाराशी ॥३७९॥
तैसें आपुलिये बरवे। आपणचि रिझतां जीवें। तृणाहीहूनि आघवें। मानिती नीच ॥३८०॥
वरी धनाचिया मदिरा। माजूनि धनुर्धरा। कृत्याकृत्यविचारा। सवतें केलें ॥३८१॥
जया आंगीं आयती ऐसी। तेथ यज्ञाची गोठी कायसी। तरी काय काय पिसीं। न करिती गा ? ॥३८२॥
म्हणौनि कोणे एके वेळे। मौढ्यमद्याचेनि बळें। यागाचींही टवाळें। आदरिती ॥३८३॥
ना कुंड मंडप वेदी। ना उचित साधनसमृद्धी। आणि तयांसी तंव विधी। द्वंद्वचि सदा ॥३८४॥
देवां ब्राह्मणांचेनि नांवें। आडवारेनहि नोहावें। ऐसें आथी तेथ यावें। लागे कवणा ? ॥३८५॥
पैं वासरुवाचा भोकसा। गाईपुढें ठेवूनि जैसा। उगाणा घेती क्षीररसा। बुद्धिवंत ॥३८६॥
तैसें यागाचेनि नांवें। जग वाऊनि हांवें। नागविती आघवें। अहेरावारी ॥३८७॥
ऐशा कांहीं आपुलिया। होमिती जे उजरिया। तेणें कामिती प्राणिया। सर्वनाशु ॥३८८॥

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधम् च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥१८॥

मग पुढां भेरी निशाण। लाउनी ते दीक्षितपण। जगीं फोकारिती आण। वावो वावो ॥३८९॥
तेव्हां महत्त्वें तेणें अधमा। गर्वा चढे महिमा। जैसे लेवे दिधले तमा। काजळाचे ॥३९०॥
तैसें मौढ्य घणावे। औद्धत्य उंचावे। अहंकारु दुणावे। अविवेकुही ॥३९१॥
मग दुजयाची भाष। नुरवावया निःशेष। बळीयेपणा अधिक। होय बळ ॥३९२॥
ऐसा अहंकार बळा। जालिया एकवळा। दर्पसागरु मर्यादवेळा। सांडूनि उते ॥३९३॥
मग वोसंडिलेनि दर्पें। कामाही पित्त कुरुपे। तया धगीं सैंघ पळिपे। क्रोधाग्नि तो ॥३९४॥
तेथ उन्हाळा आगी खरमरा। तेलातुपाचिया कोठारा। लागला आणि वारा। सुटला जैसा ॥३९५॥
तैसा अहंकारु बळा आला। दर्पु कामक्रोधीं गूढला। या दोहींचा मेळु जाला। जयांच्या ठायीं ॥३९६॥
ते आपुलिया सवेशा। मग कोणी कोणी हिंसा। या प्राणियांते वीरेशा। न साधती गा ? ॥३९७॥
पहिलें तंव धनुर्धरा। आपुलिया मांसरुधिरा। वेंचु करिती अभिचारा- । लागोनियां ॥३९८॥
तेथ जाळिती जियें देहें। यामाजीं जो मी आहें। तया आत्मया मज घाये। वाजती ते ॥३९९॥
आणि अभिचारकीं तिहीं। उपद्रविजे जेतुलें कांहीं। तेथ चैतन्य मी पाहीं। सीणु पावे ॥४००॥
आणि अभिचारावेगळें। विपायें जे अवगळें। तया टाकिती इटाळें। पैशून्याचीं ॥४०१॥
सती आणि सत्पुरुख। दानशीळ याज्ञिक। तपस्वी अलौकिक। संन्यासी जे ॥४०२॥

कां भक्त हन महात्मे। इयें माझीं निजाचीं धामें। निर्वाळलीं होमधर्में। श्रौतादिकीं ॥४०३॥
तयां द्वेषाचेनि काळकूटें। बासटोनि तिखटें। कुबोलांचीं सदटें। सूति कांडें ॥४०४॥
तानहं द्विषतः क्रूरान संसारेषु नराधमान ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥१९॥
ऐसे आघवाचि परी। प्रवर्तले माझ्या वैरी। तयां पापियां जें मी करीं। तें आइक पां ॥४०५॥
तरी मनुष्यदेहाचा तागा। घेऊनि रुसती जे जगा। ते पदवी ह्रिरोनि पैं गा। ऐसे ठेवीं ॥४०६॥
जे क्लेशगांवींचा उकरडा। भवपुरींचा पानवडा। ते तमोयोनि तयां मूढां। वृत्तीचि दें ॥४०७॥
मग आहाराचेनि नांवें। तृणही जेथ नुगवे। ते व्याघ्र वृश्चिक आडवे। तैसिये करीं ॥४०८॥
तेथ क्षुधादुःखें बहुतें। तोडूनि खाती आपणयातें। मरमरों मागुतें। होतचि असती ॥४०९॥
कां आपुला गरळजाळीं। जळिती आंगाची पेंदळी। ते सर्पचि करीं बिळीं। निरुंधला ॥४१०॥
परी घेतला श्वासु घापे। येतुलेनही मापें। विसांवा तयां नाटोपे। दुर्जनांसी ॥४११॥
ऐसेनि कल्पांचिया कोडी। गणितांही संख्या थोडी। तेतुला वेळु न काढी। क्लेशौनि तयां ॥४१२॥
तरी तयांसी जेथ जाणें। तेथिंचें हें पहिलें पेणें। तें पावोनि येरें दारुणें। न होती दुःखें ॥४१३॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥२०॥
हा ठायवरी। संपत्ति ते आसुरी। अधोगती अवधारीं। जोडिली तिहीं ॥४१४॥
पाठीं व्याघ्रादि तामसा। योनी तो अळुमाळु ऐसा। देहाधाराचा उसासा। आथी जोही ॥४१५॥
तोही मी वोल्हावा हिरें। मग तमचि होती एकसरें। जेथे गेलें आंधारें। काळवंडैजे ॥४१६॥
जयांची पापा चिळसी। नरक घेती विवसी। शीण जाय मूर्च्छी। सिणें जेणें ॥४१७॥
मळु जेणें मैळे। तापु जेणें पोळे। जयाचेनि नांवें सळे। महाभय ॥४१८॥
पापा जयाचा कंटाळा। उपजे अमंगळ अमंगळा। विटाळुही विटाळा। बिहे जया ॥४१९॥
ऐसें विश्वाचेया वोखटेया। अधम जे धनंजया। तें ते होती भोगूनियां। तामसा योनी ॥४२०॥
अहा सांगतां वाचा रडे। आठवितां मन खिरडे। कटारे मूर्खीं केवढे। जोडिले निरय ॥४२१॥
कायिसया ते आसुर। संपत्ति पोषिती वाउर। जिया दिधलें घोर। पतन ऐसें ॥४२२॥
म्हणौनि तुवां धनुर्धरा। नोहावें गा तिया मोहरा। जेउता वासु आसुरा। संपत्तिवंता ॥४२३॥
आणि दंभादि दोष साही। हे संपूर्ण जयांच्या ठायीं। ते त्यजावे हें काई। म्हणों कीर ? ॥४२४॥
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥२१॥
परी काम क्रोध लोभ। या तिहींचेंही थोंब। थांवे तेथें अशुभ। पिकलें जाण ॥४२५॥
सर्व दुःखां आपुलिया। दर्शना धनंजया। पाढाऊ हे भलतया। दिधलें आहाती ॥४२६॥
कां पापियां नरकभोगीं। सुवावयालागीं जगीं। पातकांची दाटुगी। सभाचि हे ॥४२७॥
ते रौरव गा तंवचिवरी। आइकिजती पटांतरीं। जंव हे तिन्ही अंतरीं। उठती ना ॥४२८॥
अपाय तिहीं आसलग। यातना इहीं सवंग। हाणी हाणी नोहे हे तिघ। हेचि हाणी ॥४२९॥
काय बहु बोलों सुभटा। सांगितलिया निकृष्टा। नरकाचा दारवंटा। त्रिशंकु हा ॥४३०॥
या कामक्रोधलोभां- । माजीं जीवें जो होय उभा। तो निरयपुरीची सभा। सन्मानु पावे ॥४३१॥
म्हणौनि पुढत पुढतीं किरीटी। हे कामादि दोष त्रिपुटी। त्यजावींचि गा वोखटी। आघवा विषयीं ॥४३२॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।

आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् २२॥

धर्मादिकां चौंही आंतु। पुरुषार्थाची तैंचि मातु। करावी जैं संघातु। सांडील हा ॥४३३॥

हे तिन्ही जीवीं जंव जागती। तंववरी निकियाची प्राप्ती। हे माझे कान नाइकती। देवोही म्हणे ॥४३४॥

जया आपणपें पढिये। आत्मनाशा जो बिहे। तेणें न धरावी हे सोये। सावधु होईजे ॥४३५॥

पोटीं बांधोनि पाषाण। समुद्रीं बाहीं आंगवण। कां जियावया जेवण। काळकूटाचें ॥४३६॥

इहीं कामक्रोधलोभेंसी। कार्यसिद्धि जाण तैसी। म्हणौनि ठावोचि पुसीं। ययांचा गा ॥४३७॥

जैं कहीं अवचटें। हे तिकडी सांखळ तुटे। तैं सुखें आपुलिये वाटे। चालों लाभे ॥४३८॥

त्रिदोषीं सांडिलें शरीर। त्रिकुटीं फिटलिया नगर। त्रिदाह निमालिया अंतर। जैसें होय ॥४३९॥

तैसा कामादिकीं तिघीं। सांडिला सुख पावोनि जगीं। संगु लाहे मोक्षमार्गीं। सज्जनांचा ॥४४०॥

मग सत्संगें प्रबळें। सच्छास्त्राचेनि बळें। जन्ममृत्यूचीं निमाळें। निस्तरें रानें ॥४४१॥

ते वेळीं आत्मानंदें आघवें। जें सदा वसतें बरवें। तें तैसेंचि पाटण पावे। गुरुकृपेचें ॥४४२॥

तेथ प्रियाची परमसीमा। तो भेटे माउली आत्मा। तयें खेवीं आटे डिंडिमा। सांसारिक हे ॥४४३॥

ऐसा जो कामक्रोधलोभां। झाडी करूनि ठाके उभा। तो येवढिया लाभा। गोसावी होय ॥४४४॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत ।

न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥२३॥

ना हें नावडोनि कांहीं। कामादिकांच्याचि ठायीं। दाटिली जेणें डोई। आत्मचोरें ॥४४५॥

जो जगीं समान सकृपु। हिताहित दाविता दीपु। तो अमान्यु केला बापु। वेदु जेणें ॥४४६॥

न धरीचि विधीची भीड। न करीचि आपली चाड। वाढवीत गेला कोड। इंद्रियांचें ॥४४७॥

कामक्रोधलोभांची कास। न सोडीच पाळिली भाष। स्वैराचाराचें असोस। वळघला रान ॥४४८॥

तो सुटकेचिया वाहिणीं। मग पिवों न लाहे पाणी। स्वप्नींही ते कहाणी। दूरीचि तया ॥४४९॥

आणि परत्र तंव जाये। हें कीर तया आहे। परी ऐहिकही न लाहे। भोग भोगूं ॥४५०॥

तरी माशालागीं भुलला। ब्राह्मण पाणबुडां रिघाला। कीं तेथही पावला। नास्तिकवादु ॥४५१॥

तैसें विषयांचेनि कोडें। जेणें परत्रा केलें उबडें। तंव तोचि आणिकीकडे। मरणें नेला ॥४५२॥

एवं परत्र ना स्वर्गु। ना ऐहिकही विषयभोगु। तेथ केउता प्रसंगु। मोक्षाचा तो ? ॥४५३॥

म्हणौनि कामाचेनि बळें। जो विषय सेवूं पाहे सळें। तया विषयो ना स्वर्गु मिळे। ना उद्धरे तो ॥४५४॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।

ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥२४॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसंपद्विभागयोगोनाम षोडशोऽध्यायः ॥१६अ ॥

याकारणें पैं बापा। जया आथी आपुली कृपा। तेणें वेदांचिया निरोपा। आन न कीजे ॥४५५॥

पतीचिया मता। अनुसरोनि पतिव्रता। अनायासें आत्महिता। भेटेचि ते ॥४५६॥

नातरी श्रीगुरुवचना। दिठी देतु जतना। शिष्य आत्मभुवना- । माजीं पैसे ॥४५७॥

हें असो आपुला ठेवा। हाता आथी जरी यावा। तरी आदरें जेवीं दिवा। पुढां कीजे ॥४५८॥

तैसा अशेषांही पुरुषार्थां। जो गोसावी हो म्हणे पार्था। तेणें श्रुतिस्मृति माथां। बैसणें घापे ॥४५९॥

शास्त्र म्हणेल जें सांडावें। तें राज्यही तृण मानावें। जें घेववी तें न म्हणावें। विषही विरु ॥४६०॥

ऐसिया वेदैकनिष्ठा। जालिया जरी सुभटा। तरी कें आहे अनिष्टा। भेटणें गा ? ॥४६१॥

पैं अहितापासूनि काढिती। हित देऊनि वाढविती। नाहीं गा श्रुतिपरौती। माउली जगा ॥४६२॥

म्हणौनि ब्रह्मेंशीं मेळवी। तंव हे कोणें न सांडावी। अगा तुवांही ऐसीचि भजावी। विशेषेंसीं ॥४६३॥
जे आजि अर्जुना तूं येथें। करावया सत्य शास्त्रें सार्थें। जन्मलासि बळार्थें। धर्माचेनि ॥४६४॥
आणि धर्मानुज हें ऐसें। बोधेंचि आलें अपैसें। म्हणौनि आनारिसें। करूं नये ॥४६५॥
कार्याकार्यविवेकीं। शास्त्रेंचि करावीं पारखीं। अकृत्य तें कुडें लोकीं। वाळावें गा ॥४६६॥
मग कृत्यपणें खरें निगे। तें तुवां आपुलेनि आंगें। आचरोनि आदरें चांगें। सारावें गा ॥४६७॥
जे विश्वप्रामाण्याची मुदी। आजि तुझ्या हातीं असें सुबुद्धी। लोकसंग्रहासि त्रिशुद्धी। योग्यु होसी ॥४६८॥
एवं आसुरवर्गु आघवा। सांगोनि तेथिंचा निगावा। तोहि देवें पांडवा। निरूपिला ॥४६९॥
इयावरी तो पंडूचा। कुमरु सद्भावो जीवींचा। पुसेल तो चैतन्याचा। कानीं ऐका ॥४७०॥
संजयें व्यासाचिया निरोपा। तो वेळु फेडिला तया नृपा। तैसा मीहि निवृत्तिकृपा। सांगेन तुम्हां ॥४७१॥
तुम्ही संत माझिया कडा। दिठीचा कराल बहुडा। तरी तुम्हां माने येवढा। होईन मी ॥४७२॥
म्हणौनि निज अवधान। मज वोळगे पसायदान। दीजो जी सनाथु होईन। ज्ञानदेवो म्हणे ॥४७३॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां षोडशोऽध्यायः ॥

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय सतरावा ।

श्रद्धात्रयविभागयोगः ।

विश्वविकासित मुद्रा। जया सोडी तुझी योगमुद्रा। तया नमोजी गणेंद्रा। श्रीगुरुराया ॥१॥
त्रिगुणत्रिपुरीं वेढिला। जीवत्वदुर्गीं आडिला। तो आत्मशंभूनें सोडविला। तुझिया स्मृती ॥२॥
म्हणौनि शिवेंसीं कांटाळा। गुरुत्वें तूंचि आगळा। तर्‍ही हळु मायाजळा- । माजीं तारूनि ॥३॥
जे तुझ्याविखीं मूढ। तयांलागीं तूं वक्रतुंड। ज्ञानियांसी तरी अखंड। उजूचि आहासी ॥४॥
दैविकी दिठी पाहतां सानी। तर्‍ही मीलनोन्मीलनीं। उत्पत्ति प्रळयो दोन्ही। लीलाचि करिसी ॥५॥
प्रवृत्तिकर्णाच्या चाळीं। उठली मदगंधानिळीं। पूजीजसी नीलोत्पलीं। जीवभृंगांच्या ॥६॥
पाठीं निवृत्तिकर्णताळें। आहाळली ते पूजा विधुळे। तेव्हां मिरविसी मोकळें। आंगाचें लेणें ॥७॥
वामांगीचा लास्यविलासु। जो हा जगद्रूप आभासु। तो तांडवमिसें कळासु। दाविसी तूं ॥८॥
हें असो विस्मो दातारा। तूं होसी जयाचा सोयरा। सोइरिकेचिया व्यवहारा। मुकेचि तो ॥९॥
फेडितां बंधनाचा ठावो। तूं जगद्बंधु ऐसा भावो। धरूं वोळगे उवावो। तुझाचि आंगीं ॥१०॥
तंव दुजयाचेनि नांवें तया। देहही नुरेचि पैं देवराया। जेणें तूं आपणपयां। केलासि दुजा ॥११॥
तूंतें करूनि पुढें। जे उपायें घेती दवडे। तयां ठासी बहुवें पाडें। मागांचि तूं ॥१२॥
जो ध्यानें सूये मानसीं। तयालागीं नाहीं तूं त्याचे देशीं। ध्यानही विसरे तेणेंसीं। वालभ तुज ॥१३॥
तूतें सिद्धचि जो नेणे। तो नांदे सर्वज्ञपणें। वेदांही येवढें बोलणें। नेघसी कानीं ॥१४॥
मौन गा तुझें राशिनांव। आतां स्तोत्रीं कें बांधों हाव। दिसती तेतुली माव। भजों काई ॥१५॥
दैविकें सेवकु हों पाहों। तरी भेदितां द्रोहोचि लाहों। म्हणौनि आतां कांहीं नोहों। तुजलागीं जी ॥१६॥
जैं सर्वथा सर्वही नोहिजे। तैं अद्वया तूतें लाहिजे। हें जाणें मी वर्म तुझें। आराध्य लिंगा ॥१७॥
तरी नुरोनि वेगळेंपण। रसीं भजिन्नलें लवण। तैसें नमन माझें जाण। बहु काय बोलों ॥१८॥
आतां रिता कुंभ समुद्रीं रिगे। तो उचंबळत भरोनि निगे। कां दशीं दीपसंगें। दीपुचि होय ॥१९॥
तैसा तुझिया प्रणितीं। मी पूर्णु जाहलों श्रीनिवृत्ती। आतां आणीन व्यक्तीं। गीतार्थु तो ॥२०॥
तरी षोडशाध्यायशेखीं। तिये समाप्तीच्या श्लोकीं। जो ऐसा निर्णयो निष्टंकीं। ठेविला देवें ॥२१॥
जे कृत्याकृत्यव्यवस्था। अनुष्ठावया पार्था। शास्त्रचि एक सर्वथा। प्रमाण तुज ॥२२॥
तेथ अर्जुन मानसें। म्हणे हें ऐसें कैसें। जे शास्त्रेंवीण नसे। सुटिका कर्मा ॥२३॥
तरी तक्षकाची फडे। ठाकोनि कैं तो मणि काढे। कैं नाकींचा केशु जोडे। सिंहाचिये ? ॥२४॥
मग तेणें तो वोंविजे। तरीच लेणें पाविजे। एर्‍हवीं काय असिजे। रिक्तकंठीं ? ॥२५॥
तैसी शास्त्रांची मोकळी। यां कैं कोण पां वेंटाळी। एकवाक्यतेच्या फळीं। पैसिजे कैं ? ॥२६॥
जालयाही एकवाक्यता। कां लाभे वेळु अनुष्ठितां। कैंचा पैसारु जीविता। येतुलालिया ॥२७॥
आणि शास्त्रें अर्थें देशें काळें। या चहूंही जें एकफळे। तो उपावो कें मिळे। आघवयांसी ? ॥२८॥
म्हणौनि शास्त्राचें घडतें। नोहें प्रकारें बहुतें। तरी मुर्खा मुमुक्षां येथें। काय गति पां ? ॥२९॥
हा पुसावया अभिप्रावो। जो अर्जुन करी प्रस्तावो। तो सतराविया ठावो। अध्याया येथ ॥३०॥
तरी सर्वविषयीं वितृष्णु। जो सकळकळीं प्रवीणु। कृष्णाही नवल कृष्णु। अर्जुनत्वें जो ॥३१॥
शौर्या जोडला आधारु। जो सोमवंशाचा शृंगारु। सुखादि उपकारु। जयाची लीला ॥३२॥

जो प्रज्ञेचा प्रियोत्तमु। ब्रह्मविद्येचा विश्रामु। सहचरु मनोधर्मु। देवाचा जो ॥३३॥

अर्जुन उवाच ।

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।

तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥१॥

तो अर्जुन म्हणे गा तमालश्यामा। इंद्रियां फांवलिया ब्रह्मा। तुझां बोलु आम्हा। साकांक्षु पैं जी ॥३४॥

जें शास्त्रेंवांचूनि आणिकें। प्राणिया स्वमोक्षु न देखे। ऐसें कां कैंपखें। बोलिलासी ॥३५॥

तरी न मिळेचि तो देशु। नव्हेचि काळा अवकाशु। जो करवी शास्त्राभ्यासु। तोही दुरी ॥३६॥

आणि अभ्यासीं विरजिया। होती जिया सामुग्रिया। त्याही नाहीं आपैतिया। तिये वेळीं ॥३७॥

उजू नोहेचि प्राचीन। नेदीचि प्रज्ञा संवाहन। ऐसें ठेलें आपादन। शास्त्राचें जया ॥३८॥

किंबहुना शास्त्रविखीं। एकही न लाहातीचि नखी। म्हणौनि उखिविखी। सांडिली जिहीं ॥३९॥

परी निर्धारूनि शास्त्रें। अर्थानुष्ठानें पवित्रें। नांदताति परत्रें। साचारें जे ॥४०॥

तयांऐसें आम्हीं होआवें। ऐसी चाड बांधोनि जीवें। घेती तयांचें मागावे। आचरावया ॥४१॥

धड्याचिया आखरां। तळीं बाळ लिहे दातारा। कां पुढांसूनि पडिकरा। अक्षमु चाले ॥४२॥

तैसें सर्वशास्त्रनिपुण। तयाचें जें आचरण। तेंचि करिती प्रमाण। आपलिये श्रद्धे ॥४३॥

मग शिवादिकें पूजनें। भूम्यादिकें महादानें। आग्निहोत्रादि यजनें। करिती जे श्रद्धा ॥४४॥

तयां सत्त्वरजतमां- /। माजीं कोण पुरुषोत्तमा। गति होय ते आम्हां। सांगिजो जी ॥४५॥

तंव वैकुंठपीठींचें लिंग। जो निगमपद्माचा पराग। जिये जयाचेनि हें जग। अंगच्छाया ॥४६॥

काळ सावियाचि वाढु। लोकोत्तर प्रौढु। आद्वितीय गूढु। आनंदघनु ॥४७॥

इयें श्लाघिजती जेणें बिकें। तें जयाचें आंगीं असिकें। तो श्रीकृष्ण स्वमुखें। बोलत असे ॥४८॥

श्री भगवानुवाच ।

त्रिविध भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।

सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥२॥

म्हणे पार्था तुझा अतिसो। हेंही आम्ही जाणतसों। जे शास्त्राभ्यासाचा आडसो। मानितोसि कीं ॥४९॥

नुसधियाची श्रद्धा। झोंबों पाहसी परमपदा। तरी तैसें हें प्रबुद्धा। सोहोपें नोहे ॥५०॥

श्रद्धा म्हणितलियासाठीं। पातेजों नये किरीटी। काय द्विजु अंत्यजघृष्टीं। अंत्यजु नोहे ? ॥५१॥

गंगोदक जरी जालें। तरी मद्यभांडां आलें। तें घेऊं नये कांहीं केलें। विचारीं पां ॥५२॥

चंदनु होय शीतळु। परी अग्नीसी पावे मेळु। तैं हातीं धरितां जाळूं। न शके काई ? ॥५३॥

कां किडाचिये आटतिये पुटीं। पडिलें सोळें किरीटी। घेतलें चोखासाठीं। नागवीना ? ॥५४॥

तैसें श्रद्धेचें दळवाडें। अंगें कीर चोखडें। परी प्राणियांच्या पडे। विभागीं जैं ॥५५॥

ते प्राणिये तंव स्वभावें। आनादिमायाप्रभावें। त्रिगुणाचेचि आघवे। वळिले आहाती ॥५६॥

तेथही दोन गुण खांचती। मग एक धरी उन्नती। तैं तैसियाचि होती वृत्ती। जीवांचिया ॥५७॥

वृत्तीऐसें मन धरिती। मनाऐसी क्रिया करिती। केलिया ऐसी वरीती। मरोनि देहें ॥५८॥

बीज मोडे झाड होये। झाड मोडे बीजीं सामाये। ऐसेनि कल्पकोडी जाये। परी जाति न नशे ॥५९॥

तियापरीं यियें अपारें। होत जात जन्मांतरें। परी त्रिगुणत्व न व्यभिचरें। प्राणियांचें ॥६०॥

म्हणूनि प्राणियांच्या पैकीं। पडिली श्रद्धा अवलोकीं। ते होय गुणासारिखी। तिहीं ययां ॥६१॥

विपायें वाढे सत्त्व शुद्ध। तेव्हां ज्ञानासी करी साद। परी एका दोघे वोखद। येर आहाती ॥६२॥

सत्त्वाचेनि आंगलगें। ते श्रद्धा मोक्षफळा रिगे। तंव रज तम उगे। कां पां राहाती ? ॥६३॥

मोडोनि सत्त्वाची त्राये। रजोगुण आकाशें जाये। तेव्हां तेचि श्रद्धा होये। कर्मकेरसुणी ॥६४॥
मग तमाची उठी आगी। तेव्हां तेचि श्रद्धा भंगी। हों लागे भोगालागीं। भलतेया ॥६५॥
सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥३॥
एवं सत्त्वरजतमा- /। वेगळी श्रद्धा सुवर्मा। नाहीं गा जीवग्रामा- /। माजीं यया ॥६६॥
म्हणौनि श्रद्धा स्वाभाविक। असे पैं त्रिगुणात्मक। रजतमसात्त्विक। भेदीं इहीं ॥६७॥
जैसें जीवनचि उदक। परी विषीं होय मारक। कां मिरयामाजीं तीख। उंसीं गोड ॥६८॥
तैसा बहुवसें तमें। जो सदाचि होय निमे। तेथ श्रद्धा परीणमे। तेंचि होऊनि ॥६९॥
मग काजळा आणि मसी। न दिसे विवंचना जैसी। तेवीं श्रद्धा तामसी। सिनी नाहीं ॥७०॥
तैसीच राजसीं जीवीं। रजोमय जाणावी। सात्त्विकीं आघवीं। सत्त्वाचीच ॥७१॥
ऐसेनि हा सकळु। जगडंबरु निखिळु। श्रद्धेचाचि केवळु। वोतला असे ॥७२॥
परी गुणत्रयवशें। त्रिविधपणाचें लासें। श्रद्धे जें उठिलें असे। तें वोळख तूं ॥७३॥
तरी जाणिजे झाड फुलें। कां मानस जाणिजे बोलें। भोगें जाणिजे केलें। पूर्वजन्मींचें ॥७४॥
तैसीं जिहीं चिन्हीं। श्रद्धेचीं रूपें तीन्हीं। देखिजती ते वानी। अवधारीं पां ॥७५॥
यजन्ते सात्त्विका देवान यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥४॥
तरी सात्त्विक श्रद्धा। जयांचा होय बांधा। तयां बहुतकरूनि मेधा। स्वर्गीं आथी ॥७६॥
ते विद्याजात पढती। यज्ञक्रिये निवडती। किंबहुना पडती। देवलोकीं ॥७७॥
आणि श्रद्धा राजसा। घडले जे वीरेशा। ते भजती राक्षसां। खेचरां हन ॥७८॥
श्रद्धां जे कां तामसी। ते मी सांगेन तुजपाशीं। जे कां केवळ पापराशी। आतिकर्कशी निर्दयत्वें ॥७९॥
जीववधें साधूनि बळी। भूतप्रेतकुळें मैळीं। स्मशानीं संध्याकाळीं। पूजिती जे ॥८०॥
ते तमोगुणाचें सार। काढूनि निर्मिले नर। जाण तामसियेचें घर। श्रद्धेचें तें ॥८१॥
ऐसी इहीं तिहीं लिंगीं। त्रिविध श्रद्धा जगीं। पैं हें ययालागीं। सांगतु असें ॥८२॥
जे हे सात्त्विक श्रद्धा। जतन करावी प्रबुद्धा। येरी दोनी विरुद्धा। सांडाविया ॥८३॥
हे सात्त्विकमति जया। निर्वाहती होय धनंजया। बागुल नोहे तया। कैवल्य तें ॥८४॥
तो न पढो कां ब्रह्मसूत्र। नालोढो सर्व शास्त्र। सिद्धांत न होत स्वतंत्र। तयाच्या हातीं ॥८५॥
परी श्रुतिस्मृतींचे अर्थ। जे आपण होऊनि मूर्त। अनुष्ठानें जगा देत। वडील जे हे ॥८६॥
तयांचीं आचरती पाउलें। पाऊनि सात्त्विकी श्रद्धा चाले। तो तेंचि फळ ठेविलें। ऐसें लाहे ॥८७॥
पैं एक दीपु लावी सायासें। आणिक तेथें लऊँ बैसें। तरी तो काय प्रकाशें। वंचिजे गा ? ॥८८॥
कां येकें मोल अपार। वेंचोनि केलें धवळार। तो सुरवाडु वस्तीकर। न भोगी काई ? ॥८९॥
हें असो जो तळें करी। तें तयाचीच तृषा हरी। कीं सुआरासीचि अन्न घरीं। येरां नोहे ? ॥९०॥
बहुत काय बोलों पैं गा। येका गौतमासीचि गंगा। येरां समस्तां काय जगां। वोहोळ जाली ? ॥९१॥
म्हणौनि आपुलियापरी। शास्त्र अनुष्ठीती कुसरी। जाणे तयांते श्रद्धाळु जो वरी। तो मूर्खुही तरे ॥९२॥
अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दंभाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥५॥
ना शास्त्राचेनि कीर नांवें। खाकरोंही नेणती जीवें। परी शास्त्रज्ञांही शिवें। टेंकों नेदिती ॥९३॥
वडिलांचिया क्रिया। देखोनि वाती वांकुलिया। पंडितां डाकुलिया। वाजविती ॥९४॥

आपलेनीचि आटोपें। धनित्वाचेनि दर्पें। साचचि पाखंडाचीं तपें। आदरिती ॥९५॥
आपुलिया पुढिलांचिया। आंगीं घालूनि कातिया। रक्तमांसा प्रणीतया। भर भरु ॥९६॥
रिचविती जळतकुंडीं। लाविती चेड्याच्या तोंडीं। नवसियां देती उंडी। बाळकांची ॥९७॥
आग्रहाचिया उजरिया। क्षुद्र देवतां वरीया। अन्नत्यागें सातरीया। ठाकती एक ॥९८॥
अगा आत्मपरपीडा। बीज तमक्षेत्रीं सुहाडा। पेरिती मग पुढां। तेंचि पिके ॥९९॥
बाहु नाहीं आपुलिया। आणि नावेतेंही धनंजया। न धरी होय तया। समुद्रीं जैसें ॥१००॥
कां वैद्यातें करी सळा। रसु सांडी पाय खोळां। तो रोगिया जेवीं जिव्हाळा। सवता होय ॥१०१॥
नाना पडिकराचेनि सळें। काढी आपुलेचि डोळे। तें वानवसां आंधळें। जैसें ठाके ॥१०२॥
तैसें तयां आसुरां होये। निंदूनि शास्त्रांची सोये। सैंघ धांवताती मोहें। आडवीं जे कां ॥१०३॥
कामु करवी तें करिती। क्रोधु मारवी ते मारिती। किंबहुना मातें पुरिती। दुःखाचा गुंडां ॥१०४॥
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान विद्ध्यासुरनिश्चयान ॥६॥
आपुलां परावां देहीं। दुःख देती जें जें कांहीं। मज आत्मया तेतुलाही। होय शीणु ॥१०५॥
पैं वाचेचेनिही पालवें। पापियां तयां नातळावें। परी पडिलें सांगावें। त्यजावया ॥१०६॥
प्रेत बाहिरें घालिजे। कां अंत्यजु संभाषणीं त्यजिजे। हें असो हातें क्षाळिजे। कश्मलातें ? ॥१०७॥
तेथ शुद्धीचिया आशा। तो लेपु न मनवे जैसा। तयांतें सांडावया तैसा। अनुवादु हा ॥१०८॥
परी अर्जुना तूं तयांतें। देखसी तैं स्मर हो मातें। जे आन प्रायश्चित्त येथें। मानेल ना ॥१०९॥
म्हणौनि जे श्रद्धा सात्त्विकी। पुढती तेचि पैं येकी। जतन करावी निकी। सर्वांपरी ॥११०॥
तरी धरावा तैसा संगु। जेणें पोखे सात्त्विक लागु। सत्त्ववृद्धीचा भागु। आहारु घेपें ॥१११॥
एऱ्हवीं तरी पाहीं। स्वभाववृद्धीच्या ठाईं। आहारावांचूनि नाहीं। बळी हेतु ॥११२॥
प्रत्यक्ष पाहें पां वीरा। जो सावध घे मदिरा। तो होऊनि ठाके माजिरा। तियेचि क्षणीं ॥११३॥
कां जो साविया अन्नरसु सेवी। तो व्यापिजे वातश्लेष्मस्वभावीं। काय ज्वरु जालिया निववी। पयादिक ? ॥११४॥
नातरी अमृत जयापरी। घेतलिया मरण वारी। कां आपुलियाऐसें करी। जैसें विष ॥११५॥
तेवीं जैसा घेपे आहारु। धातु तैसाचि होय आकारु। आणि धातु ऐसा अंतरु। भावो पोखे ॥११६॥
जैसें भांडियाचेनि तापें। आंतुलें उदकही तापे। तैसी धातुवशें आटोपे। चित्तवृत्ती ॥११७॥
म्हणौनि सात्त्विकु रसु सेविजे। तैं सत्त्वाची वाढी पाविजे। राजसा तामसा होईजे। येरी रसीं ॥११८॥
तरी सात्त्विक कोण आहारु। राजसा तामसा कायी आकारु। हें सांगों करीं आदरु। आकर्णनीं ॥११९॥
आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिम शृणु ॥७॥
आणि एकसरें आहारा। कैसेनि तिनी मोहरा। जालिया तेही वीरा। रोकडें दॐ ॥१२०॥
तरी जेवणाराचिया रुची। निष्पत्ति कीं बोनियांची। आणि जेवितां तंव गुणांची। दासी येथ ॥१२१॥
जे जीव कर्ता भोक्ता। तो गुणास्तव स्वभावता। पावोनियां त्रिविधता। चेष्टे त्रिधा ॥१२२॥
म्हणौनि त्रिविधु आहारु। यज्ञुही त्रिप्रकारु। तप दान हन व्यापारु। त्रिविधचि ते ॥१२३॥
पैं आहार लक्षण पहिले? । सांगों जें म्हणितलें। तें आईक गा भलें। रूप करूं ॥१२४॥
आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥८॥
तरी सत्त्वगुणाकडे। जें दैवें भोक्ता पडे। तैं मधुरीं रसीं वाढे। मेचु तया ॥१२५॥

आंगेंचि द्रव्यें सुरसें। जे आंगेंचि पदार्थ गोडसे। आंगेंचि स्नेहें बहुवसें। सुपक्कें जियें ॥१२६॥
आकारें नव्हती डगळें। स्पर्शें अति मवाळें। जिभेलागीं स्नेहाळें। स्वादें जियें ॥१२७॥
रसें गाढीं वरी ढिलीं। द्रवभावीं आथिलीं। ठायें ठावो सांडिलीं। अग्नितापें ॥१२८॥
आंगें सानें परीणामें थोरु। जैसें गुरुमुखींचें अक्षरु। तैशी अल्पीं जिहीं अपारु। तृप्ति राहे ॥१२९॥
आणि मुखीं जैसीं गोडें। तैसीचिहि ते आंतुलेकडे। तिये अन्नीं प्रीति वाढे। सात्त्विकांसी ॥१३०॥
एवं गुणलक्षण। सात्त्विक भोज्य जाण। आयुष्याचें त्राण। नीच नवें हें ॥१३१॥
येणें सात्त्विक रसें। जंव देहीं मेहो वरीषे। तंव आयुष्यनदी उससे। दिहाचि दिहा ॥१३२॥
सत्त्वाचिये कीर पाळती। कारण हाचि सुमती। दिवसाचिये उन्नती। भानु जैसा ॥१३३॥
आणि शरीरा हन मानसा। बळाचा पैं कुवासा। हा आहारु तरी दशा। कैंची रोगां ॥१३४॥
हा सात्त्विकु होय भोग्यु। तैं भोगावया आरोग्यु। शरीरासी भाग्यु। उदयलें जाणो ॥१३५॥
आणि सुखाचें घेणें देणें। निकें उवाया ये येणें। हें असो वाढे साजणें। आनंदेंसीं ॥१३६॥
ऐसा सात्त्विकु आहारु। परीणमला थोरु। करी हा उपकारु। सबाह्यासी ॥१३७॥
आतां राजसासि प्रीती। जिहीं रसीं आथी। करूं तयाही व्यक्ती। प्रसंगें गा ॥१३८॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥९॥

तरी मारें उणें काळकुट। तेणें मानें जें कडुवट। कां चुनियाहूनि दासट। आम्ल हन ॥१३९॥
कणिकीतें जैसें पाणी। तैसेंचि मीठ बांधया आणी। तेतुलीच मेळवणी। रसांतरांची ॥१४०॥
ऐसें खारट अपाडें। राजसा तया आवडे। ऊन्हाचेनि मिषें तोंडें। आगीचि गिळी ॥१४१॥
वाफेचिया सिगे। वातीही लाविल्या लागे। तैसें उन्ह मागे। राजसु तो ॥११४२॥
वावदळ पाडूनि ठाये। साबळु डाहारला आहे। तैसें तीख तो खाये। जें घायेविण रुपे ॥१४३॥
आणि राखेहूनि कोरडें। आंत बाहेरी येके पाडें। तो जिव्हादंशु आवडे। बहु तया ॥१४४॥
परस्परें दांतां। आदळु होय खातां। तो गा तोंडीं घेतां। तोषों लागे ॥१४५॥
आधींच द्रव्यें चुरमुरीं। वरी परवडिजती मोहरी। जियें घेतां होती धुवारी। नाकेंतोंडें ॥१४६॥
हें असो उगें आगीतें। म्हणे तैसें राइतें। पढियें प्राणापरौतें। राजसासि गा ॥१४७॥
ऐसा न पुरोनि तोंडा। जिभा केला वेडा। अन्नमिषें अग्नि भडभडां। पोटीं भरी ॥१४८॥
तैसाचि लवंगा सुंठे। मग भुईं गा सेजे खाटे। पाणियाचें न सुटे। तोंडोनि पात्र ॥१४९॥
ते आहार नव्हती घेतले। व्याधिव्याळ जे सुतले। ते चेववावया घातलें। माजवण पोटीं ॥१५०॥
तैसें एकमेकां सळें। रोग उठती एके वेळे। ऐसा राजसु आहारु फळे। केवळ दुःखें ॥१५१॥
एवं राजसा आहारा। रूप केलें धनुर्धरा। परीणामाचाहि विसुरा। सांगितला ॥१५२॥
आतां तया तामसा। आवडे आहारु जैसा। तेंही सांगों चिळसा। झणें तुम्ही ॥१५३॥
तरी कुहिलें उष्टें खातां। न मनिजे तेणें अनहिता। जैसें कां उपहिता। म्हैसी खाय ॥१५४॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यम् भोजनं तामसप्रियम् ॥१०॥

निपजलें अन्न तैसें। दुपाहरीं कां येरें दिवसें। अतिकरें तैं तामसें। घेईजे तें ॥१५५॥
नातरी अर्ध उकडिलें। कां निपट करपोनि गेलें। तैसेंही खाय चुकलें। रसा जें येवों ॥१५६॥
जया कां आथि पूर्ण निष्पत्ती। जेथ रसु धरी व्यक्ती। तें अन्न ऐसी प्रतीती। तामसा नाहीं ॥१५७॥
ऐसेनि कहीं विपायें। सदन्ना वरपडा होये। तरी घाणी सुटे तंव राहे। व्याघ्रु जैसा ॥१५८॥

कां बहुवें दिवशीं वोलांडिलें। स्वादपणें सांडिलें। शुष्क अथवा सडलें। गाभिणेंही हो ॥१५९॥
तेंही बाळाचे हातवरी। चिवडिलें जैसी राडी करी। का सवें बैसोनि नारी। गोतांबील करी ॥१६०॥
ऐसेनि कश्मळें जैं खाय। तैं तया सुखभोजन ऐसें होय। परी येणेंही न धाय। पापिया तो ॥१६१॥
मग चमत्कारु देखा। निषेधाचा आंबुखा। जया का सदोखा। कुद्रव्यासी ॥१६२॥
तया अपेयांच्या पानीं। अखाद्यांच्या भोजनीं। वाढविजे उतान्ही। तामसें तेणें ॥१६३॥
एवं तामस जेवणारा। ऐसैसी मेचु हे वीरा। तयाचें फल दुसरां। क्षणीं नाहीं ॥१६४॥
जे जेव्हांचि हें अपवित्र। शिवे तयाचें वक्त्र। तेव्हांचि पापा पात्र। जाला तो कीं ॥१६५॥
यावरतें जें जेवीं। ते जेविती वोज न म्हणावी। पोटभरती जाणावी। यातना ते ॥१६६॥
शिरच्छेदें काय होये। का आगीं रिघतां कैसें आहे। हें जाणावें काई पाहें। परी साहातुचि असे ॥१६७॥
म्हणौनि तामसा अन्ना। परीणामु गा सिनाना। न सांगोंचि गा अर्जुना। देवो म्हणे ॥१६८॥
आतां ययावरी। आहाराचिया परी। यज्ञुही अवधारीं। त्रिधा असे ॥१६९॥
परी तिहींमाजीं प्रथम। सात्त्विक यज्ञाचें वर्म। आईक पां सुमहिम - । शिरोमणी ॥१७०॥
अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ॥यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥११॥
तरी एकु प्रियोत्तमु- /। वांचोनि वाढों नेदी कामु। जैसा का मनोधर्मु। पतिव्रतेचा ॥१७१॥
नाना सिंधूतें ठाकोनि गंगा। पुढारां न करीचि रिगा। का आत्मा देखोनि उगा। वेदु ठेला ॥१७२॥
तैसें जे आपुल्या स्वहितीं। वेंचूनियां चित्तवृत्ती। नुरवितीचि अहंकृती। फळालागीं ॥१७३॥
पातलेया झाडाचें मूळ। मागुतें सरों नेणेंचि जळ। जिरालें गां केवळ। तयाच्याचि आंगीं ॥१७४॥
तैसें मनें देहीं। यजननिश्चयाच्या ठायीं। हारपोनि जें कांहीं। वांछितीना ॥१७५॥
तिहीं फळवांच्छात्यागीं। स्वधर्मावांचूनि विरागीं। कीजे तो यज्ञु सर्वांगीं। अळंकृतु ॥१७६॥
परी आरिसा आपणपें। डोळां जैसें घेपें। कां तळहातींचें दीपें। रत्न पाहिजे ॥१७७॥
नाना उदितें दिवाकरें। गमावा मार्गु दिठी भरे। तैसा वेदु निर्धारें। देखोनियां ॥१७८॥
तियें कुंडें मंडप वेदी। आणीकही संभारसमृद्धी। ते मेळवणी जैसी विधी। आपणपां केली ॥१७९॥
सकळावयव उचितें। लेणीं पातलीं जैसीं आंगातें। तैसे पदार्थ जेथिंचे तेथें। विनियोगुनी ॥१८०॥
काय वानूं बहुतीं बोलीं। जैसी सर्वाभरणीं भरली। ते यज्ञविद्याचि रूपा आली। यजनमिषें ॥१८१॥
तैसा सांगोपांगु। निफजे जो यागु। नुठऊनियां लागु। महत्त्वाचा ॥१८२॥
प्रतिपाळु तरी पाटाचा। झाडीं कीजे तुळसीचा। परी फळा फुला छायेचा। आश्रयो नाहीं ॥१८३॥
किंबहुना फळाशेवीण। ऐसेया निगुती निर्माण। होय तो यागु जाण। सात्त्विकु गा ॥१८४॥
अभिसन्धाय तु फलं दंभार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥१२॥
आतां यज्ञु कीर वीरेशा। करी पैं याचिऐसा। परी श्राद्धालागीं जैसा। अवंतिला रावो ॥१८५॥
जरी राजा घरासि ये। तरी बहुत उपेगा जाये। आणि कीर्तीही होये। श्राद्ध न ठके ॥१८६॥
तैसा धरूनि आवांका। म्हणे स्वर्गु जोडेल असिका। दीक्षितु होईन मान्यु लोकां। घडेल यागु ॥१८७॥
ऐसी केवळ फळालागीं। महत्त्व फोकारावया जगीं। पार्था निष्पत्ति जे यागीं। राजस पैं ते ॥१८८॥
विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥१३॥
आणि पशुपक्षिविवाहीं। जोशी कामापरौता नाहीं। तैसा तामसा यज्ञा पाहीं। आग्रहोचि मूळ ॥१८९॥
वारया वाट न वाहे। कीं मरण मुहूर्त पाहे। निषिद्धांसीं बिहे। आगी जरी ॥१९०॥

तरी तामसाचिया आचारा। विधीचा आथी वोढावारा। म्हणूनि तो धनुर्धरा। उत्सृंखळु ॥१९१॥
नाहीं विधीची तेथ चाड। नये मंत्रादिक तयाकड। अन्नजातां न सुये तोंड। मासिये जेवीं ॥१९२॥
वैराचा बोधु ब्राह्मणा। तेथ कें रिगेल दक्षिणा। अग्नि जाला वाउधाणा। वरपडा जैसा ॥१९३॥
तैसें वायांचि सर्वस्व वेंचे। मुख न देखती श्रद्धेचें। नागविलें निपुत्रिकाचें। जैसें घर ॥१९४॥
ऐसा जो यज्ञाभासु। तया नाम यागु तामसु। आइकें म्हणे निवासु। श्रियेचा तो ॥१९५॥
आता गंगेचें एक पाणी। परी नेलें आनानीं वाहणीं। एक मळीं एक आणी। शुद्धत्व जैसें ॥१९६॥
तैसें तिहीं गुणीं तप। येथ जाहलें आहे त्रिरूप। तें एक केलें दे पाप। उद्धरी एक ॥१९७॥
तरी तेंचि तिहीं भेदीं। कैसेनि पां म्हणौनि सुबुद्धी। जाणों पाहासी तरी आधीं। तपचि जाण ॥१९८॥
येथ तप म्हणजे काई। तें स्वरूप दॐ पाहीं। मग भेदिलें गुणीं तिहीं। तें पाठीं बोलों ॥१९९॥
तरी तप जें कां सम्यक। तेंही त्रिविध आइक। शारीर मानसिक। शाब्द गा ॥२००॥
आतां गा तिहीं माझारीं। शारीर तंव अवधारीं। तरी शंभु कां श्रीहरी। पढियंता होय ॥२०१॥
देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ॥ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥१४॥
तया प्रिया देवतालया। यात्रादिकें करावया। आठही पाहार जैसें पायां। उळिग घापे ॥२०२॥
देवांगणमिरवणियां। अंगोपचार पुरवणियां। करावया म्हणियां। शोभती हात ॥२०३॥
लिंग कां प्रतिमा दिठी। देखतखेंवों अंगेष्टी। लोटिजे कां काठी। पडली जैसी ॥२०४॥
आणि विधिविनयादिकीं। गुणीं वडील जे लोकीं। तया ब्राह्मणाची निकी। पाइकी कीजे ॥२०५॥
अथवा प्रवासें कां पीडा। का शिणले जे सांकडां। ते जीव सुरवाडा। आणिजती ॥२०६॥
सकल तीर्थांचिये धुरे। जियें कां मातापितरें। तयां सेवेसी कीर शरीरें। लोण कीजे ॥२०७॥
आणि संसाराऐसा दारुणु। जो भेटलाचि हरी शीणु। तो ज्ञानदानीं सकरुणु। भजिजे गुरु ॥२०८॥
आणि स्वधर्माचा आगिठां। देह जाड्याचिया किटा। आवृत्तिपुटीं सुभटा। झाडी कीजे ॥२०९॥
वस्तु भूतमात्रीं नमिजे। परोपकारीं भजिजे। स्त्रीविषयीं नियमिजे। नांवें नांवें ॥२१०॥
जन्मतेनि प्रसंगे। स्त्रीदेह शिवणें आंगें। तेथूनि जन्म आघवें। सोंवळें कीजे ॥२११॥
भुतमात्राचेनि नांवें। तृणही नासुडावें। किंबहुना सांडावे। छेद भेद ॥२१२॥
ऐसैसी जैं शरीरीं। रहाटीची पडे उजरी। तैं शारीर तप घुमरी। आलें जाण ॥२१३॥
पार्था समस्तही हें करणें। देहाचेनि प्रधानपणें। म्हणौनि ययातें मी म्हणें। शारीर तप ॥२१४॥
एवं शारीर जें तप। तयाचें दाविलें रूप। आतां आइक निष्पाप। वाङ्मय तें ॥२१५॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥१५॥
तरी लोहाचें आंग तुक। न तोडितांचि कनक। केलें जैसें देख। परीसें तेणें ॥२१६॥
तैसें न दुखवितां सेजे। जावळिया सुख निपजे। ऐसें साधुत्व कां देखिजे। बोलणां जिये ॥२१७॥
पाणी मुदल झाडा जाये। तृण ते प्रसंगेंचि जियें। तैसें एका बोलिलें होये। सर्वांहि हित ॥२१८॥
जोडे अमृताची सुरसरी। तैं प्राणांतें अमर करी। स्नानें पाप ताप वारी। गोडीही दे ॥२१९॥
तैसा अविवेकुही फिटे। आपुलें अनादित्व भेटे। आइकतां रुचि न विटे। पीयुषीं जैसी ॥२२०॥
जरी कोणी करी पुसणें। तरी होआवें ऐसें बोलणें। नातरी अवर्तणें। निगमु का नाम ॥२२१॥
ऋग्वेदादि तिन्ही। प्रतिष्ठीजती वाग्भुवनीं। केली जैसी वदनीं। ब्रह्मशाळा ॥२२२॥
नातरी एकाधें नांव। तेंचि शैव का वैष्णव। वाचे वसे तें वाग्भव। तप जाणावें ॥२२३॥
आतां तप जें मानसिक। तेंही सांगों आइक। म्हणे लोकनाथनायक . नायकु तो ॥२२४॥

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥१६॥
तरी सरोवर तरंगीं। सांडिलें आकाश मेघीं। का चंदनाचें उरगीं। उद्यान जैसें ॥२२५॥
नाना कळावैषम्यें चंद्रु। कां सांडिला आधीं नरेंद्रु। नातरी क्षीरसमुद्रु। मंदराचळें ॥२२६॥
तैसीं नाना विकल्पजाळें। सांडुनि गेलिया सकळें। मन राहे का केवळें। स्वरूपें जें ॥२२७॥
तपनेंवीण प्रकाशु। जाड्येंवीण रसीं रसु। पोकळीवीण अवकाशु। होय जैसा ॥२२८॥
तैसी आपली सोय देखे। आणि आपलिया स्वभावा मुके। हिंवली जैसी आंगिकें। हिवों नेदी निजांग ॥२२९॥
तैसें न चलतें कळंकेंवीण। शशिबिंब जैसें परीपूर्ण। तैसें चोखी शृंगारपण। मनाचें जें ॥२३०॥
बुजाली वैराग्याची वोरप। जिराली मनाची धांप कांप। तेथ केवळ जाली वाफ। निजबोधाची ॥२३१॥
म्हणौनि विचारावया शास्त्र। राहाटवावें जें वक्त्र। तें वाचेचेंही सूत्र। हातीं न धरी ॥२३२॥
तें स्वलाभ लाभलेपणें। मन मनपणाही धरूं नेणें। शिवतलें जैसें लवणें। आपुलें निज ॥२३३॥
तेथ कें उठिती ते भाव। जिहीं इंद्रियमार्गीं धांव। घेऊनि ठाकावे गांव। विषयांचे ते ॥२३४॥
म्हणौनि तिये मानसीं। भावशुद्धिचि असे अपैसी। रोमशुचि जैसी। तळहातासी ॥२३५॥
काय बहु बोलों अर्जुना। जैं हे दशा ये मना। तैं मनोतपाभिधाना। पात्र होय ती ॥२३६॥
परी ते असो हें जाण। मानस तपाचें लक्षण। देवो म्हणे संपूर्ण। सांगितलें ॥२३७॥
एवं देहवाचाचित्तें। जें पातलें त्रिविधत्वातें। तें सामान्य तप तूतें। परीसविलें गा ॥२३८॥
आतां गुणत्रयसंगें। हेंचि विशेषीं त्रिविधीं रिगे। तेंही आइक चांगें। प्रज्ञाबळें ॥२३९॥
श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥१७॥
तरी हेंचि तप त्रिविधा। जें दाविलें तुज प्रबुद्धा। तेंचि करीं पूर्णश्रद्धा। सांडूनि फळ ॥२४०॥
जैं पुरतिया सत्त्वशुद्धी। आचरिजे आस्तिक्यबुद्धी। तैं तयातेंचि गा प्रबुद्धी। सात्त्विक म्हणिपे ॥२४१॥
सत्कारमानपूजार्थं तपो दंभेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवं ॥१८॥
नातरी तपस्थापनेलागीं। दुजेपण मांडूनि जगीं। महत्त्वाच्या शृंगीं। बैसावया ॥२४२॥
त्रिभुवनींचिया सन्माना। न वचावें ठाया आना। धुरेचिया आसना। भोजनालागीं ॥२४३॥
विश्वाचिया स्तोत्रा। आपण होआवया पात्रा। विश्वें आपलिया यात्रा। कराविया यावें ॥२४४॥
लोकांचिया विविधा पूजा। आश्रयो न धरावया दुजा। भोग भोगावे वोजा। महत्त्वाचिया ॥२४५॥
अंग बोल माखूनि तपें। विकावया आपणपें। अंगहीन पडपे। जियापरी ॥२४६॥
हें असो धनमानीं आस। वाढौनी तप कीजे सायास। तैं तेंचि तप राजस। बोलिजे गा ॥२४७॥
परी पहुरणी जें दुहिलें। तैं तें गुरूं न दुभेचि व्यालें। का उभें शेत चारिलें। पिकावया नुरे ॥२४८॥
तैसें फोकारितां तप। कीजे जें साक्षेप। तें फळीं तंव सोप। निःशेष जाय ॥२४९॥
ऐसें निर्फळ देखोनि करितां। माझारीं सांडी पंडुसुता। म्हणौनि नाहीं स्थिरता। तपा तया ॥२५०॥
एऱ्हवीं तरी आकाश मांडी। जो गर्जोनि ब्रह्मांड फोडी। तो अवकाळु मेघु काय घडी। राहात आहे ? ॥२५१॥
तैसें राजस तप जें होये। तें फळीं कीर वांझ जाये। परी आचरणींही नोहे। निर्वाहतें गा ॥२५२॥
आतां तेंचि तप पुढती। तामसाचिये रीती। पैं परत्रा आणि कीर्ती। मुकोनि कीजे ॥२५३॥
मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥१९॥

केवळ मूर्खपणाचा वारा। जीवीं घेऊनि धनुर्धरा। नाम ठेविजे शरीरा। वैरियाचें ॥२५४॥
पंचाग्नीची दडगी। खोलवीजती शरीरालागीं। का इंधन कीजे हें आगी . आंतु लावी ॥२५५॥
माथां जाळिजती गुगुळु। पाठीं घालिजती गळु। आंग जाळिती इंगळु। जळतभीतां ॥२५६॥
दवडोनि श्वासोच्छवास। कीजती वायांचि उपवास। कां घेपती धूमाचें घांस। अधोमुखें ॥२५७॥
हिमोदकें आकंठें। खडकें सेविजती तटें। जितया मांसाचे चिमुटे। तोडिती जेथ ॥२५८॥
ऐसी नानापरी हे काया। घाय सूतां पैं धनंजया। तप कीजे नाशावया। पुढिलातें ॥२५९॥
आंगभारें सुटला धोंडा। आपण फुटोनि होय खंडखंडा। कां आड जालियातें रगडा। करी जैसा ॥२६०॥
तेवीं आपलिया आटणिया। सुखें असतया प्राणिया। जिणावया शिराणिया। कीजती गा ॥२६१॥
किंबहुना हे वोखटी। घेऊनि क्लेशाची हातवटी। तप निफजे तें किरीटी। तामस होय ॥२६२॥
एवं सत्त्वादिकांच्या आंगीं। पाडिलें तप तिहीं भागीं। जालें तेंही तुज चांगी। दाविलें व्यक्ती ॥२६३॥
आतां बोलतां प्रसंगा। आलें म्हणौनि पैं गा। करूं रूप दानलिंगा। त्रिविधा तया ॥२६४॥
येथ गुणाचेनि बोलें। दानही त्रिविध असे जालें। तेंचि आइक पहिलें। सात्त्विक ऐसें ॥२६५॥
दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ॥देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥२०॥
तरी स्वधर्मा आंतौतें। जें जें मिळे आपणयातें। तें तें दीजे बहुतें। सन्मानयोगें ॥२६६॥
जालया सुबीजप्रसंगु। पडे क्षेत्रवाफेचा पांगु। तैसाचि दानाचा हा लागु। देखतसें ॥२६७॥
अनर्घ्य रत्न हातां चढे। तैं भांगाराची वोढी पडे। दोनी जालीं तरी न जोडे। लेतें आंग ॥२६८॥
परी सण सुहृद संपत्ती। हे तिन्ही येकीं मिळती। जे भाग्य धरी उन्नती। आपुल्याविषयीं ॥२६९॥
तैसें निफजावया दान। जैं सत्त्वासि ये संवाहन। तैं देश काळ भाजन। द्रव्यही मिळे ॥२७०॥
तरी आधीं तंव प्रयत्नेंसीं। होआवें कुरुक्षेत्र का काशी। नातरी तुके जो इहींसीं। तो देशुही हो ॥२७१॥
तेथ रविचंद्राहुमेळु। होतां पाहे पुण्यकाळु। का तयासारिखा निर्मळु। आनुही जाला ॥२७२॥
तैशा काळीं तिये देशीं। होआवी पात्र संपत्ती ऐसी। मूर्ति आहे धरिली जैसी। शुचित्वेंचि कां ॥२७३॥
आचाराचें मूळपीळ। वेदांची उतारपेठ। तैसें द्विजरत्न चोखट। पावोनियां ॥२७४॥
मग तयाच्या ठाईं वित्ता। निवर्तवावी स्वसत्ता। परी प्रियापुढें कांता। रिगे जैसी ॥२७५॥
का जयाचें ठेविलें तया। देऊनि होईजे उतराइया। नाना हडपें विडा राया। दिधला जैसा ॥२७६॥
तैसेनि निष्कामें जीवें। भूम्यादिक अर्पावें। किंबहुना हांवे। नेदावें उठों ॥२७७॥
आणि दान जया द्यावें। तयातें ऐसेया पाहावें। जया घेतलें नुमचवे। कायसेंनही ॥२७८॥
साद घातलिया आकाशा। नेदी प्रतिशब्दु जैसा। का पाहिला आरसा। येरीकडे ॥२७९॥
नातरी उदकाचिये भूमिके। आफळिलेनि कंदुकें। उधळौनि कवतिकें। न येईजे हाता ॥२८०॥
नाना वसो घातला चारू। माथां तुरंबिला बुरू। न करी प्रत्युपकारू। जियापरी ॥२८१॥
तैसें दिधलें दातयाचें। जो कोणेही आंगें नुमचे। अर्पिलया साम्य तयाचें। कीजे पैं गा ॥२८२॥
ऐसिया जें सामग्रिया। दान निफजे वीरराया। तें सात्त्विक दानवर्या। सर्वांही जाण ॥२८३॥
आणि तोचि देशु काळु। घडे तैसाचि पात्रमेळु। दानभागुही निर्मळु। न्यायगतु ॥२८४॥
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥२१॥
परी मनीं धरूनि दुभतें। चारिजे जेवीं गाईतें। का पेंव करूनि आइतें। पेरूं जाइजे ॥२८५॥
नाना दिठी घालुनि आहेरा। अवंतु जाइजे सोयिरा। का वाण धाडिजे घरा। वोवसीयाचे ॥२८६॥
पैं कळांतर गांठीं बांधिजे। मग पुढिलांचें काज कीजे। पूजा घेऊनि रसु दीजे। पीडितांसी ॥२८७॥

तैसें जया जें दान देणें। तो तेणेंचि गा जीवनें। पुढती भुंजावा भावें येणें। दीजे जें का ॥२८८॥
अथवा कोणी वाटे जातां। घेतलें उमचों न शकता। मिळे जैं पंडुसुता। द्विजोत्तमु ॥२८९॥
तरी कवड्या एकासाठीं। अशेषां गोत्रांचींच किरीटी। सर्व प्रायश्चित्तें सुयें मुठीं। तयाचिये ॥२९०॥
तेवींचि पारलौकिकें। फळें वांछिजती अनेकें। आणि दीजे तरी भुके। येकाही नोहे ॥२९१॥
तेंही ब्राह्मणु नेवो सरे। कीं हाणिचेनि शिणें झांसुरें। सर्वस्व जैसें चोरें। नागऊनि नेलें ॥२९२॥
बहु काय सांगों सुमती। जें दीजे या मनोवृत्ती। तें दान गा त्रिजगतीं। राजस पैं ॥२९३॥
अदेशकाले यद्दनमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥
मग म्लेंच्छांचे वसौटें। दांगाणे हन कैकटे। का शिबिरें चोहटे। नगरींचे ते ॥२९४॥
तेही ठाईं मिळणी। समयो सांजवेळु कां रजनी। तेव्हां उदार होणें धनीं। चोरियेच्या ॥२९५॥
पात्रें भाट नागारी। सामान्य स्त्रिया का जुवारी। जिये मूर्तिमंते भुररीं। भुले तया ॥२९६॥
रूपानृत्याची पुरवणी। ते पुढां डोळेभारणी। गीत भाटीव तो श्रवणीं। कर्णजपु ॥२९७॥
तयाहीवरी अळुमाळु। जैं घे फुलागंधाचा गुगुळु। तंव भ्रमाचा तो वेताळु। अवतरे तैसा ॥२९८॥
तेथ विभांडूनियां जग। आणिले पदार्थ अनेग। तेणें घालूं लागे मातंग। गवादी जैसी ॥२९९॥
एवं ऐसेनि जें देणें। तें तामस दान मी म्हणें। आणि घडे दैवगुणें। आणिकही ऐक ॥३००॥
विपायें घुणाक्षर पडे। टाळिये काउळा सांपडे। तैसे तामसां पर्व जोडे। पुण्यदेशीं ॥३०१॥
तेथ देखोनि तो आथिला। योग्यु मागोंही आला। तोही दर्पा चढला। भांबावें जरी ॥३०२॥
तरी श्रद्धा न धरी जिवीं। तया माथाही न खालवी। स्वयें न करी ना करवी। अर्घ्यादिक ॥३०३॥
आलिया न घली बैसों। तेथ गंधाक्षतांचा काय अतिसो। हा अप्रसंगु कीर असो। तामसीं नरीं ॥३०४॥
पैं बोळविजे रिणाइतु। तैसा झकवी तयाचा हातु। तूं करणें याचा बहुतु। प्रयोगु तेथ ॥३०५॥
आणि जया जें दे किरीटी। तयातें उमाणी तयासाठीं। मग कुबोलें कां लोटी। अवज्ञेच्या ॥३०६॥
हें बहु असो यापरी। मोल वेंचणें जें अवधारीं। तया नांव चराचरीं। तामस दान ॥३०७॥
ऐशीं आपुलाला चिन्हीं। अळंकृतें तिन्हीं। दानें दाविलीं अभिधानीं। रजतमाचिया ॥३०८॥
तेथ मी जाणत असें। विपायें तूं गा ऐसें। कल्पिसील मानसें। विचक्षणा ॥३०९॥
जें भवबंधमोचक। येकलें कर्म सात्त्विक। तरी कां वेखासी सदोख। येर बोलावीं ? ॥३१०॥
परी नोसंतितां विवसी। भेटी नाहीं निधीसी। का धूं न साहतां जैसी। वाती न लगे ॥३११॥
तैसें शुद्धसत्त्वाआड। आहे रजतमाचें कवाड। तें भेदणे यातें कीड। म्हणावें कां ? ॥३१२॥
आम्ही श्रद्धादि दानांत। जें समस्तही क्रियाजात। सांगितलें कां व्याप्त। तिहीं गुणीं ॥३१३॥
तेथ भरंवसेनि तिन्ही। न सांगोंचि ऐसें मानीं। परी सत्त्व दावावया दोन्ही। बोलिलों येरें ॥३१४॥
जें दोहींमाजीं तिजें असे। तें दोन्ही सांडितांचि दिसे। अहोरात्रत्यागें जैसें। संध्यारूप ॥३१५॥
तैसें रजतमविनाशें। तिजें जें उत्तम दिसे। तें सत्त्व हें आपैसें। फावासि ये ॥३१६॥
एवं दाखवावया सत्त्व तुज। निरूपिलें तम रज। तें सांडूनि सत्त्वें काज। साधीं आपुलें ॥३१७॥
सत्त्वेंचि येणें चोखाळें। करीं यज्ञादिकें सकळें। पावसी तैं करतळें। आपुलें निज ॥३१८॥
सूर्यें दाविलें सांतें। काय एक न दिसे तेथें। तेवीं सत्त्वें केलें फळातें। काय नेदी ? ॥३१९॥
हे कीर आवडतांविखीं। शक्ति सत्त्वीं आथी निकी। परी मोक्षेंसी एकीं। मिसळणें जें ॥३२०॥
तें एक आनचि आहे। तयाचा सावावो जैं लाहे। तैं मोक्षाचाही होये। गांवीं सरतें ॥३२१॥
पैं भांगार जऱ्हीं पंधरें। तऱ्ही राजावळींचीं अक्षरें। लाहें तैंचि सरे। जियापरी ॥३२२॥

स्वच्छें शीतळें सुगंधें। जळें होती सुखप्रदें। परी पवित्रत्व संबंधें। तीर्थाचेनि ॥३२३॥
नयी हो कां भलतैसी थोरी। परी गंगा जैं अंगीकारी। तैंचि तिये सागरीं। प्रवेशु गा ॥३२४॥
तैसें सात्त्विका कर्मां किरीटी। येतां मोक्षाचिये भेटी। न पडे आडकाठी। तें वेगळें आहे ॥३२५॥
हा बोलु आइकतखेवीं। अर्जुना आधि न माये जीवीं। म्हणे देवें कृपा करावी। सांगावें तें ॥३२६॥
तेथ कृपाळुचक्रवर्ती। म्हणे आईक तयाची व्यक्ती। जेणें सात्त्विक तें मुक्ती- । रत्न देखे ॥३२७॥

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥२३॥

तरी अनादि परब्रह्म। जें जगदादि विश्रामधाम। तयाचें एक नाम। त्रिधा पैं असे ॥३२८॥
तें कीर अनाम अजाती। परी अविद्यावर्गाचिये राती- /। माजी वोळखावया श्रुती। खूण केली ॥३२९॥
उपजलिया बाळकासी। नांव नाहीं तयापासीं। ठेविलेनि नांवेंसी। ओ देत उठी ॥३३०॥
कष्टले संसारशीणें। जे देवों येती गाऱ्हाणें। तयां ओ दे नांवें जेणें। तो संकेतु हा ॥३३१॥
ब्रह्माचा अबोला फिटावा। अद्वैततत्त्वें तो भेटावा। ऐसा मंत्रु देखिला कणवा। वेदें बापें ॥३३२॥
मग दाविलेनि जेणें एकें। ब्रह्म आळविलें कवतिकें। मागां असत ठाके। पुढां उभें ॥३३३॥
परी निगमाचळशिखरीं। उपनिषदार्थनगरीं। आहाति जे ब्रह्माच्या येकाहारीं। तयांसीच कळे ॥३३४॥
हेंही असो प्रजापती। शक्ति जे सृष्टि करिती। ते जया एका आवृत्ती। नामाचिये ॥३३५॥
पैं सृष्टीचिया उपक्रमा- / पूर्वीं गा वीरोत्तमा। वेडा ऐसा ब्रह्मा। एकला होता ॥३३६॥
मज ईश्वरातें नोळखे। ना सृष्टिही करूं न शके। तो थोरु केला एकें। नामें जेणें ॥३३७॥
जयाचा अर्थु जीवीं ध्यातां। जें वर्णत्रयचि जपतां। विश्वसृजनयोग्यता। आली तया ॥३३८॥
तेधवां रचिलें ब्रह्मजन। तयां वेद दिधलें शासन। यज्ञा ऐसें वर्तन। जीविकें केलें ॥३३९॥
पाठीं नेणों किती येर। स्रजिले लोक अपार। जाले ब्रह्मदत्त अग्रहार। तिन्हीं भुवनें ॥३४०॥
ऐसें नाममंत्रें जेणें। धातया अढंच करणें। तयाचें स्वरूप आइक म्हणे। श्रीकांतु तो ॥३४१॥
तरी सर्व मंत्रांचा राजा। तो प्रणवो आदिवर्णु बुझा। आणि तत्कारु जो दुजा। तिजा सत्कारु ॥३४२॥
एवं ॐतत्सदाकारु। ब्रह्मनाम हें त्रिप्रकारु। हें फूल तुरंबी सुंदरु। उपनिषदाचें ॥३४३॥
येणेंसीं गा होऊनि एक। जैं कर्म चाले सात्त्विक। तैं कैवल्यातें पाइक। घरींचें करी ॥३४४॥
परी कापुराचें थळींव। आणून देईल दैव। लेवों जाणणेंचि आडव। तेथ असे बापा ॥३४५॥
तैसें आदरिजेल सत्कर्म। उच्चरिजेल ब्रह्मनाम। परी नेणिजेल जरी वर्म। विनियोगाचें ॥३४६॥
तरी महंताचिया कोडी। घरा आलियाही वोढी। मानूं नेणतां परवडी। मुद्दल तुटे ॥३४७॥
कां ल्यावया चोखट। टीक भांगार एकवट। घालूनि बांधिली मोट। गळा जेवीं ॥३४८॥
तैसें तोंडीं ब्रह्मनाम। हातीं तें सात्त्विक कर्म। विनियोगेंवीण काम। विफळ होय ॥३४९॥
अगा अन्न आणि भूक। पासीं असे परी देख। जेऊं नेणतां बालक। लंघनचि कीं ॥३५०॥
का स्नेहसूत्र वैश्वानरा। जालियाही संसारा। हातवटी नेणतां वीरा। प्रकाशु नोहे ॥३५१॥
तैसे वेळे कृत्य पावे। तेथिंचा मंत्रुही आठवे। परी व्यर्थ तें आघवें। विनियोगेंवीण ॥३५२॥
म्हणौनि वर्णत्रयात्मक। जे हें परब्रह्मनाम एक। विनियोगु तूं आइक। आतां याचा ॥३५३॥

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥२४॥

तरी या नामींचीं अक्षरें तिन्हीं। कर्मा आदिमध्यनिदानीं। प्रयोजावीं पैं स्थानीं। इहीं तिन्हीं ॥३५४॥
हेंचि एकी हातवटी। घेउनि हन किरीटी। आले ब्रह्मविद भेटी। ब्रह्माचिये ॥३५५॥

ब्रह्मेंसीं होआवया एकी। ते न वंचती यज्ञादिकीं। जे चावळलें वोळखीं। शास्त्रांचिया ॥३५६॥
तो आदि तंव ओंकारु। ध्यानें करिती गोचरु। पाठीं आणिती उच्चारु। वाचेही तो ॥३५७॥
तेणें ध्यानें प्रकटें। प्रणवोच्चारें स्पष्टें। लागती मग वाटे। क्रियांचिये ॥३५८॥
आंधारीं अभंगु दिवा। आडवीं समर्थु बोळावा। तैसा प्रणवो जाणावा। कर्मारंभीं ॥३५९॥
उचितदेवोद्देशे। द्रव्यें धर्म्यें आणि बहुवसें। द्विजद्वारां हन हुताशें। यजिती पैं ते ॥३६०॥
आहवनीयादि वन्ही। निक्षेपरूपीं हवनीं। यजिती पैं विधानीं। फुडे होउनी ॥३६१॥
किंबहुना नाना याग। निष्पत्तीचे घेउनि अंग। करिती नावडतेया त्याग। उपाधीचा ॥३६२॥
कां न्यायें जोडला पवित्रीं। भूम्यादिकीं स्वतंत्रीं। देशकाळशुद्ध पात्रीं। देती दानें ॥३६३॥
अथवा एकांतरां कृच्छ्रीं। चांद्रायणें मासोपवासीं। शोषोनि गा धातुराशी। करिती तपें ॥३६४॥
एवं यज्ञदानतपें। जियें गाजती बंधरूपें। तिहींच होय सोपें। मोक्षाचें तयां ॥३६५॥
स्थळीं नावा जिया दाटिजे। जळीं तियांचि जेवीं तरीजे। तेवीं बंधकीं कर्मीं सुटिजे। नामें येणें ॥३६६॥
परी हें असो ऐसिया। या यज्ञदानादि क्रिया। ओंकारें सावायिलिया। प्रवर्तती ॥३६७॥
तिया मोटकिया जेथ फळीं। रिगों पाहाती निहाळीं। प्रयोजिती तिये काळीं। तच्छब्दु तो ॥३६८॥
तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपः क्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥२५॥
जें सर्वांही जगापरौतें। जें एक सर्वही देखतें। तें तच्छब्दें बोलिजे तें। पैल वस्तु ॥३६९॥
तें सर्वादिकत्वें चित्तीं। तद्रूप ध्यावूनियां सुमती। उच्चारेंही व्यक्ती। आणिती पुढती ॥३७०॥
म्हणती तद्रूपा ब्रह्मा तया। फळेंसीं क्रिया इयां। तेंचि होतु आम्हां भोगावया। कांहींचि नुरो ॥३७१॥
ऐसेनि तदात्मकें ब्रह्में। तेथ उगाणूनि कर्में। आंग झाडिती न ममें। येणें बोलें ॥३७२॥
आतां ओंकारें आदरिलें। तत्कारें समर्पिलें। इया रिती जया आलें। ब्रह्मत्व कर्मा ॥३७३॥
तें कर्म कीर ब्रह्माकारें। जालें तेणेंही न सरे। जे करी तेणेंसी दुसरें। आहे म्हणौनि ॥३७४॥
मीठ आंगें जळीं विरे। परी क्षारता वेगळी उरे। तैसें कर्म ब्रह्माकारें। गमे तें द्वैत ॥३७५॥
आणि दुजे जंव जंव घडे। तंव तंव संसारभय जोडे। हें देवो आपुलेनि तोंडें। बोलती वेद ॥३७६॥
म्हणौनि परत्वें ब्रह्म असे। तें आत्मत्वें परीयवसे। सच्छब्द या रिणादोषें। ठेविला देवें ॥३७७॥
तरी ओंकार तत्कारीं। कर्म केलें जें ब्रह्मशरीरीं। जें प्रशस्तादि बोलवरी। वाखाणिलें ॥३७८॥
प्रशस्तकर्मीं तिये। सच्छब्दा विनियोगु आहे। तोचि आइका होये। तैसा सांगों ॥३७९॥
सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥२६॥
तरी सच्छब्दें येणें। आटूनि असताचें नाणें। दाविजे अव्यंगवाणें। सत्तेचें रूप ॥३८०॥
जें सत तेंचि काळें देशें। होऊं नेणेचि अनारिसे। आपणपां आपण असे। अखंडित ॥३८१॥
हें दिसतें जेतुलें आहे। तें असतपणें जें नोहे। देखतां रूपीं सोये। लाभे जयाची ॥३८२॥
तेणेंसीं प्रशस्त तें कर्म। जें जालें सर्वात्मक ब्रह्म। देखिजे करूनि सम। ऐक्यबोधें ॥३८३॥
तरी ओंकार तत्कारें। जें कर्म दाविलें ब्रह्माकारें। तें गिळूनि होईजे एकसरें। सन्मात्रचि ॥३८४॥
ऐसा हा अंतरंगु। सच्छब्दाचा विनियोगु। जाणा म्हणे श्रीरंगु। मी ना म्हणें हो ॥३८५॥
ना मीचि जरी हो म्हणें। तरी श्रीरंगीं दुजें हेंचि उणें। म्हणौनि हें बोलणें। देवाचेंचि ॥३८६॥
आतां आणिकीही परी। सच्छब्दु हा अवधारीं। सात्त्विक कर्मा करी। उपकारु जो ॥३८७॥
तरी सत्कर्में चांगें। चालिलीं अधिकारबगें। परी एकाधें कां आंगें। हिणावती जैं ॥३८८॥

तैं उणें एकें अवयवें। शरीर ठाके आघवें। कां अंगहीन भांडावें। रथाची गती ॥३८९॥
तैसें एकेंचि गुणेंवीण। सतचि परी असतपण। कर्म धरी गा जाण। जिये वेळे ॥३९०॥
तेव्हां ओंकार तत्कारीं। सावायिला हा चांगी परी। सच्छब्दु कर्मा करी। जीर्णोद्धारु ॥३९१॥
तें असतपण फेडी। आणी सद्भावाचिये रूढी। निजसत्त्वाचिये प्रौढी। सच्छब्दु हा ॥३९२॥
दिव्यौषध जैसें रोगिया। कां सावावो ये भंगलिया। सच्छब्दु कर्मा व्यंगलिया। तैसा जाण ॥३९३॥
अथवा कांहीं प्रमादें। कर्म आपुलिये मर्यादे। चुकोनि पडे निषिद्धे। वाटे हन ॥३९४॥
चालतयाही मार्गु सांडे। पारखियाचि अखरें पडे। राहाटीमाजीं न घडे। काइ काइ ? ॥३९५॥
म्हणौनि तैसी कर्मा। राभस्यें सांडे सीमा। असाधुत्वाचिया दुर्नामा। येवों पाहे जें ॥३९६॥
तेथ गा हा सच्छब्दु। येरां दोहींपरीस प्रबुद्धु। प्रयोजिला करी साधु। कर्मातें यया ॥३९७॥
लोहा परीसाची घृष्टी। वोहळा गंगेची भेटी। कां मृता जैसी वृष्टी। पीयूषाची ॥३९८॥
पैं असाधुकर्मा तैसा। सच्छब्दुप्रयोगु वीरेशा। हें असो गौरवुचि ऐसा। नामाचा यया ॥३९९॥
घेऊनि येथिंचें वर्म। जैं विचारिसी हें नाम। तैं केवळ हेंचि ब्रह्म। जाणसी तूं ॥४००॥
पाहें पां ॐतत्सत ऐसें। हें बोलणें तेथ नेतसे। जेथूनि कां हें प्रकाशे। दृश्यजात ॥४०१॥
तें तंव निर्विशिष्ट। परब्रह्म चोखट। तयाचें हें आंतुवट। व्यंजक नाम ॥४०२॥
परी आश्रयो आकाशा। आकाशचि का जैसा। या नामानामी आश्रयो तैसा। अभेदु असे ॥४०३॥
उदयिला आकाशीं। रवीचि रवीतें प्रकाशी। हे नामव्यक्ती तैसी। ब्रह्मचि करी ॥४०४॥
म्हणौनि त्र्यक्षर हें नाम। नव्हे जाण केवळ ब्रह्म। ययालागीं कर्म। जें जें कीजे ॥४०५॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥२७॥
तें याग अथवा दानें। तपादिकेंही गहनें। तियें निफजतु कां न्यूनें। होऊनि ठातु ॥४०६॥
परी परीसाचा वरकली। नाहीं चोखाकिडाची बोली। तैसी ब्रह्मीं अर्पितां केलीं। ब्रह्मचि होती ॥४०७॥
उणिया पुरियाची परी। तुरेचि तेथ अवधारीं। निवडूं न येती सागरीं। जैसिया नदी ॥४०८॥
एवं पार्था तुजप्रती। ब्रह्मनामाची हे शक्ती। सांगितली उपपत्ती। डोळसा गा ॥४०९॥
आणि येकेकाही अक्षरा। वेगळवेगळा वीरा। विनियोगु नागरा। बोलिलों रीती ॥४१०॥
एवं ऐसें सुमहिम। म्हणौनि हें ब्रह्मनाम। आतां जाणितलें कीं सुवर्म। राया तुवां ? ॥४११॥
तरी येथूनि याचि श्रद्धा। उपलविली हो सर्वदा। जयाचें जालें बंधा। उरों नेदी ॥४१२॥
जिये कर्मीं हा प्रयोगु। अनुष्ठिजे सद्विनियोगु। तेथ अनुष्ठिला सांगु। वेदुचि तो ॥४१३॥
अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥२८॥
ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७अ ॥
ना सांडूनि हे सोये। मोडूनि श्रद्धेची बाहे। दुराग्रहाची त्राये। वाढऊनियां ॥४१४॥
मग अश्वमेध कोडी कीजे। रत्नें भरोनि पृथ्वी दीजे। एकांगुष्ठींही तपिजे। तपसाहस्रीं ॥४१५॥
जळाशयाचेनि नांवें। समुद्रही कीजती नवे। परी किंबहुना आघवें। वृथाचि तें ॥४१६॥
खडकावरी वर्षले। जैसें भस्मीं हवन केलें। कां खेंव दिधलें। साउलिये ॥४१७॥
नातरी जैसें चडकणा। गगना हाणितलें अर्जुना। तैसा समारंभु सुना। गेलाचि तो ॥४१८॥
घाणां गाळिले गुंडे। तेथ तेल ना पेंडी जोडे। तैसें दरिद्र तेवढें। ठेलेंचि आंगीं ॥४१९॥

गांठीं बांधली खापरी। येथ अथवा पैलतीरीं। न सरोनि जैसी मारी। उपवासीं गा ॥४२०॥
तैसें कर्मजातें तेणें। नाहीं ऐहिकीचें भोगणें। तेथ परत्र तें कवणें। अपेक्षावें ॥४२१॥
म्हणौनि ब्रह्मनामश्रद्धा। सांडूनि कीजे जो धांदा। हें असो सिणु नुसधा। दृष्टादृष्टीं तो ॥४२२॥
ऐसें कलुषकरिकेसरी। त्रितापतिमिरतमारी। श्रीवर वीर नरहरी। बोलिलें तेणें ॥४२३॥
तेथ निजानंदा बहुवसा- /। माजीं अर्जुन तो सहसा। हरपला चंद्रु जैसा। चांदिणेनि ॥४२४॥
अहो संग्रामु हा वाणिया। मापें नाराचांचिया आणिया। सूनि माप घे मवणिया। जीवितेंसी ॥४२५॥
ऐसिया समयीं कर्कशें। भोगीजत स्वानंदराज्य कैसें। आजि भाग्योदयो हा नसे। आनी ठाईं ॥४२६॥
संजयो म्हणे कौरवराया। गुणा रिझों ये रिपूचिया। आणि गुरुही हा आमुचिया। सुखाचा येथ ॥४२७॥
हा न पुसता हे गोठी। तरी देवो कां सोडिते गांठी। तरी कैसेंनि आम्हां भेटी। परमार्थेसीं ॥४२८॥
होतों अज्ञानाच्या आंधारां। वोसंतीत जन्मवाहरा। तों आत्मप्रकाशमंदिरा- /। आंतु आणिलें ॥४२९॥
एवढा आम्हां तुम्हां थोरु। केला येणें उपकारु। म्हणौनि हा व्याससहोदरु। गुरुत्वें होय ॥४३०॥
तेवींचि संजयो म्हणे चित्तीं। हा अतिशयो या नृपती। खुपेल म्हणौनि किती। बोलत असों ॥४३१॥
ऐसी हे बोली सांडिली। मग येरीचि गोठी आदरिली। जे पार्थें कां पुसिली। श्रीकृष्णातें ॥४३२॥
याचें जैसें कां करणें। तैसें मीही करीन बोलणें। ऐकिजो ज्ञानदेवो म्हणे। निवृत्तीचा ॥४३३॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

अध्याय अठरावा ॥

मोक्षसंन्यासयोगः ।

जयजय देव निर्मळ। निजजनाखिलमंगळ। जन्मजराजलदजाळ। प्रभंजन ॥१॥
जयजय देव प्रबळ। विदळितामंगळकुळ। निगमागमद्रुमफळ। फलप्रद ॥२॥
जयजय देव सकल। विगतविषयवत्सल। कलितकाळकौतूहल। कलातीत ॥३॥
जयजय देव निश्चळ। चलितचित्तपानतुंदिल। जगदुन्मीलनाविरल। केलिप्रिय ॥४॥
जयजय देव निष्कळ। स्फुरदमंदानंदबहळ। नित्यनिरस्ताखिलमळ। मूळभूत ॥५॥
जयजय देव स्वप्रभ। जगदंबुदगर्भनभ। भुवनोद्भवारंभस्तंभ। भवध्वंस ॥६॥
जयजय देव विशुद्ध। विदुदयोद्यानद्विरद। शमदम- मदनमदभेद। दयार्णव ॥७॥
जयजय देवैकरूप। अतिकृतकंदर्पसर्पदर्प। भक्तभावभुवनदीप। तापापह ॥८॥
जयजय देव अद्वितीय। परीणतोपरमैकप्रिय। निजजनजित भजनीय। मायागम्य ॥९॥
जयजय देव श्रीगुरो। अकल्पनाख्यकल्पतरो। स्वसंविद्रुमबीजप्ररो। हणावनी ॥१०॥
हे काय एकैक ऐसैसें। नानापरीभाषावशें। स्तोत्र करूं तुजोद्देशें। निर्विशेषा ॥११॥
जिहीं ं विशेषणीं विशेषिजे। तें दृश्य नव्हे रूप तुझें। हें जाणें मी म्हणौनि लाजें। वानणा इहीं ॥१२॥
परी मर्यादेचा सागरु। हा तंवचि तया डगरु। जंव न देखे सुधाकरु। उदया आला ॥१३॥
सोमकांतु निजनिर्झरीं ं। चंद्रा अर्घ्यादिक न करी। तें तोचि अवधारीं। करवी कीं जी ॥१४॥
नेणों कैसी वसंतसंगें। अवचितिया वृक्षाचीं अंगें। फुटती तैं हे तयांहि जोगें। धरणें नोहे ? ॥१५॥
पद्मिनी रविकिरण। लाहे मग लाजें कवण ? । . कां जळें शिवतलें लवण। आंग भुले ॥१६॥
तैसा तूतें जेथ मी स्मरें। तेथ मीपण मी विसरें। मग जाकळिला ढेंकरें। तृप्तु जैसा ॥१७॥
मज तुवां जी केलें तैसें। माझें मीपण दवडूनि देशें। स्तुतिमिषेंच पां पिसें। बांधलें वाचे ॥१८॥
ना येऱ्हवीं ं तरी आठवीं। राहोनि स्तुति जैं करावी। तैं गुणागुणिया धरावी। सरोभरी कीं ं ं ॥१९॥
तरी तूं जी एकरसाचें लिंग। केवीं करूं गुणागुणीं विभाग। मोतीं फोडोनि सांधितां चांग। कीं तैसेंचि भलें ॥२०॥
आणि बाप तूं माय। इहीं बोलीं ना स्तुति होय। डिंभोपाधिक आहे। विटाळु तेथें ॥२१॥
जी जालेनि पाइकें आलें। तें गोसावीपण केवीं बोलें ? । ऐसें उपाधी उशिटलें। काय वर्णूं ॥२२॥
जरी आत्मा तूं एकसरा। हेंही म्हणतां दातारा। तरी आंतुल तूं बाहेरा। घापतासी ॥२३॥
म्हणौनि सत्यचि तुजलागीं ं। स्तुति न देखों जी जगीं। मौनावांचूनि लेणें आंगीं। सुसीना मा ॥२४॥
स्तुति कांहीं न बोलणें। पूजा कांहीं ं न करणें। सन्निधी कांहीं ं ं न होणें। तुझ्या ठायीं ॥२५॥
तरी जिंतलें जैसें भुली। पिसें आलापु घाली। तैसें वानूं तें माऊली। उपसाहावें तुवां ॥२६॥
आतां गीतार्थाची मुक्तमुदी। लावीं माझिये वाग्वृद्धी। जे माने हे सभासदीं . सज्जनांच्या ॥२७॥
तेथ म्हणितलें श्रीनिवृत्ती। नको हें पुढतपुढती। परीसीं लोहा घृष्टी किती। वेळवेळां कीजे गा ॥२८॥
तंव विनवी ज्ञानदेवो। म्हणे हो कां जी पसावो। तरी अवधान देतु देवो। ग्रंथा आतां ॥२९॥
जी गीतारत्नप्रासादाचा। कळसु अर्थचिंतामणीचा। सर्व गीतादर्शनाचा। पाढॐ जो ॥३०॥
लोकीं तरी आथी ऐसें। जे दुरूनि कळसु दिसे। आणी भेटीचि हातवसे। देवतेची तिये ॥३१॥
तैसेंचि एथही आहे। जे एकेचि येणें अध्यायें। आघवाचि दृष्ट होये। गीतागमु हा ॥३२॥

मी कळसु याचि कारणें। अठरावा अध्यायो म्हणें। उवाइला बादरायणें। गीताप्रासादा ॥३३॥
नोहे कळसापरतें कांहीं। प्रासादीं काम नाहीं। तें सांगतसे गीता ही। संपलेपणें ॥३४॥
व्यासु सहजें सूत्री बळी। तेणें निगमरत्नाचळीं। उपनिषदार्थाची माळी- । माजीं खांडिली ॥३५॥
तेथ त्रिवर्गाचा अणुआरु। आडऊ निघाला जो अपारु। तो महाभारतप्राकारु। भोंवता केला ॥३६॥
माजीं आत्मज्ञानाचें एकवट। दळवाडें झाडूनि चोखट। घडिलें पार्थवैकुंठ- । संवाद कुसरी ॥३७॥
निवृत्तिसूत्र सोडवणिया। सर्व शास्त्रार्थ पुरवणिया। आवो साधिला मांडणिया। मोक्षरेखेचा ॥३८॥
ऐसेनि करितां उभारा। पंधरा अध्यायांत पंधरा। भूमि निर्वाळलिया पुरा। प्रासादु जाहला ॥३९॥
उपरी सोळावा अध्यायो। तो ग्रीवघंटेचा आवो। सप्तदशु तोचि ठावो। पडघाणिये ॥४०॥
तयाहीवरी अष्टादशु। तो अपैसा मांडला कळसु। उपरि गीतादिकीं व्यासु। ध्वजें लागला ॥४१॥
म्हणौनि मागील जे अध्याये। ते चढते भूमीचे आये। तयांचें पुरें दावितahे। आपुल्या आंगीं ॥४२॥
जालया कामा नाहीं चोरी। ते कळसें होय उजरी। तेवींं अष्टादशु विवरी। साद्यंत गीता ॥४३॥
ऐसा व्यासें विंदाणियें। गीताप्रासादु सोडवणिये। आणूनि राखिले प्राणिये। नानापरी ॥४४॥
एक प्रदक्षिणा जपाचिया। बाहेरोनि करिती यया। एक ते श्रवणमिषें छाया। सेविती ययाची ॥४५॥
एक ते अवधानाचा पुरा। विडापाऊड भीतरां। घेऊनि रिघती गाभारां। अर्थज्ञानाच्या ॥४६॥
ते निजबोधें उराउरी। भेटती आत्मया श्रीहरी। परी मोक्षप्रासादीं सरी। सर्वांही आथी ॥४७॥
समर्थाचिये पंक्तिभोजनें। तळिल्या वरील्या एकचि पक्वान्नें। तेवीं श्रवणें अर्थें पठणें। मोक्षुचि लाभे ॥४८॥
ऐसा गीता वैष्णवप्रासादु। अठरावा अध्याय कळसु विशदु। म्यां म्हणितला हा भेदु। जाणोनियां ॥४९॥
आतां सप्तदशापाठीं . अध्याय कैसेनि उठी। तो संबंधु सांगो दिठी। दिसे तैसा ॥५०॥
का गंगायमुना उदक। वोघबगें वेगळिक। दावी होऊनि एक। पाणीपणें ॥५१॥
न मोडितां दोन्ही आकार। घडिलें एक शरीर। हें अर्धनारी नटेश्वर- । रूपीं दिसें ॥५२॥
नाना वाढिली दिवसें। कळा बिंबीं पैसे। परी सिनानें लेवे जैसें। चंद्रीं नाहीं ॥५३॥
तैसींं सिनानीं चारीं पदें। श्लोक तो श्लोकावच्छेदें। अध्यावो अध्यायभेदें। गमे कीर ॥५४॥
परी प्रमेयाची उजरी। आनान रूप न धरी। नाना रत्नमणीं दोरी। एकचि जैसी ॥५५॥
मोतियें मिळोनि बहुवें। एकावळीचा पाडु आहे। परी शोभे रूप होये। एकचि तेथ ॥५६॥
फुलांफुलसरां लेख चढे। द्रुतीं दुजी अंगुळी न पडे। श्लोक अध्याय तेणें पाडें। जाणावे हे ॥५७॥
सात शतें श्लोक। अध्यायां अठरांचे लेख। परी देवो बोलिले एक। जें दुजें नाहीं ॥५८॥
आणि म्यांही न सांडूनि ते सोये। ग्रंथ व्यक्ति केली आहे। प्रस्तुत तेणें निर्वाहे। निरूपण आइका ॥५९॥
तरी सतरावा अध्यावो। पावतां पुरता ठावो। जें संपतां श्लोकीं देवो। बोलिले ऐसें ॥६०॥
अर्जुना ब्रह्मनामाच्याविखीं. बुद्धि सांडूनि आस्तिकीं। कर्में कीजती तितुकींंंं। असंतें होतीं ॥६१॥
हा ऐकोनि देवाचा बोलु। अर्जुना आला डोलु। म्हणे कर्मनिष्ठां मळु। ठेविला देखों ॥६२॥
तो अज्ञानांधु तंव बापुडा। ईश्वरुचि न देखे एवढा। तेथ नामचि एक पुढां। कां सुझे तया ॥६३॥
आणि रजतमें दोन्हीं। गेलियावीण श्रद्धा सानी। ते कां लागे अभिधानीं। ब्रह्माचिये ? ॥६४॥
मग कोता खेंव देणें। वार्तेवरील धावणें। सांडी पडे खेळणें। नागिणीचें तें ॥६५॥
तैसीं कर्में दुवाडें। तयां जन्मांतराची कडे। दुर्मेळावे येवढे। कर्मामाजीं ॥६६॥
ना विपायें हें उजू होये। तरी ज्ञानाची योग्यता लाहे। येऱ्हवीं येणेंचि जाये। निरयालया ॥६७॥
कर्मीं हा ठायवरी। आहाती बहुवा अवसरी। आतां कर्मठां कैं वारी। मोक्षाची हे ॥६८॥
तरी फिटो कर्माचा पांगु। कीजो अवघाचि त्यागु। आदरिजो अव्यंगु। संन्यासु हा ॥६९॥

कर्मबाधेची कहीं। जेथ भयाची गोठी नाहीं। तें आत्मज्ञान जिहीं। स्वाधीन होय ॥७०॥
ज्ञानाचें आवाहनमंत्र। जें ज्ञान पिकतें सुक्षेत्र। ज्ञान आकर्षितें सूत्र। तंतु जे का ॥७१॥
ते दोनी संन्यास त्याग। अनुष्ठूनि सुटे जग। तरी हेंचि आतां चांग। व्यक्त पुसों ॥७२॥
ऐसें म्हणौनि पार्थें। त्यागसंन्यासव्यवस्थे। रूप होआवया जेथें। प्रश्नु केला ॥७३॥
तेथ प्रत्युत्तरें बोली। श्रीकृष्णें जे चावळिली। तया व्यक्ति जाली। अष्टादशा ॥७४॥
एवं जन्यजनकभावें। अध्यावो अध्यायातें प्रसवे। आतां ऐका बरवें। पुसिलें जें ॥७५॥
तरी पंडुकुमरें तेणें। देवाचें सरतें बोलणें। जाणोनि अंतःकरणें। काणी घेतली ॥७६॥
येऱ्हवीं तत्वविषयीं भला। तो निश्चितु असे कीर जाहला। परी देवो राहे उगला। तें साहावेना ॥७७॥
वत्स धालयाही वरी। धेनू न वचावी दुरी। अनन्य प्रीतीची परी। ऐसी आहे ॥७८॥
तेणें काजेवीणही बोलावें। तें देखीलें तरी पाहावें। भोगितां चाड दुणावे। पढियंतयाठायीं ॥७९॥
ऐसी प्रेमाची हे जाती। आणि पार्थ तंव तेचि मूर्ती। म्हणौनि करूं लाहे खंती। उगेपणाची ॥८०॥
आणि संवादाचेनि मिषें। जे अव्यवहारी वस्तु असे . ते भोगिजे कीं जैसें। आरिसां रूप ॥८१॥
मग संवादु तोही पारुखे। तरी भोगितां भोगणें थोके। हें कां साहवेल सुखें। लांचावलेया ? ॥८२॥
यालागीं त्याग संन्यास। पुसावयाचें घेऊनि मिस। मग उपलविलें दुस। गीतेंचें तें ॥८३॥
अठरावा अध्यावो नोहे। हे एकाध्यायी गीताचि आहे। जैं वांसरुचि गाय दुहे . तैं वेळु कायसा ॥८४॥
तैसी संपतां अवसरीं। गीता आदरविली माघारीं। स्वामी भृत्याचा न करी। संवादु काई ? ॥८५॥
परी हें असो ऐसें। अर्जुनें पुसिजत असे . म्हणे विनंती विश्वेशें। अवधारिजो ॥८६॥

अर्जुन उवाच ।

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥१॥

हां जी संन्यासु आणि त्यागु। इयां दोहीं एक अर्थीं लागु। जैसा सांघातु आणि संघु। संघातेंचि बोलिजे ॥८७॥
तैसेंचि त्यागें आणि संन्यासें। त्यागुचि बोलिजतु असे। . आमचेनि तंव मानसें। जाणिजे हेंचि ॥८८॥
ना कांहीं आथी अर्थभेदु। तो देवो करोतु विशदु। तेथ म्हणती श्रीमुकुंदु। भिन्नचि पैं ॥८९॥
तरी अर्जुना तुझ्या मनीं। त्याग संन्यास दोनी। एकार्थ गमलें हें मानीं। मीही साच ॥९०॥
इहीं दोहीं कीर शब्दीं। त्यागुचि बोलिजे त्रिशुद्धी। परी कारण एथ भेदीं। येतुलेंचि ॥९१॥
जें निपटूनि कर्म सांडिजे। तें सांडणें संन्यासु म्हणिजे। आणि फलमात्र का त्यजिजे। तो त्यागु गा ॥९२॥
तरी कोणा कर्माचें फळ। सांडिजे कोण कर्म केवळ। हेंही सांगों विवळ। चित्त दे पां ॥९३॥
तरी आपैसीं दांगें डोंगर। झाडें डाळती अपार। तैसें लांबे राजागर। नुठिती ते ॥९४॥
न पेरितां सैंघ तृणें। उठती तैसें साळीचें होणें। नाहीं गा राबाउणें। जियापरी ॥९५॥
कां अंग जाहलें सहजें। परी लेणें उद्यमें कीजे। नदी आपैसी आपादिजे। विहिरी जेवीं ॥९६॥
तैसें नित्य नैमित्तिक। कर्म होय स्वाभाविक। परी न कामितां कामिक। न निफजे जें ॥९७॥

श्रीभगवानुवाच ।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥२॥

कां कामनेचेनि दळवाडें। जें उभारावया घडे। अश्वमेधादिक फुडे। याग जेथ ॥९८॥
वापी कूप आराम। अग्रहारें हन महाग्राम। आणीकही नाना संभ्रम। व्रतांचे ते ॥९९॥
ऐसें इष्टापूर्त सकळ। जया कामना एक मूळ। जें केलें भोगवी फळ। बांधोनियां ॥१००॥

देहाचिया गांवा अलिया। जन्ममृत्यूचिया सोहळिया। ना म्हणों नये धनंजया। जियापरी ॥१०१॥
का ललाटींचें लिहिलें। न मोडे गा कांहीं केलें। काळेगोरेपण धुतलें। फिटों नेणे ॥१०२॥
केलें काम्य कर्म तैसें। फळ भोगावया धरणें बैसे। न फेडितां ऋण जैसें। वोसंडीना ॥१०३॥
कां कामनाही न करितां। अवसांत घडे पंडुसुता। तरी वायकांडें न झुंजतां। लागे जैसें ॥१०४॥
गूळ नेणतां तोंडीं। घातला देचि गोडी। आगी मानूनि राखोंडी। चेपिला पोळी ॥१०५॥
काम्यकर्मी हें एक। सामर्थ्य आथी स्वाभाविक। म्हणौनि नको कौतुक। मुमुक्षु एथ ॥१०६॥
किंबहुना पार्था ऐसें। जें काम्य कर्म गा असे . तें त्यजिजे विष जैसें। वोकूनियां ॥१०७॥
मग तया त्यागातें जगीं। संन्यासु ऐसया भंगीं। बोलिजे अंतरंगीं। सर्वद्रष्टा ॥१०८॥
हें काम्य कर्म सांडणें। तें कामनेतेंचि उपडणें। द्रव्यत्यागें दवडणें। भय जैसें ॥१०९॥
आणि सोमसूर्यग्रहणें। येऊनि करविती पार्वणें। का मातापितरमरणें। अंकित जे दिवस ॥११०॥
अथवा अतिथी हन पावे। हें ऐसैसें पडे जैं करावें। तैं तें कर्म जाणावें। नौमित्तिक गा ॥१११॥
वार्षिया क्षोमे गगन। वसंतें दुणावे वन। देहा श्रृंगारी यौवन- । दशा जैसी ॥११२॥
का सोमकांतु सोमें पघळें . सूर्यें फांकती कमळें। एथ असे तेंचि पाल्हाळे . आन नये ॥११३॥
तैसें नित्य जें का कर्म। तेंचि निमित्ताचे लाहे नियम। एथ उंचावे तेणें नाम। नैमित्तिक होय ॥११४॥
आणि सायंप्रातर्मध्यान्हीं। जें कां करणीय प्रतिदिनीं। परी दृष्टि जैसी लोचनीं। अधिक नोहे ॥११५॥
कां नापादितां गती। चरणीं जैसी आथी। नातरी ते दीप्ती। दीपबिंबीं ॥११६॥
वासु नेदितां जैसे। चंदनीं सौरभ्य असे . अधिकाराचे तैसें। रूपचि जें ॥११७॥
नित्य कर्म ऐसें जनीं। पार्था बोलिजे तें मानीं। एवं नित्य नैमित्तिक दोन्हीं। दाविलीं तुज ॥११८॥
हेंचि नित्य नैमित्तिक। अनुष्ठेय आवश्यक। म्हणौनि म्हणोंं पाहती एक। वांझ ययातें ॥११९॥
परी भोजनीं जैसें होये। तृप्ति लाहे भूक जाये। तैसे नित्यनैमित्तिकीं आहे। सर्वांगीं फळ ॥१२०॥
कीड आगिठां पडे। तरी मळु तुटे वानी चढे। यया कर्मा तया सांगडें। फळ जाणावें ॥१२१॥
जे प्रत्यवाय तंव गळे। स्वाधिकार बहुवें उजळे। तेथ हातोफळिया मिळे। सद्गतीसी ॥१२२॥
येवढेवरी ढिसाळ। नित्यनैमित्तिकीं आहे फळ। परी तें त्यजिजे मूळ। नक्षत्रीं जैसें ॥१२३॥
लता पिके आघवी। तंव च्यूत बांधे पालवीं। मग हात न लावित माधवीं। सोडूनि घाली ॥१२४॥
तैसी नोलांडितां कर्मरेखा। चित्त दीजे नित्यनैमित्तिका। पाठीं फळा कीजे अशेखा। वांताचे वानी ॥१२५॥
यया कर्म फळत्यागातें। त्यागु म्हणती पैं जाणते। एवं त्याग संन्यास तूतें। परीसविले ॥१२६॥
हा संन्यासु जैं संभवे। तैं काम्य बाधूं न पावे। निषिद्ध तंव स्वभावें। निषेधें गेलें ॥१२७॥
आणि नित्यादिक जें असे . तें येणें फलत्यागें नसे। शिर लोटलिया जैसें। येर आंग ॥१२८॥
मग सस्य फळपाकांत। तैसें निमालिया कर्मजात। आत्मज्ञान गिंवसीत। अपैसें ये ॥१२९॥
ऐसिया निगुती दोनी। त्याग संन्यास अनुष्ठानीं। पडले गा आत्मज्ञानीं . बांधती पाटु ॥१३०॥
नातरी हे निगुती चुके। मग त्यागु कीजे हाततुकें। तैं कांहीं न त्यजे अधिकें। गोंवींचि पडे ॥१३१॥
जें औषध व्याधी अनोळख। तें घेतलिया परतें विख। कां अन्न न मानितां भूक। मारी ना काय ? ॥१३२॥
म्हणौनि त्याज्य जें नोहे। तेथ त्यागातें न सुवावें। त्याज्यालागीं नोहावें। लोभापर ॥१३३॥
चुकलिया त्यागाचें वेझें। केला सर्वत्यागुही होय वोझें। न देखती सर्वत्र दुजें। वीतराग ते ॥१३४॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥३॥

एकां फळाभिलाष न ठके। ते कर्मांते म्हणती बंधकें। जैसें आपण नग्न भांडकें। जगातें म्हणे ॥१३५॥

कां जिव्हालंपट रोगिया। अन्नें दूषी धनंजया। आंगा न रुसे कोढिया। मासियां कोपे ॥१३६॥
तैसे फळकाम दुर्बळ। म्हणती कर्मचि किडाळ। मग निर्णयो देती केवळ। त्यजावें ऐसा ॥१३७॥
एक म्हणती यागादिक। करावेंचि आवश्यक। जे यावांचूनि शोधक। आन नसे ॥१३८॥
मनशुद्धीच्या मार्गीं। जैं विजयी व्हावें वेगीं। तैं कर्म सबळालागीं . आळसु न कीजे ॥१३९॥
भांगार आथी शोधावें। तरी आगी जेवी नुबगावें। कां दर्पणालागीं सांचावें। अधिक रज ॥१४०॥
नाना वस्त्रें चोख होआवीं। ऐसें आथी जरी जीवीं। तरी संवदणी न मनावी। मलिन जैसी ॥१४१॥
तैसीं कर्में क्लेशकारें। म्हणौनि न न्यावीं अव्हेरें। कां अन्नलाभें अरुवारें। रांधितिये उणें ॥१४२॥
इहीं इहीं गा शब्दीं। एक कर्मीं बांधिती बुद्धी। ऐसा त्यागु विसंवादीं। पडोनि ठेला ॥१४३॥
तरी विसंवादु तो फिटे। त्यागाचा निश्चयो भेटे। तैसें बोलों गोमटें। अवधान देईं ॥१४४॥

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः ॥४॥

तरी त्यागु एथें पांडवा। त्रिविधु पैं जाणावा। तया त्रिविधाही बरवा। विभाग करूं ॥१४५॥
त्यागाचे तीन्ही प्रकार। कीजती जरी गोचर। तरी तूं इत्यर्थाचें सार। इतुलें जाण ॥१४६॥
मज सर्वज्ञाचिये बुद्धी। जें अलोट माने त्रिशुद्धी। निश्चयतत्व तें आधीं। अवधारीं पां ॥१४७॥
तरी आपुलिये सोडवणें। जो मुमुक्षु जागों म्हणे। तया सर्वस्वें करणें। हेंचि एक ॥१४८॥

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥५॥

जियें यज्ञदानतपादिकें। इयें कर्में आवश्यकें। तियें न सांडावीं पांथिकें। पाउलें जैसीं ॥१४९॥
हारपलें न देखिजे। तंव तयाचा मागु न सांडिजे। कां तृप्त न होतां न लोटिजे। भाणें जेवीं ॥१५०॥
नाव थडी न पवतां। न खांडिजे केळी न फळतां। कां ठेविलें न दिसतां। दीपु जैसा ॥१५१॥
तैसी आत्मज्ञानविखीं। जंव निश्चिती नाहीं निकी। तंव नोहावें यागादिकीं। उदासीन ॥१५२॥
तरी स्वाधिकारानुरुपें। तियें यज्ञदानें तपें। अनुष्ठावींचि साक्षेपें। अधिकेंवर ॥१५३॥
जें चालणें वेगावत जाये। तो वेगु बैसावयाचि होये। तैसा कर्मातिशयो आहे। नैष्कर्म्यालागीं ॥१५४॥
अधिकें जंव जंव औषधी। सेवनेची मांडी बांधी। तंव तंव मुकिजे व्याधी। तयाचिये ॥१५५॥
तैसीं कर्में हातोपातीं। जैं कीजती यथानिगुती। तैं रजतमें झडती। झाडा देऊनी ॥१५६॥
कां पाठोवाटीं पुटें। भांगारा खारु देणें घटे। तैं कीड झडकरी तुटे। निर्व्याजु होय ॥१५७॥
तैसें निष्ठा केलें कर्म। तें झाडी करूनि रजतम। सत्वशुद्धीचें धाम। डोळां दावी ॥१५८॥
म्हणौनियां धनंजया। सत्वशुद्धी गिंवसितया। तीर्थांचिया सावाया। आलीं कर्में ॥१५९॥
तीर्थें बाह्यमळु क्षाळे। कर्में अभ्यंतर उजळे। एवं तीर्थें जाण निर्मळें। सत्कर्मेंहि ॥१६०॥
तृषार्ता मरुदेशीं। झळे अमृतें वोळलीं जैसीं। कीं अंधालागीं डोळयांसी। सूर्यु आला ॥१६१॥
बुडतया नदीच धाविन्नली। पडतया पृथ्वीच कळवळिली। निमतया मृत्यूनें दिधली। आयुष्यवृद्धी ॥१६२॥
तैसें कर्में कर्मबद्धता। मुमुक्षु सोडविले पंडुसुता। जैसा रसरीति मरतां। राखिला विषें ॥१६३॥
तैसीं एके हातवटिया। कर्में कीजती धनंजया। बंधकेंचि सोडवावया। मुख्यें होती ॥१६४॥
आतां तेचि हातवटी। तुज सांगों गोमटी। जया कर्मातें किरीटी। कर्मचि रुसे ॥१६५॥

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥६॥

तरी महायागप्रमुखें। कर्में निफजतांही अचुकें। कर्तेपणाचें न ठाके। फुंजणें आंगीं ॥१६६॥

जो मोलें तीर्था जाये। तया मी यात्रा करितु आहे। ऐसिये श्लाघ्यतेचा नोहे। तोषु जेवीं ॥१६७॥
कां मुद्रा समर्थाचिया। जो एकवटु झोंबे राया। तो मी जिणता ऐसिया। न येचि गर्वा ॥१६८॥
जो कासें लागोनि तरे। तया पोहती ऊर्मी नुरे। पुरोहितु नाविष्करे। दातेपणें ॥१६९॥
तैसें कर्तृत्व अहंकारें। नेघोनि यथा अवसरें। कृत्यजातांचें मोहरें। सारीजती ॥१७०॥
केल्या कर्मा पांडवा। जो आथी फळाचा यावा। तया मोहरा हों नेदावा। मनोरथु ॥१७१॥
आधींचि फळीं आस तुटिया। कर्मे आरंभावीं धनंजया। परावें बाळ धाया। पाहिजे जैसें ॥१७२॥
पिंपरुवांचिया आशा। न शिंपिजे पिंपळु जैसा। तैसिया फळनिराशा। कीजती कर्में ॥१७३॥
सांडूनि दुधाची टकळी। गोंवारी गांवधेनु वेंटाळी। किंबहुना कर्मफळीं। तैसें कीजे ॥१७४॥
ऐसी हे हातवटी। घेऊनि जे क्रिया उठी। आपणा आपुलिया गांठी। लाहेची तो ॥१७५॥
म्हणौनि फळीं लागु। सांडोनि देहसंगु। कर्में करावीं हा चांगु। निरोपु माझा ॥१७६॥
जो जीवबंधेएं शिणला। सुटके जाचे आपला। तेणें पुढतपुढतीं या बोला। आन न कीजे ॥१७७॥

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥७॥

नातरी आंधाराचेनि रोखें। जैसीं डोळां रोंविजती नखें। तैसा कर्मद्वेषें अशेखें। कर्मेंचि सांडी ॥१७८॥
तयाचें जें कर्म सांडणें। तें तामस पैं मी म्हणें। शिसाराचे रागें लोटणें। शिरचि जैसें ॥१७९॥
हां गा मार्गु दुवाडु होये। तरी निस्तरितील पाये। कीं तेचि खांडणें आहे। मार्गापराधें ॥१८०॥
भुकेलियापुढें अन्न। हो कां भलतैसें उन्ह। तरी बुद्धी न घेतां लंघन। भाणें पापरां हल्या ॥१८१॥
तैसा कर्माचा बाधु कर्में। निस्तरीजे करितेनि वर्में। हे तामसु नेणें भ्रमें। माजविला ॥१८२॥
कीं स्वभावें आलें विभागा। तें कर्मचि वोसंडी पैं गा। तरी झणें आतळा त्यागा। तामसा तया ॥१८३॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥८॥

अथवा स्वाधिकारु बुझे। आपले विहितही सुजे। परी करितया उमजे। निबरपणा ॥१८४॥
जे कर्माची ऐलीकड। नावेक दिसे दुवाड। जे वाहतिये वेळे जड। शिदोरी जैसी ॥१८५॥
जैसा निंब जिभे कडवटु। हिरडा पहिलें तुरटु। तैसा कर्मा ऐल शेवटु। खणुवाळा होय ॥१८६॥
कां धेनु दुवाड शिंग। शेवंतीये अडव आंग। भोजनसुख महाग। पाकु करितां ॥१८७॥
तैसें पुढतपुढती कर्म . आरंभींच अति विषम। म्हणौनि तो तें श्रम। करितां मानी ॥१८८॥
येऱ्हवीं विहितत्वें मांडी। परी घालितां असुरवाडीं। तेथ पोळला ऐसा सांडी। आदरिलेंही ॥१८९॥
म्हणे वस्तु देहासारिखी। आली बहुतीं भाग्यविशेखीं। मा जाचूं कां कर्मादिकीं। पापिया जैसा ? ॥१९०॥
केलें कर्मी जे द्यावें। तें झणें मज होआवें। आजि भोगूं ना कां बरवे। हातींचे भोग ? ॥१९१॥
ऐसा शरीराचिया क्लेशा। भेणें कर्में वीरेशा। सांडी तो परीयेसा। राजसु त्यागु ॥१९२॥
येऱ्हवीं तेथही कर्म सांडे। परी तया त्यागफळ न जोडे। जैसें उतलें आगीं पडे। तें नलगेचि होमा ॥१९३॥
कां बुडोनि प्राण गेले। ते अर्धोदकीं निमाले। हें म्हणों नये जाहलें। दुर्मरणचि ॥१९४॥
तैसें देहाचेनि लोभें। जेणें कर्मा पाणी सुभे। तेणें साच न लभे। त्यागाचें फळ ॥१९५॥
किंबहुना आपुलें। जैं ज्ञान होय उदया आलें। तैं नक्षत्रातें पाहलें। गिळी जैसें ॥१९६॥
तैशा सकारण क्रिया। हारपती धनंजया। तो कर्मत्यागु ये जया। मोक्षफळासी ॥१९७॥
तें मोक्षफळ अज्ञाना। त्यागिया नाहीं अर्जुना। म्हणौनि तो त्यागु न माना। राजसु जो ॥१९८॥
तरी कोणे पां एथ त्यागें। तें मोक्षफळ घर रिघे। हेंही आइक प्रसंगे। बोलिजेल ॥१९९॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥९॥
तरी स्वाधिकाराचेनि नांवें। जें वांटिया आलें स्वभावें। तें आचरे विधिगौरवें। शृंगारोनि ॥२००॥
परी हें मी करितु असें। ऐसा आठवु त्यजी मानसें। तैसेचि पाणी दे आशे। फळाचिये ॥२०१॥
पैं अवज्ञा आणि कामना। मातेच्या ठायीं अर्जुना। केलिया दोनी पतना। कारण होती ॥२०२॥
तरी दोनीं यें त्यजावीं। मग माताची ते भजावी। वांचूनि मुखालागीं वाळावी। गायचि सगळी ? ॥२०३॥
आवडतियेही फळीं। असारें साली आंठोळीं। त्यासाठीं अवगळी। फळातें कोण्ही ? ॥२०४॥
तैसा कर्तृत्वाचा मदु। आणि कर्मफळाचा आस्वादु। या दोहींचें नांव बंधु। कर्माचा कीं ॥२०५॥
तरी या दोहींच्या विखीं। जैसा बापु नातळे लेंकीं . तैसा हों न शके दुःखी। विहिता क्रिया ॥२०६॥
हा तो त्याग तरुवरु। जो गा मोक्षफळें ये थोरु। सात्विक ऐसा डगरु। यासींच जगीं ॥२०७॥
आतां जाळूनि बीज जैसें। झाडा कीजे निर्वंशें। फळ त्यागूनि कर्म तैसें। त्यजिलें जेणें ॥२०८॥
लोह लागतखेंवो परीसीं। धातूची गंधिकाळिमा जैसी। जाती रजतमें तैसीं। तुटलीं दोन्ही ॥२०९॥
मग सत्वें चोखाळें। उघडती आत्मबोधाचे डोळे। तेथ मृगांबु सांजवेळे। होय जैसें ॥२१०॥
तैसा बुद्ध्यादिकांपुढां। असतु विश्वाभासु हा येवढा। तो न देखे कवणीकडां। आकाश जैसें ॥२११॥
न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥१०॥
म्हणौनि प्राचिनाचेनि बळें। अलंकृतें कुशलाकुशलें। तियें व्योमाआंगीं आभाळें। जिरालीं जैसीं ॥२१२॥
तैसीं तयाचिये दिठी। कर्में चोखाळलीं किरीटी. म्हणौनि सुखदुःखीं उठी। पडेना तो ॥२१३॥
तेणें शुभकर्म जाणावें। मग तें हर्षें करावें। कां अशुभालागीं होआवें। द्वेषिया ना ॥२१४॥
तरी इयाविषयींचा कांहीं। तया एकुही संदेहो नाहीं। जैसा स्वप्नाच्या ठायीं। जागिन्नलिया ॥२१५॥
म्हणौनि कर्म आणि कर्ता। या द्वैतभावाची वार्ता। नेणें तो पंडुसुता। सात्विक त्यागु ॥२१६॥
ऐसेनि कर्में पार्था। त्यजिलीं त्यजिती सर्वथा . अधिकें बांधिती अन्यथा। सांडिलीं तरी ॥२१७॥
न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥११॥
आणि हां गा सव्यसाची। मूर्ति लाहोनि देहाची। खंती करिती कर्माची। ते गांवढे गा ॥२१८॥
मृत्तिकेचा वीटु। घेऊनि काय करील घटु ? । केउता ताथु पटु। सांडील तो ? ॥२१९॥
तेवींचि वन्हित्व आंगीं। आणि उबे उबगणें आगी। कीं तो दीपु प्रभेलागीं। द्वेषु करील काई ? ॥२२०॥
हिंगु त्रासिला घाणी। तरी कैचें सुगंधत्व आणी ? । द्रवपण सांडूनि पाणी . कें राहे तें ? ॥२२१॥
तैसा शरीराचेनि आभासें। नांदतु जंव असे . तंव कर्मत्यागाचें पिसें। काइसें तरी ? ॥२२२॥
आपण लाविजे टिळा। म्हणौनि पुसों ये वेळोवेळा। मा घाली फेडी निडळा। कां करूं ये गा ? ॥२२३॥
तैसें विहित स्वयें आदरिलें। म्हणौनि त्यजूं ये त्यजिलें। परी कर्मचि देह आतलें। तें कां सांडील गा ? ॥२२४॥
जें श्वासोच्छ्वासवरी। होत निजेलियाहीवरी। कांहीं न करणेंयाचि परी। होती जयाची ॥२२५॥
या शरीराचेनि मिसकें। कर्मची लागलें असिकें। जितां मेलया न ठाके। इया रीती ॥२२६॥
यया कर्मातें सांडिती परी। एकीचि ते अवधारीं। जे करितां न जाइजे हारीं। फळशेचिये ॥२२७॥
कर्मफळ ईश्वरीं अर्पे। तत्प्रसादें बोधु उद्दीपें। तेथ रज्जुज्ञानें लोपे। व्याळशंका ॥२२८॥
तेणें आत्मबोधें तैसें। अविद्येसीं कर्म नाशे। पार्था त्यजिजे जैं ऐसें। तैं त्यजिलें होय ॥२२९॥
म्हणौनि इयापरी जगीं। कर्में करितां मानूं त्यागी। येर मुर्छने नांव रोगी। विसांवा जैसा ॥२३०॥

तैसा कर्मी शिणे एकीं। तो विसांवो पाहे आणिकीं। दांडेयाचे घाय बुकी। धाडणें जैसें ॥२३१॥
परी हें असो पुढती। तोचि त्यागी त्रिजगतीं। जेणें फळत्यागें निष्कृती। नेलें कर्म ॥२३२॥
अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥१२॥
येऱ्हवीं तरी धनंजया। त्रिविधा कर्मफळा गा यया। समर्थ ते कीं भोगावया। जे न सांडितीचि आशा ॥२३३॥
आपणचि विऊनि दुहिता। कीं न मम म्हणे पिता। तो सुटे कीं प्रतिग्रहीता। जांवई शिरके ॥२३४॥
विषाचे आगरही वाहती। तें विकितां सुखें लाभे जिती। येर निमालें जे घेती। वेंचोनि मोलें ॥२३५॥
तैसें कर्ता कर्म करू। अकर्ता फळाशा न धरू। एथ न शके आवरूं। दोहींतें कर्म ॥२३६॥
वाटे पिकलिया रुखाचें। फळ अपेक्षी तयाचें। तेवीं साधारण कर्माचें। फळ घे तया ॥२३७॥
परी करूनि फळ नेघे। तो जगाच्या कामीं न रिघे। जे त्रिविध जग अवघें। कर्मफळ हें ॥२३८॥
देव मनुष्य स्थावर। यया नांव जगडंबर। आणि हे तंव तिन्ही प्रकार। कर्मफळांचे ॥२३९॥
तेंचि एक गा अनिष्ट। एक तें केवळ इष्ट। आणि एक इष्टानिष्ट। त्रिविध ऐसें ॥२४०॥
परी विषयमंतीं बुद्धी। आंगीं सूनि अविधी। प्रवर्तती जे निषिद्धीं। कुव्यापारीं ॥२४१॥
तेथ कृमि कीट लोष्ट। हे देह लाहती निकृष्ट। तया नाम तें अनिष्ट। कर्मफळ ॥२४२॥
कां स्वधर्मा मानु देतां। स्वाधिकारु पुढां सूतां। सुकृत कीजे पुसतां। आम्नायातें ॥२४३॥
तैं इंद्रादिक देवांचीं। देहें लाहिजती सव्यसाची। तया कर्मफळा इष्टाची। प्रसिद्धि गा ॥२४४॥
आणि गोड आंबट मिळे। तेथ रसांतर फरसाळें। उठी दोंही वेगळें। दोहीं जिणतें ॥२४५॥
रेचकुचि योगवशें। होय स्तंभावयादोषें। तेवीं सत्यासत्य समरसें। सत्यासत्यचि जिणिजे ॥२४६॥
म्हणौनि समभागें शुभाशुभें। मिळोनि अनुष्ठानाचें उभें. तेणें मनुष्यत्व लाभे। तें मिश्र फळ ॥२४७॥
ऐसें त्रिविध यया भागीं। कर्मफळ मांडलेसें जगीं। हें न सांडी तयां भोगीं। जें सूदले आशा ॥२४८॥
जेथें जिव्हेचा हातु फांटे। तंव जेवितां वाटे गोमटें। मग परीणामीं शेवटें। अवश्य मरण ॥२४९॥
संवचोरमैत्री चांग। जंव न पविजे तें दांग। सामान्या भली आंग। न शिवे तंव ॥२५०॥
तैसीं कर्में करितां शरीरीं। लाहती महत्त्वाची फरारी। पाठीं निधनीं एकसरी। पावती फळें ॥२५१॥
तैसा समर्थु आणि ऋणिया। मागों आला बाइणिया। न लोटे तैसा प्राणिया। पडे तो भोगु ॥२५२॥
मग कणिसौनि कणु झडे। तो विरूढला कणिसा चढे। पुढती भूमी पडे। पुढती उठी ॥२५३॥
तैसें भोगीं जें फळ होय। तें फळांतरें वीत जाय। चालतां पावो पाय। जिणिजे जैसा ॥२५४॥
उताराचिये सांगडी। ठाके ते ऐलीच थडी। तेवीं न मुकीजती वोढी। भोग्याचिये ॥२५५॥
पैं साध्यसाधनप्रकारें। फळभोगु तो पसरे। एवं गोंविले संसारें। अत्यागी ते ॥२५६॥
येऱ्हवीं जाईचियां फुलां फांकणें। त्याचि नाम जैसें सुकणें। तैसें कर्ममिषें न करणें। केलें जिहीं ॥२५७॥
बीजचि वरोसि वेंचे। तेथ वाढती कुळवाडी खांचे। तेवीं फळत्यागें कर्माचें। सारिलें काम ॥२५८॥
ते सत्वशुद्धि साहाकारें। गुरुकृपामृततुषारें। सासिन्नलेनि बोधें वोसरे। द्वैतदैन्य ॥२५९॥
तेव्हां जगदाभासमिषें। स्फुरे तें त्रिविध फळ नाशे। एथ भोक्ता भोग्य आपैसें। निमालें हें ॥२६०॥
घडे ज्ञानप्रधानु हा ऐसा। संन्यासु जयां वीरेशा। तेचि फलभोग सोसा। मुकले गा ॥२६१॥
आणि येणें कीर संन्यासें। जैं आत्मरूपीं दिठी पैसे। तैं कर्म एक ऐसें . देखणें आहे ? ॥२६२॥
पडोनि गेलिया भिंती। चित्रांची केवळ होय माती। कां पाहालेया राती। आंधारें उरे ? ॥२६३॥
जैं रूपचि नाहीं उभें। तैं साउली काह्याची शोभे ? । दर्पणेवीण बिंबें। वदन कें पां ? ॥२६४॥
फिटलिया निद्रेचा ठावो। कैचा स्वप्नासि प्रस्तावो ? । मग साच का वावो। कोण म्हणे ? ॥२६५॥

तैसें गा संन्यासें येणें। मूळ अविद्येसीचि नाहीं जिणें। मा तियेचें कार्य कोणें। घेपे दीजे ? ॥२६६॥
म्हणौनि संन्यासी ये पाहीं। कर्माची गोठी कीजेल ख़ई . परी अविद्या आपुलाम देहीं। आहे जै कां ॥२६७॥
जैं कर्तेपणाचेनि थांवें। आत्मा शुभाशुभीं धांवें। दृष्टि भेदाचिये राणिवे। रचलीसे जैं ॥२६८॥
तैं तरी गा सुवर्मा। बिजावळी आत्मया कर्मा। अपाडें जैसी पश्चिमा। पूर्वेसि कां ॥२६९॥
नातरी आकाशा का आभाळा। सूर्या आणि मृगजळा। बिजावळी भूतळा। वायूसि जैसी ॥२७०॥
पांघरौनि नईचें उदक। असे नईचिमाजीं खडक। परी जाणिजे का वेगळिक . कोडीची ते ॥२७१॥
हो कां उदकाजवळी। परी सिनानीचि ते बाबुळी। काय संगास्तव काजळी। दीपु म्हणों ये ? ॥२७२॥
जरी चंद्रीं जाला कलंकु। तरी चंद्रेसीं नव्हे एकु। आहे दृष्टी डोळयां विवेकु। अपाडु जेतुला ॥२७३॥
नाना वाटा वाटे जातया। वोघा वोघीं वाहातया। आरसा आरसां पाहातया। अपाडु जेतुला ॥२७४॥
पार्था गा तेतुलेनि मानें। आत्मेंनिसीं कर्म सिनें। परी घेवविजे अज्ञानें। तें कीर ऐसें ॥२७५॥
विकाशें रवीतें उपजवी। द्रुती अलीकरवी भोगवी। ते सरोवरीं कां बरवी . अब्जिनी जैसी ॥२७६॥
पुढतपुढती आत्मक्रिया। अन्यकारणकाचि तैशिया। करूं पांचांही तयां। कारणां रूप ॥२७७॥

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥१३॥

आणि पांचही कारणें तियें। तूंही जाणसील विपायें। जें शास्त्रें उभऊनी बाहे। बोलती तयांते ॥२७८॥
वेदरायाचिया राजधानीं। सांख्यवेदांताच्या भुवनीं। निरूपणाच्या निशाणध्वनीं। गर्जती जियें ॥२७९॥
जें सर्वकर्मसिद्धीलागीं। इयेंचि मुद्दलें हो जगीं। तेथ न सुवावा अभंगीं। आत्मराजु ॥२८०॥
ह्या बोलाचि डांगुरटी। तियें प्रसिद्धीचि आली किरीटी। म्हणौनि तुज्या हन कर्णपुटीं। वसों हें काज ॥२८१॥
आणि मुखांतरीं आइकिजे। तैसें कायसें हें ओझें। मी चिद्रत्न तुझें . असतां हातीं ॥२८२॥
दर्पणु पुढां मांडलेया। कां लोकांचियां डोळयां। मानु द्यावा पहावया। आपुलें निकें ॥२८३॥
भक्त जैसेनि जेथ पाहे। तेथ तें तेंचि होत जाये। तो मी तुझें जाहालों आहें। खेळणें आजी ॥२८४॥
ऐसें हें प्रीतीचेनि वेगें। देवो बोलतां से नेघे। तंव आनंदामाजीं आंगें। विरतसे येरु ॥२८५॥
चांदिणियाचा पडिभरु। होतां सोमकांताचा डोंगरु। विघरोनि सरोवरु। हों पाहे जैसा ॥२८६॥
तैसें सुख आणि अनुभूती। या भावांची मोडूनि भिंती। आतलें अर्जुनाकृति। सुखचि जेथ ॥२८७॥
तेथ समर्थु म्हणौनि देवा। अवकाशु जाहला आठवा। मग बुडतयाचा धांवा। जीवें केला ॥२८८॥
अर्जुना येसणें धेंडें। प्रज्ञा पसरेंसीं बुडे। आलें भरतें एवढें। तें काढूनि पुढती ॥२८९॥
देवो म्हणे हां गा पार्था। तूं आपणपें देख सर्वथा। तंव श्वासूनि येरें माथा। तुकियेला ॥२९०॥
म्हणे जाणसी दातारा। मी तुजशीं व्यक्तिशेजारा। उबगला आजी एकाहारा। येवों पाहें ॥२९१॥
तयाही हा ऐसा। लोभें देतसां जरी लालसा। तरी कां जी घालीतसां। आड आड जीवा ? ॥२९२॥
तेथ श्रीकृष्ण म्हणती निकें। अद्यापि नाहीं मा ठाऊकें। वेडया चंद्रा आणि चंद्रिके। न मिळणें आहे ? ॥२९३॥
आणि हाही बोलोनि भावो। तुज दॐ आम्ही भिवों। जे रुसतां बांधे थांवो। तें प्रेम गा हें ॥२९४॥
एथ एकमेकांचिये खुणें। विसंवादु तंवचि जिणें। म्हणौनि असो हें बोलणें। इयेविषयींचें ॥२९५॥
मग कैशी कैशी ते आतां . बोलत होतों पंडुसुता। सर्व कर्मा भिन्नता। आत्मेनिसीं ॥२९६॥
तंव अर्जुन म्हणे देवें। माझिये मनींचेंचि स्वभावें। प्रस्ताविलें बरवें। प्रमेय तें जी ॥२९७॥
जें सकळ कर्माचें बीज। कारणपंचक तुज। सांगेन ऐसी पैज। घेतली कां ॥२९८॥
आणि आत्मया एथ कांहीं। सर्वथा लागु नाहीं। हें पुढारलासि ते देईं। लाहाणें माझें ॥२९९॥
यया बोला विश्वेशें। म्हणितलें तोषें बहुवसे। इयेविषयीं धरणें बैसे. ऐसें कें जोडे ? ॥३००॥

तरी अर्जुना निरूपिजेल। तें कीर भाषेआंतुल। परी मेचु ये होईजेल। ऋणिया तुज ॥३०१॥
तंव अर्जुन म्हणे देवो। काई विसरले मागील भावो ? । इये गोंठीस कीं राखत आहों। मीतूंपण जी ? ॥३०२॥
एथ श्रीकृष्ण म्हणती हो कां। आतां अवधानाचा पसरु निका। करूनियां आइका। पुढारलों तें ॥३०३॥
तरी सत्यचि गा धनुर्धरा। सर्वकर्मांचा उभारा। होतसे बहिरबाहिरा। करणीं पांचें ॥३०४॥
आणि पांच कारण दळवाडें। जिहीं कर्माकारु मांडे। ते हेतुस्तव घडे। पांच आथी ॥३०५॥
येर आत्मतत्त्व उदासीन। तें ना हेतु ना उपादान। ना ते अंगें करी संवाहन। कर्मसिद्धीचें ॥३०६॥
तेथ शुभाशुभीं अंशीं। निफजती कर्मे ऐसीं। राती दिवो आकाशीं। जियापरी ॥३०७॥
तोय तेज धूमु। ययां वायूसीं संगमु। जालिया होय अभ्रागमु। व्योम तें नेणें ॥३०८॥
नाना काष्ठीं नाव मिळे। ते नावाडेनि चळे। चालविजे अनिळें। उदक तें साक्षी ॥३०९॥
कां कवणे एकें पिंडे। वेंचितां अवतरे भांडें। मग भवंडीजे दंडें। भ्रमे चक्र ॥३१०॥
आणि कर्तृत्व कुलालाचें। तेथ काय तें पृथ्वीयेचें। आधारावांचूनि वेंचे। विचारीं पां ॥३११॥
हेंहि असो लोकांचिया। राहाटी होतां आघविया। कोण काम सवितया। आंगा आलें ? ॥३१२॥
तैसें पांचहेतुमिळणीं। पांचेंचि इहीं कारणीं। कीजे कर्मलतांची लावणी। आत्मा सिना ॥३१३॥
आतां तेंचि वेगळालीं। पांचही विवंचूं गा भलीं। तुकोनि घेतलीं। मोतियें जैसीं ॥३१४॥

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥१४॥

तैसीं यथा लक्षणें। आइकें कर्म- कारणें। तरी देह हें मी म्हणें। पहिलें एथ ॥३१५॥
ययातें अधिष्ठान ऐसें। म्हणिजे तें याचि उद्देशें। जे स्वभोग्येंसीं वसे। भोक्ता येथ ॥३१६॥
इंद्रियांच्या दाहें हातीं। जाचोनियां दिवोराती। सुखदुःखें प्रकृती। जोडीजती जियें ॥३१७॥
तियें भोगावया पुरुखा। आन ठावोचि नाहीं देखा। म्हणौनि अधिष्ठानभाखा। बोलिजे देह ॥३१८॥
हें चोविसांही तत्वांचें। कुटुंबघर वस्तीचें। तुटे बंधमोक्षाचें। गुंथाडे एथ ॥३१९॥
किंबहुना अवस्थात्रया। हें अधिष्ठान धनंजया। म्हणौनि देहा यया। हेंचि नाम ॥३२०॥
आणि कर्ता हें दुजें। कर्माचें कारण जाणिजे। प्रतिबिंब म्हणिजे। चैतन्याचें जें ॥३२१॥
आकाशचि वर्षे नीर। तें तळवटीं बांधे नाडर। मग बिंबोनि तदाकार। होय जेवीं ॥३२२॥
कां निद्राभरें बहुवें। राया आपणपें ठाउवें नव्हे। मग स्वप्नींचिये सामावे। रंकपणीं ॥३२३॥
तैसें आपुलेनि विसरें। चैतन्यचि देहाकारें। आभासोनि आविष्करें। देहपणें जें ॥३२४॥
जया विसराच्या देशीं। प्रसिद्धि गा जीवु ऐसी। जेणें भाष केली देहेंसी। आघवाविषयीं ॥३२५॥
प्रकृति करी कर्मैं। तीं म्यां केलीं म्हणे भ्रमें। येथ कर्ता येणें नामें। बोलिजे जीवु ॥३२६॥
मग पातेयांच्या केशीं। एकीच उठी दिठी जैसी। मोकळी चवरी ऐसी। चिरीव गमे ॥३२७॥
कां घराआंतुल एकु। दीपाचा तो अवलोकु। गवाक्षभेदें अनेकु। आवडे जेवीं ॥३२८॥
कां एकुचि पुरुषु जैसा। अनुसरत नवां रसां। नवविधु ऐसा। आवडों लागे ॥३२९॥
तेवीं बुद्धीचें एक जाणणें। श्रोत्रादिभेदें येणें। बाहेरी इंद्रियपणें। फांके जें कां ॥३३०॥
तें पृथग्विध करण। कर्माचें इया कारण। तिसरें गा जाण। नृपनंदना ॥३३१॥
आणि पूर्वपश्चिमवाहणीं। निघालिया वोघाचिया मिळणी। होय नदी नद पाणी। एकचि जेवीं ॥३३२॥
तैसी क्रियाशक्ति पवनीं। असे जे अनपायिनी। ते पडिली नानास्थानीं। नाना होय ॥३३३॥
जैं वाचे करी येणें। तैं तेंचि होय बोलणें। हाता आली तरी घेणें। देणें होय ॥३३४॥
अगा चरणाच्या ठायीं। तरी गति तेचि पाहीं। अधोद्वारीं दोहीं। क्षरणें तेचि ॥३३५॥

कंदौनि हृदयवरी। प्रणवाची उजरी। करितां तेचि शरीरीं। प्राणु म्हणिजे ॥३३६॥
मग उर्ध्वींचिया रिगानिगा। पुढती तेचि शक्ति पैं गा। उदानु ऐसिया लिंगा। पात्र जाहली ॥३३७॥
अधोरंध्राचेनि वाहें। अपानु हें नाम लाहे। व्यापकपणें होये। व्यानु तेचि ॥३३८॥
आरोगिलेनि रसें। शरीर भरी सरिसें। आणि न सांडितां असे . सर्वसंधीं ॥३३९॥
ऐसिया इया राहटीं। मग तेचि क्रिया पाठीं। समान ऐसी किरीटी। बोलिजे गा ॥३४०॥
आणि जांभई शिंक ढेंकर। ऐसैसा होतसे व्यापार। नाग कूर्म कृकर। इत्यादि होय ॥३४१॥
एवं वायूची हे चेष्टा। एकीचि परी सुभटा। वर्तनास्तव पालटा। येतसे जे ॥३४२॥
तें भेदली वृत्तिपंथें। वायुशक्ति गा एथें। कर्मकारण चौथें। ऐसें जाण ॥३४३॥
आणि ऋतु बरवा शारदु। शारदीं पुढती चांदु। चंद्री जैसा संबंधु। पूर्णिमेचा ॥३४४॥
कां वसंतीं बरवा आरामु। आरामींही प्रियसंगमु . संगमीं आगमु. उपचारांचा ॥३४५॥
नाना कमळीं पांडवा। विकासु जैसा बरवा। विकासींही यावा। परागाचा ॥३४६॥
वाचे बरवें कवित्व। कवित्वीं बरवें रसिकत्व। रसिकत्वीं परतत्व। स्पर्शु जैसा ॥३४७॥
तैसी सर्ववृत्तिवैभवीं। बुद्धिचि एकली बरवी। बुद्धिही बरव नवी। इंद्रियप्रौढी ॥३४८॥
इंद्रियप्रौढीमंडळा। शृंगारु एकुचि निर्मळा। जैं अधिष्ठात्रियां कां मेळा। देवतांचा जो ॥३४९॥
म्हणौनि चक्षुरादिकीं दाहें। इंद्रियां पाठीं स्वानुग्रहें। सूर्यादिकां कां आहे। सुरांचें वृंद ॥३५०॥
तें देववृंद बरवें। कर्मकारण पांचवें। अर्जुना एथ जाणावें। देवो म्हणे ॥३५१॥
एवं माने तुझिये आयणी। तैसी कर्मजातांची हे खाणी। पंचविध आकर्णीं। निरूपिली ॥३५२॥
आतां हेचि खाणी वाढे। मग कर्माची सृष्टि घडे। जिहीं ते हेतुही उघडे। दॐ पांचै ॥३५३॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥१५॥

तरी अवसांत आली माधवी। ते हेतु होय नवपल्लवीं। पल्लव पुष्पपुंज दावी। पुष्प फळातें ॥३५४॥
कां वार्षिये आणिजे मेघु। मेघें वृष्टिप्रसंगु। वृष्टीस्तव भोगु। सस्यसुखाचा ॥३५५॥
नातरी प्राची अरुणातें विये। अरुणें सूर्योदयो होये। सूर्यें सगळा पाहे। दिवो जैसा ॥३५६॥
तैसें मन हेतु पांडवा। होय कर्मसंकल्पभावा। तो संकल्पु लावी दिवा। वाचेचा गा ॥३५७॥
मग वाचेचा तो दिवटा। दावी कृत्यजातांचिया वाटा। तेव्हां कर्ता रिगे कामठां . कर्तृत्वाच्या ॥३५८॥
तेथ शरीरादिक दळवाडें। शरीरादिकां हेतुचि घडे। लोहकाम लोखंडें। निर्वाळिजे जैसें ॥३५९॥
कां तांथुवाचा ताणा। तांथु घालितां वैरणा। तो तंतुचि विचक्षणा। होय पटु ॥३६०॥
तैसें मनवाचादेहाचें। कर्म मनादि हेतुचि रचे। रत्नीं घडे रत्नाचें। दळवाडें जेवीं ॥३६१॥
एथ शरीरादिकें कारणें। तेंचि हेतु केवीं हें कोणें। अपेक्षिजे तरी तेणें। अवधारिजो ॥३६२॥
आइका सूर्याचिया प्रकाशा। हेतु कारण सूर्युचि जैसा। कां ऊंसाचें कांडें ऊंसा। वाढी हेतु ॥३६३॥
नाना वाग्देवता वानावी। तैं वाचाचि लागे कामवावी। कां वेदां वेदेंचि बोलावी। प्रतिष्ठा जेवीं ॥३६४॥
तैसें कर्मा शरीरादिकें। कारण हें कीर ठाउकें। परी हेंचि हेतु न चुके। हेंही एथ ॥३६५॥
आणि देहादिकीं कारणीं। देहादि हेतु मिळणीं। होय जया उभारणी। कर्मजातां ॥३६६॥
तें शास्त्रार्थें मानिलेया। मार्गा अनुसरे धनंजया। तरी न्याय तो न्याया। हेतु होय ॥३६७॥
जैसा पर्जन्योदकाचा लोटु। विपायें धरी साळीचा पाटु। तो जिरे परी अचाटु। उपयोगु आथी ॥३६८॥
कां रोषें निघालें अवचटें। पडिलें द्वारकेचिया वाटे . तें शिणे परी सुनाटें। न वचिती पदें ॥३६९॥
तैसें हेतुकारण मेळें। उठी कर्म जें आंधळें। तें शास्त्राचें लाहे डोळे। तैं न्याय म्हणिपे ॥३७०॥

ना दूध वाढिता ठावो पावे। तंव उतोनि जाय स्वभावें। तोही वेंचु परी नव्हे। वेंचिलें तें ॥३७१॥
तैसें शास्त्रसाह्यें‌वीण। केलें नोहे जरी अकारण। तरी लागो कां नागवण। दानलेखीं ॥३७२॥
अगा बावन्ना वर्णांपरता। कोण मंत्रु आहे पंडुसुता। कां बावन्नही नुच्चारितां। जीवु आथी ? ॥३७३॥
परी मंत्राची कडसणी। जंव नेणिजे कोदंडपाणी। तंव उच्चारफळ वाणी। न पवे जेवीं ॥३७४॥
तेवीं कारणहेतुयोगें। जें बिसाट कर्म निगे। तें शास्त्राचिये न लगे। कांसे जंव ॥३७५॥
कर्म होतचि असे तेव्हांही। परी तें होणें नव्हे पाहीं। तो अन्यायो गा अन्यायीं। हेतु होय ॥३७६॥
तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥१६॥
एवं पंचकारणा कर्मा। पांचही हेतु हे सुमहिमा। आतां एथें पाहें पां आत्मा। सांपडला असे ? ॥३७७॥
भानु न होनि रूपें जैसीं। चक्षुरूपातें प्रकाशी। आत्मा न होनि कर्में तैसीं। प्रकटित असे गा ॥३७८॥
पैं प्रतिबिंब आरिसा। दोन्ही न होनि वीरेशा। दोहींतें प्रकाशी जैसा। न्याहाळिता तो ॥३७९॥
कां अहोरात्र सविता। न होनि करी पंडुसुता। तैसा आत्मा कर्मकर्ता। न होनि दावी ॥३८०॥
परी देहाहंमान भुली। जयाची बुद्धि देहींचि आतली। तया आत्मविषयीं जाली। मध्यरात्री गा ॥३८१॥
जेणें चैतन्या ईश्वरा ब्रह्मा। देहचि केलें परमसीमा। तया आत्मा कर्ता हे प्रमा। अलोट उपजे ॥३८२॥
आत्माचि कर्मकर्ता। हाही निश्चयो नाहीं तत्वतां। देहोचि मी कर्मकर्ता। मानितो साचें ॥३८३॥
जे आत्मा मी कर्मातीतु। सर्वकर्मसाक्षिभूतु। हे आपुली कहीं मातु। नायकेचि कानीं ॥३८४॥
म्हणौनि उमपा आत्मयातें। देहचिवरी मविजे एथें। विचित्र काई रात्रि दिवसातें। डुडुळ न करी ? ॥३८५॥
पैं जेणें आकाशींचा कहीं। सत्य सूर्यु देखिला नाहीं। तो थिल्लरींचें बिंब काई। मानू न लाहे ? ॥३८६॥
थिल्लराचेनि जालेपणें। सूर्यासि आणी होणें। त्याच्या नाशीं नाशणें। कंपें कंपू ॥३८७॥
आणि निद्रिस्ता चेवो नये। तंव स्वप्न साच हों लाहे। रज्जु नेणतां सापा बिहे। विस्मो कवण ? ॥३८८॥
जंव कवळ आथि डोळां। तंव चंद्रु देखावा कीं पिंवळा। काय मृगींहीं मृगजळा। भाळावें नाहीं ? ॥३८९॥
तैसा शास्त्रगुरूचेनि नांवें। जो वाराही टेंकों नेदी सिवें। केवळ मौढ्याचेनिचि जीवें। जियाला जो ॥३९०॥
तेणें देहात्मदृष्टीमुळें। आत्मया घापे देहाचें जाळें। जैसा अभ्राचा वेगु कोल्हें। चंद्रीं मानीं ॥३९१॥
मग तया मानणयासाठीं। देहबंदीशाळे किरीटी। कर्माच्या वज्रगांठी। कळासे तो ॥३९२॥
पाहे पां बद्ध भावना दृढा। नळियेवरी तो बापुडा। काय मोकळेयाही पायाचा चवडा। न ठकेचि पुंसा ॥३९३॥
म्हणौनि निर्मळा आत्मस्वरूपीं। तो प्रकृतीचें केलें आरोपी। तो कल्पकोडीच्या मापीं। मवीचि कर्में ॥३९४॥
आता कर्मामाजीं असे . परी तयातें कर्म न स्पर्शे। वडवानळातें जैसें। समुद्रोदक ॥३९५॥
तैसेंनि वेगळेपणें। जयाचें कर्मीं असणें। तो कीर वोळखावा कवणें। तरी सांगो ॥३९६॥
जे मुक्तातें निर्धारितां। लाभे आपलीच मुक्तता। जैसी दीपें दिसें पाहतां। आपली वस्तु ॥३९७॥
नातरी दर्पणु जंव उटिजे। तंव आपणपयां आपण भेटिजे। कां तोय पावतां तोय होईजे। लवणें जेंवीं ॥३९८॥
हें असो परतोनि मागुतें। प्रतिबिंब पाहे बिंबातें। तंव पाहणें जाउनी आयितें। बिंबचि होय ॥३९९॥
तैसें हारपलें आपणपें पावे। तैं संतांतें पाहतां गिंवसावें। म्हणौनि वानावे ऐकावे। तेचि सदा ॥४००॥
परी कर्मीं असोनि कर्में . जो नावरे समेंविषमें। चर्मचक्षूंचेनि चामें। दृष्टि जैसी ॥४०१॥
तैसा सोडवला जो आहे। तयाचें रूप आतां पाहें। उपपत्तीची बाहे। उभऊनि सांगों ॥४०२॥
यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वाऽपि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥१७॥
तरी अविद्येचिया निदा। विश्वस्वप्नाचा हा धांदा। भोगीत होता प्रबुद्धा। अनादि जो ॥४०३॥

तो महावाक्याचेनि नांवें। गुरुकृपेचेनि थांवें। माथां हातु ठेविला नव्हे। थापटिला जैसा ॥४०४॥
तैसा विश्वस्वप्नेंसीं माया। नीद सांडूनि धनंजया। सहसा चेइला अद्वया- । नंदपणें जो ॥४०५॥
तेव्हां मृगजळाचे पूर। दिसते एक निरंतर। हारपती कां चंद्रकर। फांकतां जैसे ॥४०६॥
कां बाळत्व निघोनि जाय। तैं बागुला नाहीं त्राय। पैं जळालिया इंधन न होय। इंधन जेवीं ॥४०७॥
नाना चेवो आलिया पाठीं। तैं स्वप्न न दिसे दिठी। तैसी अहं ममता किरीटी। नुरेचि तया ॥४०८॥
मग सूर्यु आंधारालागीं। रिघो कां भलते सुरंगीं। परी तो तयाच्या भागीं। नाहींचि जैसा ॥४०९॥
तैसा आत्मत्वें वेष्टिला होये। तो जया जया दृश्यातें पाहें। तें दृष्य द्रष्टेपणेंसीं होत जाये। तयाचेंचि रूप ॥४१०॥
जैसा वन्हि जया लागे। तें वन्हिचि जालिया आंगें। दाह्यदाहकविभागें। सांडिजे तें ॥४११॥
तैसा कर्माकारा दुजेया। तो कर्तेपणाचा आत्मया। आळु आला तो गेलिया। कांहीं बाहीं जें उरे ॥४१२॥
तिये आत्मस्थितीचा जो रावो। मग तो देहीं इये जाणेल ठावो ? . काय प्रलयांबूचा उन्नाहो। वोघु मानी ? ॥४१३॥
तैसी ते पूर्ण अहंता। काई देहपणें पंडुसुता। आवरे काई सविता। बिंबें धरिला ? ॥४१४॥
पैं मथूनि लोणी घेपे। तें मागुती ताकीं घापे। तरी तें अलिप्तपणें सिंपे। तेणेंसी काई ? ॥४१५॥
नाना काष्ठौनि वीरेशा। वेगळा केलिया हुताशा। राहे काष्ठाचिया मांदुसा। कोंडलेपणें ? ॥४१६॥
कां रात्रीचिया उदराआंतु। निघाला जो हा भास्वतु। तो रात्री ऐसी मातु। ऐके कायी ? ॥४१७॥
तैसें वेद्य वेदकपणेंसी। पडिलें कां जयाचे ग्रासीं। तया देह मी ऐसी। अहंता कैंची ? ॥४१८॥
आणि आकाशें जेथें जेथुनी। जाइजे तेथ असे भरोनी। म्हणौनि ठेलें कोंदोनी। आपेंआप ॥४१९॥
तैसें जें तेणें करावें। तो तेंचि आहे स्वभावें। मा कोणें कर्मीं वेष्टावें। कर्तेपणें ? ॥४२०॥
नुरेचि गगनावीण ठावो। नोहेचि समुद्रा प्रवाहो। नुठीचि ध्रुवा जावों। तैसें जाहालें ॥४२१॥
ऐसेनि अहंकृतिभावो। जयाचा बोधीं जाहला वावो। तऱ्ही देहा जंव निर्वाहो। तंव आथी कर्में ॥४२२॥
वारा जरी वाजोनि वोसरे। तरी तो डोल रुखीं उरे। कां सेंदें द्रुति राहे कापुरें। वेंचलेनी ॥४२३॥
कां सरलेया गीताचा समारंभु। न वचे राहवलेपणाचा क्षोभु। भूमी लोळोनि गेलिया अंबु। वोल थारे ॥४२४॥
अगा मावळलेनि अर्कें। संध्येचिये भूमिके। ज्योतिदीप्ति कौतुकें। दिसे जैसी ॥४२५॥
पैं लक्ष भेदिलियाहीवरी। बाण धांवेचि तंववरी। जंव भरली आथी उरी। बळाची ते ॥४२६॥
नाना चक्रीं भांडें जालें। तें कुलालें परतें नेलें। परी भ्रमेंचि तें मागिले। भोवंडिलेपणें ॥४२७॥
तैसा देहाभिमानु गेलिया। देह जेणें स्वभावें धनंजया. जालें तें अपैसया। चेष्टवीच तें ॥४२८॥
संकल्पेंवीण स्वप्न। न लावितां दांगीचें बन। न रचितां गंधर्वभुवन। उठी जैसें ॥४२९॥
आत्मयाचेनि उद्यमेंवीण। तैसें देहादिपंचकारण। होय आपणयां आपण। क्रियाजात ॥४३०॥
पैं प्राचीनसंस्कारवशें। पांचही कारणें सहेतुकें। कामवीजती गा अनेकें। कर्माकारें ॥४३१॥
तया कर्मामाजीं मग। संहरो आघवें जग। अथवा नवें चांग। अनुकरो ॥४३२॥
परी कुमुद कैसेनि सुके। कैसें तें कमळ फांके। हीं दोन्ही रवी न देखे। जयापरी ॥४३३॥
कां वीजु वर्षोनि आभाळ। ठिकरिया आतो भूतळ। अथवा करूं शाड्वळ। प्रसन्नावृष्टी ॥४३४॥
तरी तया दोहींतें जैसें। नेणिजेचि कां आकाशें। तैसा देहींच जो असे . विदेहदृष्टी ॥४३५॥
तो देहादिकीं चेष्टीं। घडतां मोडतां हे सृष्टी। न देखे स्वप्न दृष्टी। चेइला जैसा ॥४३६॥
येऱ्हवीं चामाचे डोळेवरी। जे देखती देहचिवरी। ते कीर तो व्यापारी। ऐसेंचि मानिती ॥४३७॥
कां तृणाचा बाहुला। जो आगरामेरें ठेविला। तो साचचि राखता कोल्हा। मानिजे ना ? ॥४३८॥
पिसें ं नेसलें कां नागवें। हें लोकीं येऊनि जाणावें। ठाणोरियांचें मवावें। आणिकीं घाय ॥४३९॥
कां महासतीचे भोग। देखे कीर सकळ जग। परी ते आगी ना आंग। ना लोकु देखे ॥४४०॥

तैसा स्वस्वरूपें उठिला। जो दृश्येंसी द्रष्टा आटला। तो नेणें काय राहटला। इंद्रियग्रामु ॥४४१॥
अगा थोरीं कल्लोळीं कल्लोळ साने। लोपतां तिरींचेनि जनें। एकीं एक गिळिलें हें मनें। मानिजे जऱ्ही ॥४४२॥
तऱ्ही उदकाप्रति पाहीं। कोण ग्रसितसे काई। तैसें पूर्णा दुजें नाहीं। जें तो मारी ॥४४३॥
सुवर्णाचिया चंडिका। सुवर्णशूळेंचि देखा। सुवर्णाचिया महिखा। नाशु केला ॥४४४॥
तो देवलवसिया कडा। व्यवहारु गमला फुडा। वांचूनि शूळ महिष चामुंडा। सुवर्णचि तें ॥४४५॥
पैं चित्रींचें जळ हुतांशु। तो दृष्टीचाचि आभासु। पटीं आगी वोलांशु। दोन्ही नाहीं ॥४४६॥
मुक्ताचें देह तैसें . हालत संस्कारवशें . तें देखोनि लोक पिसे . कर्ता म्हणती ॥४४७॥
आणि तयां करणेया आंतु। घडो तिहीं लोकां घातु। परी तेणें केला हे मातु। बोलों नये ॥४४८॥
अगा अंधारुचि देखावा तेजें। मग तो फेडी हें बोलिजे। . तैसें ज्ञानिया नाहीं दुजें। जें तो मारी ॥४४९॥
म्हणौनि तयाचि बुद्धी। नेणे पापपुण्याची गंधी। गंगा मीनलिया नदी। विटाळु जैसा ॥४५०॥
आगीसी आगी झगटलिया। काय पोळे धनंजया। . कीं शस्त्र रुपे आपणया। आपणचि ॥४५१॥
तैसें आपणपयापरतें। जो नेणें क्रियाजाततें। तेथ काय लिंपवी बुद्धीतें। तयाचिये ॥४५२॥
म्हणौनि कार्य कर्ता क्रिया। हें स्वरूपचि जाहलें जया। नाहीं शरीरादिकीं तया। कर्मी बंधु ॥४५३॥
जे कर्ता जीव विंदाणीं। काढूनि पांचही खाणी। घडित आहे करणीं। आउतीं दाहें ॥४५४॥
तेथ न्यावो आणि अन्यावो। हा द्विविधु साधूनि आवो। उभविता न लवी खेंवो। कर्मभुवनें ॥४५५॥
या थोराडा कीर कामा। विरजा नोहे आत्मा। परी म्हणसी हन उपक्रमा। हातु लावी ॥४५६॥
तो साक्षी चिद्रूपु। कर्मप्रवृत्तीचा संकल्पु। उठी तो कां निरोपु। आपणचि दे ? ॥४५७॥
तरी कर्मप्रवृत्तीहीलागीं। तया आयासु नाहीं आंगीं। जे प्रवृत्तीचेही उळिगीं। लोकुचि आथी ॥४५८॥
म्हणौनि आत्मयाचें केवळ। जो रूपचि जाहला निखिळ। तया नाहीं बंदिशाळ। कर्माचि हे ॥४५९॥
परी अज्ञानाच्या पटीं। अन्यथा ज्ञानाचें चित्र उठी। तेथ चितारणी हे त्रिपुटी। प्रसिद्ध जे कां ॥४६०॥

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥१८॥

जें ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय। हें जगाचें बीज त्रय। ते कर्माची निःसंदेह। प्रवृत्ति जाण ॥४६१॥
आतां ययाचि गा त्रया। व्यक्ति वेगळालिया। आइकें धनंजया। करूं रूप ॥४६२॥
तरी जीवसूर्यबिंबाचे। रश्मी श्रोत्रादिकें पांचें। धांवोनि विषयपद्माचे। फोडिती मढ ॥४६३॥
कीं जीवनृपाचे वारु उपलाणें। घेऊनि इंद्रियांचीं केकाणें। विषयदेशींचें नागवणें। आणीत जे ॥४६४॥
हें असो इहीं इंद्रियीं राहाटे। जें सुखदुःखेंसीं जीवा भेटे। तें सुषुप्तिकालीं वोहटे। जेथ ज्ञान ॥४६५॥
तया जीवा नांव ज्ञाता। आणि जें हें सांगितलें आतां। तेंचि एथ पंडुसुता। ज्ञान जाण ॥४६६॥
जें अविद्येचिये पोटीं। उपजतखेंवो किरीटी। आपणयातें वांटी। तिहीं ठायीं ॥४६७॥
आपुलिये धांवे पुढां। घालूनि ज्ञेयाचा गुंडा। उभारी मागिलीकडां। ज्ञातृत्वातें ॥४६८॥
मग ज्ञातया ज्ञेया दोघां। तो नांदणुकेचा बगा। माजीं जालेनि पैं गा। वाहे जेणें ॥४६९॥
ठाकूनि ज्ञेयाची शिंव। पुरे जयाची धांव। सकळ पदार्थां नांव। सूतसे जें ॥४७०॥
तें गा सामान्य ज्ञान। या बोअला नाहीं आन। ज्ञेयाचेंही चिन्ह। आइक आतां ॥४७१॥
तरी शब्दु स्पर्शु। रूप गंध रसु। हा पंचविध आभासु। ज्ञेयाचा तो ॥४७२॥
जैसें एकेचि चूतफळें। इंद्रियां वेगवेगळे। रसें वर्णें परीमळें। भेटिजे स्पर्शें ॥४७३॥
तैसें ज्ञेय तरी एकसरें। परी ज्ञान इंद्रियद्वारें। घे म्हणौनि प्रकारें। पांचें जालें ॥४७४॥
आणि समुद्रीं वोघाचें जाणें। सरे लाणीपासीं धावणें। कां फळीं सरे वाढणें। सस्याचें जेवीं ॥४७५॥

तैसें इंद्रियांच्या वाहवटीं। धांवतया ज्ञाना जेथ ठी। होय तें गा किरीटी। विषय ज्ञेय ॥४७६॥
एवं ज्ञातया ज्ञाना ज्ञेया। तिहीं रूप केलें धनंजया। हे त्रिविध सर्व क्रिया- । प्रवृत्ति जाण ॥४७७॥
जे शब्दादि विषय। हें पंचविध जें ज्ञेय। तेंचि प्रिय कां अप्रिय। एकेपरीचें ॥४७८॥
ज्ञान मोटकें ज्ञातया। दावी ना जंव धनंजया। तंव स्वीकारा कीं त्यजावया। प्रवर्तेचि तो ॥४७९॥
परी मीनातें देखोनि बकु। जैसा निधानातें रंकु। कां स्त्री देखोनि कामुकु। प्रवृत्ति धरी ॥४८०॥
जैसें खालारां धांवे पाणी। भ्रमर पुष्पाचिये घाणीं। नाना सुटला सांजवणीं। वत्सुचि पां ॥४८१॥
अगा स्वर्गींची उर्वशी . ऐकोनि जेंवी माणुसीं। वराता लावीजती आकाशीं। यागांचिया ॥४८२॥
पैं पारिवा जैसा किरीटी। चढला नभाचिये पोटीं। पारवी देखोनि लोटी। आंगचि सगळें ॥४८३॥
हें ना घनगर्जनासरिसा। मयूर वोवांडे आकाशा। ज्ञाता ज्ञेय देखोनि तैसा। धांवचि घे ॥४८४॥
म्हणौनि ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता। हे त्रिविध गा पंडुसुता। होयचि कर्मा समस्तां। प्रवृत्ति येथ ॥४८५॥
परी तेंचि ज्ञेय विपायें। जरी ज्ञातयातें प्रिय होये। तरी भोगावया न साहे। क्षणही विलंबु ॥४८६॥
नातरी अवचटें। तेंचि विरुद्ध होऊनि भेटे। तरी युगांत वाटे। सांडावया ॥४८७॥
व्याळा कां हारा। वरपडा जालेया नरा। हरिखु आणि दरारा। सरिसाचि उठी ॥४८८॥
तैसें ज्ञेय प्रियाप्रियें। देखिलेनि ज्ञातया होये। मग त्याग स्वीकारीं वाहे। व्यापारातें ॥४८९॥
तेथ रागी प्रतिमल्लाचा। गोसांवी सर्वदळाचा। रथु सांडूनि पायांचा। होय जैसा ॥४९०॥
तैसें ज्ञातेपणें जें असे . तें ये कर्ता ऐसिये दशे। जेवितें बैसलें जैसें। रंधन करूं ॥४९१॥
कां भंवरेंचि केला मळा। वरकलुचि जाला अंकसाळा। नाना देवो रिगाला देऊळा- । चिया कामा ॥४९२॥
तैसा ज्ञेयाचिया हांवा। ज्ञाता इंद्रियांचा मेळावा। राहाटवी तेथ पांडवा। कर्ता होय ॥४९३॥
आणि आपण होउनी कर्ता। ज्ञाना आणी करणता। तेथें ज्ञेयचि स्वभावतां। कार्य होय ॥४९४॥
ऐसा ज्ञानाचिये निजगति। पालटु पडे गा सुमति। डोळयाची शोभा रातीं। पालटे जैसी ॥४९५॥
कां अदृष्ट जालिया उदासु। पालटे श्रीमंताचा विलासु। पुनिवेपाठीं शीतांशु। पालटे जैसा ॥४९६॥
तैसा चाळितां करणें। ज्ञाता वेष्टिजे कर्तेपणें। तेथींचीं तियें लक्षणें। ऐक आतां ॥४९७॥
तरी बुद्धि आणि मन। चित्त अहंकार हन। हें चतुर्विध चिन्ह। अंतःकरणाचें ॥४९८॥
बाह्य त्वचा श्रवण। चक्षु रसना घ्राण। हें पंचविध जाण। इंद्रियें गा ॥४९९॥
तेथ आंतुले तंव करणें। कर्ता कर्तव्या घे उमाणें। मग तैं जरी जाणें। सुखा येतें ॥५००॥
तरी बाहेरीलें तियेंही। चक्षुरादिकें दाहाही। उठौनि लवलाहीं। व्यापारा सूये ॥५०१॥
मग तो इंद्रियकदंंबु। करविजे तंव राबु। जंव कर्तव्याचा लाभु। हातासि ये ॥५०२॥
ना तें कर्तव्य जरी दुःखें। फळेल ऐसें देखे। तो लावी त्यागमुखें। तियें दाहाही ॥५०३॥
मग फिटे दुःखाचा ठावो। तंव राहाटवी रात्रिदिवो। विकणवातें कां रावो। जयापरी ॥५०४॥
तैसेनि त्याग स्वीकारीं। वाहातां इंद्रियांची धुरी। ज्ञातयातें अवधारीं। कर्ता म्हणिपे ॥५०५॥
आणि कर्तयाच्या सर्व कर्मीं। आउतांचिया परी क्षमी। म्हणौनि इंद्रियांतें आम्ही। करणें म्हणों ॥५०६॥
आणि हेचि करणेंवरी। कर्ता क्रिया ज्या उभारी। तिया व्यापे तें अवधारीं। कर्म एथ ॥५०७॥
सोनाराचिया बुद्धि लेणें। व्यापे चंद्रकरीं चांदणें। कां व्यापे वेल्हाळपणें। वेली जैसी ॥५०८॥
नाना प्रभा व्यापे प्रकाशु। गोडिया इक्षुरसु। हें असो अवकाशु। आकाशीं जैसा ॥५०९॥
तैसें कर्तयाचिया क्रिया। व्यापलें जें धनंजया। तें कर्म गा बोलावया। आन नाहीं ॥५१०॥
एवं कर्म कर्ता करण . या तिहींचेंही लक्षण। सांगितलें तुज विचक्षण- । शिरोमणी ॥५११॥
एथ ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय। हें कर्माचें प्रवृत्तित्रय। तैसेंचि कर्ता करण कार्य। हा कर्मसंचयो ॥५१२॥

वन्हीं ठेविला असे धूमु। आथी बीजीं जेवीं द्रुमु। कां मनीं जोडे कामु। सदा जैसा ॥५१३॥
तैसा कर्ता क्रिया करणीं। कर्माचें आहे जिंतवणीं। सोनें जैसें खाणी। सुवर्णाचिये ॥५१४॥
म्हणौनि हें कार्य मी कर्ता। ऐसें आथि जेथ पंडुसुता। तेथ आत्मा दूरी समस्ता। क्रियांपासीं ॥५१५॥
यालागीं पुढतपुढती। आत्मा वेगळाचि सुमती। आतां असो हे किती। जाणतासि तूं ॥५१६॥
ज्ञानं कर्म च कर्ताच त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥१९॥
परी सांगितलें जें ज्ञान। कर्म कर्ता हन। ते तिन्ही तिहीं ठायीं भिन्न। गुणीं आहाती ॥५१७॥
म्हणौनि ज्ञाना कर्मा कर्तया। पातेजों नये धनंजया। जे दोनी बांधती सोडावया। एकचि प्रौढ ॥५१८॥
तें सात्विक ठाऊवें होये। तो गुणभेदु सांगों पाहे। जो सांख्यशास्त्रीं आहे। उवाइला ॥५१९॥
जें विचारक्षीरसमुद्र। स्वबोधकुमुदिनीचंद्र। ज्ञानडोळसां नरेंद्र। शास्त्रांचा जें ॥५२०॥
कीं प्रकृतिपुरुष दोनी। मिसळलीं दिवोरजनीं। तियें निवडितां त्रिभुवनीं। मार्तंडु जें ॥५२१॥
जेथ अपारा मोहराशी। तत्वाच्या मापीं चोविसीं। उगाणा घेऊनि परेशीं। सुरवाडिजे ॥५२२॥
अर्जुना तें सांख्यशास्त्र। पढे जयाचें स्तोत्र। तें गुणभेदचरित्र। ऐसें आहे ॥५२३॥
जे आपुलेनि आंगिकें। त्रिविधपणाचेनि अंकें। दृश्यजात तितुकें। अंकित केलें ॥५२४॥
एवं सत्वरजतमा। तिहींची एवढी असे महिमा। जें त्रैविध्य आदी ब्रह्मा। अंतीं कृमी ॥५२५॥
परी विश्वींची आघवी मांदी। जेणें भेदलेनि गुणभेदीं। पडिली तें तंव आदी। ज्ञान सांगो ॥५२६॥
जे दिठी जरी चोख कीजे। तरी भलतेंही चोख सुजे। तैसें ज्ञानें शुद्धें लाहिजे। सर्वही शुद्ध ॥५२७॥
म्हणौनि तें सात्विक ज्ञान। आतां सांगों दे अवधान। कैवल्यगुणनिधान। श्रीकृष्ण म्हणे ॥५२८॥
सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥२०॥
तरी अर्जुना गा तें फुडें। सात्विक ज्ञान चोखडें। जयाच्या उदयीं ज्ञेय बुडे। ज्ञातेनिसीं ॥५२९॥
जैसा सूर्य न देखे अंधारें। सरिता नेणिजती सागरें। कां कवळिलिया न धरे। आत्मछाया ॥५३०॥
तयापरी जया ज्ञाना। शिवादि तृणावसाना। इया भूतव्यक्ति भिन्ना। नाडळती ॥५३१॥
जैसें हातें चित्र पाहातां। होय पाणियें मीठ धुतां। कां चेवोनि स्वप्ना येतां। जैसें होय ॥५३२॥
तैसें ज्ञानें जेणें। करितां ज्ञातव्यातें पाहाणें। जाणता ना जाणणें। जाणावें उरे ॥५३३॥
पैं सोनें आटूनि लेणीं। न काढिती आपुलिया आयणी। कां तरंग न घेपती पाणी। गाळूनि जैसें ॥५३४॥
तैसी जया ज्ञानाचिया हाता। न लगेचि दृश्यपथा। तें ज्ञान जाण सर्वथा। सात्विक गा ॥५३५॥
आरिसा पाहों जातां कोडें। जैसें पाहातेंचि कां रिगे पुढें। तैसें ज्ञेय लोटोनि पडे। ज्ञाताचि जें ॥५३६॥
पुढती तेंचि सात्विक ज्ञान। जें मोक्षलक्ष्मीचें भुवन। हें असो ऐक चिन्ह। राजसाचें ॥५३७॥
पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥२१॥
तरी पार्था परीयेस। तें ज्ञान गा राजस। जें भेदाची कांस। धरूनि चाले ॥५३८॥
विचित्रता भूतांचिया। आपण आंतोनि ठिकरिया। बहु चकै ज्ञातया। आणिली जेणें ॥५३९॥
जैसें साचा रूपाआड। घालूनि विसराचें कवाड। मग स्वप्नाचें काबाड। ओपी निद्रा ॥५४०॥
तैसें स्वज्ञानाचिये पौळी। बाहेरि मिथ्या महीं खळीं। तिहीं अवस्थांचिया वह्याळी। दावी जें जीवा ॥५४१॥
अलंकारपणें झांकलें। बाळा सोनें कां वायां गेलें। तैसें नामीं रूपीं दुरावलें। अद्वैत जया ॥५४२॥
अवतरली गाडग्यां घडां। पृथ्वी अनोळख जाली मूढां। वन्हि जाला कानडा। दीपत्वासाठीं ॥५४३॥

कां वस्त्रपणाचेनि आरोपें। मूर्खाप्रति तंतु हारपे। नाना मुग्धा पटु लोपे। दाऊनि चित्र ॥५४४॥
तैशी जया ज्ञाना। जाणोनि भूतव्यक्ती भिन्ना। ऐक्यबोधाची भावना। निमोनि गेली ॥५४५॥
मग इंधनीं भेदला अनळु। फुलांवरी परीमळु। कां जळभेदें शकलु। चंद्रु जैसा ॥५४६॥
तैसें पदार्थभेद बहुवस। जाणोनि लहानथोर वेष। आंतलें तें राजस। ज्ञान येथ ॥५४७॥
आतां तामसाचेंही लिंग। सांगेन तें वोळख चांग। डावलावया मातंग- । सदन जैसें ॥५४८॥
यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥
तरी किरीटी जें ज्ञान। हिंडे विधीचेनि वस्त्रेंहीन। श्रुति पाठमोरी नग्न। म्हणौनि तया ॥५४९॥
येरींही शास्त्र बटिकरीं। जें निंदेचे विटाळवरी। बोळविलेंसे डोंगरीं। म्लेंच्छधर्माच्या ॥५५०॥
जें गा ज्ञान ऐसें। गुणग्रहें तामसें। घेतलें भवें पिसें। होऊनियां ॥५५१॥
जें सोयरिकें बाधु नेणें। पदार्थीं निषेधु न म्हणे। निरोविलें जैसें सुणें . शून्यग्रामीं ॥५५२॥
तया तोंडीं जें नाडळे। कां खातां जेणें पोळे। तेंचि येक वाळे। येर घेणेचि ॥५५३॥
पैं सोनें चोरितां उंदिरु। न म्हणे थरुविथरु। नेणे मांसखाइरु। काळें गोरें ॥५५४॥
नाना वनामाजीं बोहरी। कडसणी जेवीं न करी। कां जीत मेलें न विचारी। बैसतां माशी ॥५५५॥
अगा वांता कां वाढिलेया। साजुक कां सडलिया। विवेकु कावळिया। नाहीं जैसा ॥५५६॥
तैसें निषिद्ध सांडूनि द्यावें। कां विहित आदरें घ्यावें। हें विषयांचेनि नांवें. नेणेंचि जें ॥५५७॥
जेतुलें आड पडे दिठी। तेतुलें घेचि विषयासाठीं। मग तें स्त्री- द्रव्य वाटी . शिश्नोदरां ॥५५८॥
तीर्थातीर्थ हे भाख। उदकीं नाहीं सनोळख। तृषा वोळे तेंचि सुख। वांचूनियां ॥५५९॥
तयाचिपरी खाद्याखाद्य। न म्हणे निंद्यानिंद्य। तोंडा आवडे तें मेध्य। ऐसाचि बोधु ॥५६०॥
आणि स्त्रीजात तितुकें। त्वचेंद्रियेंचि वोळखे। तियेविषयीं सोयरिकें। एकचि बोधु ॥५६१॥
पैं स्वार्थीं जें उपकरे। तयाचि नाम सोयिरें। देहसंबंधु न सरे। जिये ज्ञानीं ॥५६२॥
मृत्यूचें आघवेंचि अन्न। आघवेंचि आगी इंधन। तैसें जगचि आपलें धन। तामसज्ञाना ॥५६३॥
ऐसेनि विश्व सकळ। जेणें विषयोचि मानिलें केवळ। तया एक जाण फळ। देहभरण ॥५६४॥
आकाशपतिता नीरा। जैसा सिंधुचि येक थारा। तैसें कृत्यजात उदरा- । लागिंचि बुझे ॥५६५॥
वांचूनि स्वर्गु नरकु आथी। तया हेतु प्रवृत्ति निवृत्ती। इये आघवियेचि राती। जाणिवेची जें ॥५६६॥
जें देहखंडा नाम आत्मा। ईश्वर पाषाणप्रतिमा। ययापरौती प्रमा। ढळों नेणें ॥५६७॥
म्हणे पडिलेनि शरीरें। केलेनिसीं आत्मा सरे। मा भोगावया उरे। कोण वेषें ॥५६८॥
ना ईश्वरु पाहातां आहे। तो भोगवी हें जरी होये। तरी देवचि खाये। विकूनियां ॥५६९॥
गांवींचें देवळेश्वर। नियामकचि होती साचार। तरी देशींचे डोंगर। उगे कां असती ? ॥५७०॥
ऐसा विपायें देवो मानिजे। तरी पाषाणमात्रचि जाणिजे। आणि आत्मा तंव म्हणिजे। देहातेंचि ॥५७१॥
येरें पापपुण्यादिकें। तें आघवेंचि करोनि लटिकें। हित मानी अग्निमुखे। चरणें जें कां ॥५७२॥
जें चामाचे डोळे दाविती। जें इंद्रियें गोडी लाविती। तेंचि साच हे प्रतीती। फुडी जया ॥५७३॥
किंबहुना ऐसी प्रथा। वाढती देखसी पार्था। धूमाची वेली वृथा। आकाशीं जैसी ॥५७४॥
कोरडा ना वोला। उपेगा आथी गेला। तो वाढोनि मोडला। भेंडु जैसा ॥५७५॥
नाना उंसांचीं कणसें। कां नपुंसकें माणुसें। वन लागलें जैसें। साबरीचें ॥५७६॥
नातरी बाळकाचें मन। कां चोराघरींचें धन। अथवा गळास्तन। शेळियेचे ॥५७७॥
तैसें जें वायाणें। वोसाळ दिसे जाणणें। तयातें मी म्हणें। तामस ज्ञान ॥५७८॥

तेंही ज्ञान इया भाषा। बोलिजे तो भावो ऐसा। जात्यंधाचा कां जैसा। डोळा वाडु ॥५७९॥
कां बधिराचे नीट कान। अपेया नाम पान। तैसें आडनांव ज्ञान। तामसा तया ॥५८०॥
हें असो किती बोलावें। तरी ऐसें जें देखावें। तें ज्ञान नोहे जाणावें। डोळस तम ॥५८१॥
एवं तिहीं गुणीं। भेदलें यथालक्षणीं। ज्ञान श्रोतेशिरोमणी। दाविलें तुज ॥५८२॥
आतां याचि त्रिप्रकारा। ज्ञानाचेनि धनुर्धरा। प्रकाशें होती गोचरा। कर्तयांच्या क्रिया ॥५८३॥
म्हणौनि कर्म पैं गा। अनुसरे तिहीं भागां। मोहरे जालिया वोघा। तोय जैसे ॥५८४॥
तेंचि ज्ञानत्रयवशें। त्रिविध कर्म जें असे . तेथ सात्विक तंव ऐसें। परीसे आधीं ॥५८५॥
नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥२३॥
तरी स्वाधिकाराचेनि मार्गें। आलें जें मानिलें आंगें। पतिव्रतेचेनि परीष्वंगें। प्रियातें जैसें ॥५८६॥
सांवळया आंगा चंदन। प्रमदालोचनीं अंजन। तैसें अधिकारासी मंडण। नित्यपणें जें ॥५८७॥
तें नित्य कर्म भलें। होय नैमित्तिकीं सावाइलें। सोनयासि जोडलें। सौरभ्य जैसें ॥५८८॥
आणि आंगा जीवाची संपत्ती। वेंचूनि बाळाची करी पाळती। परी जीवें उबगणें हें स्थिती। न पाहे माय ॥५८९॥
तैसें सर्वस्वें कर्म अनुष्ठी। परी फळ न सूये दिठी। उखिती क्रिया पैठी। ब्रह्मींचि करी ॥५९०॥
आणि प्रिय आलिया स्वभावें। शंबळ उरे वेंचे ठाउवें . नव्हे तैसें सत्प्रसंगें करावें। पारुषे जरी ॥५९१॥
तरी अकरणाचेनि खेदें। द्वेषातें जीवीं न बांधे। जालियाचेनि आनंदें। फुंजों नेणें ॥५९२॥
ऐसाइसिया हातवटिया। कर्म निफजे जें धनंजया। जाण सात्विक हें तया। गुणनाम गा ॥५९३॥
ययावरी राजसाचें। लक्षण सांगिजेल साचें। न करीं अवधानाचें। वाणेंपण ॥५९४॥
यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥२४॥
तरी घरीं मातापितरां। धड बोली नाहीं संसारा। येर विश्व भरी आदरा। मूर्खु जैसा ॥५९५॥
का तुळशीचिया झाडा। दुरूनि न घापें सिंतोडा। द्राक्षीचिया तरी बुडा। दूधचि लाविजे ॥५९६॥
तैसी नित्यनैमित्तिकें। कर्में जियें आवश्यकें। तयांचेविषयीं न शके। बैसला उठूं ॥५९७॥
येरां काम्याचेनि तरी नांवें। देह सर्वस्व आघवें। वेचितांही न मनवे। बहु ऐसें ॥५९८॥
अगा देवढी वाढी लाहिजे। तेथ मोल देतां न धाइजे। पेरितां पुरें न म्हणिजे। बीज जेवीं ॥५९९॥
कां परीसु आलिया हातीं। लोहालागीं सर्वसंपत्ती। वेचितां ये उन्नती। साधकु जैसा ॥६००॥
तैसीं फळें देखोनि पुढें। काम्यकर्में दुवाडें। करी परी तें थोकडें। केलेंही मानी ॥६०१॥
तेणें फळकामुकें। यथाविधी नेटकें . काम्य कीजे तितुकें। क्रियाजात ॥६०२॥
आणि तयाही केलियाचें। तोंडीं लावी दौंडीचें। कर्मी या नांवपाटाचें। वाणें सारी ॥६०३॥
तैसा भरे कर्माहंकारु। मग पिता अथवा गुरु। ते न मनी काळज्वरु। औषध जैसें ॥६०४॥
तैसेनि साहंकारें। फळाभिलाषियें नरें। कीजे गा आदरें। जें जें कांहीं ॥६०५॥
परी तेंही करणें बहुवसा। वळघोनि करी सायासा। जीवनोपावो कां जैसा। कोल्हाटियांचा ॥६०६॥
एका कणालागीँ उंदिरु। आसका उपसे डोंगरु। कां शेवाळोद्देशें दर्दुरु। समुद्रु डहुळी ॥६०७॥
पैं भिकेपरतें न लाहे। तऱ्ही गारुडी सापु वाहे। काय कीजे शीणुचि होये। गोडु येकां ॥६०८॥
हे असो परमाणूचेनि लाभें। पाताळ लंघिती वोळंबे। तैसें स्वर्गसुखलोभें। विचंबणें जें ॥६०९॥
तें काम्य कर्म सक्लेश। जाणावें येथ राजस। आतां चिन्ह परिस। तामसाचें ॥६१०॥
अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ।

मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥२५॥

तरी तें गा तामस कर्म। जें निंदेचें काळें धाम। निषेधाचें जन्म। सांच जेणें ॥६११॥

जें निपजविल्यापाठीं। कांहींच न दिसे दिठी। रेघ काढलिया पोटीं। तोयाचे जेवीं ॥६१२॥

कां कांजी घुसळलिया। कां राखोंडी फुंकलिया। कांहीं न दिसे गाळिलिया। वाळुघाणा ॥६१३॥

नाना उपणिलिया भूंस। कां विंधिलिया आकाश। नाना मांडिलिया पाश। वारयासी ॥६१४॥

हें आवघेंचि जैसें। वांझें होऊनि नासे। जें केलिया पाठीं तैसें। वायांचि जाय ॥६१५॥

येऱ्हवीं नरदेहाही येवढें। धन आटणीये पडे। जें कर्म निफजवितां मोडे। जगाचें सुख ॥६१६॥

जैसा कमळवनीं फांसु। काढिलिया कांटसु। आपण झिजे नाशु। कमळां करी ॥६१७॥

कां आपण आंगें जळे। आणि नागवी जगाचे डोळे। पतंगु जैसा सळें। दीपाचेनि ॥६१८॥

तैसें सर्वस्व वायां जावो। वरी देहाही होय घावो। परी पुढिलां अपावो। निफजविजे जेणें ॥६१९॥

माशी आपणयातें गिळवी। परी पुढीला वांती शिणवी। तें कश्मळ आठवी। आचरण जें ॥६२०॥

तेंही करावयो दोषें। मज सामर्थ्य असे कीं नसे . हेंहीं पुढील तैसें। न पाहतां करी ॥६२१॥

केवढा माझा उपावो। करितां कोण प्रस्तावो। केलियाही आवो। काय येथ ॥६२२॥

इये जाणिवेची सोये। अविवेकाचेनि पायें। पुसोनियां होये। साटोप कर्मीं ॥६२३॥

आपला वसौटा जाळुनी। बिसाटे जैसा वन्ही। कां स्वमर्यादा गिळोनि। सिंधु उठी ॥६२४॥

मग नेणें बहु थोडें। न पाहे मागें पुढें। मार्गामार्ग येकवढें। करीत चाले ॥६२५॥

तैसें कृत्याकृत्य सरकटित। आपपर नुरवित। कर्म होय तें निश्चित। तामस जाण ॥६२६॥

ऐसी गुणत्रयभिन्ना। कर्माची गा अर्जुना। हे केली विवंचना। उपपत्तींसीं ॥६२७॥

आतां ययाचि कर्मा भजतां। कर्माभिमानिया कर्ता। तो जीवुही त्रिविधता। पातला असे ॥६२८॥

चतुराश्रमवशें। एकु पुरुषु चतुर्धा दिसे। कर्तया त्रैविध्य तैसें। कर्मभेदें ॥६२९॥

तरी तयां तिहीं आंतु। सात्विक तंव प्रस्तुतु। सांगेन दत्तचित्तु। आकर्णीं तूं ॥६३०॥

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।

सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥२६॥

तरी फळोद्देशें सांडिलिया। वाढती जेवीं सरळिया। शाखा कां चंदनाचिया। बावन्नया ॥६३१॥

कां न फळतांही सार्थका। जैसिया नागलतिका। तैसिया करी नित्यादिकां। क्रिया जो कां ॥६३२॥

परी फळशून्यता। नाहीं तया विफळता। पैं फळासीचि पंडुसुता। फळें कायिसी ॥६३३॥

आणि आदरें करी बहुवसें। परी कर्ता मी हें नुमसे। वर्षाकाळींचें जैसें। मेघवृंद ॥६३४॥

तेवींचि परमात्मलिंगा। समर्पावयाजोगा। कर्मकलापु पैं गा। निपजावया ॥६३५॥

तया काळातें नुलंघणें। देशशुद्धिही साधणें। कां शास्त्रांच्या वातीं पाहणें। क्रियानिर्णयो ॥६३६॥

वृत्ति करणें येकवळा। चित्त जावों न देणें फळा। नियमांचिया सांखळा। वाहणें सदा ॥६३७॥

हा निरोधु साहावयालागीं। धैर्याचिया चांगचांगीं। चिंतवणी जिती आंगीं। वाहे जो कां ॥६३८॥

आणि आत्मयाचिये आवडी। कर्में करितां वरपडीं। देहसुखाचिये परवडीं। येवों न लाहे ॥६३९॥

आळसा निद्रा दुऱ्हावे। क्षुधा न बाणवे। सुरवाडु न पावे। आंगाचा ठावो ॥६४०॥

तंव अधिकाधिक। उत्साहो धरी आगळीक। सोनें जैसें पुटीं तुक। तुटलिया कसीं ॥६४१॥

जरी आवडी आथी साच। तरी जीवितही सलंच। आगीं घालितां रोमांच। देखिजती सतिये ॥६४२॥

मा आत्मया येवढीया प्रिया। वालभेला जो धनंजया। देहही सिदतां तया। काय खेदु होईल ? ॥६४३॥

म्हणौनि विषयसुरवाडु तुटे। जंव जंव देहबुद्धि आटे। तंव तंव आनंदु दुणवटे। कर्मीं जया ॥६४४॥

ऐसेनि जो कर्म करी। आणि कोणे एके अवसरीं। तें ठाके ऐसी परी। वाहे जरी ॥६४५॥
तरी कडाडीं लोटला गाडा। तो आपणपें न मनी अवघडा। तैसा ठाकलेनिही थोडा। नोहे जो कां ॥६४६॥
नातरी आदरिलें। अव्यंग सिद्धी गेलें। तरी तेंही जिंतिलें। मिरवूं नेणें ॥६४७॥
इया खुणा कर्म करितां। देखिजे जो पंडुसुता। तयातें म्हणिपे तत्त्वतां। सात्विकु कर्ता ॥६४८॥
आतां राजसा कर्तेया। वोळखणें हें धनंजया। जे अभिलाषा जगाचिया. वसौटा तो ॥६४९॥
रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥२७॥
जैसा गावींचिया कश्मळा। उकरडा होय येकवळा। कां स्मशानीं अमंगळा। आघवयांची ॥६५०॥
तया परी जो अशेषा। विश्वाचिया अभिलाषा। पायपाखाळणिया दोषां। घरटा जाला ॥६५१॥
म्हणौनि फळाचा लागु। देखे जिये असलगु। तिये कर्मीं चांगु। रोहो मांडी ॥६५२॥
आणि आपण जालिये जोडी। उपखों नेदी कवडी। क्षणक्षणा कुरोंडी। जीवाची करी ॥६५३॥
कृपणु चित्तीं ठेवा आपुला। तैसा दक्षु पराविया माला। बकु जैसा खुतला। मासेयासी ॥६५४॥
आणि गोंवी गेलिया जवळी। झगटलिया अंग फाळी। फळें तरी आंतु पोळी। बोरांटी जैसी ॥६५५॥
तैसें मनें वाचा कायें। भलतया दुःख देतु जाये। स्वार्थु साधितां न पाहे। पराचें हित ॥६५६॥
तेवींचि आंगें कर्मीं। आचरणें नोहे क्षमी। न निघे मनोधर्मीं। अरोचकु ॥६५७॥
कनकाचिया फळा। आंतु माज बाहेरी मौळा। तैसा सबाह्य दुबळा। शुचित्वें जो ॥६५८॥
आणि कर्मजात केलिया। फळ लाहे जरी धनंजया। तरी हरिखें जगा यया। वांकुलिया वाये ॥६५९॥
अथवा जें आदरिलें। हीनफळ होय केलें। तरीं शोकें तेणें जिंतिलें। धिक्कारों लागे ॥६६०॥
कर्मीं राहाटी ऐसी। जयातें होती देखसी। तोचि जाण त्रिशुद्धीसी। राजस कर्ता ॥६६१॥
आतां यया पाठीं येरु। जो कुकर्माचा आगरु। तोही करूं गोचरु। तामस कर्ता ॥६६२॥
अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥२८॥
तरी मियां लागलिया कैसें। पुढील जळत असे . हें नेणिजे हुताशें . जियापरी ॥६६३॥
पैं शस्त्रें मियां तिखटें . नेणिजे कैसेनि निवटे। कां नेणिजे काळकूटें। आपुलें केलें ॥६६४॥
तैसा पुढीलया आपुलया। घातु करीत धनंजया। आदरी वोखटिया। क्रिया जो कां ॥६६५॥
तिया करितांही वेळीं। काय जालें हें न सांभाळी। चळला वायु वाहटुळी। चेष्टे तैसा ॥६६६॥
पैं करणिया आणि जया। मेळु नाहीं धनंजया। तो पाहुनी पिसेया। कैंचीं त्राय ? ॥६६७॥
आणि इंद्रियांचें वोगरिलें। चरोनि राखे जो जियालें। बैलातळीं लागलें। गोचिड जैसें ॥६६८॥
हांसया रुदना वेळु। नेणतां आदरी बाळु। राहाटे उच्छृंखळु। तयापरी ॥६६९॥
जो प्रकृती आंतलेपणें। कृत्याकृत्यस्वादु नेणे। फुगे केरें धालेपणें। उकरडा जैसा ॥६७०॥
म्हणौनि मान्याचेनि नांवें। ईश्वराही परी न खालवे। स्तब्धपणें न मनवे। डोंगरासी ॥६७१॥
आणि मन जयाचें विषकल्लोळीं। राहाटी फुडी चोरिली। दिठी कीर ते वोली। पण्यांगनेची ॥६७२॥
किंबहुना कपटाचें। देहचि वळिलें तयाचें। तें जिणें कीं जुंवाराचें। टिटेघर ॥६७३॥
नोहे तयाचा प्रादुर्भावो। तो साभिलाष भिल्लांचा गांवो। म्हणौनि नये येवों जावों। तया वाटा ॥६७४॥
आणि आणिकांचें निकें केलें। विरु होय जया आलें। जैसें अपेय पया मिनलें। लवण करी ॥६७५॥
कां हींव ऐसा पदार्थु। घातलिया आगीआंतु। तेचि क्षणीं धडाडितु। अग्नि होय ॥६७६॥
नाना सुद्रव्यें गोमटीं। जालिया शरीरीं पैठीं। होऊनि ठाती किरीटी। मळुचि जेवीं ॥६७७॥

तैसें पुढिलाचें बरवें। जयाच्या भीतरीं पावे। आणि विरुद्धचि आघवें। होऊनि निगे ॥६७८॥
जो गुण घे दे दोख। अमृताचें करी विख। दूध पाजलिया देख। व्याळु जैसा ॥६७९॥
आणि ऐहिकीं जियावें। जेणें परत्रा साच यावें। तें उचित कृत्य पावे। अवसरीं जिये ॥६८०॥
तेव्हां जया आपैसी। निद्रा ये ठेविली ऐसी। दुर्व्यवहारीं जैसी। विटाळें लोटे ॥६८१॥
पैं द्राक्षरसा आम्ररसा। वेळे तोंड सडे वायसा। कां डोळे फुटती दिवसा। डुडुळाचे ॥६८२॥
तैसा कल्याणकाळु पाहे। तैं तयातें आळसु खाये। ना प्रमादीं तरी होये। तो म्हणे तैसें ॥६८३॥
जेवींचि सागराच्या पोटीं। जळे अखंड आगिठी . तैसा विषादु वाहे गांठीं। जिवाचिये जो ॥६८४॥
लेंडोराआगीं धूमावधि। कां अपाना आंगीं दुर्गंधि। तैसा जो जीवितावधि। विषादें केला ॥६८५॥
आणि कल्पांताचिया पारा। वेगळेंही जो वीरा। सूत्र धरी व्यापारा। साभिलाषा ॥६८६॥
अगा जगाही परौती। शुचा वाहे पैं चित्तीं। करितां विषीं हातीं। तृणही न लगे ॥६८७॥
ऐसा जो लोकाआंतु। पापपुंजु मूर्तु। देखसी तो अव्याहतु। तामसु कर्ता ॥६८८॥
एवं कर्म कर्ता ज्ञान। या तिहींचें त्रिधा चिन्ह। दाविलें तुज सुजन। चक्रवर्ती ॥६८९॥

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ॥२९॥

आतां अविद्येचिया गांवीं। मोहाची वेढूनि मदवी। संदेहाचीं आघवीं। लेऊनि लेणीं ॥६९०॥
आत्मनिश्चयाची बरव। जया आरिसां पाहे सावयव। तिये बुद्धीचीही धांव। त्रिधा असे ॥६९१॥
अगा सत्वादि गुणीं इहीं। कायी एक तिहीं ठायीं। न कीजेचि येथ पाहीं। जगामाजीं ॥६९२॥
आगी न वसतां पोटीं। कवण काष्ठ असे सृष्टीं। तैसें तें कैंचें दृश्यकोटीं। त्रिविध जें नोहे ॥६९३॥
म्हणौनि तिहीं गुणीं। बुद्धी केली त्रिगुणी। धृतीसिही वांटणी। तैसीचि असे ॥६९४॥
तेंचि येक वेगळालें। यथा चिन्हीं अळंकारलें। सांगिजैल उपाइलें। भेदलेपणें ॥६९५॥
परी बुद्धि धृति इयां। दोहीं भागामाजीं धनंंजया। आधीं रूप बुद्धीचिया। भेदासि करूं ॥६९६॥
तरी उत्तमा मध्यमा निकृष्टा। संसारासि गा सुभटा। प्राणियां येतिया वाटा। तिनी आथी ॥६९७॥
जे अकरणीय काम्य निषिद्ध। ते हे मार्ग तिन्ही प्रसिद्ध। संसारभयें सबाध। जीवां ययां ॥६९८॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥३०॥

म्हणौनि अधिकारें मानिलें। जें विधीचेनि वोघें आलें। तें एकचि येथ भलें। नित्य कर्म ॥६९९॥
तेंचि आत्मप्राप्ति फळ। दिठी सूनि केवळ। कीजे जैसें कां जळ। सेविजे ताहनें ॥७००॥
येतुलेनि तें कर्म। सांडी जन्मभय विषम। करूनि दे उगम। मोक्षसिद्धि ॥७०१॥
ऐसें करी तो भला। संसारभयें सांडिला। करणीयत्वें आला। मुमुक्षुभागा ॥७०२॥
तेथ जे बुद्धि ऐसा। बळिया बांधे भरंवसा। मोक्षु ठेविला ऐसा। जोडेल येथ ॥७०३॥
म्हणौनि निवृत्तीची मांडिली। सूनि प्रवृत्तितळीं। इये कर्मीं बुडकुळी। द्यावीं कीं ना ? ॥७०४॥
तृषार्ता उदकें जिणें। कां पुरीं पडलिया पोहणें। अंधकूपीं गति किरणें। सूर्याचेनि ॥७०५॥
नाना पथ्येंसीं औषध लाहे। तरी रोगें दाटलाही जिये। का मीना जिव्हाळा होये। जळाचा जरी ॥७०६॥
तरी तयाच्या जीविता। नाहीं जेवीं अन्यथा। तैसें कर्मीं इये वर्ततां। जोडेचि मोक्षु ॥७०७॥
हें करणीयाचिया कडे। जें ज्ञान आथी चोखडें। आणि अकरणीय हें फुडें। ऐसें जाण ॥७०८॥
जीं तिथें काम्यादिकें। संसारभयदायकें। अकृत्यपणाचें आंबुखें। पडिलें जयां ॥७०९॥
तिये कर्मीं अकार्यीं। जन्ममरणसमयीं। प्रवृत्ति पळवी पायीं। मागिलींचि ॥७१०॥

पैं आगीमाजीं न रिघवे। अथावीं न घालवे। धगधगीत नागवे। शूळ जेवीं ॥७११॥
कां काळियानाग धुंधुवातु। देखोनि न घालवे हातु। न वचवे खोपेआंतु। वाघाचिये ॥७१२॥
तैसें कर्म अकरणीय। देखोनि महाभय। उपजे निःसंदेह। बुद्धी जिये ॥७१३॥
वाढिलें रांधूनि विखें। तेथें जाणिजे मृत्यु न चुके। तेवीं निषेधीं कां देखे। बंधातें जे ॥७१४॥
मग बंधभयभरितीं। तियें निषिद्धीं प्राप्ती। विनियोगु जाणे निवृत्ती। कर्माचिये ॥७१५॥
ऐसेनि कार्याकार्यविवेकी। जे प्रवृत्ति निवृत्ति मापकी। खरा कुडा पारखी। जियापरी ॥७१६॥
तैसी कृत्याकृत्यशुद्धी। बुझे जे निरवधी। सात्विक म्हणिपे बुद्धी। तेचि तूं जाण ॥७१७॥

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥३१॥

आणि बकाच्या गांवीं। घेपे क्षीरनीर सकलवी। कां अहोरात्रींची गोंवी। आंधळें नेणे ॥७१८॥
जया फुलाचा मकरंदु फावे। तो काष्ठें कोरूं धांवे। परी भ्रमरपणा नव्हे। अव्हांटा जेवीं ॥७१९॥
तैसीं इयें कार्याकार्यें। धर्माधर्मरूपें जियें। तियें न चोजवितां जाये। जाणती जे कां ॥७२०॥
अगा डोळांवीण मोतियें। घेतां पाडु मिळे विपायें। न मिळणें तें आहे। ठेविलें तेथें ॥७२१॥
तैसें अकरणीय अवचटें। नोडवे तरीच लोटे। येऱ्हवीं जाणें एकवटें। दोन्ही जे कां ॥७२२॥
ते गा बुद्धि चोखविषीं। जाण येथ राजसी। अक्षत टाकिली जैसी। मांदियेवरी ॥७२३॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥३२॥

आणि राजा जिया वाटा जाये। ते चोरांसि आडव होये। कां राक्षसां दिवो पाहे। राती होऊनि ॥७२४॥
नाना निधानचि निदैवा। होये कोळसयाचा उडवा। पैं असतें आपणपें जीवा। नाहीं जालें ॥७२५॥
तैसें धर्मजात तितुकें। जिये बुद्धीसी पातकें। साच तें लटिकें। ऐसेंचि बुझे ॥७२६॥
ते आघवेचि अर्थ। करूनि घाली अनर्थ। गुण ते ते व्यवस्थित। दोषचि मानी ॥७२७॥
किंबहुना श्रुतिजातें। अधिष्ठूनि केलें सरतें। तेतुलेंही उपरतें। जाणे जे बुद्धी ॥७२८॥
ते कोणातेंही न पुसतां। तामसी जाणावी पंडुसुता। रात्री काय धर्मार्था। साच करावी ॥७२९॥
एवं बुद्धीचे भेद। तिन्ही तुज विशद। सांगितले स्वबोध- । कुमुदचंद्रा ॥७३०॥
आतांययाचि बुद्धिवृत्ती। निष्टंकिला कर्मजातीं। खांदु मांडिजे धृती। त्रिविधा तया ॥७३१॥
तिये धृतीचेही विभाग। तिन्ही यथालिंग। सांगिजती चांग। अवधान देईं ॥७३२॥

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥३३॥

तरी उदेलिया दिनकरु। चोरीसिं थोके अंधारु। कां राजाज्ञा अव्यवहारु। कुंठवी जेवीं ॥७३३॥
नाना पवनाचा साटु। वाजीनलिया नीटु। आंगेंसीं बोभाटु। सांडिती मेघ ॥७३४॥
कां अगस्तीचेनि दर्शनें। सिंधु घेऊनि ठाती मौनें। चंद्रोदयीं कमळवनें। मिठी देती ॥७३५॥
हें असो पावो उचलिला। मदमुख न ठेविती खालां। गर्जोनि पुढां जाला। सिंहु जरी ॥७३६॥
तैसा जो धीरु। उठलिया अंतरु। मनादिकें व्यापारु। सांडिती उभीं ॥७३७॥
इंद्रियां विषयांचिया गांठी। अपैसया सुटती किरीटी। मन मायेच्या पोटीं। रिगती दाही ॥७३८॥
अधोर्ध्व गूढें काढी। प्राण नवांची पेंडी। बांधोनि घाली उडी। मध्यमेमाजीं ॥७३९॥
संकल्पविकल्पांचें लुगडे। सांडूनि मन उघडें। बुद्धि मागिलेकडे। उगीचि बैसे ॥७४०॥
ऐसी धैर्यराजें जेणें। मन प्राण करणें। स्वचेष्टांचीं संभाषणें। सांडविजती ॥७४१॥

मग आघवींचि सडीं। ध्यानाच्या आंतुल्या मढीं . कोंडिजती निरवडी। योगाचिये ॥७४२॥
परी परमात्मया चक्रवर्ती। उगाणिती जंव हातीं। तंव लांचु न घेतां धृती। धरिजती जिया ॥७४३॥
ते गा धृती येथें। सात्विक हें निरुतें। आईक अर्जुनातें। श्रीकांतु म्हणे ॥७४४॥
यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥३४॥
आणि होऊनियां शरीरी। स्वर्गसंसाराच्या दोहीं घरीं। नांदे जो पोटभरी। त्रिवर्गोपायें ॥७४५॥
तो मनोरथांच्या सागरीं। धर्मार्थकामांच्या तारुवावरी। जेणें धैर्यबळें करी। क्रिया- वणिज ॥७४६॥
जें कर्म भांडवला सूये। तयाची चौगुणी येती पाहे। येवढें सायास साहे। जया धृती ॥७४७॥
ते गा धृती राजस। पार्था येथ परीयेस। आतां आइक तामस। तिसरी जे कां ॥७४८॥
यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥३५॥
तरी सर्वाधमें गुणें। जयाचें कां रूपा येणें। कोळसा काळेपणें। घडला जैसा ॥७४९॥
अहो प्राकृत आणि हीनु। तयाही कीं गुणत्वाचा मानु। तरी न म्हणिजे पुण्यजनु। राक्षसु काई ? ॥७५०॥
पैं ग्रहांमाजीं इंगळु। तयातें म्हणिजे मंगळु। तैसा तमीं धसाळु। गुणशब्दु हा ॥७५१॥
जे सर्वदोषांचा वसौटा। तमचि कामऊनि सुभटा। उभारिला आंगवठा। जया नराचा ॥७५२॥
तो आळसु सूनि असे कांखे। म्हणौनि निद्रे कहीं न मुके। पापें पोषितां दुःखें। न सांडिजे जेवीं ॥७५३॥
आणि देहधनाचिया आवडी। सदा भय तयातें न सांडी। विसंबूं न सके धोंडीं। काठिण्य जैसें ॥७५४॥
आणि पदार्थजातीं स्नेहो। बांधे म्हणौनि तो शोकें ठावो। केला न शके पाप जावों। कृतघ्नौनि जैसें ॥७५५॥
आणि असंतोष जीवेंसीं। धरूनि ठेला अहर्निशीं। म्हणौनि मैत्री तेणेंसीं। विषादें केली ॥७५६॥
लसणातें न सांडी गंधी। कां अपथ्यशीळातें व्याधी। तैसी केली मरणावधी। विषादें तया ॥७५७॥
आणि वयसा वित्तकामु। ययांचा वाढवी संभ्रमु। म्हणौनि मदें आश्रमु। तोचि केला ॥७५८॥
आगीतें न सांडी तापु। सळातें जातीचा सापु। कां जगाचा वैरी वासिपु। अखंडु जैसा ॥७५९॥
नातरी शरीरातें काळु। न विसंबे कवणे वेळु। तैसा आथी अढळु। तामसीं मदु ॥७६०॥
एवं पांचही हे निद्रादिक। तामसाच्या ठाईं दोख। जिया धृती देख। धरिलें आहाती ॥७६१॥
तिये गा धृती नांवें। तामसी येथ हें जाणावें। म्हणितलें तेणें देवें। जगाचेनी ॥७६२॥
एवं त्रिविध जे बुद्धि। कीजे कर्मनिश्चयो आधि। तो धृती या सिद्धि। नेइजो येथ ॥७६३॥
सूर्यें मार्गु गोचरु होये। आणि तो चालती कीर पाये। परी चालणें तें आहे। धैर्यें जेवीं ॥७६४॥
तैसी बुद्धि कर्मातें दावी। ते करणसामग्री निफजवी। परी निफजावया होआवी। धीरता जे ॥७६५॥
ते हे गा तुजप्रती। सांगीतली त्रिविध धृती। यया कर्मत्रया निष्पत्ती। जालिया मग ॥७६६॥
येथ फळ जें एक निफजे। सुख जयातें म्हणिजे। तेंही त्रिविध जाणिजे। कर्मवशें ॥७६७॥
तरी फळरूप तें सुख . त्रिगुणीं भेदलें देख। विवंचूं आतां चोख। चोखीं बोलीं ॥७६८॥
परी चोखी ते कैसी सांगे। पैं घेवों जातां बोलबगें। कानींचियेही लागे। हातींचा मळु ॥७६९॥
म्हणौनि जयाचेनि अव्हेरें। अवधानही होय बाहिरें। तेणें आइक हो आंतरें। जीवाचेनि जीवें ॥७७०॥
ऐसें म्हणौनि देवो। त्रिविधा सुखाचा प्रस्तावो। मांडला तो निर्वाहो। निरूपित असें ॥७७१॥
सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥३६॥
म्हणे सुखत्रयसंज्ञा। सांगों म्हणौनि प्रतिज्ञा। बोलिलों तें प्राज्ञा। ऐक आतां ॥७७२॥

तरी सुख तें गा किरीटी। दाविजेल तुज दिठी। जें आत्मयाचिये भेटी। जीवासि होय ॥७७३॥
परी मात्रेचेनि मापें। दिव्यौषध जैसें घेपें। कां कथिलाचें कीजे रुपें। रसभावनीं ॥७७४॥
नाना लवणाचें जळु। होआवया दोनि चार वेळु। देऊनि सांडिजती ढाळु। तोयाचें जेवीं ॥७७५॥
तेवीं जालेनि सुखलेशें। जीवु भाविलिया अभ्यासें। जीवपणाचें नासे। दुःख जेथें ॥७७६॥
तें येथ आत्मसुख . जालें असे त्रिगुणात्मक। तेंही सांगों एकैक। रूप आतां ॥७७७॥

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥३७॥

आतां चंदनाचें बूड। सर्पी जैसें दुवाड। कां निधानाचें तोंड। विवसिया जेवीं ॥७७८॥
अगा स्वर्गींचें गोमटें। आडव यागसंकटें। कां बाळपण दासटें। त्रासकाळें ॥७७९॥
हें असो दीपाचिये सिद्धी। अवघड धू आधीं। नातरी तो औषधीं। जिभेचा ठावो ॥७८०॥
तयापरी पांडवा। जया सुखाचा रिगावा। विषम तेथ मेळावा। यमदमांचा ॥७८१॥
देत सर्वस्नेहा मिठी। आगीं ऐसें वैराग्य उठी। स्वर्ग संसारा कांटी। काढितचि ॥७८२॥
विवेकश्रवणें खरपुसें। जेथ व्रताचरणें कर्कशें। करितां जाती भोकसे। बुद्ध्यादिकांचे ॥७८३॥
सुषुम्नेचेनि तोंडें। गिळिजे प्राणापानाचे लोंढे। बोहणियेसीचि येवढें। भारी जेथ ॥७८४॥
जें सारसांही विघडतां। होय वोहाहूनि वस्त काढितां। ना भणंगु दवडितां। भाणयावरुनी ॥७८५॥
पैं मायेपुढौनि बाळक। काळें नेतां एकुलतें एक। होय कां उदक। तुटतां मीना ॥७८६॥
तैसें विषयांचें घर। इंद्रियां सांडितां थोर। युगांतु होय तें वीर। विराग साहाती ॥७८७॥
ऐसा जया सुखाचा आरंभु। दावी काठिण्याचा क्षोभु। मग क्षीराब्धी लाभु। अमृताचा जैसा ॥७८८॥
पहिलया वैराग्यगरळा। धैर्यशंभु वोडवी गळा। तरी ज्ञानामृतें सोहळा। पाहे जेथें ॥७८९॥
पैं कोलिताही कोपे ऐसें। द्राक्षांचें हिरवेपण असे . तें परीपाकीं कां जैसें। माधुर्य आते ॥७९०॥
तें वैराग्यादिक तैसें। पिकलिया आत्मप्रकाशें। मग वैराग्येंसींही नाशे। अविद्याजात ॥७९१॥
तेव्हां सागरीं गंगा जैसी . आत्मीं मीनल्या बुद्धि तैसी। अद्वयानंदाची आपैसी। खाणी उघडे ॥७९२॥
ऐसें स्वानुभवविश्रामें। वैराग्यमूळ जें परिणमे। तें सात्विक येणें नामें। बोलिजे सुख ॥७९३॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥३८॥

आणि विषयेंद्रियां। मेळु होतां धनंजया। जें सुख जाय थडिया। सांडूनि दोन्ही ॥७९४॥
अधिकारिया रिगतां गांवो। होय जैसा उत्साहो। कां रिणावरी विवाहो। विस्तारिला ॥७९५॥
नाना रोगिया जिभेपासीं। केळें गोड साखरेसीं। कां बचनागाची जैसी। मधुरता पहिली ॥७९६॥
पहिलें संवचोराचें मैत्र। हाटभेटीचें कलत्र। कां लाघवियाचे विचित्र। विनोद ते ॥७९७॥
तैसें विषयेंद्रियदोखीं। जें सुख जीवातें पोखी। मग उपडिला खडकीं। हंसु जैसा ॥७९८॥
तैसी जोडी आघवी आटे। जीविताचा ठाय फिटे। सुकृताचियाही सुटे। धनाची गांठी ॥७९९॥
आणिक भोगिलें जें कांहीं। तें स्वप्न तैसें होय नाहीं। मग हानीच्याचि घाईं। लोळावें उरे ॥८००॥
ऐसें आपत्ती जें सुख। ऐहिकीं परिणमे देख। परत्रीं कीर विख। होऊनि परते ॥८०१॥
जे इंद्रियजाता लळा। दिधलिया धर्माचा मळा। जाळूनि भोगिजे सोहळा। विषयांचा जेथ ॥८०२॥
तेथ पातकें बांधिती थावो। तियें नरकीं देती ठावो। जेणें सुखें हा अपावो। परत्रीं ऐसा ॥८०३॥
पैं नामें विष महुरें। परी मारूनि अंतीं खरें। तैसें आदि जें गोडिरें। अंतीं कडू ॥८०४॥
पार्था तें सुख साचें। वळिलें आहे रजाचें। म्हणौनि न शिवें तयाचें। आंग कहीं ॥८०५॥

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥३९॥

आणि अपेयाचेनि पानें। अखाद्याचेनि भोजनें। स्वैरस्त्रीसंनिधानें। होय जें सुख ॥८०६॥
का पुढिलांचेनि मारें। नातरी परस्वापहारें। जें सुख अवतरे। भाटाच्या बोलीं ॥८०७॥
जें आलस्यावरी पोखिजे। निद्रेमाजीं जें देखिजे। जयाच्या आद्यंतीं भुलिजे। आपुली वाट ॥८०८॥
तें गा सुख पार्था। तामस जाण सर्वथा। हें बहु न सांगोंचि जें कथा। असंभाव्य हे ॥८०९॥
ऐसें कर्मभेदें मुदलें। फळसुखही त्रिधा जालें। तें हें यथागमें केलें। गोचर तुज ॥८१०॥
ते कर्ता कर्म कर्मफळ। ये त्रिपुटी येकी केवळ। वांचूनि कांहींचि नसे स्थूल। सूक्ष्मीं इये ॥८११॥
आणि हे तंव त्रिपुटी। तिहीं गुणीं इहीं किरीटी। गुंफिली असे पटीं। तांतुवीं जैसी ॥८१२॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥४०॥

म्हणौनि प्रकृतीच्या आवलोकीं। न बंधिजे इहीं सत्वादिकीं। तैसी स्वर्गीं ना मृत्युलोकीं। आथी वस्तु ॥८१३॥
कैंचा लोंवेवीण कांबळा। मातियेवीण मोदळा। का जळेंवीण कल्लोळा। होणें आहे ? ॥८१४॥
तैसें न होनि गुणाचें। सृष्टीची रचना रचे। ऐसें नाहींचि गा साचें। प्राणिजात ॥८१५॥
यालागीं हें सकळ। तिहीं गुणांचेंचि केवळ। घडलें आहे निखिळ। ऐसें जाण ॥८१६॥
गुणीं देवां त्रयी लाविली। गुणीं लोकीं त्रिपुटी पाडिली। चतुर्वर्णा घातली। सिनानीं उळिगें ॥८१७॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥४१॥

तेचि चारी वर्ण। पुससी जरी कोण कोण। तरी जयां मुख्य ब्राह्मण। धुरेचे कां ॥८१८॥
येर क्षत्रिय वैश्य दोन्ही। तेही ब्राह्मणाच्याचि मानिजे मानी। जे ते वैदिकविधानीं। योग्य म्हणौनि ॥८१९॥
चौथा शूद्र जो धनंजया। वेदीं लागु नाहीं तया। तऱ्हीं वृत्ति वर्णत्रया। आधीन तयाची ॥८२०॥
तिये वृत्तिचिया जवळिका। वर्णा ब्राह्मणादिकां। शूद्रही कीं देखा। चौथा जाला ॥८२१॥
जैसा फुलाचेनि सांगातें। तांतु तुरंबिजे श्रीमंतें। तैसें द्विजसंगें शूद्रातें। स्वीकारी श्रुती ॥८२२॥
ऐसैसी गा पार्था। हे चतुर्वर्णव्यवस्था। करूं आतां कर्मपथा। यांचिया रूपा ॥८२३॥
जिहीं गुणीं ते वर्ण चारी। जन्ममृत्यूंचिये कातरी। चुकोनियां ईश्वरीं। पैठे होती ॥८२४॥
जिये आत्मप्रकृतीचे इहीं। गुणीं सत्त्वादिकीं तिहीं। कर्मे चौघां चहूं ठाईं। वांटिलीं वर्णा ॥८२५॥
जैसें बापें जोडिलें लेंका। वांटिलें सूर्यें मार्ग पांथिका। नाना व्यापार सेवकां। स्वामी जैसें ॥८२६॥
तैसी प्रकृतीच्या गुणीं। जया कर्माची वेल्हावणी। केली आहे वर्णीं। चहूं इहीं ॥८२७॥
तेथ सत्त्वें आपल्या आंगीं। समीन- निमीन भागीं। दोघे केले नियोगी। ब्राह्मण क्षत्रिय ॥८२८॥
आणि रज परी सात्त्विक। तेथ ठेविलें वैश्य लोक। रजचि तमभेसक। तेथ शूद्र ते गा ॥८२९॥
ऐसा येकाचि प्राणिवृंदा। भेदु चतुर्वर्णधा। गुणींचि प्रबुद्धा। केला जाण ॥८३०॥
मग आपुलें ठेविलें जैसें। आइतेंचि दीपें दिसे। गुणभिन्न कर्म तैसें। शास्त्र दावी ॥८३१॥
तेंचि आतां कोण कोण। वर्णविहिताचें लक्षण। हें सांगों ऐक श्रवण- । सौभाग्यनिधी ॥८३२॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥४२॥

तरी सर्वेंद्रियांचिया वृत्ती। घेऊनि आपुल्या हातीं। बुद्धि आत्मया मिळे येकांतीं। प्रिया जैसी ॥८३३॥
ऐसा बुद्धीचा उपरमु। तया नाम म्हणिपे शमु। तो गुण गा उपक्रमु। जया कर्माचा ॥८३४॥

आणि बाह्येंद्रियांचें धेंडें। पिटूनि विधीचेनि दंडें। नेदिजे अधर्माकडे। कहींचि जावों ॥८३५॥
तो पैं गा शमा विरजा। दमु गुण जेथ दुजा। आणि स्वधर्माचिया वोजा। जिणें जें कां ॥८३६॥
सटवीचिये रातीं। न विसंबिजे जेवीं वाती। तैसा ईश्वरनिर्णयो चित्तीं। वाहणें सदा ॥८३७॥
तया नाम तप। ते तिजया गुणाचें रूप। आणि शौचही निष्पाप। द्विविध जेथ ॥८३८॥
मन भावशुद्धी भरलें। आंग क्रिया अळंकारिलें। ऐसें सबाह्य जियालें। साजिरें जें कां ॥८३९॥
तया नाम शौच पार्था। तो कर्मीं गुण जये चौथा। आणि पृथ्वीचिया परी सर्वथा। सर्व जें साहाणें ॥८४०॥
ते गा क्षमा पांडवा। गुण जेथ पांचवा। स्वरांमाजीं सुहावा। पंचमु जैसा ॥८४१॥
आणि वांकडेनी वोघेंसीं। गंगा वाहे उजूचि जैसी। कां पुटीं वळला ऊसीं। गोडी जैसी ॥८४२॥
तैसा विषमांही जीवां- । लागीं उजुकारु बरवा। तें आर्जव गा साहावा। जेथींचा गुण ॥८४३॥
आणि पाणियें प्रयत्नें माळी। अखंड जचे झाडामुळीं। परी तें आघवेंचि फळीं। जाणे जेवीं ॥८४४॥
तैसें शास्त्राचारें तेणें। ईश्वरुचि येकु पावणें। हें फुडें जें कां जाणणें। तें येथ ज्ञान ॥८४५॥
तें गा कर्मीं जिये। सातवा गुण होये। आणि विज्ञान हें पाहें। एवंरूप ॥८४६॥
तरी सत्वशुद्धीचिये वेळे। शास्त्रें कां ध्यानबळें। ईश्वरतत्त्वींचि मिळे। निष्टंकबुद्धी ॥८४७॥
हें विज्ञान बरवें। गुणरत्न जेथ आठवें। आणि आस्तिक्य जाणावें। नववा गुण ॥८४८॥
पैं राजमुद्रा आथिलिया। प्रजा भजे भलतया। तेवीं शास्त्रें स्वीकारिलिया। मार्गमात्रातें ॥८४९॥
आदरें जें कां मानणें। तें आस्तिक्य मी म्हणें। तो नववा गुण जेणें। कर्म तें साच ॥८५०॥
एवं नवही शमादिक। गुण जेथ निर्दोख। तें कर्म जाण स्वाभाविक। ब्राह्मणाचें ॥८५१॥
तो नवगुणरत्नाकरु। यया नवरत्नांचा हारु। न फेडीत ले दिनकरु। प्रकाशु जैसा ॥८५२॥
नाना चांपा चांपौळी पूजिला। चंद्रु चंद्रिका धवळला। कां चंदनु निजें चर्चिला। सौरभ्यें जेवीं ॥८५३॥
तेवीं नवगुणटिकलग। लेणें ब्राह्मणाचें अव्यंग। कहींचि न संडी आंग। ब्राह्मणाचें ॥८५४॥
आतां उचित जें क्षत्रिया। तेंहीं कर्म धनंजया। सांगों ऐक प्रज्ञेचिया। भरोवरी ॥८५५॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥४३॥
तरी भानु हा तेजें। नापेक्षी जेवीं विरजे। कां सिंहें न पाहिजे। जावळिया ॥८५६॥
ऐसा स्वयंभ जो जीवें लाठु। सावायेंवीण उद्भटु। ते शौर्य गा जेथ श्रेष्ठु। पहिला गुण ॥८५७॥
आणि सूर्याचेनि प्रतापें। कोडिही नक्षत्र हारपे। ना तो तरी न लोपे। सचंद्रीं तिहीं ॥८५८॥
तैसेनि आपुले प्रौढीगुणें। जगा या विस्मयो देणें। आपण तरी न क्षोभणें। कायसेनही ॥८५९॥
तें प्रागल्भ्यरूप तेजा। जिये कर्मीं गुण दुजा। आणि धीरु तो तिजा। जेथींचा गुण ॥८६०॥
वरिपडलिया आकाश। बुद्धीचे डोळे मानस। झांकी ना ते परीयेस। धैर्य जेथें ॥८६१॥
आणि पाणी हो कां भलतेतुकें। परी तें जिणौनि पद्म फांके। कां आकाश उंचिया जिंके। आवडे तयातें ॥८६२॥
तेवीं विविध अवस्था। पातलिया जिणौनि पार्था। प्रज्ञाफळ तया अर्था। वेझ देणें जें ॥८६३॥
तें दक्षत्व गा चोख। जेथ चौथा गुण देख। आणि झुंज अलौकिक। तो पांचवा गुण ॥८६४॥
आदित्याचीं झाडें। सदा सन्मुख सूर्याकडे। तेवीं समोर शत्रूपुढें। होणें जें कां ॥८६५॥
माहेवणी प्रयत्नेंसी। चुकविजे सेजे जैसी। रिपू पाठी नेदिजे तैसी। समरांगणीं ॥८६६॥
हा क्षत्रियाचेया आचारीं। पांचवा गुणेंद्रु अवधारीं। चहूं पुरुषार्थां शिरीं। भक्ति जैसी ॥८६७॥
आणि जालेनि फुलें फळें। शाखिया जैसीं मोकळे। कां उदार परीमळें। पद्माकरु ॥८६८॥
नाना आवडीचेनि मापें। चांदिणें भलतेणें घेपे। पुढिलांचेनि संकल्पें . तैसें जें देणें ॥८६९॥

तें उमप गा दान। जेथ सहावें गुणरत्न। आणि आज्ञे एकायतन। होणें जें कां ॥८७०॥
पोषूनि अवयव आपुले। करविजतीं मानविले। तेवीं पालणें लोभविलें। जग जें भोगणें ॥८७१॥
तया नाम ईश्वरभावो। जो सर्वसामर्थ्याचा ठावो। तो गुणांमाजीं रावो। सातवा जेथ ॥८७२॥
ऐसें जें शौर्यादिकीं। इहीं सात गुणविशेखीं। अळंकृत सप्तऋखीं। आकाश जैसें ॥८७३॥
तैसें सप्तगुणीं विचित्र। कर्म जें जगीं पवित्र। तें सहज जाण क्षात्र। क्षत्रियाचें ॥८७४॥
नाना क्षत्रिय नव्हे नरु। तो सत्त्वसोनयाचा मेरु। म्हणौनि गुणस्वर्गां आधारु। सातां इयां ॥८७५॥
नातरी सप्तगुणार्णवीं। परीवारली बरवी। हे क्रिया नव्हे पृथ्वी। भोगीतसे तो ॥८७६॥
कां गुणांचे सातांही ओघीं। हे क्रिया ते गंगा जगीं। तया महोदधीचिया आंगीं। विलसे जैसी ॥८७७॥
परी हें बहु असो देख। शौर्यादि गुणात्मक। कर्म गा नैसर्गिक। क्षात्रजातीसी ॥८७८॥
आतां वैश्याचिये जाती। उचित जे महामती। ते ऐकें गा निरुती। क्रिया सांगों ॥८७९॥
कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥४४॥
तरी भूमि बीज नांगरु। यया भांडवलाचा आधारु। घेऊनि लाभु अपारु। मेळवणें जें ॥८८०॥
किंबहुना कृषी जिणें। गोधनें राखोनि वर्तणें। कां समर्घीची विकणें। महर्घीवस्तु ॥८८१॥
येतुलाचि पांडवा। वैश्यातें कर्माचा मेळावा। हा वैश्यजातीस्वभावा। आंतुला जाण ॥८८२॥
आणि वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण। हे द्विजन्में तिन्ही वर्ण। ययांचें जें शुश्रूषण। तें शूद्रकर्म ॥८८३॥
पैं द्विजसेवेपरौतें। धांवणें नाहीं शूद्रातें। एवं चतुर्वर्णोचितें। दाविलीं कर्में ॥८८४॥
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छ्रृणु ॥४५॥
आतां इयेचि विचक्षणा। वेगळालिया वर्णा। उचित जैसें करणां। शब्दादिक ॥८८५॥
नातरी जळदच्युता। पाणिया उचित सरिता। सरितेसी पंडुसुता। सिंधु उचितु ॥८८६॥
तैसें वर्णाश्रमवशें। जें करणीय आलें असे . गोरेया आंगा जैसें। गोरेपण ॥८८७॥
तया स्वभावविहिता कर्मा। शास्त्राचेनि मुखें वीरोत्तमा। प्रवर्तावियालागीं प्रमा। अढळ कीजे ॥८८८॥
पैं आपुलेंचि रत्न थितें। घेपे पारखियाचेनि हातें। तैसें स्वकर्म आपैतें। शास्त्रें करावीं ॥८८९॥
जैसी दिठी असे आपुलिया ठायीं। परी दीपेंवीण भोग नाहीं। मार्गु न लाहतां काई। पाय असतां होय ? ॥८९०॥
म्हणौनि ज्ञातिवशें साचारु। सहज असे जो अधिकारु। तो आपुलिया शास्त्रें गोचरु। आपण कीजे ॥८९१॥
मग घरींचाचि ठेवा। जेवीं डोळयां दावी दिवा। तरी घेतां काय पांडवा। आडळु असे ? ॥८९२॥
तैसें स्वभावें भागा आलें। वरी शास्त्रें खरें केलें। तें विहित जो आपुलें। आचरे गा ॥८९३॥
परी आळसु सांडुनी। फळकाम दवडुनी। आंगें जीवें मांडुनी। तेथेंचि भरु ॥८९४॥
वोघीं पडिलें पाणी। नेणें आनानी वाहणी। तैसा जाय आचरणीं। व्यवस्थौनी ॥८९५॥
अर्जुना जो यापरी। तें विहित कर्म स्वयें करी। तो मोक्षाच्या ऐलद्वारीं। पैठा होय ॥८९६॥
जे अकरणा आणि निषिद्धा। न वचेचि कांहीं संबंधा। म्हणौनि भवा विरुद्धा। मुकला तो ॥८९७॥
आणि काम्यकर्मांकडे। न परतेचि जेथ कोडें। तेथ चंदनाचेही खोडे। न लेचि तो ॥८९८॥
येर नित्य कर्म तंव। फळत्यागें वेंचिलें सर्व। म्हणौनि मोक्षाची शींव। ठाकूं लाहे ॥८९९॥
ऐसेनि शुभाशुभीं संसारीं। सांडिला तो अवधारीं। वौराग्यमोक्षद्वारीं। उभा ठाके ॥९००॥
जें सकळ भाग्याची सीमा। मोक्षलाभाची जें प्रमा। नाना कर्ममार्गश्रमा। शेवटु जेथ ॥९०१॥
मोक्षफळें दिधली वोल। जें सुकृततरूचें फूल। तयें वैराग्यीं ठेवी पाऊल। भंवरु जैसा ॥९०२॥

पाहीं आत्मज्ञानसुदिनाचा। वाधावा सांगतया अरुणाचा। उदयो त्या वैराग्याचा। ठावो पावे ॥९०३॥
किंबहुना आत्मज्ञान। जेणें हाता ये निधान। तें वैराग्य दिव्यांजन। जीवें ले तो ॥९०४॥
ऐसी मोक्षाची योग्यता। सिद्धी जाय तया पंडुसुता। अनुसरोनि विहिता। कर्मा यया ॥९०५॥
हें विहित कर्म पांडवा। आपुला अनन्य वोलावा। आणि हेचि परम सेवा। मज सर्वात्मकाची ॥९०६॥
पैं आघवाचि भोगेंसीं। पतिव्रता क्रीडे प्रियेंसीं। कीं तयाचीं नामें जैसीं। तपें तियां केलीं ॥९०७॥
कां बाळका एकी माये। वांचोनि जिणें काय आहे। म्हणौनि सेविजे कीं तो होये। पाटाचा धर्मु ॥९०८॥
नाना पाणी म्हणौनि मासा। गंगा न सांडितां जैसा। सर्व तीर्थ सहवासा। वरपडा जाला ॥९०९॥
तैसें आपुलिया विहिता। उपावो असे न विसंबितां। ऐसा कीजे कीं जगन्नाथा। आभारु पडे ॥९१०॥
अगा जया जें विहित। तें ईश्वराचें मनोगत। म्हणौनि केलिया निभ्रांत। सांपडेचि तो ॥९११॥
पैं जीवाचे कसीं उतरली। ते दासी कीं गोसावीण जाली। सिसे वेंचि तया मविली। वही जेवीं ॥९१२॥
तैसें स्वामीचिया मनोभावा। न चुकिजे हेचि परमसेवा। येर तें गा पांडवा। वाणिज्य करणें ॥९१३॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥४६॥
म्हणौनि विहित क्रिया केली। नव्हे तयाची खूण पाळिली। जयापसूनि कां आलीं। आकारा भूतें ॥९१४॥
जो अविद्येचिया चिंधिया। गुंडूनि जीव बाहुलिया। खेळवीतसे तिगुणिया। अहंकाररज्जू ॥९१५॥
जेणें जग हें समस्त। आंत बाहेरी पूर्ण भरित। जालें आहे दीपजात। तेजें जैसें ॥९१६॥
तया सर्वात्मका ईश्वरा। स्वकर्मकुसुमांची वीरा। पूजा केली होय अपारा। तोषालागीं ॥९१७॥
म्हणौनि तिये पूजे। रिझलेनि आत्मराजें। वैराग्यसिद्धि देईजे। पसाय तया ॥९१८॥
जिये वैराग्यदशें। ईश्वराचेनि वेधवशें। हें सर्वही नावडे जैसें। वांत होय ॥९१९॥
प्राणनाथाचिया आधी। विरहिणीतें जिणेंही बाधी। तैसें सुखजात त्रिशुद्धी। दुःखचि लागे ॥९२०॥
सम्यक्ज्ञान नुदैजतां। वेधेंचि तन्मयता। उपजे ऐसी योग्यता। बोधाची लाहे ॥९२१॥
म्हणौनि मोक्षलाभालागीं। जो व्रतें वाहातसें आंगीं। तेणें स्वधर्मु आस्था चांगी। अनुष्ठावा ॥९२२॥
श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥४७॥
अगा आपुला हा स्वधर्मु। आचरणीं जरी विषमु। तरी पाहावा तो परिणामु। फळेल जेणें ॥९२३॥
जैं सुखालागीं आपणपयां। निंबचि आथी धनंजया। तैं कडुवटपणा तयाचिया। उबगिजेना ॥९२४॥
फळणया ऐलीकडे। केळीतें पाहातां आस मोडे। ऐसी त्यजिली तरी जोडे। तैसें कें गोमटें ॥९२५॥
तेवीं स्वधर्मु सांकडु। देखोनि केला जरी कडु। तरी मोक्षसुरवाडु। अंतरला कीं ॥९२६॥
आणि आपुली माये। कुब्ज जरी आहे। तरी जीये तें नोहे। स्नेह कुऱ्हें कीं ॥९२७॥
येरी जिया पराविया। रंभेहुनि बरविया। तिया काय कराविया। बाळकें तेणें ? ॥९२८॥
अगा पाणियाहूनि बहुवें। तुपीं गुण कीर आहे। परी मीना काय होये। असणें तेथ ॥९२९॥
पैं आघविया जगा जें विख। तें विख किडियाचें पीयूख। आणि जगा गूळ तें देख। मरण तया ॥९३०॥
म्हणौनि जे विहित जया जेणें। फिटे संसाराचें धरणें। क्रिया कठोर तऱ्ही तेणें। तेचि करावी ॥९३१॥
येरा पराचारा बरविया। ऐसें होईल टेंकलया। पायांचें चालणें डोइया। केलें जैसें ॥९३२॥
यालागीं कर्म आपुले। जें जातिस्वभावें असे आलें। तें करी तेणें जिंतिलें। कर्मबंधातें ॥९३३॥
आणि स्वधर्मुचि पाळावा। परधर्मु तो गाळावा। हा नेमुही पांडवा। न कीजेचि पै गा ? ॥९३४॥
तरी आत्मा दृष्ट नोहे। तंव कर्म करणें कां ठाये ? । आणि करणें तेथ आहे। आयासु आधीं ॥९३५॥

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥४८॥

म्हणौनि भलतिये कर्मीं। आयासु जऱ्ही उपक्रमीं। तरी काय स्वधर्मीं। दोषु। सांगें ? ॥९३६॥
आगा उजू वाटा चालावें। तऱ्ही पायचि शिणवावे। ना आडरानें धांवावें। तऱ्ही तेंचि ॥९३७॥
पैं शिळा कां सिदोरिया। दाटणें एक धनंजया। परी जें वाहतां विसांवया। मिळिजे तें घेपे ॥९३८॥
येऱ्हवीं कणा आणि भूसा। कांडितांही सोसु सरिसा। जेंचि रंधन श्वान मांसा। तेंचि हवी ॥९३९॥
दधी जळाचिया घुसळणा। व्यापार सारिखेचि विचक्षणा। वाळुवे तिळा घाणा। गाळणें एक ॥९४०॥
पैं नित्य होम देयावया। कां सैरा आगी सुवावया। फुंकितां धू धनंजया। साहणें तेंचि ॥९४१॥
परी धर्मपत्नी धांगडी। पोसितां जरी एकी वोढी। तरी कां अपरवडी। आणावी आंगा ? ॥९४२॥
हां गा पाठीं लागला घाई। मरण न चुकेचि पाहीं। तरी समोरला काई। आगळें न कीजे ? ॥९४३॥
कुलस्त्री दांड्याचे घाये। परघर रिगालीहि जरी साहे। तरी स्वपतीतें वायें। सांडिलें कीं ॥९४४॥
तैसें आवडतेंही करणें। न निपजे शिणल्याविणें। तरी विहित बा रे कोणें। बोलें भारी ? ॥९४५॥
वरी थोडेंचि अमृत घेतां। सर्वस्व वेंचो कां पंडुसुता। जेणें जोडे जीविता। अक्षयत्व ॥९४६॥
येर काह्यां मोलें वेंचूनि। विष पियावे घेऊनि। आत्महत्येसि निमोनि। जाइजे जेणें ॥९४७॥
तैसें जाचूनियां इंद्रियें। वेंचूनि आयुष्याचेनि दिये। सांचलें पापीं आन आहे। दुःखावाचूनि ? ॥९४८॥
म्हणौनि करावा स्वधर्मु। जो करितां हिरोनि घे श्रमु। उचित देईल परमु। पुरुषार्थराजु ॥९४९॥
याकारणें किरीटी। स्वधर्माचिये राहाटी। न विसंबिजे संकटीं। सिद्धमंत्र जैसा ॥९५०॥
कां नाव जैसी उदधीं। महारोगी दिव्यौषधी। न विसंबिजे तया बुद्धी। स्वकर्म येथ ॥९५१॥
मग ययाचि गा कपिध्वजा। स्वकर्माचिया महापूजा। तोषला ईशु तमरजा। झाडा करुनी ॥९५२॥
शुद्धसत्त्वाचिया वाटा। आणी आपुली उत्कंठा। भवस्वर्ग काळकूटा। ऐसें दावी ॥९५३॥
जियें वैराग्य येणें बोलें। मागां संसिद्धी रूप केलें। किंबहुना तें आपुलें। मेळवी खागें ॥९५४॥
मग जिंतिलिया हे भोये। पुरुष सर्वत्र जैसा होये। कां जालाही जें लाहे। तें आतां सांगों ॥९५५॥

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥४९॥

तरी देहादिक हें संसारें। सर्वही मांडलेंसे जें गुंफिरें। तेथ नातुडे तो वागुरें। वारा जैसा ॥९५६॥
पैं परिपाकाचिये वेळे। फळ देठें ना देठु फळें। न धरे तैसें स्नेह खुळें। सर्वत्र होय ॥९५७॥
पुत्र वित्त कलत्र। हे जालियाही स्वतंत्र। माझें न म्हणे पात्र। विषाचें जैसें ॥९५८॥
हें असो विषयजाती। बुद्धि पोळली ऐसी माघौती। पाउलें घेऊनि एकांतीं। हृदयाच्या रिगे ॥९५९॥
ऐसया अंतःकरण। बाह्य येतां तयाची आण। न मोडी समर्था भेण। दासी जैसी ॥९६०॥
तैसें ऐक्याचिये मुठी। माजिवडें चित्त किरीटी। करूनि वेधी नेहटीं। आत्मयाच्या ॥९६१॥
तेव्हां दृष्टादृष्ट स्पृहे। निमणें जालेंचि आहे। आगीं दडपलिया धुयें। राहिजे जैसें ॥९६२॥
म्हणौनि नियमिलिया मानसीं। स्पृहा नासौनि जाय आपैसीं। किंबहुना तो ऐसी। भूमिका पावे ॥९६३॥
पैं अन्यथा बोधु आघवा। मावळोनि तया पांडवा। बोधमात्रींचि जीवा। ठावो होय ॥९६४॥
धरवणी वेंचें सरे। तैसें भोगें प्राचीन पुरे। नवें तंव नुपकरे। कांहीचि करूं ॥९६५॥
ऐसीं कर्में साम्यदशा। होय तेथ वीरेशा। मग श्रीगुरु आपैसा। भेटेचि गा ॥९६६॥
रात्रीची चौपाहरी। वेंचलिया अवधारीं। डोळयां तमारी। मिळे जैसा ॥९६७॥
का येऊनि फळाचा घडु। पारुषवी केळीची वाढु। श्रीगुरु भेटोनि करी पाडु। बुभुत्सु तैसा ॥९६८॥

मग आलिंगिला पूर्णिमा। जैसा उणीव सांडी चंद्रमा। तैसें होय वीरोत्तमा। गुरुकृपा तया ॥९६९॥
तेव्हां अबोधुमात्र असे। तो तंव तया कृपा नासे। तेथ निशीसवें जैसें। आंधारें जाय ॥९७०॥
तैसी अबोधाचिये कुशी। कर्म कर्ता कार्य ऐशी। त्रिपुटी असे ते जैसी। गाभिणी मारिली ॥९७१॥
तैसेंचि अबोधनाशासवें। नाशे क्रियाजात आघवें। ऐसा समूळ संभवे। संन्यासु हा ॥९७२॥
येणें मुळाज्ञानसंन्यासें। दृश्याचा जेथ ठावो पुसे। तेथ बुझावें तें आपैसें। तोचि आहे ॥९७३॥
चेइलियावरी पाहीं। स्वप्नींचिया तिये डोहीं। आपणयातें काई। काढूं जाइजे ? ॥९७४॥
तैं मी नेणें आतां जाणेन। हें सरलें तया दुःस्वप्न। जाला ज्ञातृज्ञेयाविहीन। चिदाकाश ॥९७५॥
मुखाभासेंसी आरिसा। परौता नेलिया वीरेशा। पाहातेपणेंवीण जैसा। पाहाता ठाके ॥९७६॥
तैसें नेणणें जें गेलें। तेणें जाणणेंही नेलें। मग निष्क्रिय उरलें। चिन्मात्रचि ॥९७७॥
तेथ स्वभावें धनंजया। नाहीं कोणीचि क्रिया। म्हणौनि प्रवादु तया। नैष्कर्म्यु ऐसा ॥९७८॥
तें आपुलें आपणपें। असे तेंचि होऊनि हारपे। तरंगु कां वायुलोपें। समुद्रु जैसा ॥९७९॥
तैसें न होणें निफजे। ते नैष्कर्म्यसिद्धि जाणिजे। सर्वसिद्धींत सहजें। परम हेचि ॥९८०॥
देउळाचिया कामा कळसु। उपरम गंगेसी सिंधु प्रवेशु। कां सुवर्णशुद्धी कसु। सोळावा जैसा ॥९८१॥
तैसें आपुलें नेणणें। फेडिजे का जाणणें। तेंहि गिळूनि असणें। ऐसी जे दशा ॥९८२॥
तियेपरतें कांहीं। निपजणें आन नाहीं। म्हणौनि म्हणिपे पाहीं। परमसिद्धि ते ॥९८३॥

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥५०॥

परी हेचि आत्मसिद्धि। जो कोणी भाग्यनिधि। श्रीगुरुकृपालब्धि- । काळीं पावे ॥९८४॥
उदयतांचि दिनकरु। प्रकाशुचि आते आंधारु। कां दीपसंगें कापुरु। दीपुचि होय ॥९८५॥
तया लवणाची कणिका। मिळतखेंवो उदका। उदकचि होऊनि देखा। ठाके जेवीं ॥९८६॥
कां निद्रितु चेवविलिया। स्वप्नेंसि नीद वायां। जाऊनि आपणपयां। मिळे जैसा ॥९८७॥
तैसें जया कोण्हासि दैवें। गुरुवाक्यश्रवणाचि सवें। द्वैत गिळोनि विसंवे। आपणया वृत्ती ॥९८८॥
तयासी मग कर्म करणें। हें बोलिजैलचि कवणें। . आकाशा येणें जाणें। आहे काई ? ॥९८९॥
म्हणौनि तयासि कांहीं। त्रिशुद्धि करणें नाहीं। परी ऐसें जरी हें कांहीं। नव्हे जया ॥९९०॥
कानावचनाचिये भेटी- । सरिसाचि पैं किरीटी। वस्तु होऊनि उठी। कवणि एकु जो ॥९९१॥
येऱ्हवीं स्वकर्माचेनि वन्ही। काम्यनिषिद्धाचिया इंधनीं। रजतमें कीर दोन्ही। जाळिलीं आधीं ॥९९२॥
पुत्र वित्त परलोकु। यया तिहींचा अभिलाखु। घरीं होय पाइकु। हेंही जालें ॥९९३॥
इंद्रियें सैरा पदार्थीं। रिगतां विटाळलीं होतीं। तिये प्रत्याहार तीर्थीं। न्हाणिलीं कीर ॥९९४॥
आणि स्वधर्माचें फळ। ईश्वरीं अर्पूनि सकळ। घेऊनि केलें अढळ। वैराग्यपद ॥९९५॥
ऐसी आत्मसाक्षात्कारीं। लाभे ज्ञानाची उजरी। ते सामुग्री कीर पुरी। मेळविली ॥९९६॥
आणि तेचि समयीं। सद्गुरु भेटले पाहीं। तेवींचि तिहीं कांहीं। वंचिजेना ॥९९७॥
परी वोखद घेतखेंवो। काय लाभे आपला ठावो ? . कां उदयजतांचि दिवो। मध्यान्ह होय ? ॥९९८॥
सुक्षेत्रीं आणि वोलटें। बीजही पेरिलें गोमटें। तरी आलोट फळ भेटे। परी वेळे कीं गा ॥९९९॥
जोडला मार्गु प्रांजळु। मिनला सुसंगाचाही मेळु। तरी पाविजे वांचूनि वेळु। लागेचि कीं ॥१०००॥
तैसा वैराग्यलाभु जाला। वरी सद्गुरुही भेटला। जीवीं अंकुरु फुटला। विवेकाचा ॥१००१॥
तेणें ब्रह्म एक आथी। येर आघवीचि भ्रांती। हेही कीर प्रतीती। गाढ केली ॥१००२॥
परी तेंचि जें परब्रह्म। सर्वात्मक सर्वोत्तम। मोक्षाचेंही काम। सरे जेथ ॥१००३॥

यया तिन्ही अवस्था पोटीं। जिरवी जें गा किरीटी। तया ज्ञानासिही मिठी। दे जे वस्तु ॥१००४॥
ऐक्याचें एकपण सरे। जेथ आनंदकणुही विरे। कांहींचि नुरोनि उरे। जें कांहीं गा ॥१००५॥
तियें ब्रह्मीं ऐक्यपणें। ब्रह्मचि होऊनि असणें। तें क्रमेंचि करूनि तेणें। पाविजे पैं ॥१००६॥
भुकेलियापासीं। वोगरिलें षड्रसीं। तो तृप्ति प्रतिग्रासीं। लाहे जेवीं ॥१००७॥
तैसा वैराग्याचा वोलावा। विवेकाचा तो दिवा। आंबुथितां आत्मठेवा। काढीचि तो ॥१००८॥
तरी भोगिजे आत्मऋद्धी। येवढी योग्यतेची सिद्धी। जयाच्या आंगीं निरवधी। लेणें जाली ॥१००९॥
तो जेणें क्रमें ब्रह्म। होणें करी गा सुगम। तया क्रमाचें आतां वर्म। आईक सांगों ॥१०१०॥

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥५१॥

तरी गुरु दाविलिया वाटा। येऊन विवेकतीर्थतटा। धुऊनियां मळकटा। बुद्धीचा तेणें ॥१०११॥
मग राहूनें उगळिली। प्रभा चंद्रें आलिंगिली। तैसी शुद्धत्वें जडली। आपणयां बुद्धि ॥१०१२॥
सांडूनि कुळें दोन्ही। प्रियासी अनुसरे कामिनी। द्वंद्वत्यागें स्वचिंतनीं। पडली तैसी ॥१०१३॥
आणि ज्ञान ऐसें जिव्हार। नेवों नेवों निरंतर। इंद्रियीं केले थोर। शब्दादिक जे ॥१०१४॥
ते रश्मिजाळ काढलेया। मृगजळ जाय लया। तैसें वृत्तिरोधें तयां। पांचांही केलें ॥१०१५॥
नेणतां अधमाचिया अन्ना। खादलिया कीजे वमना। तैसीं वोकविली सवासना। इंद्रियें विषयीं ॥१०१६॥
मग प्रत्यगावृत्ती चोखटें। लाविलीं गंगेचेनि तटें। ऐसीं प्रायश्चित्तें धुवटें। केलीं येणें ॥१०१७॥
पाठीं सात्विकें धीरें तेणें। शोधारलीं तियें करणें। मग मनेंसीं योगधारणें। मेळविलीं ॥१०१८॥
तेवींचि प्राचीनें इष्टानिष्टें। भोगेंसीं येउनी भेटे। तेथ देखिलियाही वोखटें। द्वेषु न करी ॥१०१९॥
ना गोमटेंचि विपायें। तें आणूनि पुढां सूये। तयालागीं न होये। साभिलाषु ॥१०२०॥
यापरी इष्टानिष्टीं॑॑। रागद्वेष किरीटी। त्यजूनि गिरिकपाटीं . निकुंजीं वसे ॥१०२१॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥५२॥

गजबजा सांडिलिया। वसवी वनस्थळिया। अंगाचियाचि मांदिया। एकलेया ॥१०२२॥
शमदमादिकीं खेळे। न बोलणेंचि चावळे। गुरुवाक्याचेनि मेळें। नेणे वेळु ॥१०२३॥
आणि आंगा बळ यावें। नातरी क्षुधा जावें। कां जिभेएचे पुरवावे। मनोरथ ॥१०२४॥
भोजन करितांविखीं। ययां तिहींतें न लेखी। आहारीं मिती संतोषीं। माप न सूये ॥१०२५॥
अशनाचेनि पावकें। हारपतां प्राणु पोखे। इतुकियाचि भागु मोटकें। अशन करी ॥१०२६॥
आणि परपुरुषें कामिली। कुळवधू आंग न घाली। निद्रालस्या न मोकली। आसन तैसें ॥१०२७॥
दंडवताचेनि प्रसंगें। भुयीं हन अंग लागे। वांचूनि येर नेघे। राभस्य तेथ ॥१०२८॥
देहनिर्वाहापुरतें। राहाटवी हातांपायांतें। किंबहुना आपैतें। सबाह्य केलें ॥१०२९॥
आणि मनाचा उंबरा। वृत्तीसी देखों नेदी वीरा। तेथ कें वाग्व्यापारा। अवकाशु असे ? ॥१०३०॥
ऐसेनि देह वाचा मानस। हें जिणौनि बाह्यप्रदेश। आकळिलें आकाश। ध्यानाचें तेणें ॥१०३१॥
गुरुवाक्यें उठविला। बोधीं निश्चयो आपुला। न्याहाळीं हातीं घेतला। आरिसा जैसा ॥१०३२॥
पैं ध्याता आपणचि परी। ध्यानरूप वृत्तिमाझारीं। ध्येयत्वें घे हे अवधारीं। ध्यानरूढी गा ॥१०३३॥
तेथ ध्येय ध्यान ध्याता। ययां तिहीं एकरूपता। होय तंव पंडुसुता। कीजे तें गा ॥१०३४॥
म्हणौनि तो मुमुक्षु। आत्मज्ञानीं जाला दक्षु। परी पुढां सूनि पक्षु। योगाभ्यासाचा ॥१०३५॥
अपानरंध्रद्वया। माझारीं धनंजया। पार्ष्णी पिडूनियां। कांवरुमूळ ॥१०३६॥

आकुंचूनि अध। देऊनि तिन्ही बंध। करूनि एकवद। वायुभेदी ॥१०३७॥
कुंडलिनी जागवूनि। मध्यमा विकाशूनि। आधारादि भेदूनि। आज्ञावरी ॥१०३८॥
सहस्त्रदळाचा मेघु। पीयुषें वर्षोनि चांगु। तो मूळवरी वोघु। आणूनियां ॥१०३९॥
नाचतया पुण्यगिरी। चिद्भैरवाच्या खापरीं। मनपवनाची खीच पुरी। वाढूनियां ॥१०४०॥
जालिया योगाचा गाढा। मेळावा सूनि हा पुढां। ध्यान मागिलीकडां। स्वयंभ केलें ॥१०४१॥
आणि ध्यान योग दोन्ही। इयें आत्मतत्वज्ञानीं। पैठा होआवया निर्विघ्नीं। आधींचि तेणें ॥१०४२॥
वीतरागतेसारिखा। जोडूनि ठेविला सखा। तो आघवियाचि भूमिका- । सवें चाले ॥१०४३॥
पहावें दिसे तंववरी। दिठीतें न संडी दीप जरी। तरी कें आहे अवसरी। देखावया ॥१०४४॥
तैसें मोक्षीं प्रवर्तलया। वृत्ती ब्रह्मीं जाय लया। तंव वैराग्य आथी तया। भंगु कैचा ॥१०४५॥
म्हणौनि सवैराग्यु। ज्ञानाभ्यासु तो सभाग्यु। करूनि जाला योग्यु। आत्मलाभा ॥१०४६॥
ऐसी वैराग्याची आंगीं। बाणूनियां वज्रांगीं। राजयोगतुरंगीं। आरूढला ॥१०४७॥
वरी आड पडिलें दिठी। सानें थोर निवटी। तें बळीं विवेकमुष्टीं। ध्यानाचें खांडें ॥१०४८॥
ऐसेनि संसाररणाआंतु .आंधारीं सूर्य तैसा असे जातु . मोक्षविजयश्रीये वरैतु। होआवयालागीं ॥१०४९॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥
तेथ आडवावया आले। दोषवैरी जे धोपटिले। तयांमाजीं पहिलें। देहाहंकारु ॥१०५०॥
जो न मोकली मारुनी। जीवों नेदी उपजवोनि। विचंबवी खोडां घालुनी। हाडांचिया ॥१०५१॥
तयाचा देहदुर्ग हा थारा। मोडूनि घेतला तो वीरा। आणि बळ हा दुसरा। मारिला वैरी ॥१०५२॥
जो विषयाचेनि नांवें। चौगुणेंही वरी थांवे। जेणें मृतावस्था धांवे। सर्वत्र जगा ॥१०५३॥
तो विषय विषाचा अथावो। आघविया दोषांचा रावो। परी ध्यानखड्गाचा घावो। साहेल कैंचा ? ॥१०५४॥
आणि प्रिय विषयप्राप्ती। करी जया सुखाची व्यक्ती। तेचि घालूनि बुंथी। आंगीं जो वाजे ॥१०५५॥
जो सन्मार्गा भुलवी। मग अधर्माच्या आडवीं। सूनि वाघां सांपडवी। नरकादिकां ॥१०५६॥
तो विश्वासें मारितां रिपु। निवटूनि घातला दर्पु। आणि जयाचा अहा कंपु। तापसांसी ॥१०५७॥
क्रोधा ऐसा महादोखु। जयाचा देखा परिपाकु। भरिजे तंव अधिकु। रिता होय जो ॥१०५८॥
तो कामु कोणेच ठायीं। नसे ऐसें केलें पाहीं। कीं तेंचि क्रोधाही। सहजें आलें ॥१०५९॥
मुळाचें तोडणें जैसें। होय कां शाखोद्देशें। कामु नाशलेनि नाशे। तैसा क्रोधु ॥१०६०॥
म्हणौनि काम वैरी। जाला जेथ ठाणोरी। तेथ सरली वारी। क्रोधाचीही ॥१०६१॥
आणि समर्थु आपुला खोडा। शिसें वाहवी जैसा होडा। तैसा भुंजौनि जो गाढा। परीग्रहो ॥१०६२॥
जो माथांचि पालाणवी। अंगा अवगुण घालवी। जीवें दांडी घेववी। ममत्वाची ॥१०६३॥
शिष्यशास्त्रादिविलासें। मठादिमुद्रेचेनि मिसें। घातले आहाती फांसे। निःसंगा जेणें ॥१०६४॥
घरीं कुटुंबपणें सरे। तरी वनीं वन्य होऊनि अवतरे। नागवीयाही शरीरें। लागला आहे ॥१०६५॥
ऐसा दुर्जयो जो परीग्रहो। तयाचा फेडूनि ठावो। भवविजयाचा उत्साहो। भोगीतसे जो ॥१०६६॥
तेथ अमानित्वादि आघवे। ज्ञानगुणाचे जे मेळावे। ते कैवल्यदेशींचे आघवे। रावो जैसे आले ॥१०६७॥
तेव्हां सम्यक्ज्ञानाचिया। राणिवा उगाणूनि तया। परिवारु होऊनियां। राहत आंगें ॥१०६८॥
प्रवृत्तीचिये राजबिदीं। अवस्थाभेदप्रमदीं। कीजत आहे प्रतिपदीं। सुखाचें लोण ॥१०६९॥
पुढां बोधाचिये कांबीवरी। विवेकु दृश्याची मांदी सारी। योगभूमिका आरती करी। येती जैसिया ॥१०७०॥
तेथ ऋद्धिसिद्धींचीं अनेगें। वृंदें मिळती प्रसंगें। तिये पुष्पवर्षीं आंगें। नाहातसे तो ॥१०७१॥

ऐसेनि ब्रह्मैक्यासारिखें। स्वराज्य येतां जवळिकें। झळंबित आहे हरिखें। तिन्ही लोक ॥१०७२॥
तेव्हां वैरियां कां मैत्रियां। तयासि माझें म्हणावया। समानता धनंजया। उरेचिही ना ॥१०७३॥
हें ना भलतेणें व्याजें। तो जयातें म्हणे माझें। तें नोडवेचि कां दुजें। अद्वितीय जाला ॥१०७४॥
पैं आपुलिया एकी सत्ता। सर्वही कवळूनिया पंडुसुता। कहीं न लगती ममता। धाडिली तेणें ॥१०७५॥
ऐसा जिंतिलिया रिपुवर्गु। अपमानिलिया हें जगु। अपैसा योगतुरंगु। स्थिर जाला ॥१०७६॥
वैराग्याचें गाढलें। अंगी त्राण होतें भलें। तेंही नावेक ढिलें। तेव्हां करी ॥१०७७॥
आणि निवटी ध्यानाचें खांडें। तें दुजें नाहींचि पुढें। म्हणौनि हातु आसुडें। वृत्तीचाही ॥१०७८॥
जैसें रसौषध खरें। आपुलें काज करोनि पुरें। आपणही नुरे। तैसें होतसे ॥१०७९॥
देखोनि ठाकिता ठावो। धांवता थिरावे पावो। तैसा ब्रह्मसामीप्यें थावो। अभ्यासु सांडी ॥१०८०॥
घडतां महोदधीसी। गंगा वेगु सांडी जैसी। कां कामिनी कांतापासीं। स्थिर होय ॥१०८१॥
नाना फळतिये वेळे। केळीची वाढी मांटुले। कां गांवापुढें वळे। मार्गु जैसा ॥१०८२॥
तैसा आत्मसाक्षात्कारु। होईल देखोनि गोचरु। ऐसा साधनहतियेरु। हळुचि ठेवी ॥१०८३॥
म्हणौनि ब्रह्मेंसी तया। ऐक्याचा समो धनंजया। होतसे तैं उपाया। वोहटु पडे ॥१०८४॥
मग वैराग्याची गोंधळुक। जे ज्ञानाभ्यासाचें वार्धक्य। योगफळाचाही परिपाक। दशा जे कां ॥१०८५॥
ते शांति पैं गा सुभगा। संपूर्ण ये तयाचिया आंगा। तैं ब्रह्म होआवया जोगा। होय तो पुरुषु ॥१०८६॥
पुनवेहुनी चतुर्दशी। जेतुलें उणेपण शशी। कां सोळे पाऊनि जैसी। पंधरावी वानी ॥१०८७॥
सागरींही पाणी वेगें। संचरे तें रूप गंगे। येर निश्चळ जें उगें। तें समुद्र जैसा ॥१०८८॥
ब्रह्मा आणि ब्रह्महोतिये। योग्यते तैसा पाडु आहे। तेंचि शांतीचेनि लवलाहें। होय तो गा ॥१०८९॥
पैं तेंचि होणेंनवीण। प्रतीती आलें जें ब्रह्मपण। ते ब्रह्म होती जाण। योग्यता येथ ॥१०९०॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥५४॥

ते ब्रह्मभावयोग्यता। पुरुषु तो मग पंडुसुता। आत्मबोधप्रसन्नता- । पदीं बैसे ॥१०९१॥
जेणें निपजे रससोय। तो तापुही जैं जाय। तैं ते कां होय। प्रसन्न जैसी ॥१०९२॥
नाना भरतिया लगबगा। शरत्काळीं सांडिजे गंगा। कां गीत रहातां उपांगा। वोहटु पडे ॥१०९३॥
तैसा आत्मबोधीं उद्यमु। करितां होय जो श्रमु। तोही जेथें समु। होऊनि जाय ॥१०९४॥
आत्मबोधप्रशस्ती। हे तिये दशेची ख्याती। ते भोगितसे महामती। योग्यु तो गा ॥१०९५॥
तेव्हां आत्मत्वें शोचावें। कांहीं पावावया कामावें। हें सरलें समभावें। भरितें तया ॥१०९६॥
उदया येतां गभस्ती। नाना नक्षत्रव्यक्ती। हारवीजती दीप्ती। आंगिका जेवीं ॥१०९७॥
तेवीं उठतिया आत्मप्रथा। हे भूतभेदव्यवस्था। मोडीत मोडीत पार्था। वास पाहे तो ॥१०९८॥
पाटियेवरील अक्षरें। जैसीं पुसतां येती करें। तैसीं हारपती भेदांतरें। तयाचिये दृष्टी ॥१०९९॥
तैसेनि अन्यथा ज्ञानें। जियें घेपती जागरस्वप्नें। तियें दोन्ही केलीं लीनें। अव्यक्तामाजीं ॥११००॥
मग तेंही अव्यक्त। बोध वाढतां झिजत। पुरलां बोधीं समस्त। बुडोनि जाय ॥११०१॥
जैसी भोजनाच्या व्यापारीं। क्षुधा जिरत जाय अवधारीं। मग तृप्तीच्या अवसरीं। नाहींच होय ॥११०२॥
नाना चालीचिया वाढी। वाट होत जाय थोडी। मग पातला ठायीं बुडी। देऊनि निमे ॥११०३॥
कां जागृति जंव जंव उद्दीपे। तंव तंव निद्रा हारपे। मग जागीनलिया स्वरूपें। नाहींच होय ॥११०४॥
हें ना आपुलें पूर्णत्व भेटें। जेथ चंद्रासीं वाढी खुंटे। तेथ शुक्लपक्षु आटे। निःशेषु जैसा ॥११०५॥
तैसा बोध्यजात गिळितु। बोधु बोधें ये मज आंतु। मिसळला तेथ साद्यंतु। अबोधु गेला ॥११०६॥

तेव्हां कल्पांताचिये वेळे। नदी सिंधूचें पेंडवळें। मोडूनि भरलें जळें .आब्रह्म जैसें ॥११०७॥
नाना गेलिया घट मठ। आकाश ठाके एकवट। कां जळोनि काष्ठें काष्ठ। वन्हीचि होय ॥११०८॥
नातरी लेणियांचे ठसे। आटोनि गेलिया मुसे। नामरूप भेदें जैसें। सांडिजे सोनें ॥११०९॥
हेंही असो चेइलया। तें स्वप्न नाहीं जालया। मग आपणचि आपणयां। उरिजे जैसें ॥१११०॥
तैसी मी एकवांचूनि कांहीं। तया तयाहीसकट नाहीं। हे चौथी भक्ति पाहीं। माझी तो लाहे ॥११११॥
येर आर्तु जिज्ञासु अर्थार्थी। हे भजती जिये पंथीं। ते तिन्ही पावोनी चौथी। म्हणिपत आहे ॥१११२॥
येऱ्हवीं तिजी ना चौथी। हे पहिली ना सरती। पैं माझिये सहजस्थिती। भक्ति नाम ॥१११३॥
जें नेणणें माझें प्रकाशूनि। अन्यथात्वें मातें दाऊनि। सर्वही सर्वीं भजौनि। बुझावीतसे जे ॥१११४॥
जो जेथ जैसें पाहों बैसे। तया तेथ तैसेंचि असे। हें उजियेडें कां दिसे। अखंडें जेणें ॥१११५॥
स्वप्नाचें दिसणें न दिसणें। जैसें आपलेनि असलेपणें। विश्वाचें आहे नाहीं जेणें। प्रकाशें तैसें ॥१११६॥
ऐसा हा सहज माझा। प्रकाशु जो कपिध्वजा। तो भक्ति या वोजा। बोलिजे गा ॥१११७॥
म्हणौनि आर्ताच्या ठायीं। हे आर्ति होऊनि पाहीं। अपेक्षणीय जें कांहीं . तें मीचि केला ॥१११८॥
जिज्ञासुपुढां वीरेशा। हेचि होऊनि जिज्ञासा। मी कां जिज्ञास्यु ऐसा। दाखविला ॥१११९॥
हेंचि होऊनि अर्थना। मीचि माझ्या अर्थीं अर्जुना। करूनि अर्थाभिधाना। आणी मातें ॥११२०॥
एवं घेऊनि अज्ञानातें। माझी भक्ति जे हे वर्ते। ते दावी मज द्रष्टयातें। दृश्य करूनि ॥११२१॥
येथें मुखचि दिसे मुखें। या बोला कांहीं न चुके। तरी दुजेपण हें लटिकें। आरिसा करी ॥११२२॥
दिठी चंद्रचि घे साचें। परी येतुलें हें तिमिराचें। जे एकचि असे तयाचे। दोनी दावी ॥११२३॥
तैसा सर्वत्र मीचि मियां। घेपतसें भक्ति इया। परी दृश्यत्व हें वायां। अज्ञानवशें ॥११२४॥
तें अज्ञान आतां फिटलें। माझें दृष्टृत्व मज भेटलें। निजबिंबीं एकवटलें। प्रतिबिंब जैसें ॥११२५॥
पैं जेव्हांही असे किडाळ। तेव्हांही सोनेंचि अढळ। परी तें कीड गेलिया केवळ। उरे जैसें ॥११२६॥
हां गा पूर्णिमे आधीं कायी। चंद्र सावयवु नाहीं ? । परी तिये दिवशीं भेटे पाहीं। पूर्णता तया ॥११२७॥
तैसा मीचि ज्ञानद्वारें। दिसें परी हस्तांतरें। मग दृष्टृत्व तें सरे। मियांचि मी लाभें ॥११२८॥
म्हणौनि दृश्यपथा- । अतीतु माझा पार्था। भक्तियोगु चवथा। म्हणितला गा ॥११२९॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥५५॥

या ज्ञान भक्ति सहज। भक्तु एकवटला मज। मीचि केवळ हें तुज। श्रुतही आहे ॥११३०॥
जे उभऊनियां भुजा। ज्ञानिया आत्मा माझा। हे बोलिलों कपिध्वजा। सप्तमाध्यायीं ॥११३१॥
ते कल्पादीं भक्ति मियां। श्रीभागवतमिषें ब्रह्मया। उत्तम म्हणौनि धनंजया। उपदेशिली ॥११३२॥
ज्ञानी इयेतें स्वसंवित्ती। शैव म्हणती शक्ती। आम्ही परम भक्ती। आपुली म्हणो ॥११३३॥
हे मज मिळतिये वेळे। तया क्रमयोगियां फळे। मग समस्तही निखिळें। मियांचि भरे ॥११३४॥
तेथ वैराग्य विवेकेंसी। आटे बंध मोक्षेंसीं। वृत्ती तिये आवृत्तीसीं। बुडोनि जाय ॥११३५॥
घेऊनि ऐलपणातें। परत्व हारपें जेथें। गिळूनि चाऱ्ही भूतें। आकाश जैसें ॥११३६॥
तया परी थडथाद। साध्यसाधनातीत शुद्ध। तें मी होऊनि एकवद। भोगितो मातें ॥११३७॥
घडोनि सिंधूचिया आंगा। सिंधूवरी तळपे गंगा। तैसा पाडु तया भोगा। अवधारी जो ॥११३८॥
कां आरिसयासि आरिसा। उटूनि दाविलिया जैसा। देखणा अतिशयो तैसा। भोगणा तिये ॥११३९॥
हे असो दर्पणु नेलिया। तो मुख बोधुही गेलिया। देखलेंपण एकलेया। आस्वादिजे जेवीं ॥११४०॥
चेइलिया स्वप्न नाशे। आपलें ऐक्यचि दिसे। ते दुजेनवीण जैसें। भोगिजे का ॥११४१॥

तोचि जालिया भोगु तयाचा। न घडे हा भावो जयांचा। तिहीं बोलें केवीं बोलाचा। उच्चारु कीजे ॥११४२॥
तयांच्या नेणों गांवीं। रवी प्रकाशी हन दिवी। कीं व्योमालागीं मांडवी। उभिली तिहीं ॥११४३॥
हां गा राजन्यत्व नव्हतां आंगीं। रावो रायपण काय भोगी ? . कां आंधारु हन आलिंगी। दिनकरातें ? ॥११४४॥
आणि आकाश जें नव्हे। तया आकाश काय जाणवे ? . रत्नाच्या रूपीं मिरवे। गुंजांचें लेणें ? ॥११४५॥
म्हणौनि मी होणें नाहीं। तया मीचि आहें केहीं। मग भजेल हें कायी। बोलों कीर ॥११४६॥
यालागीं तो क्रमयोगी। मी जालाचि मातें भोगी। तारुण्य कां तरुणांगीं। जियापरी ॥११४७॥
तरंग सर्वांगीं तोय चुंबी। प्रभा सर्वत्र विलसे बिंबीं। नाना अवकाश नभीं। लुंठतु जैसा ॥११४८॥
तैसा रूप होऊनि माझें। मातें क्रियावीण तो भजे। अलंकारु का सहजें। सोनयातें जेवीं ॥११४९॥
का चंदनाची द्रुती जैसी। चंदनीं भजे अपैसी। का अकृत्रिम शशीं। चंद्रिका ते ॥११५०॥
तैसी क्रिया कीर न साहे। तर्‍ही अद्वैतीं भक्ति आहे। हें अनुभवाचिजोगें नव्हे। बोलाऐसें ॥११५१॥
तेव्हां पूर्वसंस्कार छंदें। जें कांहीं तो अनुवादे। तेणें आळविलेनि वो दें। बोलतां मीचि ॥११५२॥
बोलतया बोलताचि भेटे। तेथें बोलिलें हें न घटे। तें मौन तंव गोमटें। स्तवन माझें ॥११५३॥
म्हणौनि तया बोलतां। बोली बोलतां मी भेटतां। मौन होय तेणें तत्वतां। स्तवितो मातें ॥११५४॥
तैसेंचि बुद्धी का दिठी। जें तो देखों जाय किरीटी। तें देखणें दृश्य लोटी। देखतेंचि दावी ॥११५५॥
आरिसया आधीं जैसें। देखतेंचि मुख दिसेअ। तयाचें देखणें तैसें। मेळवी द्रष्टें ॥११५६॥
दृश्य जाउनियां द्रष्टें। द्रष्टयासीचि जैं भेटे। तैं एकलेपणें न घटे। द्रष्टेपणही ॥११५७॥
तेथ स्वप्नींचिया प्रिया। चेवोनि झोंबो गेलिया। ठायिजे दोन्ही न होनियां। आपणचि जैसें ॥११५८॥
का दोहीं काष्ठाचिये घृष्टी- । माजीं वन्हि एक उठी। तो दोन्ही हे भाष आटी। आपणचि होय ॥११५९॥
नाना प्रतिबिंब हातीं। घेऊं गेलिया गभस्ती। बिंबताही असती। जाय जैसी ॥११६०॥
तैसा मी होऊनि देखतें। तो घेऊं जाय दृश्यातें। तेथ दृश्य ने थितें। द्रष्टृत्वेंसीं ॥११६१॥
रवि आंधारु प्रकाशिता। नुरेचि जेवीं प्रकाश्यता। तेंवीं दृश्यीं नाही द्रष्टृता। मी जालिया ॥११६२॥
मग देखिजे ना न देखिजे। ऐसी जे दशा निपजे। ते तें दर्शन माझें। साचोकारें ॥११६३॥
तें भलतयाही किरीटी। पदार्थाचिया भेटी। द्रष्टृदृश्यातीता दृष्टी। भोगितो सदा ॥११६४॥
आणि आकाश हें आकाशें। दाटलें न ढळें जैसें। मियां आत्मेन आपणपें तैसें। जालें तया ॥११६५॥
कल्पांतीं उदक उदकें। रुंधिलिया वाहों ठाके। तैसा आत्मेनि मियां येकें। कोंदला तो ॥११६६॥
पावो आपणपयां वोळघे ? . केवीं वन्हि आपणपयां लागे ? । आपणपां पाणी रिघे। स्नाना कैसें ? ॥११६७॥
म्हणौनि सर्व मी जालेपणें। ठेलें तया येणें जाणें। तेंचि गा यात्रा करणें। अद्वया मज ॥११६८॥
पैं जळावरील तरंगु। जरी धाविन्नला सवेगु। तरी नाहीं भूमिभागु। क्रमिला तेणें ॥११६९॥
जें सांडावें कां मांडावें। जें चालणें जेणें चालावें। तें तोयचि एक आघवें। म्हणौनियां ॥११७०॥
गेलियाही भलतेउता। उदकपणेंं पंडुसुता। तरंगाची एकात्मता। न मोडेचि जेवीं ॥११७१॥
तैसा मीपणें हा लोटला। तो आघवेंयाचि मजआंतु आला। या यात्रा होय भला। कापडी माझा ॥११७२॥
आणि शरीर स्वभाववशें। कांहीं येक करूं जरी बैसे। तरी मीचि तो तेणें मिषें। भेटे तया ॥११७३॥
तेथ कर्म आणि कर्ता। हें जाऊनि पंडुसुता। मियां आत्मेनि मज पाहतां। मीचि होय ॥११७४॥
पैं दर्पणातेंं दर्पणें। पाहिलिया होय न पाहणें। सोनें झांकिलिया सुवर्णें। ना झांकें जेवीं ॥११७५॥
दीपातें दीपें प्रकाशिजे। तें न प्रकाशणेंचि निपजे। तैसें कर्म मियां कीजे। तें करणें कैंचें ? ॥११७६॥
कर्मही करितचि आहे। जैं करावें हें भाष जाये। तैं न करणेंचि होये। तयाचें केलें ॥११७७॥
क्रियाजात मी जालेपणें। घडे कांहींचि न करणें। तयाचि नांव पूजणें। खुणेचें माझें ॥११७८॥

म्हणौनि करीतयाही वोजा। तें न करणें हेंचि कपिध्वजा। निफजे तिया महापूजा। पूजी तो मातें ॥११७९॥
एवं तो बोले तें स्तवन। तो देखे तें दर्शन। अद्वया मज गमन। तो चाले तेंचि ॥११८०॥
तो करी तेतुली पूजा। तो कल्पी तो जपु माझा। तो असे तेचि कपिध्वजा। समाधी माझी ॥११८१॥
जैसें कनकेंसी कांकणें। असिजे अनन्यपणें। तो भक्तियोगें येणें। मजसीं तैसा ॥११८२॥
उदकीं कल्लोळु। कापुरीं परीमळु। रत्नीं उजाळु। अनन्यु जैसा ॥११८३॥
किंबहुना तंतूंसीं पटु। कां मृत्तिकेसीं घटु। तैसा तो एकवटु। मजसीं माझा ॥११८४॥
इया अनन्यसिद्धा भक्ती। या आघवाचि दृश्यजातीं। मज आपणपेंया सुमती। द्रष्टयातें जाण ॥११८५॥
तिन्ही अवस्थांचेनि द्वारें। उपाध्युपहिताकारें। भावाभावरूप स्फुरे। दृश्य जें हें ॥११८६॥
तें हें आघवेंचि मी द्रष्टा। ऐसिया बोधाचा माजिवटा। अनुभवाचा सुभटा। धेंडा तो नाचे ॥११८७॥
रज्जु जालिया गोचरु। आभासतां तो व्याळाकारु। रज्जुचि ऐसा निर्धारु। होय जेवीं ॥११८८॥
भांगारापरतें कांहीं। लेणें गुंजहीभरी नाहीं। हें आटुनियां ठायीं। कीजे जैसे ॥११८९॥
उदका येकापरतें . तरंग नाहींचि हें निरुतें। जाणोनि तया आकारातें। न घेपे जेवीं ॥११९०॥
नातरी स्वप्नविकारां समस्तां। चेऊनियां उमाणें घेतां। तो आपणयापरौता। न दिसे जैसा ॥११९१॥
तैसें जें कांहीं आथी नाथी। येणें होय ज्ञेयस्फुर्ती। तें ज्ञाताचि मी हें प्रतीती। होऊनि भोगी ॥११९२॥
जाणे अजु मी अजरु। अक्षयो मी अक्षरु। अपूर्वु मी अपारु। आनंदु मी ॥११९३॥
अचळु मी अच्युतु। अनंतु मी अद्वैतु। आद्यु मी अव्यक्तु। व्यक्तुही मी ॥११९४॥
ईश्य मी ईश्वरु। अनादि मी अमरु। अभय मी आधारु। आधेय मी ॥११९५॥
स्वामी मी सदोदितु। सहजु मी सततु। सर्व मी सर्वगतु। सर्वातीतु मी ॥११९६॥
नवा मी पुराणु। शून्यु मी संपूर्णु। स्थुलु मी अणु। जें कांहीं तें मी ॥११९७॥
अक्रियु मी येकु। असंगु मी अशोकु। व्यापु मी व्यापकु। पुरुषोत्तमु मी ॥११९८॥
अशब्दु मी अश्रोत्रु। अरूपु मी अगोत्रु। समु मी स्वतंत्रु। ब्रह्म मी परु ॥११९९॥
ऐसें आत्मत्वें मज एकातें। इया अद्वयभक्ती जाणोनि निरुतें। आणि याही बोधा जाणतें। तेंही मीचि जाणें ॥१२००॥
पैं चेइलेयानंतरें। आपुलें एकपण उरे। तेंही तोंवरी स्फुरे। तयाशींचि जैसें ॥१२०१॥
कां प्रकाशतां अर्कु। तोचि होय प्रकाशकु। तयाही अभेदा द्योतकु। तोचि जैसा ॥१२०२॥
तैसा वेद्यांच्या विलयीं। केवळ वेएदकु उरे पाहीं। तेणें जाणवें तया तेंही। हेंही जो जाणे ॥१२०३॥
तया अद्वयपणा आपुलिया। जाणती ज्ञप्ती जे धनंजया। ते ईश्वरचि मी हे तया। बोधासि ये ॥१२०४॥
मग द्वैताद्वैतातीत। मीचि आत्मा एकु निभ्रांत। हें जाणोनि जाणणें जेथ। अनुभवीं रिघे ॥१२०५॥
तेथ चेइलियां येकपण। दिसे जे आपुलया आपण। तेंही जातां नेणों कोण। होईजे जेवीं ॥१२०६॥
कां डोळां देखतिये क्षणीं। सुवर्णपण सुवर्णीं। नाटितां होय आटणी। अळंकाराचीही ॥१२०७॥
नाना लवण तोय होये। मग क्षारता तोयत्वें राहे। तेही जिरतां जेवीं जाये। जालेपण तें ॥१२०८॥
तैसा मी तो हें जें असे . तें स्वानंदानुभवसमरसें। कालवूनिया प्रवेशे। मजचिमाजीं ॥१२०९॥
आणि तो हे भाष जेथ जाये। तेथे मी हें कोण्हासी आहे। ऐसा मी ना तो तिये सामाये। माझ्याचि रूपीं ॥१२१०॥
जेव्हां कापुर जळों सरे। तयाचि नाम अग्नि पुरेए। मग उभयतातीत उरे। आकाश जेवीं ॥१२११॥
का धाडलिया एका एकु। वाढे तो शून्य विशेखु। तैसा आहे नाहींचा शेखु। मीचि मग आथी ॥१२१२॥
तेथ ब्रह्मा आत्मा ईशु। यया बोला मोडे सौरसु। न बोलणें याही पैसु। नाहीं तेथ ॥१२१३॥
न बोलणेंही न बोलोनी। तें बोलिजे तोंड भरुनी। जाणिव नेणिव नेणोनी। जाणिजे तें ॥१२१४॥
तेथ बुझिजे बोधु बोधें। आनंंदु घेपे आनंदें। सुखावरी नुसधें। सुखचि भोगिजे ॥१२१५॥

तेथ लाभु जोडला लाभा। प्रभा आलिंगिली प्रभा। विस्मयो बुडाला उभा। विस्मयामाजीं ॥१२१६॥
शमु तेथ सामावला। विश्रामु विश्रांति आला। अनुभवु वेडावला। अनुभूतिपणें ॥१२१७॥
किंबहुना ऐसें निखळ। मीपण जोडे तया फळ। सेवूनि वेली वेल्हाळ। क्रमयोगाची ते ॥१२१८॥
पैं क्रमयोगिया किरीटी। चक्रवर्तीच्या मुकुटीं। मी चिद्रत्न तें साटोवाटीं। होय तो माझा ॥१२१९॥
कीं क्रमयोगप्रासादाचा। कळसु जो हा मोक्षाचा। तयावरील अवकाशाचा। उवावो जाला तो ॥१२२०॥
नाना संसार आडवीं। क्रमयोग वाट बरवी। जोडिली ते मदैक्यगांवीं। पैठी जालीसे ॥१२२१॥
हें असो क्रमयोगबोधें। तेणें भक्तिचिद्गंगें। मी स्वानंदोदधी वेगें। ठाकिला कीं गा ॥१२२२॥
हा ठायवरी सुवर्मा। क्रमयोगीं आहे महिमा। म्हणौनि वेळोवेळां तुम्हां। सांगतों आम्ही ॥१२२३॥
पैं देशें काळें पदार्थें। साधूनि घेइजे मातें। तैसा नव्हे मी आयतें। सर्वांचें सर्वही ॥१२२४॥
म्हणौनि माझ्या ठायीं। जाचावें न लगे कांहीं। मी लाभें इयें उपायीं। साचचि गा ॥१२२५॥
एक शिष्य एक गुरु। हा रूढला साच व्यवहारु। तो मत्प्राप्तिप्रकारु। जाणावया ॥१२२६॥
अगा वसुधेच्या पोटीं। निधान सिद्ध किरीटी। वन्हि सिद्ध काष्ठीं। वोहां दूध ॥१२२७॥
परी लाभे तें असतें। तया कीजे उपायातें। येर सिद्धचि तैसा तेथें। उपायीं मी ॥१२२८॥
हा फळहीवरी उपावो। कां पां प्रस्तावीतसे देवो। हे पुसतां परी अभिप्रावो। येथिंचा ऐसा ॥१२२९॥
जे गीतार्थाचें चांगावें। मोक्षोपायपर आघवें। आन शास्त्रोपाय कीं नव्हे। प्रमाणसिद्ध ॥१२३०॥
वारा आभाळचि फेडी। वांचूनि सूर्यातें न घडी। कां हातु बाबुळी धाडी। तोय न करी ॥१२३१॥
तैसा आत्मदर्शनीं आडळु। असे अविद्येचा जो मळु। तो शास्त्र नाशी येरु निर्मळु। मी प्रकाशें स्वयें ॥१२३२॥
म्हणौनि आघवींचि शास्त्रें। अविद्याविनाशाचीं पात्रें। वांचोनि न होतीं स्वतंत्रें। आत्मबोधीं ॥१२३३॥
तया अध्यात्मशास्त्रांसीं। जैं साचपणाची ये पुसी। तैं येइजे जया ठायासी। ते हे गीता ॥१२३४॥
भानुभूषिता प्राचिया। सतेजा दिशा आघविया। तैसी शास्त्रेश्वरा गीता या। सनाथें शास्त्रें ॥१२३५॥
हें असो येणें शास्त्रेश्वरें। मागां उपाय बहुवे विस्तारें। सांगितला जैसा करें। घेवों ये आत्मा ॥१२३६॥
परी प्रथमश्रवणासवें। अर्जुना विपायें हें फावे। हा भावो सकणवे। धरूनि श्रीहरी ॥१२३७॥
तेंचि प्रमेय एक वेळ। शिष्यीं होआवया अढळ। सांगतसे मुकुल। मुद्रा आतां ॥१२३८॥
आणि प्रसंगें गीता। ठावोही हा संपता। म्हणौनि दावी आद्यंता। एकार्थत्व ॥१२३९॥
जे ग्रंथाच्या मध्यभागीं। नाना अधिकारप्रसंगीं। निरूपण अनेगीं। सिद्धांतीं केलें ॥१२४०॥
तरी तेतुलेही सिद्धांत। इयें शास्त्रीं प्रस्तुत। हे पूर्वापर नेणत। कोण्ही जैं मानी ॥१२४१॥
तैं महासिद्धांताचा आवांका। सिद्धांतकक्षा अनेका। भिडऊनि आरंभु देखा। संपवीतु असे ॥१२४२॥
एथ अविद्यानाशु हें स्थळ। तेणें मोक्षोपादान फळ। या दोहीं केवळ। साधन ज्ञान ॥१२४३॥
हें इतुलेंचि नानापरी। निरूपिलें ग्रंथविस्तारीं। तें आतां दोहीं अक्षरीं। अनुवादावें ॥१२४४॥
म्हणौनि उपेयही हातीं। जालया उपायस्थिती। देव प्रवर्तले तें पुढती। येणेंचि भावें ॥१२४५॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥५६॥

मग म्हणे गा सुभटा। तो क्रमयोगिया निष्ठा। मी होउनी होय पैठा। माझ्या रूपीं ॥१२४६॥
स्वकर्माच्या चोखौळीं। मज पूजा करूनि भलीं। तेणें प्रसादें आकळी। ज्ञाननिष्ठेतें ॥१२४७॥
ते ज्ञाननिष्ठा जेथ हातवसे। तेथ भक्ति माझी उल्लासे। तिया भजन समरसें। सुखिया होय ॥१२४८॥
आणि विश्वप्रकाशितया। आत्मया मज आपुलिया। अनुसरे जो करूनियां। सर्वत्रता हे ॥१२४९॥
सांडूनि आपुला आडळ। लवण आश्रयी जळ। कां हिंडोनि राहे निश्चळ। वायु व्योमीं ॥१२५०॥

तैसा बुद्धी वाचा कायें। जो मातें आश्रऊनि ठाये। तो निषिद्धेंही विपायें। कर्में करूं ॥१२५१॥
परी गंगेच्या संबंधीं . बिदी आणि महानदी। येक तेवीं माझ्या बोधीं। शुभाशुभांसी ॥१२५२॥
कां बावनें आणि धुरें। हा निवाडु तंवचि सरे। जंव न घेपती वैश्वानरें। कवळूनि दोन्ही ॥१२५३॥
ना पांचिकें आणि सोळें। हें सोनया तंवचि आलें। जंव परिसु आंगमेळें। एकवटीना ॥१२५४॥
तैसें शुभाशुभ ऐसें। हें तंवचिवरी आभासे। जंव येकु न प्रकाशे। सर्वत्र मी ॥१२५५॥
अगा रात्री आणि दिवो। हा तंवचि द्वैतभावो। जंव न रिगिजे गांवो। गभस्तीचा ॥१२५६॥
म्हणौनि माझिया भेटी। तयाचीं सर्व कर्में किरीटी। जाऊनि बैसे तो पाटीं। सायुज्याच्या ॥१२५७॥
देशें काळें स्वभावें। वेंचु जया न संभवे। तें पद माझें पावे। अविनाश तो ॥१२५८॥
किंबहुना पंडुसुता। मज आत्मयाची प्रसन्नता। लाहे तेणें न पविजतां। लाभु कवणु असे ॥१२५९॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥५७॥

याकारणें गा तुवां इया। सर्व कर्मा आपुलिया। माझ्या स्वरूपीं धनंजया। संन्यासु कीजे ॥१२६०॥
परी तोचि संन्यासु वीरा। करणीयेचा झणें करा। आत्मविवेकीं धरा। चित्तवृत्ति हे ॥१२६१॥
मग तेणें विवेकबळें। आपणपें कर्माविगळें। माझ्या स्वरूपीं निर्मळें। देखिजेल ॥१२६२॥
आणि कर्माचि जन्मभोये। प्रकृति जे का आहे। ते आपणयाहूनि बहुवे। देखसी दूरी ॥१२६३॥
तेथ प्रकृति आपणयां। वेगळी नुरे धनंजया। रूपेंवीण का छाया। जियापरी ॥१२६४॥
ऐसेनि प्रकृतिनाशु। जालया कर्मसंन्यासु। निफजेल अनायासु। सकारणु ॥१२६५॥
मग कर्मजात गेलया। मी आत्मा उरें आपणपयां। तेथ बुद्धि घापे करूनियां। पतिव्रता ॥१२६६॥
बुद्धि अनन्य येणें योगें। मजमाजीं जैं रिगे। तैं चित्त चैत्यत्यागें। मातेंचि भजे ॥१२६७॥
ऐसें चैत्यजातें सांडिलें। चित्त माझ्या ठायीं जडलें। ठाके तैसें वहिलें। सर्वदा करी ॥१२६८॥

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥५८॥

मग अभिन्ना इया सेवा। चित्त मियांचि भरेल जेधवां। माझा प्रसादु जाण तेधवां। संपूर्ण जाहला ॥१२६९॥
तेथ सकळ दुःखधामें। भुंजीजती जियें मृत्युजन्में। तियें दुर्गमेंचि सुगमें। होती तुज ॥१२७०॥
सूर्याचेनि सावायें। डोळा सावाइला होये। तैं अंधाराचा आहे। पाडु तया ? ॥१२७१॥
तैसा माझेनि प्रसादें। जीवकणु जयाचा उपमर्दे। तो संसराचेनी बाधे। बागुलें केवीं ? ॥१२७२॥
म्हणौनि धनंजया। तूं संसारदुर्गती यया। तरसील माझिया। प्रसादास्तव ॥१२७३॥
अथवा हन अहंभावें। माझें बोलणें हें आघवें। कानामनाचिये शिंवे। नेदिसी टेंकों ॥१२७४॥
तरी नित्य मुक्त अव्ययो। तूं आहासि तें होऊनि वावो। देहसंबंधाचा घावो। वाजेल आंगीं ॥१२७५॥
जया देहसंबंधा आंतु। प्रतिपदीं आत्मघातु। भुंजतां उसंतु। कहींचि नाहीं ॥१२७६॥
येवढेनि दारुणें। निमणेनवीण निमणें। पडेल जरी बोलणें। नेघसी माझें ॥१२७७॥

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥५९॥

पथ्यद्वेषिया पोषी ज्वरु। कां दीपद्वेषिया अंधकारु। विवेकद्वेषें अहंकारु। पोषूनि तैसा ॥१२७८॥
स्वदेहा नाम अर्जुनु। परदेहा नाम स्वजनु। संग्रामा नाम मलिनु। पापाचारु ॥१२७९॥
इया मती आपुलिया। तिघां तीन नामें ययां। ठेऊनियां धनंजया। न झुंजें ऐसा ॥१२८०॥
जीवामाजीं निष्टंकु। करिसी जो आत्यंतिकु। तो वायां धाडील नैसर्गिकु। स्वभावोचि तुझा ॥१२८१॥

आणि मी अर्जुन हे आत्मिक। ययां वधु करणें हें पातक। हे मायावांचूनि तात्त्विक। कांहीं आहे ? ॥१२८२॥
आधीं जुंझार तुवां होआवें। मग झुंजावया शस्त्र घेयावें। कां न जुंझावया करावें। देवांगण ॥१२८३॥
म्हणौनि न झुंजणें। म्हणसी तें वायाणें। ना मानूं लोकपणें। लोकदृष्टीही ॥१२८४॥
तऱ्ही न झुंजें ऐसें। निष्टंकीसी जें मानसें। तें प्रकृति अनारिसें। करवीलचि ॥१२८५॥

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोपि तत् ॥६०॥

पैं पूर्वे वाहतां पाणी। पव्हिजे पश्चिमेचे वाहणीं। तरी आग्रहोचि उरे तें आणी। आपुलिया लेखा ॥१२८६॥
कां साळीचा कणु म्हणे। मी नुगवें साळीपणें। तरी आहे आन करणें। स्वभावासी ? ॥१२८७॥
तैसा क्षात्रंस्कारसिद्धा। प्रकृती घडिलासी प्रबुद्धा। आता नुठी म्हणसी हा धांदा। परी उठवीजसीचि तूं ॥१२८८॥
पैं शौर्य तेज दक्षता। एवमादिक पंडुसुता . गुण दिधले जन्मतां। प्रकृती तुज ॥१२८९॥
तरी तयाचिया समवाया- । अनुरूप धनंजया। न करितां उगलियां। नयेल असों ॥१२९०॥
म्हणौनियां तिहीं गुणीं। बांधिलासि तूं कोदंडपाणी। त्रिशुद्धी निघसी वाहणीं। क्षात्राचिया ॥१२९१॥
ना हें आपुलें जन्ममूळ। न विचारीतचि केवळ। न झुंजें ऐसें अढळ। व्रत जरी घेसी ॥१२९२॥
तरी बांधोनि हात पाये। जो रथीं घातला होये। तो न चाले तरी जाये। दिगंता जेवीं ॥१२९३॥
तैसा तूं आपुलियाकडुनी। मीं कांहींच न करीं म्हणौनि। ठासी परी भरंवसेनि। तूंचि करिसी ॥१२९४॥
उत्तरु वैराटींचा राजा। पळतां तूं कां निघालासी झुंजा ? । हा क्षात्रस्वभावो तुझा। झुंजवील तुज ॥१२९५॥
महावीर अकरा अक्षौहिणी। तुवां येकें नागविले रणांगणीं। तो स्वभावो कोदंडपाणी। झुंजवील तूंतें ॥१२९६॥
हां गा रोगु कायी रोगिया। आवडे दरिद्र दरिद्रिया ? । परी भोगविजे बळिया। अदृष्टें जेणें ॥१२९७॥
तें अदृष्ट अनारिसें। न करील ईश्वरवशें। तो ईश्वरुही असे . हृदयीं तुझ्या ॥१२९८॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥६१॥

सर्व भूतांच्या अंतरीं। हृदय महाअंबरीं। चिद्‌वृत्तीच्या सहस्त्रकरीं। उदयला असे जो ॥१२९९॥
अवस्थात्रय तिन्हीं लोक। प्रकाशूनि अशेख। अन्यथादृष्टि पांथिक। चेवविले ॥१३००॥
वेद्योदकाच्या सरोवरीं। फांकतां विषयकल्हारीं। इंद्रियषट्पदा चारी। जीवभ्रमरातें ॥१३०१॥
असो रूपक हें तो ईश्वरु। सकल भूतांचा अहंकारु। पांघरोनि निरंतरु। उल्हासत असे ॥१३०२॥
स्वमायेचें आडवस्त्र। लावूनि एकला खेळवी सूत्र। बाहेरी नटी छायाचित्र। चौऱ्याशीं लक्ष ॥१३०३॥
तया ब्रह्मादिकीटांता। अशेषांही भूतजातां। देहाकार योग्यता। पाहोनि दावी ॥१३०४॥
तेथ जें देह जयापुढें। अनुरूपपणें मांडे। तें भूत तया आरूढे। हें मी म्हणौनि ॥१३०५॥
सूत सूतें गुंतलें। तृण तृणचि बांधलें। कां आत्मबिंबा घेतलें। बाळकें जळीं ॥१३०६॥
तयापरी देहाकारें। आपणपेंचि दुसरें। देखोनि जीव आविष्करें। आत्मबुद्धि ॥१३०७॥
ऐसेनि शरीराकारीं। यंत्रीं भूतें अवधारीं। वाहूनि हालवी दोरी। प्राचीनाची ॥१३०८॥
तेथ जया जें कर्मसूत्र। मांडूनि ठेविलें स्वतंत्र। तें तिये गती पात्र। होंचि लागे ॥१३०९॥
किंबहुना धनुर्धरा। भूतांतें स्वर्गसंसारा . - माजीं भोवंडी तृणें वारा। आकाशीं जैसा ॥१३१०॥
भ्रामकाचेनि संगें। जैसें लोहो वेढा रिगे। तैसीं ईश्वरसत्तायोगें। चेष्टती भूतें ॥१३११॥
जैसे चेष्टा आपुलिया। समुद्रादिक धनंजया। चेष्टती चंद्राचिया। सन्निधी येकीं ॥१३१२॥
तया सिंधू भरितें दाटें। सोमकांता पाझरु फुटे। कुमुदांचकोरांचा फिटे। संकोचु तो ॥१३१३॥
तैसीं बीजप्रकृतिवशें। अनेकें भूतें येकें ईशें। चेष्टवीजती तो असे . तुझ्या हृदयीं ॥१३१४॥

अर्जुनपण न घेतां। मी ऐसें जें पंडुसुता। उठतसे तें तत्वता। तयाचें रूप ॥१३१५॥
यालागीं तो प्रकृतीतें। प्रवर्तवील हें निरुतें। आणि तें झुंजवील तूंतें। न झुंजशी जऱ्ही ॥१३१६॥
म्हणौनि ईश्वर गोसावी। तेणें प्रकृती हे नेमावी। तिया सुखें राबवावीं। इंद्रियें आपुलीं ॥१३१७॥
तूं करणें न करणें दोन्हीं। लाऊनि प्रकृतीच्या मानीं। प्रकृतीही कां अधीनी। हृदयस्था जया ॥१३१८॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥६२॥
तया अहं वाचा चित्त आंग। देऊनिया शरण रिग। महोदधी कां गांग। रिगालें जैसें ॥१३१९॥
मग तयाचेनि प्रसादें। सर्वोपशांतिप्रमदे। कांतु होऊनिया स्वानंदें। स्वरूपींचि रमसी ॥१३२०॥
संभूति जेणें संभवे। विश्रांति जेथें विसंवे। अनुभूतिही अनुभवे। अनुभवा जया ॥१३२१॥
तिये निजात्मपदींचा रावो। होऊनि ठाकसी अव्यवो। म्हणे लक्ष्मीनाहो। पार्था तूं गा ॥१३२२॥
इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥६३॥
हें गीता नाम विख्यात। सर्ववाङ्गमयाचें मथित। आत्मा जेणें हस्तगत। रत्न होय ॥१३२३॥
ज्ञान ऐसिया रूढी। वेदांतीं जयाची प्रौढी। वानितां कीर्ति चोखडी। पातली जगीं ॥१३२४॥
बुद्ध्यादिकें डोळसें। हें जयाचें कां कडवसें। मी सर्वद्रष्टाही दिसें। पाहला जया ॥१३२५॥
तें हें गा आत्मज्ञान। मज गोप्याचेंही गुप्त धन। परी तूं म्हणौनि आन। केवीं करूं ? ॥१३२६॥
याकारणें गा पांडवा। आम्हीं आपुला हा गुह्य ठेवा। तुज दिधला कणवा। जाकळिलेपणें ॥१३२७॥
जैसी भुलली वोरसें। माय बोले बाळा दोषें। प्रीति ही परी तैसें। न करूंचि हो ॥१३२८॥
येथ आकाश आणि गाळिजे। अमृताही साली फेडिजे। कां दिव्याकरवीं करविजे। दिव्य जैसे ॥१३२९॥
जयाचेनि अंगप्रकाशें। पाताळींचा परमाणु दिसे। तया सूर्याहि का जैसे। अंजन सूदलें ॥१३३०॥
तैसें सर्वज्ञेंही मियां। सर्वही निर्धारूनियां। निकें होय तें धनंजया। सांगितलें तुज ॥१३३१॥
आतां तूं ययावरी। निकें हें निर्धारीं। निर्धारूनि करीं। आवडे तैसें ॥१३३२॥
यया देवाचिया बोला। अर्जुनु उगाचि ठेला। तेथ देवो म्हणती भला। अवंचकु होसी ॥१३३३॥
वाढतयापुढें भुकेला। उपरोधें म्हणे मी धाला। तैं तोचि पीडे आपुला। आणि दोषुही तया ॥१३३४॥
तैसा सर्वज्ञु श्रीगुरु। भेटलिया आत्मनिर्धारु। न पुसिजे जैं आभारु। धरूनियां ॥१३३५॥
तैं आपणपेंचि वंचे। आणि पापही वंचनाचें। आपणयाचि साचें। चुकविलें तेणें ॥१३३६॥
पैं उगेपणा तुझिया। हा अभिप्रावो कीं धनंजया। जें एकवेळ आवांकुनियां। सांगावें ज्ञान ॥१३३७॥
तेथ पार्थु म्हणे दातारा। भलें जाणसी माझिया अंतरा। हें म्हणों तरी दुसरा। जाणता असे काई ? ॥१३३८॥
येर ज्ञेय हें जी आघवें। तूं ज्ञाता एकचि स्वभावें। मा सूर्यु म्हणौनि वानावें। सूर्यातें काई ? ॥१३३९॥
या बोला श्रीकृष्णें। म्हणितलें काय येणें। हेंचि थोडें गा वानणें। जें बुझतासि तूं ॥१३४०॥
सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥६४॥
तरी अवधान पघळ। करूनियाम आणिक येक वेळ। वाक्य माझें निर्मळ। अवधारीं पां ॥१३४१॥
हें वाच्य म्हणौनि बोलिजे। कां श्राव्य मग आयिकिजे। तैसें नव्हें परी तुझें। भाग्य बरवें ॥१३४२॥
कूर्मीचिया पिलियां। दिठी पान्हा ये धनंजया। कां आकाश वाहे बापिया। घरींचें पाणी ॥१३४३॥
जो व्यवहारु जेथ न घडे। तयाचें फळचि तेथ जोडे। काय दैवें न सांपडे। सानुकूळें ? ॥१३४४॥
येऱ्हवीं द्वैताची वारी। सारूनि ऐक्याच्या परीवरीं। भोगिजे तें अवधारीं। रहस्य हें ॥१३४५॥

आणि निरुपचारा प्रेमा। विषय होय जें प्रियोत्तमा। तें दुजें नव्हे कीं आत्मा। ऐसेंचि जाणावें ॥१३४६॥
आरिसाचिया देखिलया। गोमटें कीजे धनंजया। तें तया नोहे आपणयां। लागीं जैसें ॥१३४७॥
तैसें पार्था तुझेनि मिषें। मी बोलें आपणयाचि उद्देशें। माझ्या तुझ्या ठाईं असे . मीतूंपण गा ॥१३४८॥
म्हणौनि जिव्हारींचें गुज। सांगतसे जीवासी तुज। हें अनन्यगतीचें मज। आथी व्यसन ॥१३४९॥
पैम जळा आपणपें देतां। लवण भुललें पंडुसुता। कीं आघवें तयाचें होतां। न लजेचि तें ॥१३५०॥
तैसा तूं माझ्या ठाईं। राखों नेणसीचि कांहीं। तरी आतां तुज काई। गोप्य मी करूं ? ॥१३५१॥
म्हणौनि आघवींचि गूढें। जें पाऊनि अति उघडें। तें गोप्य माझें चोखडें। वाक्य आइक ॥१३५२॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥६५॥

तरी बाह्य आणि अंतरा। आपुलिया सर्व व्यापारा। मज व्यापकातें वीरा। विषयो करीं ॥१३५३॥
आघवा आंगीं जैसा। वायु मिळोनि आहे आकाशा। तूं सर्व कर्मीं तैसा। मजसींचि आस ॥१३५४॥
किंबहुना आपुलें मन। करीं माझें एकायतन। माझेनि श्रवणें कान। भरूनि घालीं ॥१३५५॥
आत्मज्ञानें चोखडीं। संत जे माझीं रूपडीं। तेथ दृष्टि पडो आवडी। कामिनी जैसी ॥१३५६॥
मीं सर्व वस्तीचें वसौटें। माझीं नामें जियें चोखटें। तियें जियावया वाटे। वाचेचिये लावीं ॥१३५७॥
हातांचें करणें। कां पायांचें चालणें। तें होय मजकारणें। तैसें करीं ॥१३५८॥
आपुला अथवा परावा। ठायीं उपकरसी पांडवा। तेणें यज्ञें होईं बरवा। याज्ञिकु माझा ॥१३५९॥
हें एकैक शिकऊं काई। पैं सेवकें आपुल्या ठाईं। उरूनि येर सर्वही। मी सेव्यचि करीं ॥१३६०॥
तेथ जाऊनिया भूतद्वेषु। सर्वत्र नमवैन मीचि एकु। ऐसेनि आश्रयो आत्यंतिकु। लाहसी तूं माझा ॥१३६१॥
मग भरलेया जगाआंतु। जाऊनि तिजयाची मातु। होऊनि ठायील एकांतु। आम्हां तुम्हां ॥१३६२॥
तेव्हां भलतिये आवस्थे। मी तूतें तूं मातें। भोगिसी ऐसें आइतें। वाढेल सुख ॥१३६३॥
आणि तिजें आडळ करितें। निमालें अर्जुना जेथें। तें मीचि म्हणौनि तूं मातें। पावसी शेखीं ॥१३६४॥
जैसी जळींची प्रतिभा। जळनाशीं बिंबा। येतां गाभागोभा। कांहीं आहे ? ॥१३६५॥
पैं पवनु अंबरा। कां कल्लोळु सागरा। मिळतां आडवारा। कोणाचा गा ? ॥१३६६॥
म्हणौनि तूं आणि आम्हीं। हें दिसताहे देहधर्मीं। मग ययाच्या विरामीं। मीचि होसी ॥१३६७॥
यया बोलामाझारीं। होय नव्हे झणें करीं। येथ आन आथी तरी। तुझीचि आण ॥१३६८॥
पैं तुझी आण वाहणें। हें आत्मलिंगातें शिवणें। प्रीतीची जाति लाजणें। आठवों नेदी ॥१३६९॥
येऱ्हवीं वेद्यु निष्प्रपंचु। जेणें विश्वाभासु हा साचु। आज्ञेचा नटनाचु। काळातें जिणें ॥१३७०॥
तो देवो मी सत्यसंकल्पु। आणि जगाच्या हितीं बापु। मा आणेचा आक्षेपु। कां करावा ? ॥१३७१॥
परी अर्जुना तुझेनि वेधें। मियां देवपणाचीं बिरुदें। सांडिलीं गा मी हे आधें . सगळेनि तुवां ॥१३७२॥
पैं काजा आपुलिया। रावो आपुली आपणया। आण वाहे धनंजया। तैसें हें कीं ॥१३७३॥
तेथ अर्जुनु म्हणे देवें। अचाट हें न बोलावें। जे आमचें काज नांवें। तुझेनि एके ॥१३७४॥
यावरी सांगों बैससी . कां सांगतां भाषही देसी। या तुझिया विनोदासी। पारु आहे जी ? ॥१३७५॥
कमळवना विकाशु। करी रवीचा एक अंशु . तेथ आघवाचि प्रकाशु। नित्य दे तो ॥१३७६॥
पृथ्वी निवऊनि सागर। भरीजती येवढें थोर। वर्षे तेथ मिषांतर। चातकु कीं ॥१३७७॥
म्हणौनि औदार्या तुझेया। मज निमित्त ना म्हणावया। प्राप्ति असे दानीराया। कृपानिधी ॥१३७८॥
तंव देवो म्हणती राहें। या बोलाचा प्रस्तावो नोहे। पैं मातें पावसी उपायें . साचचि येणें ॥१३७९॥
सैंधव सिंधू पडलिया। जो क्षणु धनंजया। तेणें विरेचि कीं उरावया। कारण कायी ? ॥१३८०॥

तैसें सर्वत्र मातें भजतां। सर्व मी होतां अहंता। निःशेष जाऊनि तत्वता। मीचि होसी ॥१३८१॥
एवं माझिये प्राप्तीवरी। कर्मालागोनि अवधारीं। दाविली तुज उजरी। उपायांची ॥१३८२॥
जे आधीं तंव पंडुसुता। सर्व कर्मे मज अर्पितां। सर्वत्र प्रसन्नता। लाहिजे माझी ॥१३८३॥
पाठीं माझ्या इये प्रसादीं। माझें ज्ञान जाय सिद्धी। तेणें मिसळिजे त्रिशुद्धी। स्वरूपीं माझ्या ॥१३८४॥
मग पार्था तिये ठायीं। साध्य साधन होय नाहीं। किंबहुना तुज कांहीं। उरेचि ना ॥१३८५॥
तरी सर्व कर्मे आपलीं। तुवां सर्वदा मज अर्पिलीं। तेणें प्रसन्नता लाधली। आजि हे माझी ॥१३८६॥
म्हणौनि येणें प्रसादबळें। नव्हे झुंजाचेनि आडळें। न ठाकेचि येकवेळे। भाळलों तुज ॥१३८७॥
जेणें सप्रपंच अज्ञान जाये। एकु मी गोचरु होये। तें उपपत्तीचेनि उपायें। गीतारूप हें ॥१३८८॥
मियां ज्ञान तुज आपुलें। नानापरी उपदेशिलें। येणें अज्ञानजात सांडी वियालें। धर्माधर्म जें ॥१३८९॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्ष्ययिष्यामि मा शुचः ॥६६॥

आशा जैसी दुःखातें। व्यालीं निंदा दुरितें। हे असो जैसें दैन्यातें। दुर्भगत्व ॥१३९०॥
तैसें स्वर्गनरकसूचक। अज्ञान व्यालें धर्मादिक। तें सांडूनि घालीं अशेख। ज्ञानें येणें ॥१३९१॥
हातीं घेऊन तो दोरु। सांडिजे जैसा सर्पाकारु। कां निद्रात्यागें घराचारु। स्वप्नींचा जैसा ॥१३९२॥
नाना सांडिलेनि कवळें। चंद्रींचें धुये पिंवळें। व्याधित्यागें कडुवाळें- । पण मुखाचें ॥१३९३॥
अगा दिवसा पाठीं देउनी। मृगजळ घापे त्यजुनी। कां काष्ठत्यागें वन्ही। त्यजिजे जैसा ॥१३९४॥
तैसें धर्माधर्माचें टवाळ। दावी अज्ञान जें कां मूळ। तें त्यजूनि त्यजीं सकळ। धर्मजात ॥१३९५॥
मग अज्ञान निमालिया। मीचि येकु असे अपैसया। सनिद्र स्वप्न गेलया। आपणपें जैसें ॥१३९६॥
तैसा मी एकवांचूनि कांहीं। मग भिन्नाभिन्न आन नाहीं। सोऽहंबोधें तयाच्या ठायीं। अनन्यु होय ॥१३९७॥
पैं ं आपुलेनि भेदेंविण। माझें जाणिजे जें एकपण। तयाचि नांव शरण। मज येएणें गा ॥१३९८॥
जैसें घटाचेनि नाशें। गगनीं गगन प्रवेशे। मज शरण येणें तैसें। ऐक्य करी ॥१३९९॥
सुवर्णमणि सोनया। ये कल्लोळु जैसा पाणिया। तैसा मज धनंजया। शरण ये तूं ॥१४००॥
वांचूनि सागराच्या पोटीं। वडवानळु शरण आला किरीटी। जाळूनि ठाके तया गोठी। वाळूनि दे पां ॥१४०१॥
मजही शरण रिघिजे। आणि जीवत्वेंचि असिजे। धिग बोली यिया न लजे। प्रज्ञा केवीं ॥१४०२॥
अगा प्राकृताही राया। आंगीं पडे जें धनंजया। तें दासिरूंहि कीं तया। समान होय ॥१४०३॥
मा मी विश्वेश्वरु भेटे। आणि जीवग्रंथी न सुटे। हे बोल नको वोखटें। कानीं लॐ ॥१४०४॥
म्हणौनि मी होऊनि मातें। सेवणें आहे आयितें। तें करीं हातां येतें। ज्ञानें येणें ॥१४०५॥
मग ताकौनियां काढिलें। लोणी मागौतें ताकीं घातलें। परी न घेपेचि कांहीं ं केलें। तेणें जेवीं ॥१४०६॥
तैसें अद्वयत्वें मज। शरण रिघालिया तुज। धर्माधर्म हे सहज। लागतील ना ॥१४०७॥
लोह उभें खाय माती। तें परीसाचिये संगतीं। सोनें जालया पुढती। न शिविजे मळें ॥१४०८॥
हें असो काष्ठापासोनि। मथूनि घेतलिया वन्ही। मग काष्ठेंही कोंडोनी। न ठके जैसा ॥१४०९॥
अर्जुना काय दिनकरु। देखत आहे अंधारु। कीं प्रबोधीं होय गोचरु। स्वप्नभ्रमु ॥१४१०॥
तैसें मजसी येकवटलेया। मी सर्वरूप वांचूनियां। आन कांहीं उरावया। कारण असे ? ॥१४११॥
म्हणौनि तयाचें कांहीं। चिंतीं न आपुल्या ठायीं। तुझें पापपुण्य पाहीं। मीचि होईन ॥१४१२॥
तेथ सर्वबंधलक्षणें। पापें उरावें दुजेपणें। तें माझ्या बोधीं वायाणें। होऊनि जाईल ॥१४१३॥
जळीं पडिलिया लवणा। सर्वही जळ होईल विचक्षणा। तुज मी अनन्यशरणा। होईन तैसा ॥१४१४॥
येतुलेनि आपैसया। सुटलाचि आहसी धनंजया। घेईं मज प्रकाशोनियां। सोडवीन तूंतें ॥१४१५॥

याकारणें पुढती। हे आधी न वाहे चित्तीं। मज एकासि ये सुमती। जाणोनि शरण ॥१४१६॥
ऐसें सर्वरूपरूपसें। सर्वदृष्टिडोळसें। सर्वदेशनिवासें। बोलिलें श्रीकृष्णें ॥१४१७॥
मग सांवळा सकंकणु। बाहु पसरोनि दक्षिणु। आलिंगिला स्वशरणु। भक्तराजु तो ॥१४१८॥
न पवतां जयातें। काखे सूनि बुद्धीतें। बोंलणें मागौतें। वोसरलें ॥१४१९॥
ऐसें जें कांहीं येक। बोला बुद्धीसिही अटक। तें द्यावया मिष। खेवाचें केलें ॥१४२०॥
हृदया हृदय येक जाले। ये हृदयींचें ते हृदयीं घातलें। द्वैत न मोडितां केलें . आपणाऐसें अर्जुना ॥१४२१॥
दीपें दीप लाविला। तैसा परीष्वंगु तो जाला। द्वैत न मोडितां केला। आपणपें पार्थु ॥१४२२॥
तेव्हां सुखाचा मग तया। पूरु आला जो धनंजया। तेथ वाडु तर्‍हीं बुडोनियां ॥ठेला देवो ॥१४२३॥
सिंधु सिंधूतें पावों जाये। तें पावणें ठाके दुणा होये। वरी रिगे पुरवणिये। आकाशही ॥१४२४॥
तैसें तयां दोघांचें मिळणें। दोघां नावरे जाणावें कवणें। किंबहुना श्रीनारायणें। विश्व कोंदलें ॥१४२५॥
एवं वेदाचें मूळसूत्र। सर्वाधिकारैकपवित्र। श्रीकृष्णें गीताशास्त्र। प्रकट केलें ॥१४२६॥
येथ गीता मूळ वेदां। ऐसें केवीं पां आलें बोधा। हें म्हणाल तरी प्रसिद्धा। उपपत्ति सांगों ॥१४२७॥
तरी जयाच्या निःश्वासीं। जन्म झाले वेदराशी। तो सत्यप्रतिज्ञ पैजेसीं। बोलला स्वमुखें ॥१४२८॥
म्हणौनि वेदां मूळभूत। गीता म्हणों हें होय उचित। आणिकही येकी येथ। उपपत्ति असे ॥१४२९॥
जें न नशतु स्वरूपें। जयाचा विस्तारु जेथ लपे। तें तयांचें म्हणिपे। बीज जगीं ॥१४३०॥
तरी कांडत्रयात्मकु। शब्दराशी अशेखु। गीतेमाजीं असे रुखु। बीजीं जैसा ॥१४३१॥
म्हणौनि वेदांचें बीज। श्रीगीता होय हें मज। गमे आणि सहज। दिसतही आहे ॥१४३२॥
जे वेदांचे तिन्ही भाग। गीते उमटले असती चांग। भूषणरत्नीं सर्वांग। शोभलें जैसें ॥१४३३॥
तियेचि कर्मादिकें तिन्ही। कांडें कोणकोणे स्थानीं। गीते आहाति तें नयनीं। दाखऊं आईक ॥१४३४॥
तरी पहिला जो अध्यावो। तो शास्त्रप्रवृत्तिप्रस्तावो। द्वितीयीं साङ्ख्यसद्भावो। प्रकाशिला ॥१४३५॥
मोक्षदानीं स्वतंत्र। ज्ञानप्रधान हें शास्त्र। येतुलालें दुजीं सूत्र। उभारिलें ॥१४३६॥
मग अज्ञानें बांधलेयां। मोक्षपदीं बैसावया। साधनारंभु तो तृतीया- । ध्यायीं बोलिला ॥. १४३७॥
जे देहाभिमान बंधें। सांडूनि काम्यनिषिद्धें। विहित परी अप्रमादें। अनुष्ठावें ॥१४३८॥
ऐसेनि सद्भावें कर्म करावें। हा तिजा अध्यावो जो देवें। निर्णय केला तें जाणावें। कर्मकांड येथ ॥१४३९॥
आणि तेंचि नित्यादिक। अज्ञानाचें आवश्यक। आचरतां मोंचक। केवीं होय पां ॥१४४०॥
ऐसी अपेक्षा जालिया। बद्ध मुमुक्षुते आलिया। देवें ब्रह्मार्पणत्वें क्रिया। सांगितली ॥१४४१॥
जे देहवाचामानसें। विहित निपजे जें जैसें। तें एक ईश्वरोद्देशें। कीजे म्हणितलें ॥१४४२॥
हेंचि ईश्वरीं कर्मयोगें। भजनकथनाचें खागें। आदरिलें शेषभागें . चतुर्थाचेनी ॥१४४३॥
तें विश्वरूप अकरावा। अध्यावो संपे जंव आघवा. तंव कर्मे ईशु भजावा। हें जें बोलिलें ॥१४४४॥
तें अष्टाध्यायीं उघड। जाण येथें देवताकांड। शास्त्र सांगतसे आड। मोडूनि बोलें ॥१४४५॥
आणि तेणेंचि ईशप्रसादें। श्रीगुरुसंप्रदायलब्धें। साच ज्ञान उद्बोधे। कोंवळें जें ॥१४४६॥
तें अद्वेष्टादिप्रभृतिकीं। अथवा अमानित्वादिकीं। वाढविजे म्हणौनि लेखी। बारावा गणूं ॥१४४७॥
तो बारावा अध्याय आदी। आणि पंधरावा अवधी। ज्ञानफळपाकसिद्धी। निरूपणासीं ॥१४४८॥
म्हणौनि चहूंही इहीं। ऊर्ध्वमूळांतीं अध्यायीं। ज्ञानकांड ये ठायीं। निरूपिजे ॥१४४९॥
एवं कांडत्रयनिरूपणी। श्रुतीचि हे कोडिसवाणी। गीतापद्यरत्नांचीं लेणीं। लेयिली आहे ॥१४५०॥
हें असो कांडत्रयात्मक। श्रुति मोक्षरूप फळ येक। बोभावे जें आवश्यक। ठाकावें म्हणौनि ॥१४५१॥
तयाचेनि साधन ज्ञानेंसीं। वैर करी जो प्रतिदिवशीं। तो अज्ञानवर्ग षोडशीं। प्रतिपादिजे ॥१४५२॥

तोचि शास्त्राचा बोळावा। घेवोनि वैरी जिणावा। हा निरोपु तो सतरावा। अध्याय येथ ॥१४५३॥
ऐसा प्रथमालागोनि। सतरावा लाणी करूनी। आत्मनिश्वास विवरूनी। दाविला देवें ॥१४५४॥
तया अर्थजातां अशेषां। केला तात्पर्याचा आवांका। तो हा अठरावा देखा। कलशाध्यायो ॥१४५५॥
एवं सकळसंख्यासिद्‌धु। श्रीभागवद्गीता प्रबंधु। हा औदार्यें आगळा वेदु। मूर्तु जाण ॥१४५६॥
वेदु संपन्नु होय ठाईं। परी कृपणु ऐसा आनु नाहीं। जे कानीं लागला तिहीं। वर्णांच्याचि ॥१४५७॥
येरां भवव्याथा ठेलियां। स्त्रीशूद्रादिकां प्राणियां। अनवसरू मांडूनियां। राहिला आहे ॥१४५८॥
तरी मज पाहतां तें मागील उणें। फेडावया गीतापणें। वेदु वेठला भलतेणें। सेव्य होआवया ॥१४५९॥
ना हे अर्थु रिगोनि मनीं। श्रवणें लागोनि कानीं। जपमिषें वदनीं। वसोनियां ॥१४६०॥
ये गीतेचा पाठु जो जाणे। तयाचेनि सांगातीपणें। गीता लिहोनि वाहाणें। पुस्तकमिषें ॥१४६१॥
ऐसैसा मिसकटां। संसाराचा चोहटा। गवादी घालीत चोखटा। मोक्षसुखाची ॥१४६२॥
परी आकाशीं वसावया। पृथ्वीवरी बैसावया। रविदीप्ति राहाटावया। आवारु नभ ॥१४६३॥
तेवीं उत्तम अधम ऐसें। सेवितां कवणातेंही न पुसे। कैवल्यदानें सरिसें। निववीत जगा ॥१४६४॥
यालागीं मागिली कुटी। भ्याला वेदु गीतेच्या पोटीं। रिगाला आतां गोमटी। कीर्ति पातला ॥१४६५॥
म्हणौनि वेदाची सुसेव्यता। ते हे मूर्त जाण श्रीगीता। श्रीकृष्णें पंडुसुता। उपदेशिली ॥१४६६॥
परी वत्साचेनि वोरसें। दुभतें होय घरोद्देशें। जालें पांडवाचेनि मिषें। जगदुद्धरण ॥१४६७॥
चातकाचियें कणवें। मेघु पाणियेसिं धांवे। तेथ चराचर आघवें। निवालें जेवीं ॥१४६८॥
कां अनन्यगतिकमळा- । लागीं सूर्य ये वेळोवेळां। कीं सुखिया होईजे डोळां। त्रिभुवनींचा ॥१४६९॥
तैसें अर्जुनाचेनि व्याजें। गीता प्रकाशूनि श्रीराजें। संसारायेवढें थोर ओझें। फेडिलें जगाचें ॥१४७०॥
सर्वशास्त्ररत्नदीप्ती। उजळिता हा त्रिजगतीं। सूर्यु नव्हें लक्ष्मीपती। वक्त्राकाशींचा ॥१४७१॥
बाप कुळ तें पवित्र। जेथिंचा पार्थु या ज्ञाना पात्र। जेणें गीता केलें शास्त्र। आवारु जगा ॥१४७२॥
हें असो मग तेणें। सद्‌गुरु श्रीकृष्णें। पार्थाचें मिसळणें। आणिलें द्वैता ॥१४७३॥
पाठीं म्हणतसे पांडवा। शास्त्र हें मानलें कीं जीवा। तेथ येरु म्हणे देवा। आपुलिया कृपा ॥१४७४॥
तरी निधान जोडावया। भाग्य घडे गा धनंजया। परी जोडिलें भोगावया . विपायें होय ॥१४७५॥
पैं क्षीरसागरायेवढें। अविरजी दुधाचें भांडें। सुरां असुरां केवढें। मथितां जालें ॥१४७६॥
तें सायासही फळा आलें। जें अमृतही डोळां देखिलें। परी वरिचिली चुकलें। जतनेतें ॥१४७७॥
तेथ अमरत्वा वोगरिलें। तें मरणाचिलागीं जालें। भोगों नेणतां जोडलें। ऐसें आहे ॥१४७८॥
नहुषु स्वर्गाधिपति जाहला। परी राहाटीं भांबावला। तो भुजंगत्व पावला। नेणसी कायी ? ॥१४७९॥
म्हणौनि बहुत पुण्य तुवां। केलें तेणें धनंजया। आजि शास्त्रराजा इया। जालासि विषयो ॥१४८०॥
तरी ययाचि शास्त्राचेनि। संप्रदायें पांघुरौनि। शास्त्रार्थ हा निकेनि। अनुष्ठीं हो ॥१४८१॥
येऱ्हवीं अमृतमंथना- । सारिखें होईल अर्जुना। जरी रिघसी अनुष्ठाना। संप्रदायेंवीण ॥१४८२॥
गाय धड जोडे गोमटी। ते तैंचि पिवों ये किरीटी। जैं जाणिजे हातवटी। सांजवणीची ॥१४८३॥
तैसा श्रीगुरु प्रसन्न होये। शिष्य विद्याही कीर लाहे। परी ते फळे संप्रदायें। उपासिलिया ॥१४८४॥
म्हणौनि शास्त्रीं जो इये। उचितु संप्रदायो आहे। तो ऐक आतां बहुवें। आदरेंसीं ॥१४८५॥

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥६७॥

तरी तुवां हें जें पार्था। गीताशास्त्र लाधलें आस्था। तें तपोहीना सर्वथा। सांगावें ना हो ॥. १४८६॥
अथवा तापसुही जाला . परी गुरूभक्तीं जो ढिला। तो वेदीं अंत्यजु वाळिळा। तैसा वाळीं ॥१४८७॥

नातरी पुरोडाशु जैसा। न घापे वृद्ध तरी वायसा। गीता नेदी तैसी तापसा। गुरुभक्तिहीना ॥१४८८॥
कां तपही जोडे देहीं। भजे गुरुदेवांच्या ठायीं। परी आकर्णनीं नाहीं। चाड जरी ॥१४८९॥
तरी मागील दोन्हीं आंगीं। उत्तम होय कीर जगीं। परी या श्रवणालागीं। योग्यु नोहे ॥१४९०॥
मुक्ताफळ भलतैसें। हो परी मुख नसे। तंव गुण प्रवेशे। तेथ कायी ? ॥१४९१॥
सागरु गंभीरु होये। हें कोण ना म्हणत आहे। परी वृष्टि वायां जाये। जाली तेथ ॥१४९२॥
धालिया दिव्यान्न सुवावें। मग जें वायां धाडावें। तें आर्तीं कां न करावें। उदारपण ॥१४९३॥
म्हणौनि योग्य भलतैसें। होतु परी चाड नसे। तरी झणें वानिवसें। देसी हें तयां ॥१४९४॥
रूपाचा सुजाणु डोळा। वोढवूं ये कायि परिमळा ? । जेथ जें माने ते फळा। तेथचि ते गा ॥१४९५॥
म्हणौनि तपी भक्ति। पाहावे ते सुभद्रापती। परी शास्त्रश्रवणीं अनासक्ती। वाळावेचि ते ॥१४९६॥
नातरी तपभक्ति। होऊनि श्रवणीं आर्ति। आथी ऐसीही आयती। देखसी जरी ॥१४९७॥
तरी गीताशास्त्रनिर्मिता। जो मी सकळलोकशास्ता। तया मातें सामान्यता। बोलेल जो ॥१४९८॥
माझ्या सज्जनेंसिं मातें। पैशुन्याचेनि हातें। येक आहाती तयांतें। योग्य न म्हण ॥१४९९॥
तयांची येर आघवी। सामग्री ऐसी जाणावी। दीपेंवीण ठाणदिवी। रात्रीची जैसी ॥१५००॥
अंग गोरें आणि तरुणें। वरी लेईलें आहे लेणें। परी येकलेनि प्राणें। सांडिलें जेवीं ॥१५०१॥
सोनयाचें सुंदर। निर्वाळिलें होय घर। परी सर्पांगना द्वार। रुंधलें आहे ॥१५०२॥
निपजे दिव्यान्न चोखट। परी माजीं काळकूट। असो मैत्री कपट- । गर्भिणी जैसी ॥१५०३॥
तैसी तपभक्तिमेधा। तयाची जाण प्रबुद्धा। जो माझयांची कां निंदा। माझीचि करी ॥१५०४॥
याकारणें धनंजया। तो भक्तु मेधावीं तपिया। तरी नको बापा इया। शास्त्रा आतळों देवों ॥१५०५॥
काय बहु बोलों निंदका। योग्य स्रष्टयाहीसारिखा। गीता हे कवतिका- । लागींही नेदीं ॥१५०६॥
म्हणौनि तपाचा धनुर्धरा। तळीं दाटोनि गाडोरा। वरी गुरुभक्तीचा पुरा। प्रासादु जो जाला ॥१५०७॥
आणि श्रवणेच्छेचा पुढां। दारवंटा सदा उघडा। वरी कलशु चोखडा। अनिंदारत्नांचा ॥१५०८॥

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥६८॥

ऐशा भक्तालयीं चोखटीं। गीतारत्नेश्वरु हा प्रतिष्ठीं। मग माझिया संवसाटी। तुकसी जगीं ॥१५०९॥
कां जे एकाक्षरपणेंसीं। त्रिमात्रकेचिये कुशीं। प्रणवु होतां गर्भवासीं। सांकडला ॥१५१०॥
तो गीतेचिया बाहाळीं। वेदबीज गेलें पाहाळीं। कीं गायत्री फुलींफळीं। श्लोकांच्या आली ॥१५११॥
ते हे मंत्ररहय गीता। मेळवी जो माझिया भक्ता। अनन्यजीवना माता। बाळका जैसी ॥१५१२॥
तैसी भक्तां गीतेसीं। भेटी करी जो आदरेंसीं। तो देहापाठीं मजसीं। येकचि होय ॥१५१३॥

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥६९॥

आणि देहाचेंही लेणें। लेऊनि वेगळेपणें। असे तंव जीवेंप्राणें। तोचि पढिये ॥१५१४॥
ज्ञानियां कर्मठां तापसां। यया खुणेचिया माणुसां- । माजीं तो येकु गा जैसा। पढिये मज ॥१५१५॥
तैसा भूतळीं आघवा। आन न देखे पांडवा। जो गीता सांगें मेळावा। भक्तजनांचा ॥१५१६॥
मज ईश्वराचेनि लोभें। हे गीता पढतां अक्षोभें। जो मंडन होय सभे। संतांचिये ॥१५१७॥
नेत्रपल्लवीं रोमांचितु। मंदानिळें कांपवितु। आमोदजळें वोलवितु। फुलांचे डोळें ॥१५१८॥
कोकिळा कलरवाचेनि मिषें। सद्गद बोलवीत जैसें। वसंत का प्रवेशे। मद्भक्त आरामीं ॥१५१९॥
कां जन्माचें फळ चकोरां। होत जैं चंद्र ये अंबरा। नाना नवघन मयूरां। वो देत पावे ॥१५२०॥

तैसा सज्जनांच्या मेळापीं। गीतापद्यरत्नीं उमपीं। वर्षे जो माझ्या रूपीं। हेतु ठेऊनि ॥१५२१॥
मग तयाचेनि पाडें। पढियंतें मज फुडें। नाहींचि गा मागेंपुढें। न्याहाळितां ॥१५२२॥
अर्जुना हा ठायवरी। मी तयातें सूयें जिव्हारीं। जो गीतार्थाचें करी। परगुणें संतां ॥१५२३॥
अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥७०॥
पैं माझिया तुझिया मिळणीं। वाढिनली जे हे कहाणी। मोक्षधर्म का जिणीं। आलासे जेथें ॥१५२४॥
तो हा सकळार्थप्रबोधु। आम्हां दोघांचा संवादु। न करितां पदभेदु। पाठेंचि जो पढे ॥१५२५॥
तेणें ज्ञानानळीं प्रदीप्तीं। मूळ अविद्येचिया आहुती। तोषविला होय सुमती। परमात्मा मी ॥१५२६॥
घेऊनि गीतार्थ उगाणा। ज्ञानिये जें विचक्षणा। ठाकती तें गाणावाणा। गीतेचा तो लाहे ॥१५२७॥
गीता पाठकासि असे . फळ अर्थज्ञाचि सरिसें। गीता माउलियेसि नसे। जाणें तान्हें ॥१५२८॥
श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥७१॥
आणि सर्वमार्गीं निंदा। सांडूनि आस्था पैं शुद्धा। गीताश्रवणीं श्रद्धा। उभारी जो ॥१५२९॥
तयाच्या श्रवणपुटीं। गीतेचीं अक्षरें जंव पैठीं। होतीना तंव उठाउठीं। पळेचि पाप ॥१५३०॥
अटवियेमाजीं जैसा। वन्हि रिघतां सहसा। लंघिती का दिशा। वनौकें तियें ॥१५३१॥
कां उदयाचळकुळीं। झळकतां अंशुमाळी। तिमिरें अंतराळीं। हारपती ॥१५३२॥
तैसा कानाच्या महाद्वारीं। गीता गजर जेथ करी। तेथ सृष्टीचिये आदिवरी। जायचि पाप ॥१५३३॥
ऐसी जन्मवेली धुवट। होय पुण्यरूप चोखट। याहीवरी अचाट। लाहे फळ ॥१५३४॥
जें इये गीतेचीं अक्षरें। जेतुलीं कां कर्णद्वारें। रिघती तेतुले होती पुरे। अश्वमेध कीं ॥१५३५॥
म्हणौनि श्रवणें पापें जाती। आणि धर्म धरी उन्नती। तेणें स्वर्गराज संपत्ती। लाहेचि शेखीं ॥१५३६॥
तो पैं मज यावयालागीं। पहिलें पेणें करी स्वर्गीं। मग आवडे तंव भोगी। पाठीं मजचि मिळे ॥१५३७॥
ऐसी गीता धनंजया। ऐकतया आणि पढतया। फळे महानंदें मियां। बहु काय बोलों ॥१५३८॥
याकारणें हें असो। परी जयालागीं शास्त्रातिसो। केला तें तंव तुज पुसों। काज तुझें ॥१५३९॥
कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ॥७२॥
तरी सांग पां पांडवा। हा शास्त्रसिद्धांतु आघवा। तुज एकचित्तें फावा। गेला आहे ? ॥१५४०॥
आम्हीं जैसें जया रीतीं। उगाणिलें कानांच्या हातीं। येरीं तैसेंचि तुज्या चित्तीं . पेठें केलें कीं ? ॥१५४१॥
अथवा माझारीं। गेलें सांडीविखुरी। किंवा उपेक्षेवरी। वाळूनि सांडिलें ॥१५४२॥
जैसें आम्हीं सांगितलें। तैसेंचि हृदयीं फावलें। तरी सांग पां वहिलें। पुसेन तें मी ॥१५४३॥
तरी स्वाज्ञानजनितें। मागिलें मोहें तूतें। भुलविलें तो येथें। असे कीं नाहीं ? ॥१५४४॥
हें बहु पुसों काई। सांगें तूं आपल्या ठायीं। कर्माकर्म कांहीं। देखतासी ? ॥१५४५॥
पार्थु स्वानंदैकरसें। विरेल ऐसा भेददशे। आणिला येणें मिषें। प्रश्नाचेनि ॥१५४६॥
पूर्णब्रह्म जाला पार्थु। तरी पुढील साधावया कार्यार्थु। मर्यादा श्रीकृष्णनाथु। उल्लंघों नेदी ॥१५४७॥
ये॒हवीं आपुलें करणें। सर्वज्ञ काय तो नेणें ? । परी केलें पुसणें। याचि लागीं ॥१५४८॥
एवं करोनियां प्रश्न। नसतेंचि अर्जुनपण। आणूनियां जालें पूर्णपण। तें बोलवी स्वयें ॥१५४९॥
मग क्षीराब्धीतें सांडितु। गगनीं पुंजु मंडितु। निवडे जैसा न निवडितु। पूर्णचंद्रु ॥१५५०॥
तैसा ब्रह्म मी हें विसरे। तेथ जगचि ब्रह्मत्वें भरे। हेंही सांडी तरी विरे। ब्रह्मपणही ॥१५५१॥

ऐसा मोडतु मांडतु ब्रह्में। तो दुःखें देहाचिये सीमे। मी अर्जुन येणें नामें। उभा ठेला ॥१५५२॥
मग कांपतां करतळीं। दडपूनि रोमावळी। पुलिका स्वेदजळीं। जिरऊनियां ॥१५५३॥
प्राणक्षोभें डोलतया। आंगा आंगचि टेंकया। सूनि स्तंभु चाळया। भुलौनियां ॥१५५४॥
नेत्रयुगुळाचेनि वोतें। आनंदामृताचें भरितें। वोसंडत तें मागुतें। काढूनियां ॥१५५५॥
विविधा औत्सुक्यांची दाटी। चीप दाटत होती कंठीं। ते करूनियां पैठी। हृदयामाजीं ॥१५५६॥
वाचेचें वितुळणें। सांवरूनि प्राणें। अक्रमाचें श्वसणें। ठेऊनि ठायीं ॥१५५७॥

अर्जुन उवाच ।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥७३॥

मग अर्जुन म्हणे काय देवो। . पुसताति आवडे मोहो। तरी तो सकुटुंब गेला जी ठावो। घेऊनि आपला ॥१५५८॥
पासीं येऊनि दिनकरें। डोळयातें अंधारें। पुसिजे हें कायि सरे। कोणे गांवीं ? ॥१५५९॥
तैसा तूं श्रीकृष्णराया। आमुचिया डोळयां। गोचर हेंचि कायिसया। न पुरे तंव ॥१५६०॥
वरी लोभें मायेपासूनी। तें सांगसी तोंड भरूनी। जें कायिसेनिही करूनी। जाणूं नये ॥१५६१॥
आतां मोह असे कीं नाहीं। हें ऐसें जी पुससी काई। कृतकृत्य जाहलों पाहीं। तुझेपणें ॥१५६२॥
गुंतलों होतों अर्जुनगुणें। तो मुक्त जालों तुझेपणें। आतां पुसणें सांगणें। दोन्ही नाहीं ॥१५६३॥
मी तुझेनि प्रसादें। लाधलेनि आत्मबोधें। मोहाचे तया कांदे। नेदीच उरों ॥१५६४॥
आतां करणें कां न करणें। हें जेणें उठी दुजेपणें। तें तूं वांचूनि नेणें। सर्वत्र गा ॥१५६५॥
ये विषयीं माझ्या ठायीं। संदेहाचे नुरेचि कांहीं। त्रिशुद्धि कर्म जेथ नाहीं। तें मी जालों ॥१५६६॥
तुझेनि मज मी पावोनी। कर्तव्य गेलें निपटूनी। परी आज्ञा तुझी वांचोनि। आन नाहीं प्रभो ॥१५६७॥
कां जें दृश्य दृश्यातें नाशी। जें दुजें द्वैतातें ग्रासी। जें एक परी सर्वदेशीं। वसवी सदा ॥१५६८॥
जयाचेनि संबंधें बंधु फिटे। जयाचिया आशा आस तुटे। जें भेटलया सर्व भेटे। आपणपांचि ॥१५६९॥
तें तूं गुरुलिंग जी माझें। जें येकलेपणींचें विरजें। जयालागीं वोलांडिजे। अद्वैतबोधु ॥१५७०॥
आपणचि होऊनि ब्रह्म। सारिजे कृत्याकृत्यांचें काम। मग कीजे का निःसीम। सेवा जयाची ॥१५७१॥
गंगा सिंधू सेवूं गेली। पावतांचि समुद्र जाली। तेवीं भक्तां सेल दिधली। निजपदाची ॥१५७२॥
तो तूं माझा जी निरुपचारु। श्रीकृष्णा सेव्य सद्गुरु। मा ब्रह्मतेचा उपकारु। हाचि मानीं ॥१५७३॥
जें मज तुम्हां आड। होतें भेदाचें कवाड। तें फेडोनि केलें गोड। सेवासुख ॥१५७४॥
तरी आतां तुझी आज्ञा। सकळ देवाधिदेवराज्ञा। करीन देईं अनुज्ञा। भलतियेविषयीं ॥१५७५॥
यया अर्जुनाचिया बोला। देवो नाचे सुखें भुलला। म्हणे विश्वफळा जाला। फळ हा मज ॥१५७६॥
उणेनि उमचला सुधाकरु। देखुनी आपला कुमरु। मर्यादा क्षीरसागरु। विसरेचिना ? ॥१५७७॥
ऐसे संवादाचिया बहुलां। लग्न दोघांचियां आंतुला। लागलें देखोनि जाला। निर्भरु संजयो ॥१५७८॥
तेणें म्हणतसे संजयो . बाप कृपानिधी रावो . तो आपुला मनोभावो . अर्जुनेंसी केला ॥१५७९ ॥
तेणें उचंबळलेपणें। संजय धृतराष्ट्रातें म्हणे। जी कैसे बादरायणें। रक्षिलों दोघे ? ॥१५८०॥
आजि तुमतें अवधारा। नाहीं चर्मचक्षूही संसारा। कीं ज्ञानदृष्टिव्यवहारा आणिलेती ॥१५८१॥
आणि रथींचिये राहाटी। घेई जो घोडेयासाठीं। तया आम्हां या गोष्टी। गोचरा होती ॥१५८२॥
वरी जुंझाचें निर्वाण। मांडलें असे दारुण। दोहीं हारीं आपण। हारपिजे जैसें ॥१५८३॥
येवढा जिये सांकडां। कैसा अनुग्रहो पैं गाढा। जे ब्रह्मानंदु उघडा। भोगवीतसे ॥१५८४॥
ऐसें संजय बोलिला। परी न द्रवे येरु उगला। चंद्रकिरणीं शिवतला। पाषाणु जैसा ॥१५८५॥

हे देखोनि तयाची दशा। मग करीचिना सरिसा। परी सुखें जाला पिसा। बोलतसे ॥१५८६॥

भुलविला हर्षवेगें। म्हणौनि धृतराष्ट्रा सांगे। ये़ऱ्हवीं नव्हे तयाजोगें। हें कीर जाणें ॥१५८७॥

सञ्जय उवाच ।

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।

संवादमिममश्रौषमद्‌भुतं रोमहर्षणम् ॥७४॥

मग म्हणे पैं कुरुराजा। ऐसा बंधुपुत्र तो तुझा। बोलिला तें अधोक्षजा। गोड जालें ॥१५८८॥

अगा पूर्वापर सागर। ययां नामसीचि सिनार। येर आघवें तें नीर। एक जैसें ॥१५८९॥

तैसा श्रीकृष्ण पार्थ ऐसें। हें आंगाचिपासीं दिसे। मग संवादीं जी नसे। कांहींचि भेदु ॥१५९० ॥

पैं दर्पणाहूनि चोखें। दोन्ही होती सन्मुखें। तेथ येरी येर देखे। आपणपें जैसें ॥१५९१॥

तैसा देवेसीं पंडुसुतु। आपणपें देवीं देखतु। पांडवेंसीं देखे अनंतु। आपणपें पार्थीं ॥१५९२॥

देव देवो भक्तालागीं। जिये विवरूनि देखे आंगीं। येरु तियेचेही भागीं। दोन्ही देखे ॥१५९३॥

आणिक कांहींच नाहीं। म्हणौनि करिती काई। दोघे येकपणें पाहीं। नांदताती ॥१५९४॥

आतां भेदु जरी मोडे। तरी प्रश्नोत्तर कां घडे ? । ना भेदुचि तरी जोडे। संवादसुख कां ? ॥१५९५॥

ऐसें बोलतां दुजेपणें। संवादीं द्वैत गिळणें। तें ऐकिलें बोलणें। दोघांचें मियां ॥१५९६॥

उटूनि दोन्ही आरिसे। वोडविलीया सरिसे। कोण कोणा पाहातसे। कल्पावें पां ? ॥१५९७॥

कां दीपासन्मुखु। ठेविलया दीपकु। कोण कोणा अर्थिकु। कोण जाणें ॥१५९८॥

नाना अर्कापुढें अर्कु। उदयलिया आणिकु। कोण म्हणे प्रकाशकु। प्रकाश्य कवण ? ॥१५९९॥

हें निर्धारूं जातां फुडें। निर्धारासि ठक पडे। ते दोघे जाले एवढे। संवादें सरिसे ॥१६००॥

जी मिळतां दोन्ही उदकें . माजी लवण वारूं ठाके। कीं तयासींही निमिखें। तेंचि होय ॥१६०१॥

तैसे श्रीकृष्ण अर्जुन दोन्ही। संवादले तें मनीं। धरितां मजही वानी। तेंचि होतसे ॥१६०२॥

ऐसें म्हणे ना मोटकें . तंव हिरोनि सात्विकें। आठव नेला नेणों कें। संजयपणाचा ॥१६०३॥

रोमांच जंव फरके। तंव तंव आंग सुरके। स्तंभ स्वेदांतें जिंके। एकला कंपु ॥१६०४॥

अद्वयानंदस्पर्शें। दिठी रसमय जाली असे . ते अश्रु नव्हती जैसें। द्रवत्वचि ॥१६०५॥

नेणों काय न माय पोटीं। नेणों काय गुंफे कंठीं। वागर्था पडत मिठी। उससांचिया ॥१६०६॥

किंबहुना सात्विकां आठां। चाचरु मांडतां उमेठा। संजयो जालासे चोहटां। संवादसुखाचा ॥१६०७॥

तया सुखाची ऐसी जाती। जे आपणचि धरी शांती। मग पुढती देहस्मृती। लाधली तेणें ॥१६०८॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्‌गुह्यमहं परम् ।

योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥७५॥

तेव्हां बैसतेनि आनंदें। म्हणे जी जें उपनिषदें। नेणती तें व्यासप्रसादें। ऐकिलें मियां ॥१६०९॥

ऐकतांचि ते गोठी। ब्रह्मत्वाची पडिली मिठी। मीतूंपणेंसीं दृष्टी। विरोनि गेली ॥१६१०॥

हे आघवेचि का योग। जया ठाया येती मार्ग। तयाचें वाक्य सवंग। केलें मज व्यासें ॥१६११॥

अहो अर्जुनाचेनि मिषें। आपणपेंचि दुजें ऐसें। नटोनि आपणया उद्देशें। बोलिलें जें देव ॥१६१२॥

तेथ कीं माझें श्रोत्र। पाटाचें जालें जी पात्र। काय वानूं स्वतंत्र। सामर्थ्य श्रीगुरुचें ॥१६१३॥

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्‌भुतम् ।

केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥७६॥

राया हें बोलतां विस्मित होये। तेणेंचि मोडावला ठाये। रत्नीं कीं रत्नकिळा ये। झांकोळित जैसी ॥१६१४॥

हिमवंतींचीं सरोवरें। चंद्रोदयीं होती काश्मीरें। मग सूर्यागमीं माघारें। द्रवत्व ये ॥१६१५॥

तैसा शरीराचिया स्मृती। तो संवादु संजय चित्तीं। धरी आणि पुढती। तेंचि होय ॥१६१६॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥७७॥

मग उठोनि म्हणे नृपा। श्रीहरीचिया विश्वरूपा। देखिलया उगा कां पां। असों लाहसी ? ॥१६१७॥
न देखणेनि जें दिसे। नाहींपणेंचि जें असे . विसरें आठवे तें कैसें। चुकऊं आतां ॥१६१८॥
देखोनि चमत्कारु। कीजे तो नाहीं पैसारु। मजहीसकट महापूरु। नेत आहे ॥१६१९॥
ऐसा श्रीकृष्णार्जुन- । संवाद संगमीं स्नान। करूनि देतसे तिळदान। अहंतेचें ॥१६२०॥
तेथ असंवरें आनंदें। अलौकिकही कांहीं स्फुंदे। श्रीकृष्ण म्हणे सद्गदें। वेळोवेळां ॥१६२१॥
या अवस्थांची कांहीं। कौरवांतें परी नाहीं। म्हणौनि रायें तें कांहीं। कल्पावें जंव ॥१६२२॥
तंव जाला सुखलाभु। आपणया करूनि स्वयंभु। बुझाविला अवष्टंभु। संजयें तेणें ॥१६२३॥
तेथ कोणी येकी अवसरी। होआवी ते करूनि दुरी। रावो म्हणे संजया परी। कैसी तुझी गा ? ॥१६२४॥
तेणें तूंतें येथें व्यासें। बैसविलें कासया उद्देशें। अप्रसंगामाजीं ऐसें। बोलसी काई ? ॥१६२५॥
रानींचें राउळा नेलिया। दाही दिशा मानी सुनिया। कां रात्री होय पाहलया। निशाचरां ॥१६२६॥
जो जेथिंचें गौरव नेणें। तयासि तें भिंगुळवाणें। म्हणौनि अप्रसंगु तेणें। म्हणावा कीं तो ॥१६२७॥
मग म्हणे सांगें प्रस्तुत। उदयलेंसे जें उत्कळित। तें कोणासि बा रे जैत। देईल शेखीं ? ॥१६२८॥
येऱ्हवीं विशेषें बहुतेक। आमुचें ऐसें मानसिक। जे दुर्योधनाचे अधिक। प्रताप सदा ॥१६२९॥
आणि येरांचेनि पाडें। दळही याचें देव्हडें। म्हणौनि जैत फुडें। आणील ना तें ? ॥१६३०॥
आम्हां तंव गमे ऐसें। मा तुझें ज्योतिष कैसें। तें नेणों संजया असे . तैसें सांग पां ॥१६३१॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥७८॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८अ ॥

यया बोला संजयो म्हणे। जी येरयेरांचें मी नेणें। परी आयुष्य तेथें जिणें। हें फुडें कीं गा ॥१६३२॥
चंद्रु तेथें चंद्रिका। शंभु तेथें अंबिका। संत तेथें विवेका। असणें कीं जी ॥१६३३॥
रावो तेथें कटक। सौजन्य तेथें सोयरीक। वन्हि तेथें दाहक। सामर्थ्य कीं ॥१६३४॥
दया तेथें धर्मु। धर्मु तेथें सुखागमु। सुखीं पुरुषोत्तमु। असे जैसा ॥१६३५॥
वसंत तेथें वनें। वन तेथें सुमनें। सुमनीं पालिंगनें। सारंगांचीं ॥१६३६॥
गुरु तेथ ज्ञान। ज्ञानीं आत्मदर्शन। दर्शनीं समाधान। आथी जैसें ॥१६३७॥
भाग्य तेथ विलासु। सुख तेथ उल्लासु। हें असो तेथ प्रकाशु। सूर्य जेथें ॥१६३८॥
तैसे सकल पुरुषार्थ। जेणें स्वामी कां सनाथ। तो श्रीकृष्ण रावो जेथ। तेथ लक्ष्मी ॥१६३९॥
आणि आपुलेनि कांतेंसीं। ते जगदंबा जयापासीं। अणिमादिकीं काय दासी। नव्हती तयातें ? ॥१६४०॥
कृष्ण विजयस्वरूप निजांगें। तो राहिला असे जेणें भागें। तैं जयो लागवेगें। तेथेंचि आहे ॥१६४१॥
विजयो नामें अर्जुन विख्यातु। विजयस्वरूप श्रीकृष्णनाथु। श्रियेसीं विजय निश्चितु। तेथेंचि असे ॥१६४२॥
तयाचिये देशींच्या झाडीं। कल्पतरूतें होडी। न जिणावें कां येवढीं। मायबापें असतां ? ॥१६४३॥
ते पाषाणही आघवें। चिंतारत्नें कां नोहावे ? । तिये भूमिके कां न यावें। सुवर्णत्व ? ॥१६४४॥
तयाचिया गांवींचिया। नदी अमृतें वाहाविया। नवल कायि राया। विचारीं पां ॥१६४५॥
तयाचे बिसाट शब्द। सुखें म्हणों येती वेद। सदेह सच्चिदानंद। कां न व्हावे ते ? ॥१६४६॥

पैं स्वर्गापवर्ग दोन्ही। इयें पदें जया अधीनीं। तो श्रीकृष्ण बाप जननी। कमळा जया ॥१६४७॥
म्हणौनि जिया बाहीं उभा। तो लक्ष्मीयेचा वल्लभा। तेथें सर्वसिद्धी स्वयंभा। येर मी नेणें ॥१६४८॥
आणि समुद्राचा मेघु। उपयोगें तयाहूनि चांगु। तैसा पार्थीं आजि लागु। आहे तये ॥१६४९॥
कनकत्वदीक्षागुरू। लोहा परिसु होय कीरू। परी जगा पोसिता व्यवहारु। तेंचि जाणें ॥१६५०॥
येथ गुरुत्वा येतसे उणें। ऐसें झणें कोण्ही म्हणे। वन्हि प्रकाश दीपपणें। प्रकाशी आपुला ॥१६५१॥
तैसा देवाचिया शक्ती। पार्थु देवासीचि बहुती। परी माने इये स्तुती। गौरव असे ॥१६५२॥
आणि पुत्रें मी सर्व गुणीं। जिणावा हे बापा शिराणी। तरी ते शारङ्गपाणी। फळा आली ॥१६५३॥
किंबहुना ऐसा नृपा। पार्थु जालासे कृष्णकृपा। तो जयाकडे साक्षेपा। रीति आहे ॥१६५४॥
तोचि गा विजयासि ठावो। येथ तुज कोण संदेहो ? । तेथ न ये तरी वावो। विजयोचि होय ॥१६५५॥
म्हणौनि जेथ श्री तेथें श्रीमंतु। जेथ तो पंडूचा सुतु। तेथ विजय समस्तु। अभ्युदयो तेथ ॥१६५६॥
जरी व्यासाचेनि साचें। धिरे मन तुमचें। तरी या बोलाचें। ध्रुवचि माना ॥१६५७॥
जेथ तो श्रीवल्लभु। जेथ भक्तकदंबु। तेथ सुख आणि लाभु। मंगळाचा ॥१६५८॥
या बोला आन होये। तरी व्यासाचा अंकु न वाहे। ऐसें गाजोनि बाहें। उभिली तेणें ॥१६५९॥
एवं भारताचा आवांका। आणूनि श्लोका येका। संजयें कुरुनायका। दिधला हातीं ॥१६६०॥
जैसा नेणों केवढा वन्ही। परी गुणाग्रीं ठेऊनी। आणिजे सूर्याची हानी। निस्तरावया ॥१६६१॥
तैसें शब्दब्रह्म अनंत। जालें सवालक्ष भारत। भारताचें शतें सात। सर्वस्व गीता ॥१६६२॥
तयांही सातां शतांचा। इत्यर्थु हा श्लोक शेषींचा। व्यासशिष्य संजयाचा। पूर्णोद्गारु जो ॥१६६३॥
येणें येकेंचि श्लोकें। राहे तेणें असकें। अविद्याजाताचें निकें। जिंतलें होय ॥१६६४॥
ऐसें श्लोक शतें सात। गीतेचीं पदें आंगें वाहत। पदें म्हणों कीं परमामृत। गीताकाशींचें ॥१६६५॥
कीं आत्मराजाचिये सभे। गीते वोडवले हे खांबे। मज श्लोक प्रतिभे। ऐसे येत ॥१६६६॥
कीं गीता हे सप्तशती। मंत्रप्रतिपाद्य भगवती। मोहमहिषा मुक्ति। आनंदली असे ॥१६६७॥
म्हणौनि मनें कायें वाचा। जो सेवकु होईल इयेचा। तो स्वानंदासाम्राज्याचा। चक्रवर्ती करी ॥१६६८॥
कीं अविद्यातिमिररोखें। श्लोक सूर्यातें पैजा जिंकें। ऐसे प्रकाशिले गीतामिषें। रायें श्रीकृष्णें ॥१६६९॥
कीं श्लोकाक्षरद्राक्षलता। मांडव जाली आहे गीता। संसारपथश्रांता। विसंवावया ॥१६७०॥
कीं सभाग्यसंतीं भ्रमरीं। केले ते श्लोककल्हारीं। श्रीकृष्णाख्यसरोवरीं। सासिन्नली हे ॥१६७१॥
कीं श्लोक नव्हती आन। गमे गीतेचें महिमान। वाखाणिते बंदीजन। उदंड जैसे ॥१६७२॥
कीं श्लोकांचिया आवारा। सात शतें करूनि सुंदरा। सर्वागम गीतापुरा। वसों आले ॥१६७३॥
कीं निजकांता आत्मया। आवडी गीता मिळावया। श्लोक नव्हती बाह्या। पसरु का जो ॥१६७४॥
कीं गीताकमळींचे भृंग। कीं हे गीतासागरतरंग। कीं हरीचे हे तुरंग। गीतारथींचे ॥१६७५॥
कीं श्लोक सर्वतीर्थ संघातु। आला श्रीगीतेगंगे आंतु। जे अर्जुन नर सिंहस्थु। जाला म्हणौनि ॥१६७६॥
कीं नोहे हे श्लोकश्रेणी। अचिंत्यचित्तचिंतामणी। कीं निर्विकल्पां लावणी। कल्पतरूंची ॥१६७७॥
ऐसिया शतें सात श्लोकां। परी आगळा येकयेका। आतां कोण वेगळिका। वानावां पां ॥१६७८॥
तान्ही आणि पारठी। इया कामधेनूतें दिठी। सूनि जैसिया गोठी। कीजती ना ॥१६७९॥
दीपा आगिलु मागिलु। सूर्यु धाकुटा वडीलु। अमृतसिंधु खोलु। उथळु कायसा ॥१६८०॥
तैसे पहिले सरते। श्लोक न म्हणावे गीते। जुनीं नवीं पारिजातें। आहाती काई ? ॥१६८१॥
आणि श्लोका पाडु नाहीं। हें कीर समर्थु काई। येथ वाच्य वाचकही। भागु न धरी ॥१६८२॥
जे इये शास्त्रीं येकु। श्रीकृष्णचि वाच्य वाचकु। हें प्रसिद्ध जाणे लोकु। भलताही ॥१६८३॥

येथें अर्थे तेंचि पाठें। जोडे येवढेनि धटें। वाच्यवाचक येकवटें। साधितें शास्त्र ॥१६८४॥
म्हणौनि मज कांहीं। समर्थनीं आतां विषय नाहीं। गीता जाणा हे वाङ्गमयी। श्रीमूर्ति प्रभूचि ॥१६८५॥
शास्त्र वाच्यें अर्थे फळे। मग आपण मावळे। तैसें नव्हें हें सगळें। परब्रह्मचि ॥१६८६॥
कैसा विश्वाचिया कृपा। करूनि महानंद सोपा। अर्जुनव्याजें रूपा। आणिला देवें ॥१६८७॥
चकोराचेनि निमित्तें। तिन्ही भुवनें संतप्तें। निववलीं कळांवतें। चंद्रें जेवीं ॥१६८८॥
कां गौतमाचेनि मिषें। कळिकाळज्वरीतोद्देशें। पाणिढाळु गिरीशें। गंगेंचा केला ॥१६८९॥
तैसें गीतेचें हें दुभतें। वत्स करूनि पार्थातें। दुभिन्नली जगापुरतें। श्रीकृष्ण गाय ॥१६९०॥
येथे जीवें जरी नाहाल। तरी हेंचि कीर होआल। नातरी पाठमिषें तिंबाल। जीभचि जरी ॥१६९१॥
तरी लोह एकें अंशें। झगटलिया परीसें। येरीकडे अपैसें। सुवर्ण होय ॥१६९२॥
तैसी पाठाची ते वाटी। श्लोकपाद लावा ना जंव वोठीं। तंव ब्रह्मतेची पुष्टी। येईल आंगा ॥१६९३॥
ना येणेसीं मुख वांकडें। करूनि ठाकाल कानवडें। तरी कानींही घेतां पडे। तेचि लेख ॥१६९४॥
जे हे श्रवणें पाठें अर्थे। गीता नेदी मोक्षाआरौतें। जैसा समर्थु दाता कोण्हातें। नास्ति न म्हणे ॥१६९५॥
म्हणौनि जाणतया सवा। गीताचि येकी सेवा। काय कराल आघवां। शास्त्रीं येरीं ॥१६९६॥
आणि कृष्णार्जुनीं मोकळी। गोठी चावळिली जे निराळी। ते श्रीव्यासें केली करतळीं। घेवों ये ऐसी ॥१६९७॥
बाळकातें वोरसें। माय जैं जेवऊं बैसे। तैं तया ठाकती तैसे। घांस करी ॥१६९८॥
कां अफाटा समीरणा। आपैतेंपण शाहाणा। केलें जैसें विंजणा। निर्मूनियां ॥१६९९॥
तैसें शब्दें जें न लभे। तें घडूनिया अनुष्टुभें। स्त्रीशूद्रादि प्रतिभे। सामाविलें ॥१७००॥
स्वातीचेनि पाणियें। न होती जरी मोतियें। तरी अंगीं सुंदरांचिये। कां शोभिती तियें ? ॥१७०१॥
नादु वाद्या न येतां। तरी कां गोचरु होता। . फुलें न होतां घेपता। आमोदु केवीं ? ॥१७०२॥
गोडीं न होती पक्वान्नें। तरी कां फावती रसनें ? । दर्पणावीण नयनें। नयनु कां दिसे ? ॥१७०३॥
द्रष्टा श्रीगुरुमूर्ती। न रिगता दृश्यपंथीं। तरी कां ह्या उपास्ती। आकळता तो ? ॥१७०४॥
तैसें वस्तु जें असंख्यात। तया संख्या शतें सात। न होती तरी कोणा येथ। फावों शकतें ? ॥१७०५॥
मेघ सिंधूचें पाणी वाहे। तरी जग तयातेंचि पाहे। कां जे उमप ते नोहें। ठाकतें कोण्हा ॥१७०६॥
आणि वाचा जें न पवे। तें हे श्लोक न होते बरवे। तरी कानें मुखें फावे। ऐसें कां होतें ? ॥१७०७॥
म्हणौनि श्रीव्यासाचा हा थोरु। विश्वा जाला उपकारु। जे श्रीकृष्ण उक्ती आकारु। ग्रंथाचा केला ॥१७०८॥
आणि तोचि हा मी आतां। श्रीव्यासाचीं पदें पाहतां पाहतां। आणिला श्रवणपथा। मऱ्हाठिया ॥१७०९॥
व्यासादिकांचे उन्मेख। राहाटती जेथ साशंक। तेथ मीही रंक येक। चावळी करीं ॥१७१०॥
परी गीता ईश्वरु भोळा। ले व्यासोक्तिकुसुममाळा। तरी माझिया दुर्वादळा। ना न म्हणे कीं ॥१७११॥
आणि क्षीरसिंधूचिया तटा। पाणिया येती गजघटा। तेथ काय मुरकुटा। वारिजत असे ? ॥१७१२॥
पांख फुटे पांखिरूं। नुडे तरी नभींच स्थिरू। गगन आक्रमी सत्वरू। तो गरुडही तेथ ॥१७१३॥
राजहंसाचें चालणें। भूतळीं जालिया शाहाणें। आणिकें काय कोणें। चालावेचिना ? ॥१७१४॥
जी आपुलेनि अवकाशें। अगाध जळ घेपे कलशें। चुळीं चूळपण ऐसें। भरूनि न निघे ? ॥१७१५॥
दिवटीच्या आंगीं थोरी। तरी ते बहु तेज धरी। वाती आपुलिया परी। आणीच कीं ना ? ॥१७१६॥
जी समुद्राचेनि पैसें। समुद्रीं आकाश आभासे। थिल्लरीं थिल्लराऐसें। बिंबेचि पैं ॥१७१७॥
तेवीं व्यासादिक महामती। वावरों येती इये ग्रंथीं। मा आम्ही ठाकों हे युक्ति। न मिळे कीर ? ॥१७१८॥
जिये सागरीं जळचरें। संचरती मंदराकारें। तेथ देखोनि शफरें येरें। पोहों न लाहती ? ॥१७१९॥
अरुण आंगाजवळिके। म्हणौनि सूर्यातें देखें। मा भूतळींची न देखे। मुंगी काई ? ॥१७२०॥

यालागीं आम्हां प्राकृतां। देशिकारें बंधें गीता। म्हणणें हें अनुचिता। कारण नोहे ॥१७२१॥
आणि बापु पुढां जाये। ते घेत पाउलाची सोये। बाळ ये तरी न लाहे। पावों कायी ? ॥१७२२॥
तैसा व्यासाचा मागोवा घेतु। भाष्यकारातें वाट पुसतु। अयोग्यही मी न पवतु। कें जाईन ? ॥१७२३॥
आणि पृथ्वी जयाचिया क्षमा। नुबगे स्थावर जंगमा। जयाचेनि अमृतें चंद्रमा। निववी जग ॥१७२४॥
जयाचें आंगिक असिकें। तेज लाहोनि अर्कें। आंधाराचें सावाइकें। लोटिजत आहे ॥१७२५॥
समुद्रा जयाचें तोय। तोया जयाचें माधुर्य। माधुर्या सौंदर्य। जयाचेनि ॥१७२६॥
पवना जयाचें बळ। आकाश जेणें पघळ। ज्ञान जेणें उज्वळ। चक्रवर्ती ॥१७२७॥
वेद जेणें सुभाष। सुख जेणें सोल्लास। हें असो रूपस। विश्व जेणें ॥१७२८॥
तो सर्वोपकारी समर्थु। सद्‌गुरु श्रीनिवृत्तिनाथु। राहाटत असे मजही आंतु। रिघोनियां ॥१७२९॥
आतां आयती गीता जगीं। मी सांगें मऱ्हाठिया भंगीं। येथ कें विस्मयालागीं। ठावो आहे ॥१७३०॥
श्रीगुरुचेनि नांवें माती। डोंगरीं जयापासीं होती। तेणें कोळियें त्रिजगतीं। येकवद केली ॥१७३१॥
चंदनें वेधलीं झाडें। जालीं चंदनाचेनि पाडें। वसिष्ठें मांनिली कीं भांडे। भानूसीं शाटी ॥१७३२॥
मा मी तव चित्ताथिला। आणि श्रीगुरु ऐसा दादुला। जो दिठीवेनि आपुला। बैसवी पदीं ॥१७३३॥
आधींचि देखणी दिठी। वरी सूर्य पुरवी पाठी। तैं न दिसे ऐसी गोठी। केंही आहे ? ॥१७३४॥
म्हणौनि माझें नित्य नवे। श्वासोश्वासही प्रबंध होआवे। श्रीगुरुकृपा काय नोहे। ज्ञानदेवो म्हणे ॥१७३५॥
याकारणें मियां। श्रीगीतार्थु मऱ्हाठिया। केला लोकां यया। दिठीचा विषो ॥१७३६॥
परी मऱ्हाठे बोलरंगें। कवळितां पैं गीतांगें। तैं गातयाचेनि पांगें। येकाढतां नोहे ॥१७३७॥
म्हणौनि गीता गावों म्हणे। तें गाणिवें होती लेणें। ना मोकळे तरी उणें। गीताही आणित ॥१७३८॥
सुंदर आंगीं लेणें न सूये। तैं तो मोकळा शृंगारु होये। ना लेइलें तरी आहे। तैसें कें उचित ? ॥१७३९॥
कां मोतियांची जैसी जाती। सोनयाही मान देती। नातरी मानविती। अंगेंचि सडीं ॥१७४०॥
नाना गुंफिलीं कां मोकळीं। उणीं न होती परीमळीं। वसंतागमींचीं वाटोळीं। मोगरीं जैसीं ॥१७४१॥
तैसा गाणिवेतें मिरवी। गीतेवीणही रंगु दावीं। तो लाभाचा प्रबंधु ओंवी। केला मियां ॥१७४२॥
तेणें आबालसुबोधें। ओवीयेचेनि प्रबंधें। ब्रह्मरससुस्वादें। अक्षरें गुंथिलीं ॥१७४३॥
आतां चंदनाच्या तरुवरीं। परीमळालागीं फुलवरीं। पारुखणें जियापरी। लागेना कीं ॥१७४४॥
तैसा प्रबंधु हा श्रवणीं। लागतखेंवो समाधि आणी। ऐकिलियाही वाखाणी। काय व्यसन न लवी ? ॥१७४५॥
पाठ करितां व्याजें। पांडित्यें येती वेषजे। तैं अमृतातें नेणिजे। फावलिया ॥१७४६॥
तैसेंनि आइतेपणें। कवित्व जालें हें उपेणें। मनन निदिध्यास श्रवणें। जिंतिलें आतां ॥१७४७॥
हे स्वानंदभोगाची सेल। भलतयसीचि देईल। सर्वेंद्रियां पोषवील। श्रवणाकरवीं ॥१७४८॥
चंद्रातें आंगवणें। भोगूनि चकोर शाहाणे। परी फावे जैसें चांदिणें। भलतयाही ॥१७४९॥
तैसें अध्यात्मशास्त्रीं यियें। अंतरंगचि अधिकारिये। परी लोकु वाक्चातुर्यें। होईल सुखिया ॥१७५०॥
ऐसें श्रीनिवृत्तिनाथाचें। गौरव आहे जी साचें। ग्रंथु नोहे हें कृपेचें। वैभव तिये ॥१७५१॥
क्षीरसिंधु परिसरीं। शक्तीच्या कर्णकुहरीं। नेणों कैं श्रीत्रिपुरारीं। सांगितलें जें ॥१७५२॥
तें क्षीरकल्लोळाआंतु। मकरोदरीं गुप्तु। होता तयाचा हातु। पैठें जालें ॥१७५३॥
तो मत्स्येंद्र सप्तशृंगीं। भग्नावयवा चौरंगी। भेटला कीं तो सर्वांगीं। संपूर्ण जाला ॥१७५४॥
मग समाधि अव्युत्थया। भोगावी वासना यया। ते मुद्रा श्रीगोरक्षराया। दिधली मीनीं ॥१७५५॥
तेणें योगाब्जिनीसरोवरु। विषयविध्वंसैकवीरु। तिये पदीं कां सर्वेश्वरु। अभिषेकिला ॥१७५६॥
मग तिहीं तें शांभव। अद्वयानंदवैभव। संपादिलें सप्रभव। श्रीगहिनीनाथा ॥१७५७॥

तेणें कळिकळितु भूतां। आला देखोनि निरुता। ते आज्ञा श्रीनिवृत्तिनाथा। दिधली ऐसी ॥१७५८॥
ना आदिगुरु शंकरा- । लागोनि शिष्यपरंपरा। बोधाचा हा संसरा। जाला जो आमुतें ॥१७५९॥
तो हा तूं घेऊनि आघवा। कळीं गिळितयां जीवां। सर्व प्रकारीं धांवा। करीं पां वेगीं ॥१७६०॥
आधींच तंव तो कृपाळु। वरी गुरुआज्ञेचा बोलू। जाला जैसा वर्षाकाळू। खवळणें मेघां ॥१७६१॥
मग आर्ताचेनि वोरसें। गीतार्थग्रंथनमिसें। वर्षला शांतरसें। तो हा ग्रंथु ॥१७६२॥
तेथ पुढां मी बापिया। मांडला आर्ती आपुलिया। कीं यासाठीं येवढिया। आणिलों यशा ॥१७६३॥
एवं गुरुक्रमें लाधलें। समाधिधन जें आपुलें। तें ग्रंथें बोधौनि दिधलें। गोसावी मज ॥१७६४॥
वांचूनि पढे ना वाची। ना सेवाही जाणें स्वामीची। ऐशिया मज ग्रंथाची। योग्यता कें असे ? ॥१७६५॥
परी साचचि गुरुनाथें। निमित्त करूनि मातें। प्रबंधव्याजें जगातें। रक्षिलें जाणा ॥१७६६॥
तऱ्ही पुरोहितगुणें। मी बोलिलों पुरें उणें। तें तुम्हीं माउलीपणें। उपसाहिजो जी ॥१७६७॥
शब्द कैसा घडिजे। प्रमेयीं कैसें पां चढिजें। अळंकारु म्हणिजे। काय तें नेणें ॥१७६८॥
सायिखडेयाचें बाहुलें। चालवित्या सूत्राचेनि चाले। तैसा मातें दावीत बोले। स्वामी तो माझा ॥१७६९॥
यालागीं मी गुणदोष- । विषीं क्षमाविना विशेष। जे मी संजात ग्रंथलों देख। आचार्यें कीं ॥१७७०॥
आणि तुम्हां संतांचिये सभे। जें उणीवेंसी ठाके उभें। तें पूर्ण नोहे तरी तैं लोभें। तुम्हांसीचि कोपें ॥१७७१॥
सिवतलियाही परीसें। लोहत्वाचिये अवदसे। न मुकिजे आयसें। तैं कवणा बोलु ॥१७७२॥
वोहळें हेंचि करावें। जे गंगेचें आंग ठाकावें। मगही गंगा जरी नोहावें। तैं तो काय करी ? ॥१७७३॥
म्हणौनि भाग्ययोगें बहुवें। तुम्हां संतांचें मी पाये। पातलों आतां कें लाहे। उणें जगीं ॥१७७४॥
अहो जी माझेनि स्वामी। मज संत जोडुनि तुम्हीं। दिधलेति तेणें सर्वकामीं। परीपूर्ण जालों ॥१७७५॥
पाहा पां मातें तुम्हां सांगडें। माहेर तेणें सुरवाडें। ग्रंथाचें आळियाडें। सिद्धी गेलें ॥१७७६॥
जी कनकाचें निखळ। वोतूं येईल भूमंडळ। चिंतारत्नीं कुळाचळ। निर्मूं येती ॥१७७७॥
सातांही हो सागरांतें। सोपें भरितां अमृतें। दुवाड नोहे तारांतें। चंद्र करितां ॥१७७८॥
कल्पतरूचे आराम। लावितां नाहीं विषम। परी गीतार्थाचें वर्म। निवडूं न ये ॥१७७९॥
तो मी येकु सर्व मुका। बोलोनि मऱ्हाठिया भाखा। करी डोळेवरी लोकां। घेवों ये ऐसें जें ॥१७८०॥
हा ग्रंथसागरु येव्हढा। उतरोनि पैलीकडा। कीर्तिविजयाचा धेंडा। नाचे जो कां ॥१७८१॥
गीतार्थाचा आवारु। कलशेंसीं महामेरु। रचूनि माजीं श्रीगुरु- । लिंग जें पूजीं ॥१७८२॥
गीता निष्कपट माय। चुकोनि तान्हें हिंडे जें वाय। तें मायपूता भेटी होय। हा धर्म तुमचा ॥१७८३॥
तुम्हां सज्जनांचें केलें। आकळुनी जी मी बोलें। ज्ञानदेव म्हणे थेंकुलें। तैसें नोहें ॥१७८४॥
काय बहु बोलों सकळां। मेळविलों जन्मफळा। ग्रंथसिद्धीचा सोहळा। दाविला जो हा ॥१७८५॥
मियां जैसजैसिया आशा। केला तुमचा भरंवसा। ते पुरवूनि जी बहुवसा। आणिलों सुखा ॥१७८६॥
मजलागीं ग्रंथाची स्वामी। दुजीं सृष्टी जे हे केली तुम्ही। तें पाहोनि हांसों आम्हीं। विश्वामित्रातेंही ॥१७८७॥
जे असोनि त्रिशंकुदोषें। धातयाही आणावें वोसें। तें नासतें कीजे कीं ऐसें। निर्मावें नाहीं ॥१७८८॥
शंभू उपमन्युचेनि मोहें। क्षीरसागरूही केला आहे। येथ तोही उपमे सरी नोहे। जे विषगर्भ कीं ॥१७८९॥
अंधकारु निशाचरां। गिळितां सूर्यें चराचरां। धांवा केला तरी खरा। ताउनी कीं तो ॥१७९०॥
तातलियाही जगाकारणें। चंद्रें वेंचिलें चांदणें। तया सदोषा केवीं म्हणे। सारिखें हें ॥१७९१॥
म्हणौनि तुम्हीं मज संतीं। ग्रंथरूप जो हा त्रिजगतीं। उपयोग केला तो पुढती। निरुपम जी ॥१७९२॥
किंबहुना तुमचें केलें। धर्मकीर्तन हें सिद्धी नेलें। येथ माझें जी उरलें। पाईकपण ॥१७९३॥
आतां विश्वात्मकें देवें। येणें वाग्यज्ञें तोषावें। तोषोनि मज द्यावें। पसायदान हें ॥१७९४॥

जे खळांची व्यंकटी सांडो। तयां सत्कर्मीं रती वाढो। भूतां परस्परें पडो। मैत्र जीवाचें ॥१७९५॥
दुरिताचें तिमिर जावो। विश्व स्वधर्मसूर्यें पाहो। जो जें वांछील तो तें लाहो। प्राणिजात ॥१७९६॥
वर्षत सकळमंगळीं। ईश्वर निष्ठांची मांदियाळी। अनवरत भूमंडळीं। भेटतु या भूतां ॥१७९७॥
चलां कल्पतरूंचे अरव। चेतना चिंतामणीचें गांव। बोलते जे अर्णव। पीयूषाचे ॥१७९८॥
चंद्रमे जे अलांछन। मार्तंड जे तापहीन। ते सर्वांही सदा सज्जन। सोयरे होतु ॥१७९९॥
किंबहुना सर्वसुखीं। पूर्ण होऊनि तिहीं लोकीं। भजिजो आदिपुरुखीं। अखंडित ॥१८००॥
आणि ग्रंथोपजीविये। विशेषीं लोकीं इयें। दृष्टादृष्ट विजयें। होआवें जी ॥१८०१॥
तेथ म्हणे श्रीविश्वेशरावो। हा होईल दानपसावो। येणें वरें ज्ञानदेवो। सुखिया झाला ॥१८०२॥
ऐसें युगीं परी कळीं। आणि महाराष्ट्रमंडळीं। श्रीगोदावरीच्या कूलीं। दक्षिणलिंगीं ॥१८०३॥
त्रिभुवनैकपवित्र। अनादि पंचक्रोश क्षेत्र। जेथ जगाचें जीवनसूत्र। श्रीमहालया असे ॥१८०४॥
तेथ यदुवंशविलासु। जो सकळकळानिवासु। न्यायातें पोषी क्षितीशु। श्रीरामचंद्रु ॥१८०५॥
तेथ महेशान्वयसंभूतें। श्रीनिवृत्तिनाथसुतें। केलें ज्ञानदेवें गीते। देशीकार लेणें ॥१८०६॥
एवं भारताच्या गांवीं। भीष्मनाम प्रसिद्ध पर्वीं। श्रीकृष्णार्जुनीं बरवी। गोठी जे केली ॥१८०७॥
जें उपनिषदांचें सार। सर्व शास्त्रांचें माहेर। परमहंसीं सरोवर। सेविजे जें ॥१८०८॥
तियें गीतेचा कलशु। संपूर्ण हा अष्टादशु। म्हणे निवृत्तिदासु। ज्ञानदेवो ॥१८०९॥
पुढती पुढती पुढती। इया ग्रंथपुण्यसंपत्ती। सर्वसुखीं सर्वभूतीं। संपूर्ण होईजे ॥१८१०॥
शके बाराशतें बारोत्तरें। तैं टीका केली ज्ञानेश्वरें। सच्चिदानंदबाबा आदरें। लेखकु जाहला ॥१८११॥
इति श्री ज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां अष्टादशोध्यायः ॥

श्रीशके पंधराशें साहोत्तरीं। तारणनामसंवत्सरीं। एकाजनार्दनें अत्यादरीं। गीता- ज्ञानेश्वरी प्रतिशुद्ध केली ॥१॥
ग्रंथ पूर्वींच अतिशुद्ध। परी पाठांतरीं शुद्ध अबद्ध। तो शोधूनियां एवंविध। प्रतिशुद्ध सिद्धज्ञानेश्वरी ॥२॥
नमो ज्ञानेश्वरा निष्कलंका। जयाची गीतेची वाचितां टीका। ज्ञान होय लोकां। अतिभाविकां ग्रंथार्थियां ॥३॥
बहुकाळपर्वणी गोमटी। भाद्रपदमास कपिलाषष्ठी। प्रतिष्ठानीं गोदातटीं। लेखनकामाठी संपूर्ण जाली ॥४॥
ज्ञानेश्वरीपाठीं। जो ओंवी करील मऱ्हाटी। तेणें अमृताचे ताटीं। जाण नरोटी ठेविली ॥५॥
॥श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥
॥शुभं भवतु ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु ॥
